

महर्षि - ५५  
वेदान्त. का. ल. म.  
म. ल. ५५  
१७/१५२

# उपनिषत् (५२)

पं० शंकरलाल कौशल्य (भोले बाबा)  
मृतपुत्रं सम्पादक वेदान्त केसरी ।

वेदान्त केसरी काय  
लालघाट-आगरा ।

Rs 1 5







# उपनिषत्

(५२)

भाग पहिला ।

अनुवादक

पं० शंकरलाल कौशिक्य (भोले बाबा)

भूतपूर्व सम्पादक वेदान्त केसरी ।

वेदान्त केसरी कार्यालय

बेलनगंज-आगरा ।

सर्व अधिकार सुरक्षित ।

Rs 1 5

१००० ] प्रथम संस्करण संवत् १९८८  
१००० ] द्वितीय संस्करण संवत् २०१९



मुद्रक—रामा प्रिंटिंग प्रेस,  
रावतपाड़ा, आगरा ।  
फोन नं० २७३६



प्रकाशक—  
श्री योगानन्द आश्रम  
मत्सङ्ग सभा रजि०  
लालघाट, आगरा ।

## प्रस्तावना ।

भारतवर्ष के प्राचीन ज्ञान भंडार वेद नामसे प्रसिद्ध है । वे इह  
तथा परलोक के असीम सुख को प्राप्त करने के लिये तथा मानव  
जाति को एक उच्चतम लक्ष्य की ओर निश्चित रूपसे जानके लिये  
उपदेश देते हैं, इनके पूर्व भागमें कर्मकाण्ड दिया है; तथा इनके  
अन्तिम भागमें तत्त्व ज्ञान के सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त तथा उसके  
आधार स्वरूप ऋषियोंके आरामानुभव ग्रथित किये गये हैं । वेदों  
के अन्त में होने से इस भाग को वेदान्त कहते हैं । इसी विभाग  
में उपनिषद् आते हैं । उपनिषदों की संख्या बहुत बतायी जाती  
है; परन्तु आजकल एक सौ आठ ही का प्रचार है । इनमें से  
दस ही अत्यन्त प्राचीन होने से अधिक माने जाते हैं और इन  
दस उपनिषदों पर सभी आचार्यों ने भाष्य लिखे हैं तथा कुछ  
महत्त्व रखने वाली सभी भाषाओं में इनका अनुवाद भी हो गया  
है । वेद का शिरो भाग रूप प्राचीनता आदि के कारण दस  
उपनिषदों को महत्त्व दिया जाता है वह योग्य ही है; परन्तु  
ससे अन्य उपनिषदों का महत्त्व घटता नहीं है, अन्य उपनिषद्  
भी अपना स्वतन्त्र स्थान और महत्त्व रखते हैं । इनकी अर्वा-  
चीनता ही इनका एक भूषण बन गया है । जिस प्राचीन कर्मकाण्ड  
युग में दस उपनिषदों का प्रचार हुआ उससे वर्तमान कालीन प्रजा  
अत्यन्त अपरिचित है, इसलिये उस काल में प्रचलित बातों के  
दृष्टांत और रूपक देकर समझाई हुई बातों का इस समय दुर्बोध  
होना स्वाभाविक है । परन्तु अन्य उपनिषद् अर्वाचीन होने से



( व )

उनमें जो भाषा लिखी है, जिन दृष्टान्तों का और रूपों का प्रयोग किया गया है वे हथारे जिनके इतने दुर्बोध नहीं हैं। उन्होंने प्राचीन दस उपनिषदों का आशय इनमें अधिक सुबोध शैली में मिलता है। इसलिये मुमुक्षुओं को व्याख्या के लिये ये एक अतमोल नाथन रूप है। वेमे ही, मनुष्य की विभिन्न प्रकृति के अनुसार विभिन्न प्रकार की उपायनाओं का तथा योग क्रियाओं का वर्णन इनमें स्थान-स्थान पर आता है इसलिये सभी मतपंथों के लिये ये एकसे उपयोगी है। ऐसे अत्यन्त उपयोगी साहित्य का लाभ सामान्य भगवा जानने वाले भी ले सकें इस उद्देश्य से "वेदान्त केसरी" में इनका अनुवाद प्रकाशित किया गया है। नौ वर्ष में आये हुए इसभाषन उपनिषदों का यह संग्रह पाठकों के आगे उपस्थित है। इस अनुवाद को पुस्तकाकार प्रकाशित करने के पूर्व इसमें यथा संभव संशोधन किया गया है।

इस पुस्तक का यह द्वितीय प्रकाशन श्री योगानन्द आश्रम सारसङ्ग सभा रजि० नालघाट, आगरा द्वारा किया गया है।

## अनुक्रमशिका ।

उपनिषद्	पृष्ठ
मानन्दपाठ	१
नमन	३
१. ब्रह्म विन्दु उपनिषद्:—मनुष्य, निर्गुण ब्रह्म की उपासना ब्रह्मज्ञान ।	५
२. कैवल्य उपनिषद्:—आद्यब्रह्मपात श्रद्धि को ब्रह्म विद्या का उपदेश ।	८
३. हंसोपनिषद्:—पट् चक्र, हृदय कमल पर हंस की स्थिति और फल, दस नाद ।	१२
४. जावालोपनिषद्:—शुक्लटी और नासिका की संधि की उपासना, संन्यास सम्बन्धी उपदेश ।	१६
५. नारायणोपनिषद्:—ॐ नमोनारायण मन्त्र का वर्णन और उपासना ।	२१
६. परमहंसोपनिषद्:—परमहंस का मार्ग, स्थिति और मन्त्र प्रकार के भेद का वर्णन ।	२४
७. ब्रह्मोपनिषद्:—पुरुष के स्थान और श्रवस्पायों, यज्ञोपवीत का तात्पर्य, आरतमन्त्र, ज्ञानी के द्वारा मन्त्र का वर्णन ।	२७
८. गार्ग्योपनिषद्:—पंचसूतारमक घाटीर का वर्णन, गर्भ स्थिति और शुद्धि, पूर्व कर्मों का ज्ञान प्रतिज्ञा और विस्मरण ।	३१
९. निरालम्ब उपनिषद्:—निरालम्ब के आश्रय से परम पद की प्राप्ति । ईश्वर, जीव, प्रकृति आदि का वर्णन ।	३६



- उपनिषत् पृष्ठ
- १० क्षुरिका उपनिषत्:—प्राणायाम, नाडियां धारणा और समाधि । ५१
- ११ सर्वसांगोपनिषत्:—बंध, मोक्ष, अविद्या, विद्या, सारीं अवस्थायें, पञ्चकोश, पंचवर्ग, क्षेत्रज्ञ साक्षी, कूटस्थ, अलयामी, प्रत्ययात्मा, परात्मा और माया का वर्णन, आत्मा का स्वरूप । ४४
- १२ आराम प्रबोध उपनिषत्:—अँकार, नारायण, विष्णु तथा आत्मा की उपासना और फल । ४६
- १३ कालानि रत्न उपनिषत्:—त्रिपुण्ड्र विधि । ५३
- १४ तुरीयातीत उपनिषत्:—अवधूत मार्ग, स्थिति । ५५
- १५ अध्यात्म उपनिषत्:—ज्ञान का उपदेश, जीवन्मुक्तज्ञे स्थिति, ब्रह्म का स्वरूप । ५८
- १६ स्कन्दोपनिषत्:—शिव तथा जीव की एकता, वास्तविक शिव पूजन । ६७
- १७ तेजोबिन्दु उपनिषत्:—अँकार का ध्यान, त्रितयात्म स्वरूप वर्णन, आत्मानुभव, अहं ब्रह्म, अस्यत्स, जीवन्मुक्त, विदेह मुक्त, आत्म भ्रानात्स विवेक । ६९
- १८ योग चूड़ामणि उपनिषत्:—योग के ६ श्रंग, पट्चक्र, त्रिग शरीर, अँकार का अर्थ । १११
- १९ शरीरकोपनिषत्:—आरामभ्रानात्सविवेक, चान् अवस्था, मूश्म शरीर, आठ विकार । १२४

- उपनिषत् पृष्ठ
- २० ब्रह्मविद्या उपनिषत्:—ब्रह्म विद्या रहस्य, अँकार के शरीर आदि देह में देह का पूजन, हंस विद्या के दाता गुरु का महत्त्व । १२७
- २१ योग तरवोपनिषत्:—अष्टांग योग, आराम भावना, पंच भूत विजय, वज्रानी ज्ञानरोली राजयोग । १३८
- २२ नुवालोपनिषत्:—उत्पत्ति लय, मोक्ष साधन, प्राण के कार्य, आत्मा की उपासना, लय । १५२
- २३ कुण्डिकोपनिषत्:—संन्यास विधि तथा उपासना । १७४
- २४ संन्यासोपनिषत्:—संन्यास ग्रहण विधि, संन्यास के भेद, अवधूत का स्वरूपानुसंधान, आतुर संन्यास, संन्यासियों की गति, शिक्षा वृत्ति । १७८
- २५ परमहंस परिव्राजक उपनिषत्:—संन्यास इति निष्ठु, ब्रह्म प्रणव, परमहंस की शिक्षा । १८४
- २६ त्रिशिख ब्राह्मण उपनिषत्:—गुह्य की उत्पत्ति, जीव की गति, अष्टांग योग, कर्म योग, यमनियमादि, आसन, प्राणायाम अग्नि का स्थान, नाभि चक्र, नाडियां, अरिपुटवर्जन । २०१
- २७ कलिसंतरणोपनिषत्:—तारक मन्त्र उसका महत्त्व और फल । २१६
- २८ जावालि उपनिषत्:—जीव पशु और सर्वज्ञ ईश पशुपति, त्रिशूल धारण, त्रिपुण्ड्र विधि । २२१



## उपनिषत्

पृष्ठ

- २९ अमृतनाद उपनिषत्:—आत्म चिन्तन, योगीश्वर्योत्तम,  
पंच तन्त्रकी धारणा, प्राणों के स्थान और वर्यो । २२५
- ३० मैत्रेयी उपनिषत्:—ज्ञानोपदेश, आत्म, शुद्धि, अद्वैत  
भावना, संन्यास, आत्म निदिध्यासन । २२६
- ३१ नादविन्दु उपनिषत्:—अकार की उपासना, आत्म  
ज्ञान की स्थिति, वैष्णवी मुद्रा द्वारा नाद श्रवण । २३६
- ३२ श्रद्धालारकोपनिषत्:—ब्रह्म ध्यान, ब्रह्मानुसंधान,  
तारक के लक्ष्य रूप आकाश पंचकका वर्णन,  
शोभवी मुद्रा, गुप्त शब्द का अर्थ और महिमा । २४५
- ३३ निर्वाणोपनिषत्:—परित्राजक के लक्षण । २५०
- ३४ ध्यान विन्दु उपनिषत्:—ध्यान योग, एकाक्षर ब्रह्म,  
प्राणायाम, त्रिदेव का ध्यान, नाडियों—प्राण  
संचालन, हंस का ज्ञान, कुंडलिनी बोधन,  
लेचरी मुद्रा । २५३
- ३५ मण्डल ब्राह्मण उपनिषत्:—श्रष्टांग योग, प्राण का  
ध्यान, अमनस्क रहस्य, तारक योग,  
अवधूत स्थिति । २६६
- ३६ मिथुकोपनिषत्:—चार प्रकार के संन्यासियों का  
आचार वर्णन । २७५
- ३७ श्राणिण उपनिषत्:—संन्यास विधि । २७६

## उपनिषत्

पृष्ठ

- ३८ मैत्रेयर्णोपनिषत्:—आत्म तत्त्व वर्णन, कीद कर्म  
बन्धन, ब्रह्म की स्तुति, प्राण उपासना, गायत्री  
उपासना, आत्मा का साक्षात्कार । २८२
- ३९ योग जिहोपनिषत्:—ध्यान, क्रिया, प्राणायाम, मंत्र,  
लय, हठ और राज योग, काकमत, सिद्धियां,  
जीवन्मुक्त, कुण्डलिनी और चक्र । नाद, ब्रह्म,  
आत्म ज्ञान, काम रूप पीठ, ब्रह्मगिरि पीठ,  
नाडी चक्र, लेचरी मुद्रा, सिद्धियां, नाडियां,  
प्राण निरोध, पराशक्ति संचालन, आधार चक्र  
निरोध, दस तादादि अनुभव, प्राण, विन्दु,  
चक्र और चित्त का अभ्यास । २८८
- ४० पैङ्गलोपनिषत्:—जगत की उत्पत्ति, पंचभूत कोष,  
चैतन्य की पांच अभिव्यक्तियां, महावाक्य, वर्म  
मेघ समाधि, अपरोक्ष अनुभव, आत्म ध्यान,  
ज्ञानो के कर्म और स्थिति । ३३७
- ४१ शान्तिहोपनिषत्:—श्रष्टांग योग, प्राणादि के कर्म,  
साधन, वंद्य, लहित और केवल कुम्भक,  
वैष्णवी तथा लेचरी मुद्रा, विभिन्न स्थानों में  
प्राण तथा चित्त धारण करने का कल, आत्मा  
का स्वरूप, विद्वत् की उत्पत्ति । ३५२
- ४२ कठ उद्गोपनिषत्:—संन्यास विधि, आचार, ब्रह्मज्ञान,  
अभय प्राप्ति । ३६७

## उपनिषत्

- ५३ अक्वतुपनिषत्:—अक्वतुत की स्थिति आचार और भावना । पृष्ठ ३८४
- ५४ अक्वतु शिरोपनिषत्: खद का स्वरूप, खद स्तुति, अकार स्वरूप, खद का ध्यान, विश्व रूप खद की उपासना, खद से प्रजोन्यसि । ३८४
- ५५ वज्र सूचिका उपनिषत्:—वान्विक ब्राह्मण । ३८६
- ५६ तौपतकि ब्राह्मणोपनिषत्:—द्वयान-ब्रह्मलोक-नान वर्यन । प्राण उपासना, आन्तर अग्नि होत्र, प्राणों की श्रेष्ठता, पुत्रोय सम्प्रदान, प्राण की उपासना. अजात शत्रु कावान्नाकि को ब्रह्मोपदेश । ३८९
- ५७ अक्वतु शिखोपनिषत्:—अकार की उपासना । ४३३
- ५८ शरभोपनिषत्:—खद स्तुति । ४३६
- ५९ पायुधन ब्रह्मोपनिषत्:—हंस की उपासना, यज्ञोपवीत और संन्या का आध्यात्मिक भाव । ४८२
- ६० योग कृष्णयुपनिषत्:—प्राण—नय, प्राण निरोध, इण्डली बोधन, खेचरी विद्या, खेचरी मंत्र । ४९२
- ६१ नारद परित्राजकोपनिषत्:—संन्यास के अधिकारी, संन्यासियों के आचार, संन्यास विधि, संन्यासियों के भेद । ४९६
- ६२ वाराह उपनिषत्:—ब्रह्म विद्या का उपदेश । ५३४



सिवा आत्म कोई नहीं हुआ है ।  
सभी विश्वमें एक आत्मा भर है ॥  
न मैं हूँ, न तू है नहीं ये पत्तारा ।  
यही ब्रह्म विद्या यही ज्ञान सारा ॥







उपनिषद् ।

[ ५१ ]

भाग पहिला ।

॥ शान्ति पाठ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।  
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णं मेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

वाक्यार्थः—यह पूर्ण है, वह पूर्ण है, पूर्ण से पूर्णजनता है,  
पूर्ण में से पूर्ण ले देने से पूर्ण ही शेष रहता है । ॐ शान्तिः  
शान्तिः शान्तिः ।

ॐ सह नाववतु । सहनौ भुनक्तु । सह  
वीर्यं करवावहे । तेजस्विनावधीतमस्तु मा  
विद्विषाव है ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।



शब्दार्थः—वह हम दोनों का रखण करे, वह हम दोनों का पालन करे, हम दोनों एक साथ सामर्थ्य को प्राप्त हों, हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम परस्पर द्वे प न करें। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ आप्ययान्तु ममाज्ञानि वाक् प्राण-  
श्चक्षुः श्रोत्र अथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि  
सर्व ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्या मा मा  
ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्व निराकरणं  
मेस्तु । तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते  
मपि संतु ते मपि संतु । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

शब्दार्थः—मेरे श्रंग दृढि को प्राप्त हों, वाणी, धारा, चक्षु  
श्रोत्र, बल और सब इन्द्रियां दृढि को प्राप्त हों । सब उपनिषत्  
ब्रह्म है । मुझसे ब्रह्म का स्थान न हो और ब्रह्म मेरा त्याग न  
करे, मेरा त्याग न करे । उसमें रत हुए मुझको उपनिषत् में  
प्रतिपादित धर्म की प्राप्ति हो । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनोमे  
वाचि प्रतिष्ठितमाविराविर्म एधि वेदस्य म  
आणोस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहो

रात्रात्संदधाम्युतं वदिष्यामि सत्यं वदि-  
ष्यामि । तन्माममवतु । तद्वक्त्रारमवतु । अवतु  
मामवतु वक्त्रारमवतु वक्त्रारम् ।

मेरी वाणी मन में स्थित है, मेरा मन वाणी में स्थिति है ।  
हे स्वप्रकाश ब्रह्म, तुम मुझे प्रकट हो, मुझे ज्ञान प्राप्त हो । मेरा  
श्रवण किन्ना हुआ मुझसे भुलाओ नहीं, मैं रात दिन पढ़े हुए का  
श्रुतसंज्ञान करता हूँ । मैं शान्तिनुसार भाषण करूँगा, मैं सत्य भाषण  
करूँगा । वह मेरी रक्षा करें, वक्त्रा को रक्षा करें, मेरी रक्षा करे  
तथा वक्त्रा की रक्षा करें ।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं-  
पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्त-  
नूभिर्ऋशोम देवहितं यदायुः ॥

हे देव, हम कान से कल्याण की बातें सुनें, आँखों से कल्याण  
देखें । यह श्रवणों से तथा शरीर से अपनी ईश्वर प्रदत्त आयु हम  
तुम्हारी स्तुति करते हुए व्यतीत करें ।

नमन ।

ॐ नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं  
चतसृञ्च पराशरञ्च । व्यासं शुक्रं गौडपदं  
महान्तं गोविन्द योगीन्द्र मथास्य शिष्यम् ॥१॥



## ब्रह्मविन्दु उपनिषत् ।

[ १ ]

श्री शंकराचार्य मथास्य पद्मपादं च  
हस्तामलकं च शिष्यम् । तं त्रोटकं वातिक-  
कारमन्या नस्मद्गुरुन्संततमानतोऽस्मि ॥२॥

नारायण, ब्रह्मा, विश्व, शक्ति तथा उनका पुत्र पराशर,  
व्यास, शुक, गोडपाद, गोविन्द, योगीन्द्र तथा उनके शिष्य ।

श्री शंकराचार्य तथा उनके शिष्य पद्मपाद हस्तामलक,  
त्रोटकाचार्य और वातिककार सुरेश्वराचार्य तथा अन्य सद्गुरुओं  
को मेरा सदा नमस्कार है ।

श्रुति स्मृति पुराणनामालयं करुणालयं ।  
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोक शंकरम् ॥३॥

श्रुति स्मृति और पुराण के मर्मज्ञ, जगत, के कल्याण कर्ता,  
करुणा सागर जगत्पाद श्री शंकराचार्य को मेरा नमस्कार है ।

शंकर शंकराचार्य केशवं वादरायणं ।  
सूत्रभाष्य कृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥

शंकर स्वरोम शंकराचार्य हैं तथा विष्णु स्वरूप वादरायण  
हैं इस प्रकार इन सूत्रकार और भाष्यकार महाराम्यों को मेरा  
बार बार नमस्कार है ।

मन दो प्रकार का है—शुद्ध और अशुद्ध ! कामना वाले मन  
को अशुद्ध कहते हैं कामना रहित मन को शुद्ध कहते हैं ॥१॥  
मनुष्य के वन्धन और मोक्ष का कारण मन है । जो मन विषया-  
सक्त हो तो वन्धन को प्राप्त होता है और विषय श्रुति से रहित  
मन मुक्त होता है ॥२॥ इसलिये मुक्ति की इच्छा वाले मनुष्य को  
चाहिए कि मन को शुद्ध करे निर्विषय मन वाले की ही मुक्ति  
होती है ॥३॥ विषय संग से पृथक् हुआ हृदय में स्थित मन जब  
उन्नतों भाव को प्राप्त होता है तब वह परम पद को प्राप्त होता  
है ॥४॥ जब तक हृदय में मन का क्षय ( नाश ) न हो तब तक  
उसको निरोध करना चाहिये । मन के निरोध को ज्ञान और  
मोक्ष कहते हैं और इससे भिन्न मात्र ग्रन्थ का विन्नार रूप  
है ॥५॥ अशुद्ध मन से ब्रह्म का चिन्तन नहीं हो सका परन्तु  
शुद्ध मन से ब्रह्म अचिन्त्य नहीं है इसलिये ब्रह्म अचिन्त्य होते  
हुए भी चिन्तन हो सकता है । इस प्रकार चिन्तन करने से  
पश्चात्तन रहित ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥६॥

प्रथम स्वरसे (सगुण ब्रह्म) मनको लगाकर फिर अस्वर  
(निर्गुण ब्रह्म) की धारणा करने चाहिये, निर्गुण भावनासे भाव  
(परमार्थ वस्तु) अभावरूप नहीं होता ॥७॥ यही सब प्रकारकी  
कलाएँ रहित, सब विकल्पसे रहित और मायासे रहित ब्रह्म है,



इस प्रकारका ब्रह्म स्वरूप मैं हैं ऐसे ज्ञान की जब प्राप्ति होती है तब निश्चय ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥८॥ ब्रह्म में किसी प्रकार का विकल्प नहीं है। वह अन्त रहित है उसमें हेतु दृष्टान्त (कार्य कारण) भाव नहीं होता। वह प्रमाण रहित है उसमें प्रथम कोई नहीं है। ऐसे परम शिव का ज्ञान प्राप्त होने में जानी को किसी प्रकार बन्धन नहीं रहता, उसमें उत्पत्ति भाव नहीं रहता उसको बन्धन करने योग्य कोई नहीं होता, उसका ज्ञानन रूप कोई नहीं होता, उसको मुक्ति की इच्छा नहीं होती और मुक्ति का भाव भी नहीं होता यह स्थिति परमार्थता है ॥८-१०॥

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में एक ही आत्मा है, ऐसे मानना चाहिये। इन तीनों अवस्थाओं को अति क्रमशः (उल्लंघन) करने वाले को पुनर्जन्म नहीं होता ॥११॥ अत्येक प्राणी में नहा हुआ आत्मा एक ही है। जैसे चन्द्रमा एक न्य से और जल में अनेक रूपों से भागता है, वैसे ही वह आत्मा एक रूप से तथा अनेक रूप से दीखता है ॥१२॥ जब घट का नाश होता है तब उसमें रहने वाला आकाश महाकाश में लय होता है परन्तु घट में रहने वाले आकाश का नाश नहीं होता इसी प्रकार देह के नाश होने से जीव का नाश नहीं होता ॥१३॥ देह का नाश होने से घट के समान जीव अनेक प्रकार के देह वारम्बार धारण करता है। देह, जिसकानाश होता है, कुछ भी नहीं जानता परन्तु आत्मा, जो निरत्य है वह नव जानता है ॥१४॥ जीव जब तक शब्द को माया में आधृत है यानी शब्द ज्ञान

होने हुए लक्ष्य नहीं होता तब तक वह हृदयाकाश में टिकता है परन्तु अज्ञान के नाश होने से सब एक रूप है, ऐसे देखता है ॥१५॥ देहादिक के नाश होने से जिसका नाश नहीं होता वह शब्दाक्षर परब्रह्म है। जो अधिकानी पुरुष आत्मा के कल्याण की इच्छा करता हो उस अधिकारी को अक्षर ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये ॥१६॥ शब्द ब्रह्म और पञ्च (परा और अपरा) ऐसी दो प्रकार की विद्या जानें, जो शब्द ब्रह्म के जानने में कुशल होता है उसको परब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥१७॥ जैसे धान की इच्छा वाले, धान को ग्रहण करके परान को त्याग देते हैं, वैसे बुद्धिमात्र पुरुष ग्रन्थों का अभ्यास करके ज्ञान विज्ञान के तन्त्र को जानने के पश्चात् सब ग्रन्थों का त्याग करदे ॥१८॥ जैसे अनेक रंग वाली गोश्यों का दूध एक ही रंग का दूध होता है वैसे ही ज्ञान दूध के समान सर्व एक ही है, भेद जैसे गोश्यों में है ऐसे देहों में है ॥१९॥ जैसे दूध में दूध अवश्य रहता है वैसे ही सब भूतों में विज्ञानात्मा रहता है। इन विज्ञानात्मा का मन न्य रई से मन्थन करे ॥२०॥ इस रई में ज्ञान रूप नैति जोड़े, इसके पीछे उसमें से उत्पन्न हुए नक्कल में में धी निकले, (योग रूप) अग्नि पर धरे, इस प्रकार करने से 'नव कलाश्यों से रहित शुद्ध और शान्त ब्रह्म मैं ही है' ऐसी नृति होती है ॥२१॥ जो सब प्राणियों का आधार है और जो सब प्राणियों में अनुग्रह कर के भीतर स्थित है वही वासुदेव रूप आत्मा मैं स्वयं हैं वासुदेव रूप वही आत्मा मैं स्वयं हैं ॥२२॥

वेदान्त



## कैवल्य उपनिषत् ।

[ २ ]

आश्रलायन मुनि ब्रह्माके पान जाकर कहने लगे, हे भगवन् ! सत्पुरुषों के सेवन करने योग्य, तुम ब्रह्म विद्याका मुष्किलोपदेश कीजिये, जिससे दीर्घ काल के किये हुए अनेक पापों का नाश करके पर से पर, परम पुरुष को विद्वान् प्राप्त होते हैं ॥१॥ तब पितामह ब्रह्मा कहने लगे "अहो, भक्ति और ध्यान से इन ब्रह्म-विद्या को जान ॥२॥ कर्म से, प्रज्ञा से तथा धन से इस ब्रह्मभाव की प्राप्ति नहीं होती, मात्र त्याग से अमृत रूप ब्रह्मकी प्राप्ति होती है । वह स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है, हृदय रूप गुफा में विराजता है और उसीको यति प्राप्त होते हैं ॥३॥ जो मुनि लोग वेदान्त के विज्ञान से निराक होते हैं तथा संन्यास योग से शुद्ध अन्तःकरण वाले होते हैं, विशुद्ध अन्तःकरण वालों के मन्त्र मोक्ष स्वस्व मन्त्र पर ब्रह्मलोक में जाते हैं परम अमृत रूप वे सब ब्रह्मा के साथ मुक्त होजाते हैं ॥४॥ मन्त्रासी एकान्त प्रदेश में युचिर्भूत होकर मुखान-सन पर ग्रीवा, मन्तक तथा सब गरीर सीधा रख कर बैठ जाय, फिर इन्द्रियोंका निरोध करके सङ्मुखो भक्तिसे प्रणाम करें ॥५॥ रजोगुण से रहित और शुद्ध होकर, मुख दुःखादि से रहित, हृदय में कम्पन रूप रहे हुए आत्मा का चिंतन करना आत्मा का स्वरूप श्रित्तरूप है, अव्यक्त है, अनंत रूप वाला है, शिव रूप है, प्रधानत

है, अमृत रूप है, ब्रह्म योनि रूप है ॥६॥ वह आदि, मध्य और अन्त से रहित है, एक है, सर्वत्र व्यापक है, चिदानन्द रूप है, सर्व रूप से रहित है, और अश्रुत है । उमा सहाय है जिसकी ऐसा प्रभु रूप त्रिनेत्र वाला, नीलकण्ठ वाला, प्रशांत ऐसे परमेश्वर का ध्यान करके मुनि प्राणी मात्र के कारण रूप, सर्व के द्रष्टा रूप अज्ञान से भिन्न ऐसे पद्मब्रह्म को प्राप्त होता है ॥७॥ यह परमात्मा ही ब्रह्मा है, वह ही निव है, वह ही इन्द्र है, वह ही अक्षर है वहही परम है स्वयंप्रकाश है, विष्णु है, प्राण रूप, काल रूप, अग्नि रूप तथा चन्द्र रूप है ॥८॥ वही मूर्ध रूप से तथा भूत, भविष्य, वर्तमान तथा सनातन रूप है, ऐसे परमात्मा का ज्ञान जिसको होता है वह पुरुष को अतिप्रमण करता है । इसके सिवाय मुक्ति का और कोई मार्ग नहीं है ॥९॥ मन्त्र भूतों में मेरा आत्मा रहता है और मेरे आत्मा में सत्र भूत रहते हैं, ऐसा जो जानता है उसको परब्रह्म भाव की प्राप्ति होती है, दूसरे को किसी कारण से नहीं होते ॥१०॥ अपने आत्मा को अस्मिन् ( मयने योग्य लक्ष्मी ) रूप करके और प्रणव रूप अकार को नीचे की अस्मिन् करके जानने को मन्थन वंश से मन्थन करने से विवेकी पुरुष सब पापों का नाश करता है ॥११॥ माया से मुख बना सो ही आत्मा नारी को प्राप्त करके, स्त्री, अन्न, पानादि अनेक प्रकार के भोगों को भोग कर जाग्रत में तृप्त होता है ॥१२॥ सो ही (जीव) स्वप्नवस्था में अपनी माया से कल्पित जीव लोक में मुख दुःख का भोला बनता है वैसे ही सुषुप्तावस्था में तम से आच्छादित हुआ



मो जीव मय इन्द्रियों का नष्ट होने से मुख को प्राप्त होता है ॥१३॥  
 तब जन्म में किये हुए कर्म के योग से ज्ञापन भाव को प्राप्त हुआ  
 जोव पुनः सुषुप्ति भाव को प्राप्त होता है । जीव इस प्रकार से तीनों  
 चरों की तीनों अवस्थाओं में कीड़ा करने वाला होने से मय  
 विचित्र भावों को उत्पन्न करता है; यह जीवात्मा मयका आधार  
 रूप, आनन्द रूप और अव्यक्त ज्ञान रूप है । इस आत्मा में तीनों  
 प्रकार की अवस्थाएँ लय को प्राप्त होती हैं ॥१४॥ इस आत्मा में  
 ने प्राण, मन, सब इन्द्रिय, आकाश, वायु, ज्योति, जल और  
 विश्व धारण करने वाली पृथ्वी उत्पन्न हुई है ॥१५॥ जो पर-  
 मेश्वर सर्वोत्तम रूप विश्व का कारण रूप महत् रूप है सो ही पर-  
 मात्मा सूक्ष्म ने भी सूक्ष्म नित्य सत्य स्वरूप तथा तत्कल्प (जो  
 रूप) है ॥१६॥ जो ब्रह्म ज्ञात, स्वप्न और सुषुप्ति आदि प्रत्येक  
 को प्रकाश करता है सो ब्रह्म में स्वयं है इस प्रकार के ज्ञान जो  
 ज्ञान होकर मुनि मय प्रकाश के वनवनों से मुक्त होता है ॥१७॥  
 यह आत्मा तीनों अवस्थाओं में भोक्ता, भोग्य और भोग रूप बनना  
 है तो भी सब से विलक्षण नाशी, चिन्मात्र, नित्य, सिद्ध रूप में  
 है ॥१८॥ सुषुप्ति में सब की उत्पत्ति स्थिति और लय होती है । यह  
 इन्द्रिय ब्रह्म रूप में स्वयं है ॥१९॥ प्रथम खंड समाप्त ।

मैं भ्रातृ से भी भ्रातृ तथा महान भी मैं हूँ । विचित्र चिन्मय  
 मन भी मैं हूँ, मैं ही पुरातन पुरुष, ईश, हिरेण्यमय तथा चिन्मय  
 रूप हूँ ॥२०॥ हाथ पैर से रहित आत्मा मैं हूँ । अचिन्त्य शक्ति

वाला भी मैं हूँ । नेत्र से रहित हंकर भी देखता हूँ । कर्ण से  
 रहित सुनता हूँ, मेरा ज्ञानने वाग्म कोई नहीं है बहुत प्रकार के  
 रूपों को जानने वाला मैं ही ज्ञान स्वरूप हूँ और मैं ही चिन्मय  
 और नित्य रूप हूँ ॥२१॥ अनेक वेद वाक्यों से जानने योग्य मैं  
 ही हूँ । वेदान्त का बन्ने वाला और जानने वाला मैं हूँ । दुष्कर्म से  
 पुण्य पाप नहीं है । मेरा नाश नहीं है, जन्म नहीं है तथा देह  
 इन्द्रिय और बुद्धि भी नहीं है ॥२२॥ मैं क्षीम नहीं हूँ, जल नहीं  
 हूँ, अग्नि नहीं हूँ, वायु और आकाश नहीं हूँ, ऐसे जो जानना है  
 सो कला ने रहित अर्धोप, हृदयकाश में रहे हुए परमात्मा रूप  
 सर्व के नाशी रूप, सदा असत् से रहित शुद्ध परमात्मा मन को  
 प्राप्त होता है ।

जो मन रूढ़ का पाठ करता है सो अग्नि से, वायु से, मरीचि  
 से, मृणापान से, दह्य हवा से, सुवर्ग की चोरी से, कृत्याह्वय से  
 पवित्र होता है सो ईश्वर का आश्रय ब्रह्मा है । इसी कारण  
 हमेशा या प्रतिदिन एक बार सत्यसिद्धि को इस रूढ़ का ज्ञान  
 करना चाहिए । इस प्रकार करने से ज्ञान की प्राप्ति और संसार  
 का नाश होता है । ज्ञान के बाद कैवल्य परमपद की प्राप्ति  
 होती है ॥२३-२४॥

वेदान्त



## हंसोपनिषत् ।

[ ३ ]

गौतम और मनकुमार का संवाद ।

गौतम ने कहा ! हे सब धर्मों के जानने वाले ! हे सर्व शान्तियों में कुशल ! हे भगवन् ! ब्रह्मविद्या का ज्ञान किस उपाय से उत्पन्न होता है ॥१॥ मनन्कुमार ने कहा, हे गौतम ! सर्व वेदों के सार को ज्ञान के महादेवजी ने जो पार्वतीजी से कहा है वह नर्व है गौतम ! तू सुभ्रमे सुन ॥२॥ यह सार किसी (अनधिकारी) ने कहना योग्य नहीं है और योगी के लिए एक कोश (ज्ञान) के समान है । हंस यानी आत्मा के स्वरूप का वर्णन करने वाला यह उपनिषत् तथा मोक्षरूप फल का प्राप्त करने वाला है ॥३॥

हमको, ब्रह्मचारी, ज्ञान, चित्तेन्द्रिय और जो गुरु में भक्ति वाला है उसके आगे हंस तथा परमहंस का निर्णय प्रकट करना योग्य है । यह जीव "हंस हंस" ऐसा ध्यान करता हुआ सर्व देह में व्यापक होकर रहा हुआ है जैसे काष्ठ में अग्नि व्यापक होकर रहा हुआ है तथा तिलों में तेल व्यापक रहा हुआ है इस प्रकार जिसको ज्ञान होता है वह मृदु को उत्पन्न करता है ।

गुदा का श्वरोधन करके आधान चक्र में न वायु को बाहर निकाल कर स्वाधिष्ठान चक्र में तीन प्रदक्षिणा करके, मणि पुरक

को प्राप्त करना ? उस के पीछे अनादित चक्र का अतिक्रमण (उत्पन्न) करके विशुद्ध चक्र में प्राणों को रोकना चाहिये पीछे आज्ञा चक्र का ध्यान करके ब्रह्म रश्मि का ध्यान करना चाहिये ? और त्रिमात्र आत्मा मैं हूँ इस प्रकार ध्यान करने से आधारचक्र से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक नाद होता रहता है वही शुद्ध स्फटिक के समान ब्रह्म परमान्मा है ऐसा कहा जाता है ॥१॥ इस में हंस यह ऋषि है अव्यक्त गायत्री छन्द है परमहंस देवता रूप है अहं यह बीज रूप है, सुशक्ति बीज रूप है, मोहं यह कीलक रूप है । इसी प्रमाण से ऋषि आदि छः संख्या द्वाना एक दिन तथा रात्रि में इक्कीस हजार छः सो बार श्वास लेने में आता है । "नूपाय सोममा निरञ्जनाय निराभयासाय तनुसुध्न प्रचंद्रयात्" इस अभिषेकमात्र्यां वीषट " ऐसा कह कर हृदयादि शान्त्यास तथा करत्यास करना । न्यास करने के पीछे श्रुत पत्र चोरे हृदय कमल में हेमात्मक का ध्यान करना । इस हंस के अग्नि तथा सोम पक्ष रूप है ओंकार उसका नस्तक रूप है । विन्दु नेत्र रूप रूद्र मुख रूप रूद्राणी दो चरण रूप, दो बाहु काल रूप तथा अग्नि दो बाल रूप हैं । पृथ्वि (सगुण ब्रह्म) तथा अनाकार (निर्गुण ब्रह्म) इस श्रेष्ठ के दोनों केश के नीचे का हिस्सा वगन रूप है ? इस परमहंसका प्रकाश करोड़ सूर्य के समान है इस परम हंस से सर्व व्याप्त हैं । ( जब वह हंस हृदय कमल के पृथक् २ भागों पर बैठता है तब ) इस की आठ प्रकार के धृतियां होती हैं । पूर्व दिशा के पत्र पर बैठता है तब पुष्प में बुडि जुड़ती है, आग्नेय दिशा के पत्र पर बैठता है तब निद्रा तथा



आलस्य होता है। दक्षिण दिशा के पद्म पर बैठता है तब क्रूर बुद्धि होती है, नैऋत दिशा के पद्म पर बैठता है तब पाप में बुद्धि जाती है, पच्छिम दिशा की पाखंडी पर बैठता है तब श्रीङ्गा करने की बुद्धि होती है। वायव्य दिशा पर बैठता है तब गमनादि की बुद्धि होती है। उत्तर दिशा की पाखंडी पर बैठता है तब विषय में प्रीति होती है। ईशान पाखंडी पर बैठता है तो द्रव्यदि का लोभ होता है तथा जब मध्य में बैठता है इस लोक तथा परलोक से वैराग्य होता है। जब हंस पद्म के केसर पर जाकर बैठता है तब जाग्रतावस्था आती है। जब पद्म की कणिका पर बैठता है तब स्वप्नावस्था होती है तथा जब मध्य प्रदेश में सूक्ष्म भाग में रहता है तब सुषुप्ति अवस्था आती है। जब हंस पद्म का त्याग करता है तब हंस तुरीयावस्था को प्राप्त होता है। जब हंस नाद के विषे लीन होता है तब उसे तुर्यातीत, उन्मन अजयो-पसंहार ऐसे नाम से कहने में आता है इस प्रकार से सर्व भाव हंस के वश होता है इसलिये मन में रहे हुए हंस ही चिन्तन करता है। यह ही हंस जब एक करोड़ जप किये जाते हैं तब नादका अनुभव करता है यह सब हंस के वश में है। नाद दस प्रकार का होता है। १ चिण, २ चिचिणनाद ३ धष्टानाद, ४ दांखनाद, ५ तंत्रीनाद, ६ तालनाद, ७ वेणुनाद, ८ मृदंगनाद ९ भेरीनाद, १० मेघनाद इस प्रकार के नौ नादों को त्याग कर दशवें नाद का अभ्यास करना। प्रथम नाद के अनुभव से गात्र चित्तमिनाता है, द्वितीय नाद के अनुभव से गात्र का भंग होता है

तृतीय नाद के अनुभव से प्रस्वेद (पसीना) होता है, चतुर्थ नाद के अनुभव से शिरोकम्प, पंचमनाद के अनुभव से तालु टपकता है, षष्ठनाद के अनुभव से अमृत घट्टि होती है, सप्तम के अनुभव से गूढ़ विज्ञान होता है, अष्टम के अनुभव से श्रेष्ठ वाणी होती है, नवम नाद के अनुभव से अदृश्य विद्या तथा दिव्य नेत्र प्राप्त होते हैं। दशम नाद के अनुभव होने से परब्रह्म भावं प्राप्त होता है तथा ब्रह्मात्मा का साक्षात्कार होता है। मन उसमें (हंस में) लय होता है तथा संकल्प विबल्य का मन में लय होता है पीछे पुण्य तथा पाप का नाश होता है तथा वह हंस सदाशिव रूप से, शक्ति रूप से, सर्वत्र स्थिति कर्ता रूप से, स्वयं ज्योति रूप से, शुद्ध रूप से, बुद्ध रूप से अर्थात् ज्ञान रूप से, नित्य रूप से, माया रहित रूप से तथा शान्त रूप से प्रकाशता है ऐसा वेद वचन है, ऐसा वेद वचन है ॥२॥



## जाबालोपनिषत् ।

[ ४ ]

बृहस्पति ने याज्ञवल्क्य मुनि से पूछा:—प्राणों का स्थान क्या है ? इन्द्रियों का देवयजन क्या है ? तथा सब भूतों का ब्रह्मसदन क्या है ?” “अविमुक्त ही सर्व प्राणों का स्थान, इन्द्रियों का देवयजन रूप तथा प्राणियों का सदन रूप है । इससे कोई भी स्थान जहाँ कोई भी जाय वहाँ यह अविमुक्त ही प्राणों का आश्रय स्थान, देवों का यजन रूप और ब्रह्म का निवास स्थान है ऐसे मानना । जब प्राणी के प्राण का उत्क्रमण होता है तब भगवान् रुद्र तारने वाले ब्रह्म के सम्बन्ध में उपदेश करते हैं जिससे प्राणी अमृत भाव को तथा मोक्ष भाव को प्राप्त होता है । इसलिए अविमुक्त को उपासना करना चाहिए और उसका त्याग कभी भी न करना चाहिए,” ऐसे याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा ॥१॥

इसके बाद अत्रि मुनि याज्ञवल्क्य से पूछने लगे “इस अनन्त और अव्यक्त आत्मा का ज्ञान किस रीति से हो ?” तब याज्ञवल्क्य ने कहा, “अविमुक्त की उपासना करनी चाहिए क्योंकि अव्यक्त ऐसा आत्मा अविमुक्त में ही रहा हुआ है ।” तब अत्रि ने पूछा, “अविमुक्त किस विषे रहा हुआ है ।” तब याज्ञवल्क्य ने कहा, “वरणा और नाशी नाम की दो शक्तियों में जीव रहा हुआ है ।” अत्रि ने पूछा “वरणा क्या है और नाशी क्या है ?” याज्ञ-

वल्क्य ने कहा “जो शक्ति इन्द्रियों के किये हुये दोषों को रोकती है उसे वरणा, ऐसे ही सब इन्द्रियों के किये हुये पापों का जो नाश करती है उसको नाशी कहते हैं” “इस जीव का स्थान कहाँ है ?” ऐसा अत्रि ने पूछा । याज्ञवल्क्य ने कहा, “दो भ्रुकुटी और नासिका के बीच में जो भाग है सो अविमुक्त का स्थान है । यह सन्निव ही इस लोक और परलोक दोनों की सन्धि रूप कही जाती है । ब्रह्मज्ञानी सायं प्रातः इस संधि की उपासना करते हैं । अविमुक्त उपासना के योग्य है इस प्रकार उपासना करने से जिसको अप्रना ज्ञान होता है वह आत्मज्ञान का उपदेश कर सकता है ॥२॥

याज्ञवल्क्य के शिष्यों ने याज्ञवल्क्य से पूछा “किस का जाप करने से अमृतत्व प्राप्त होता है सो कहो ।” तब याज्ञवल्क्य ने कहा “शत रुद्र का जाप करने से अमृत भाव प्राप्त होता है, रुद्र के नाम अमृत रूप हैं, उन नामों से मृत्यु को अतिक्रमण कर सकते हैं ।” ॥३॥

विदेह देश के राजा जनक एक समय याज्ञवल्क्य के पास आकर कहने लगे “हे भगवान् ! संन्यासाश्रम सम्बन्धी मुझको उपदेश दीजिये ।” याज्ञवल्क्य ने कहा “ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थाश्रम का पालन करना, गृहस्थाश्रम को पूर्ण करके वानप्रस्थाश्रम लेना और वानप्रस्थ को पूर्ण करके संन्यस्त दीक्षा लेना अथवा दूसरी रीति से, ब्रह्मचर्य से, गृहस्थाश्रम से अथवा वानप्रस्थ से संन्यास लेना । व्रत से रहित हो या सीहित हो,



स्तातक (वेद कुशल) हो या न हो, अग्नि का गृहण करके स्त्री के मरने से उसका त्याग करना पड़ा हो अथवा असंस्कार के कारण अग्नि का गृहण न हुआ हो जिस दिन से विराग वृत्ति उत्पन्न हो उस दिनसे ही संन्यास को गृहण करे। "कोई प्रजा-पति की इष्टि करते हैं परन्तु वह नहीं करनी चाहिये; अग्नि ही की इष्टि करनी चाहिये अग्नि ही निश्चय करके प्राण है, क्योंकि इस इष्टि से अग्नि प्राण को बढ़ाती है। परन्तु त्रैधातवा इष्टि करना चाहिये। तीन धातु ये इस प्रकार हैं:- सत्व, रज और तम, "हे अग्नि ! यह प्राण तुच्छ कारण रूप है, क्योंकि प्राण से तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, तुम प्रकाश को प्राप्त हो, प्राण को जानने वाले हे अग्नि देव ! तुम वृद्धि को प्राप्त हो, और हमारी सम्पत्ति बढ़ाओ।" इस मंत्र से अग्नि को सूचना। "जो प्राण अग्नि का कारण रूप है उस प्राण में अग्नि देव ! तुम प्रवेश करो" ऐसा कह कर आहुति देना। जो अग्निहोत्र न लिया हो तो उस गांव में जिस के यहाँ अग्नि हो उसके यहाँ से अग्नि लाकर ऊपर कहे प्रकार से पूजा कर सूचना। गांव में भी अग्नि न प्राप्त हो तो जल में आहुति देना। "जल सब देव रूप है, यह आहुति मैं सब देवों को देता हूँ" ऐसे जल में आहुति देने के बाद उस घृत युक्त पवित्र हवि को लेकर भक्षण करना, मोक्ष मंत्र ही वेद है ऐसा जानना। "यह ब्रह्मरूप है इसकी उपासना करना। हे भगवन् ! यह इस प्रकार है" ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा ॥४॥

इसके बाद अग्नि मुनि याज्ञवल्क्य से पूछने लगे "हे याज्ञवल्क्य ! मैं पूछता हूँ कि यज्ञोपवीत से रहित ब्राह्मण किस प्रकार

कहा जाय ?" याज्ञवल्क्य ने कहा "आत्मा ही इसका यज्ञोपवीत है। जो संन्यासी है उसके लिये वीर मार्ग में आहार रंजना में, जल प्रवेश में, अग्नि प्रवेश में अथवा महाप्रस्थान में यह विधि है।" "मन्यासी गेह्ये वस्त्र धारण करके शिखा रहित, परिगृह रहित धुत्वि हो और द्रोह रहित होकर भिक्षा वृत्ति करता है वह ब्रह्मको प्राप्त होता है। जो आतुर संन्यास लिया हो तो मन और वाणी न सबका त्याग करना चाहिये। यह मार्ग वेद में प्रसिद्ध है ब्रह्मजानी संन्यासी इसी मार्ग से जाता है। यह ऐसा है ऐसा, भगवन् याज्ञवल्क्य ने कहा ॥५॥

जो परमहंस संन्यासी है उनमें से असंवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, दुर्वासा, ऋशु, निदाघ, जड़ भरत, दत्तात्रेय और रैवतक आदि परमहंस वर्ण आश्रम के सब चिन्हों से रहित थे। उनके आचार विचार जानने में न आवें ऐसे थे वे उन्मत्त भाव से रहित होकर भी उन्मत्त की समान रहते थे। संन्यासियोंको चिद्वंद, कमंडलु, छींका, जल से शुद्ध ऐसा पात्र, शिखा और यज्ञोपवीत इन सब का 'भु स्वाहा' कर जल में त्याग कर के आत्मा को ढूंड़ना चाहिये।

संन्यासी दिगम्बर यानी नन और सब प्रकार के बंधन से रहित होता है। वह प्रतिगृह का त्याग करता है। वह ब्रह्म मार्ग में भर्ता प्रकार आगे बढ़ा हुआ होता है 'शुद्ध मन वाला होता है। वह मुक्त है तो भी प्राण के टिकने के लिये योग्य समय पर



उदर रूपी पात्र में आहर डालता है। लोभालोभ में समान दृष्टि वाला होता है। एकान्त स्थान, देव मन्दिर, पास की नंजी, सर्प का बिल, वृक्षों का मूल, कुम्हार का घर, अग्निहोत्र वाला मकान नदी रेतिया, पर्वत, गड्ढा, गुफा, भेंटा, छिद्र तथा छोटें छोटें भरणों वाले स्थान में रहने के लिये सब प्रकार के घर में रहित होता है। 'भेरा' यह अभिमान भी उसको नहीं होता है। युद्ध ज्योति के ध्यान में तत्पर होता है। अध्यात्म ज्ञान में निष्ठ होती है और शुभ अशुभ कर्म के छेदन करने में तत्पर रहता है। इस रीति का संन्यास करके जो अपने देह को त्याग करता है वह परमहंस संन्यासी है। वह ही परमहंस संन्यासी है ॥



संन्यास



## नारायणोपनिषत्

[ ५ ]

पुरुष रूप नारायण भगवान् ने इच्छा की कि प्रजा उससे होने लगे। नारायण में से प्राण की उत्पत्ति हुई, मन और सब इन्द्रियाँ भी उन्हीं में से हुईं। आकाश, वायु, ज्योति, अक्ष और विश्व को धारण करने वाली पृथ्वी नारायण में से हुई। नारायण में से ब्रह्मा, नारायण में से रुद्र, नारायण में से इन्द्र; उसी में से वारह आदित्य, आठ वसु और सब छन्द उत्पन्न हुए। वे सब नारायण में से होते हैं और फिर उसी में लय को प्राप्त होते हैं। इस ऋग्वेद के श्रेष्ठ भाग का विद्वान् अभ्यास करते हैं ॥१॥

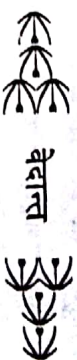
नारायण नित्यरूप, ब्रह्मरूप, इन्द्ररूप, कालरूप, दिशारूप, त्रिदिशारूप, ऊर्ध्वरूप, अधोर्ध्वरूप, अन्तर और ब्रह्मरूप, है। जो कोई उत्पन्न हुआ है और जो कोई उत्पन्न होगा वह सब नारायण रूप है। यह नारायण कलंक से रहित, माया से रहित, विकल्प से रहित, वर्ण से रहित, शुद्धदेव रूप और एक है। इन नारायण के विषय द्वैतभाव नहीं होता। जो इस प्रकार जानता है सो विष्णु रूप होता है, सो विष्णु होता है। विद्वान् यजुर्वेद के इस श्रेष्ठ भागका अभ्यास करते हैं ॥२॥



प्रथम भाग में ॐ उच्चारण करना पीछे नमः मन्त्र का उच्चारण करना, और अंत में नारायण का उच्चारण करना। ॐकार में एक अक्षर है, नमः इसमें दो अक्षर हैं, और नारायणाय इसमें पांच अक्षर हैं। जो नारायण के आठ अक्षर वाले पद का जाप करता है, सो ध्यान करने वाला अकाल मृत्यु से रहित पूरी आयु को प्राप्त होता है। वह प्रजा को, लक्ष्मी को और पशु को प्राप्त करता है, पीछे अमृत भाव को प्राप्त होता है, सो अमृत भाव को प्राप्त होता है इस सामवेद के मुख्य भाग का जो अध्ययन करता है ॥३॥

अकार, उकार और मकार यह प्रत्येक आनन्द रूप, ब्रह्म-पुरुषरूप और प्रणव रूप है। सो मात्रा अनेक प्रकार से सम हैं, यह ॐकार करके कहने में आता है; जिसको उच्चारण करने से योगी लोग जन्म मरण संसार के बंधन से मुक्त होते हैं। ॐन्मो नारायणाय इस प्रकार के मन्त्र की उपासना करने वाला वैकुण्ठ लोक में जाता है। हृदय कमल विज्ञान धन रूप है, उससे विद्युत् प्रकाशित है, ब्रह्मण्य को देवकीपुत्र, मधुसूदन, पुण्डरीकाक्ष और विष्णु कहने में आता है। वह सब प्राणी मात्र में रहा हुआ है, वह एक नारायण रूप है, कारण पुरुष रूप, कारण भाव से रहित और परब्रह्म रूप है। इस अथर्व वेद के मुख्य भाग का अध्ययन करना ॥४॥

प्रातःकाल में इसका अध्ययन करने से रात्रि में किया हुआ पाप नाश होता है। सायंकाल को इसका जाप करने से दिन में किये हुये पाप का नाश होता है। जो सायंकाल और प्रातःकाल इसका पठन करता है वाह पापी होय तो भी पवित्र होता है। मध्याह्न में सूर्य के सामने इसका पाठ करे तो पंच महापातकों और उपपातकों से मुक्त होता है। सब वेद के पारायण का फल उसको मिलता है, और उसको नारायण का साक्षात्कार होता है। जो इस प्रकार जानता है उसको नारायण का साक्षात्कार होता है ॥५॥





## परमहंसोपनिषत् ।

[ ६ ]

“जिसने परमहंस दीक्षा ली है ऐसे योगी का मार्ग किस प्रकार का है और उनकी स्थिति किस प्रकार की होती है ?” इस प्रकार नारद मुनि ने भगवान् ब्रह्मा के पास जाकर कहा तब भगवान् ब्रह्मा मुनि से कहते लगे “परमहंस संन्यासियों का मार्ग इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसे परमहंस बहुत नहीं हैं, एकाद परमहंस संन्यासी होता है। वह नित्यकृतस्थ भाव में टिका हुआ रहता है वही वेद पुरुष रूप है, ऐसा विद्वान लोग मानते हैं। ऐसे महापुरुष का चित्त मुक्त में रहता है इसलिये मैं उसमें स्थिति करके रहता हूँ। इस रीति से मानने वाला संन्यासी अपना पुत्र, मित्र, स्त्री और वांछा आदिक का तथा शिक्षा और यज्ञोपवीत का, याग का, सूत्र का, श्वाध्याय का और सब कर्मों का त्याग कर, तथा इस ब्रह्माण्ड का त्याग करके कौपीन, दण्ड और चद्दर अपने शरीर के भोग के लिए और लोगों के कल्याण के लिये धारण करना; परन्तु यह संन्यास दीक्षा मुख्य नहीं है।” तब मुख्य संन्यास दीक्षा किस प्रकार की है ? उसके विषे कहा है “दंड, कमंडल, बिखा, यज्ञोपवीत और चद्दर नहीं रखना, ऐसा धर्म परम दीक्षा लेने वाला आचरता है। वह शीत, उष्ण, सुख, दुःख, मान, अपमान इन छः उर्मों से रहित होता है तिस में शब्द स्पर्श रूप रस और मन भी नहीं रहता, इसी प्रकार

निन्दा गर्व, मत्सर, द्वेष, दर्प, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, असूया और श्रद्धादि को त्यागकर अपने शरीर को मृतक समान देखता है, क्योंकि उसके द्विष मित्र हुए संशय और मिथ्या ज्ञान के कारण (अविद्या) का सस्रल नाश हो गया है। वह नित्य ज्ञान रूप है, वह स्वयं स्थिति रूप है अर्थात् प्रत्येक आश्रय रहित होता है। मैं स्वयं शांत, अचल, श्रद्धयानन्द और विज्ञान धन रूप हूँ ऐसे वह मानता है, वही अद्वय ब्रह्म मेरा परम धाम है, वही मेरी शिक्षा और यज्ञोपवीत है। परमात्मा और आत्मा के ऐक्यज्ञान से उसको भेद भाव नहीं रहता, उसकी वही संख्या है, वह सब कामनाओं का त्याग करके परम श्रद्धैत ब्रह्म में स्थित है। जिस परमहंस ने ऐसा ज्ञान रूप दण्ड धारण किया है उसको एक दण्डी कहते हैं। जिसने काष्ठ का दण्ड ग्रहण किया है जिसके सर्व आशा भरी हैं, जिसको ज्ञान नहीं है, क्षमा, ज्ञान, वैराग्य, और शमादि गुणों से रहित है और भिक्षा मात्र से जीता है सो पापी यति वृत्ति का नाश करने वाला है और महा यौरव नर्क में पड़ता है। इस प्रकार के भेद को जानने वाले परमहंस संन्यासी को आकाश वस्त्र रूप होता है, वह नमस्कार स्वाहाकार, निन्दा और स्तुति से रहित होता है, भिक्षा करने वाला सो यति इच्छानुसार विचरता है, जिसको आवाहन, विसर्जन, मन्त्र, ध्यान, उपासना, लक्ष्य, अलक्ष्य, भिन्न भाव, समान भाव, सत्य भाव, या सर्व भाव कुछ भी नहीं होता; उसके रहने का स्थान नहीं होता, वह स्थिर बुद्धि



वाला होता है। इस प्रकार भिक्षा मात्र करने वाला यदि मुक्त्यर्थ प्राप्त करार इत्यादि का कभी भी संग्रह न करे। उसको कुछ देने योग्य नहीं होता उसको कुछ सुन्दर नहीं लगता। उन कौन वस्तु वाचक होती है? वाचक यह है—जो भिक्षा दृष्टि वाला—यदि मुक्त्यर्थ को प्रीति नें स्वार्थ करे तो उसको ब्रह्म हत्या का पाप लगता है। जो वह भिक्षु प्रीति से मुक्त्यर्थ का स्वार्थ करे तो चाण्डाल से भी नोच होता है और जो मुक्त्यर्थ को प्रीति से ग्रहण करे तो श्रातमवाती है इसलिए परमहंस मुक्त्यर्थ को प्रीति से देखता नहीं, स्वार्थ करता नहीं, और ग्रहण करता नहीं। उसके मन में रहने वाली कामनायें नष्ट हो जाती हैं। दुःख से उसको उद्धेय नहीं होता, सुख में उसको रम्यता नहीं होती, वह प्रीति का त्याग कर देता है, पुत्र और शत्रुओं किसी में उसको नोह नहीं होता, वह किसी से द्वेष नहीं करता, तथा कभी हर्ष को प्राप्त नहीं होता। उसको सब द्रव्यों उपराम को प्राप्त हो जाती है। वह अपने श्रातसा में ही स्थिति करके रहता है। जो ब्रह्म पूर्ण श्रानन्द रूप, अद्वितीय रूप है मो में स्वयम् है, इस प्रकार मानने वाला कृत कृत्य होता है, सो ही कृत कृत्य होता है।



संन्यास



## ब्रह्मोपनिषत् ।

[ ७ ]

पुरुष के चार स्थान हैं—नाभी, हृदय, कण्ठ और मस्तक। चारों स्थानों में चार पाद वाला ब्रह्म प्रकाशता है। जाग्रत अवस्था में ब्रह्मात्म्य है, स्वप्न अवस्था में विष्णुत्म्य है, सुषुप्ति अवस्था में रुद्र रूप है और तुर्यावस्था में अक्षर रूप है, वह आदित्य विष्णु और ईश्वर है। वह स्वयं रूप अमन रूप, ओम्, हाथ और पाद से रहित ज्योति रूप और ज्ञान रूप है। जहाँ लोक श्रलोक, देव अदेव, वेद अवेद, यज्ञ अयज्ञ, माता अमाता, पिता अपिता, वधू अवधू, चांडाल अर्चांडाल, पीष्कस (एक प्रकार की जाति) अपीष्कस, अमणः अश्रमणः और तापस अतापस रूप होजाते हैं, यही एक रूप, परब्रह्म प्रकाश रूप और निर्वर्ण रूप से प्रकाशता है। उसमें देव ऋषि और पितृओं की कुछ श्रेष्ठता नहीं है वह ज्ञेय और ज्ञानरूप है।

सब देव हृदय में रहे हुए हैं हृदय में प्राण रहा हुआ है और इसी प्रकार हृदय में ज्योति रहो हुई है। यही तीन लक्षों वाला यज्ञोपवीत है और वह हृदय में अर्थात् चेतन्य में रहता है। हे यज्ञोपवीत तू यज्ञ रूप भगवान की सूचना करने वाला, परमपवित्र प्रजापति के साथ उत्पन्न हुआ प्रथम रूप आधुष्य रूप श्वेत और श्रेष्ठ है। हे शिष्य! भगवान को दिखलाने वाले उस यज्ञोपवीत को धारण कर वह तुझ में बल की और तेज की वृद्धि करे।



के ज्ञान होने के पीछे अधिकारी जन्म मरण के चक्र से निवृत्त होता है। जैसे दूध में घी गुप्त रहता है वैसे आत्मा सब में रहता है। आत्मज्ञान ही सब तप का कारण रूप है और ब्रह्म को जानने वाला है।



वेदान्त



## गर्भोपनिषत्

[ ८ ]

यह पंचात्मक शरीर पांच के विधे रहता है छः का आश्रय रूप और छः गुणों के योग वाला है, सात धातु वाला है, तीन मल वाला है, दो योनि वाला है, चार प्रकार के भोजनों वाला है।

प्रश्नः—यह शरीर पंचात्मक किस प्रकार है ?

उत्तरः—यह शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंच महाभूतों से बना हुआ है।

प्रश्नः—इस पंच भूतात्मक शरीर में पृथ्वी का जल का तेज का वायु का और आकाश का कौन कौन भाग है ?

उत्तरः—शरीर में जो कठिन भाग है वह पृथ्वी, द्रव भाग है वह जल, उष्ण भाग है वह तेज, गति वाला भाग वायु और पोल का भाग आकाश है। पृथ्वी का गुण धारण करना, जल का गुण सब को एकत्र करना, तेज का गुण प्रकाश करना, वायु का गुण वहन करना और आकाश का गुण अवकाश (जगह) देना है। कर्ण का विषय शब्द, त्वचा (चमड़ी) का विषय स्पर्श, चक्षु का विषय रूप, जिह्वा का विषय स्वाद, नासिका का विषय गन्ध, उपस्थेन्द्रिय का विषय श्रानन्द, गुदा का विषय मल त्याग है। बुद्धि का विषय ज्ञान, मन का विषय संकल्प करना, वाणी का विषय बोलना है।



प्रश्नः—शरीर छः का आश्रय रूप कहाता है सो क्या है ?

उत्तरः—मीठा, खट्टा, खारा, कड़वा, तीखा और कषाय रस को प्राप्त करता है। षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत निषाद, हृष्ट, श्रान्त और प्राणिधान ये दश प्रकार के शब्द गुण हैं। शुक्ल, रक्त, कृष्ण, धूम्र, पीत, कपिल और पांडुर ॥१॥

प्रश्नः—शरीर सप्त धातु वाला किस कारण कहाता है ?

उत्तरः—देवदत्तादि अमुक मनुष्य के द्रव्यादि विषय इस प्रकार उत्पन्न होते हैं, एक दूसरे की अनुकूलता के कारण, रस छः प्रकार का होता है, रस में से रुधिर, रुधिर में से मांस, मांस में से मेद, मेद में से स्नायु, स्नायु में से हड्डी, हड्डी में से मज्जा, मज्जा में से शुक्र की उत्पत्ति होती है। पुरुष का वीर्य और स्त्री का रुधिर दोनों का संयोग होता है तब गर्भ होता है। सो हृदय में इस प्रकार की व्यवस्था करता हैः—अग्निस्थान में जठर अग्नि को रखता है, पित्त के स्थान में पित्त को रखता है, वायु, वायु में से और हृदय प्रजापति में से क्रम से होता है ॥२॥

ऋतुकाल में संगम होने से प्रथम रजि में गर्भ कलल रूप बनता है, सात रजि में बुद्बुदा रूप होता है अर्ध मास के भीतर पिंड रूप होता है, एक मास में कठिन दूसरे मास में शिर की उत्पत्ति, तीसरे मास में पैर के भाग की उत्पत्ति होती है चौथे मास में उस गर्भ में गुल्फ, जठर और कटि प्रदेश होता है, पांचवें मास में पीठ, छठे मास में मुख, नासिका, चक्षु और कर्ण होते हैं, सातवें मास में जीव से युक्त होता है, आठवें मास में गर्भ

सर्व लक्षणां से पूर्ण होता है। पिता का वीर्य माता के रज से प्रमाण में विशेष हो तो पुत्र की उत्पत्ति होती है और माता का रज पिता के वीर्य से प्रमाण में विशेष हो तो पुत्री की उत्पत्ति होती है, और जो दोनों का प्रमाण समान हो तो नपुंसक होता है। संयोग समय पर जो मन व्याकुल हो तो संतान अधः खंडित, कुवड़ी और वामन ( नाटी ) होती है। स्त्री पुरुष की अग्नान वायु के दीप से शुक्र के दो भाग हों तो दो की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार गर्भ, पंचात्मक के योग्य होता है, मन से पंच भूतात्मक को प्राप्त हुई बुद्धि, गंध रसादिक का ज्ञान कर के अक्षर से भी अक्षर ऐसे ओंकार का चिन्तन करती है, इस प्रकार एकाक्षर का ज्ञान होने के पश्चात् उस गर्भ के देह की आठ प्रकृति और सोलह विकार होते हैं, तत् पश्चात् उसकी माता जो कुछ खाती पीती है उससे नाड़ी के सूत्र से गर्भ के प्राण का रक्षण होता है। यह गर्भ तब मास में सब लक्षण और ज्ञानेन्द्रियों से पूर्ण होता है, उसको अपनी पूर्व जाति का स्मरण होता है, वह अपने शुभाशुभ कर्म को जानता है ॥३॥

“मैंने पूर्व हजारों योनियों में प्रवेश किया और मैंने अनेक प्रकार के भोग भोगे तथा मैंने अनेक प्रकार के स्तन पान किये। मैं बारम्बार जन्म को प्राप्त हुआ, बारम्बार मृत्यु को प्राप्त हुआ; मैंने कुटुम्ब के कारण जो कुछ शुभाशुभ कर्म किये उससे मैं अकेला ही दुःख भोगता हूँ, मेरे कर्म करने से जो सुख की भोगते

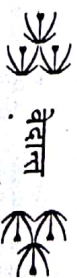


ये वे मुझको अकेला छोड़कर चले गये। मैं दुःख रूप महात्मा समुद्र में डूबा हुआ हूँ, इसको तर जाने का उपाय मैं नहीं देखता हूँ। जब मैं इस योगि से बाहर निकलूँगा तब मैं महेश्वर की शरण में जाऊँगा, जब मैं इस योगि से बाहर निकलूँगा तब मैं अजुम्भ कर्म के क्षय करने वाले, फल और मुक्ति के देने वाले नारायण भगवान् के शरण में जाऊँगा। जब मैं इस योगि से मुक्त होऊँगा तब मैं अजुम्भ का क्षय करने वाले और मुक्ति फल के देने वाले शास्त्र और योग का अभ्यास करूँगा, और सनातन परब्रह्म का ध्यान करूँगा, तब ज्ञान को प्राप्त करूँगा।" छोटे स्थान में सुकड़ कर रहा हुआ अत्यन्त दुःख से दुखी जब योगि द्वार के पास आता है तब उसको वेष्णव वायु का स्पर्श होता है, इस कारण उसको जन्म मरण का स्मरण नहीं रहता और शुभाशुभ कर्म को नहीं जानता ॥४॥

प्रश्नः—इस देह को शरीर कहने का क्या कारण है ?

उत्तरः—इसका यह कारण है कि अग्नि इस देह का आश्रय करके रहा हुआ है, यह अग्नि तीन प्रकार का है—ज्ञानाग्नि, दर्शनाग्नि और कोशुग्नि अन्न, पान, लेह्य और चोष्य का पानन करता है, दर्शनाग्नि रूप का दर्शन करता है और ज्ञानाग्नि शुभाशुभ कर्म जानता है। इन तीनों अग्नियों के भिन्न भिन्न स्थान हैं, मुख विषे आहवनीय अग्नि है, उदर में गार्हपत्याग्नि है और हृदय में दक्षिणाग्नि है।

आत्मा यजमान रूप है, मन ब्रह्मा रूप है, लोभादि पशु रूप है, दीक्षा धृति और सत्त्वोष रूप है यज्ञ का पात्र रूप बुद्धि और इन्द्रियाँ हैं, कर्मेन्द्रियाँ यज्ञ का हवि रूप हैं, शिर यज्ञ का कपाल रूप है, केश यज्ञ का दर्भ रूप हैं, मुख अन्तर वेदी है। चार कपाल का माप बाला मस्तक है, बाजू में सोलह दंतर्पिक हैं, एकसौ सात मर्म हैं, एक सौ अस्सी सन्धि हैं, एक सौ नौ स्नायु हैं, सात सौ शिरा हैं, पाँच सौ मज्जा हैं, तीन सौ आठ हड्डियाँ हैं, साढ़े तीन करोड़ रत्नाँ हैं, आठ पल का माप बाला हृदय है, चार पल का माप बाली जीभ है, एक प्रस्थ पित्त है, एक आड़क कफ है, एक कुंडव शुक्र है, दो प्रस्थ मेद है और मल मूत्र और आहार का नियम नहीं है। यह पिप्पलाद मुनि का कहा हुआ मोक्ष शास्त्र है पिप्पलाद का कहा हुआ मोक्ष शास्त्र है।





## निरालंब उपनिषत् ।

[ ६ ]

शिव गुरु सच्चिदानन्द मूर्ति निष्प्रपञ्च शांत, अधिष्ठान रहित तेज को नमस्कार है । जो निरालम्ब का आश्रय करके अवलम्बन सहित का त्याग करता है, वह सन्यासी और योगी है, वह ही परमपद को प्राप्त करता है । अज्ञानी जीवों के दुःख की शांति के लिए जो ज्ञान कहने योग्य है उसको मैं प्रश्नोत्तर रूप में वर्णन करता हूँ ।

“ब्रह्म क्या है ? ईश्वर किसको कहें ? जीव, प्रकृति, परमात्मा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, यम, सूर्य, चन्द्र, सुर, असुर, पिशाच, मनुष्य, स्त्री, पश्यादि, स्थावर, ब्राह्मणादि जाति, कर्म, अकर्म, ज्ञान, अज्ञान, सुख, दुःख, स्वर्ग, नरक, बन्ध, मोक्ष, उपान्य, शिष्य, विद्वान्, मूढ़, आसुर, तप, परमपद, ब्रह्म, अब्रह्म और सन्यासी किसे कहें ?” तब ब्रह्मा ने कहा—

ब्रह्म—महत्, अहङ्कार, पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाशादि बड़े अण्डे के समान तथा कर्म और ज्ञान ने जिनका भास होता है, जो अद्वितीय है, अखिल उपाधि से रहित है, नव शक्तियों से आवृत है; अनदि, अनन्त, शुद्ध, शिव, शांत और निर्गुण होने से जो अनिर्वाच्य चैतन्य है सौ ब्रह्म है ।

ईश्वर—ब्रह्म प्रकृति नाम की अपनी शक्ति का आश्रय करके लोको को उत्पन्न करके अन्तर्गामीपने से प्रवेश करता है और ब्रह्मादिक की बुद्धि और इन्द्रियों का नियामक होने से उसको ईश्वर कहते हैं ।

जीव—ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र आदि नाम रूप के कारण मैं स्थूल रूप हूँ, इस प्रकार के मिथ्या अध्यास से जीव बनता है । यद्यपि मैं जीव एक हूँ तो भी अनेक देहों के भेद से जीव अनेक रूप से भासता है ।

प्रकृति—ब्रह्म में से उत्पन्न हुए, विविध, विचित्र जगत् को निर्माण करने वाली बुद्धि रूप जो ब्रह्म की शक्ति है उसको प्रकृति कहते हैं ।

परमात्मा—देहादि के श्रेष्ठपने से ब्रह्म ही परमात्मा रूप से, ब्रह्मा रूप से, विष्णु रूप से, इन्द्र रूप से, यम रूप से, चन्द्र, सुर, असुर, पिशाच, मनुष्य, स्त्री, पश्यादि, स्थावर और ब्राह्मणादि रूप से है । सब मात्र ब्रह्म है । उसमें किसी प्रकार विविध भेद नहीं है ।

जाति—चर्म, रक्त, मांस, अस्थि और जाति आत्मा की नहीं है । ये व्यवहार में कलना किए हुए हैं ।

कर्म—क्रियमाण इन्द्रियों से मैं इस कर्म को करता हूँ, इस प्रकार अध्यात्म निष्ठा से जो कर्म किये जाते हैं, उसको कर्म कहते हैं ।



अकर्म—कर्तृत्व, भोक्तृत्व, आदि अहङ्कार से वन्ध रूप जन्मादि का जो कारण है और नित्य नैमित्तिक याग, व्रत तप और ज्ञान में फल के नाथ जोड़ता है यह अकर्म है।

ज्ञान—देह इन्द्रियों के निग्रह से, सद्गुरु की उपासना से तथा श्रद्धा, मनन और निर्दिष्टासन से जो दृग और इन्द्र्य स्वरूप में है, जो सर्वास्ति रूप से रहता है, सबको समान रूप से है, जो घट पटादि के पदार्थ के विकारों में अविकारी समान रूप से जो कुछ चैतन्य है उनके सिवाय कुछ भी नहीं है इस प्रकार के साक्षात्कार के अनुभव को ज्ञान कहते हैं।

अज्ञान—रज्जु में नर्प की आंति के समान अद्वितीय, सब में ओत प्रोत और सर्वभय ब्रह्म में देव, पक्षी, नर, स्थावर, स्त्री, पुरुष, दार्शनिक और वन्द्य मोक्ष रूप उपाधि से ज्ञान की जो अनेक रूप से कल्पना करने में आती है सो अज्ञान है।

स्वर्गादि—सृष्टिदानन्द स्वरूप का ज्ञान होने के पश्चात् अज्ञान रूप जो स्थिति है सो मुख है। अनात्म रूप विषय का जो संकल्प है सो दुःख है। जन्तों का समागम सो स्वर्ग है। अनात्म रूप संसार का और विषयो जनों का जो संसर्ग है सो नरक है।

बंध—'अनादि अविद्या की वासना के कारण मैं जन्मा हूँ' इत्यादि संकल्प सो बन्ध है। माता, पिता, मित्र, स्त्री, लड़के गृह

वर्ग, क्षेत्रादिक में ममता से संसार का आवरण रूप संकल्प सो बंध है। कर्तृपुन में अहङ्कार का संकल्प बंध है। अणिमादि अष्ट ऐश्वर्य की आशा की सिद्धि का संकल्प बंध है। देव और मनुष्यादिक की उपासना वाला काम संकल्प सो बंध है। यमादि आशुंग योग का संकल्प सो बन्ध है। कर्णाश्रम धर्म कर्म का संकल्प सो बंध है। आज्ञा भय और संशय ये गुण आत्मके हैं ऐसा जानना यह बंध है। याग, व्रत, तप, दान, विविध और विज्ञान के ज्ञान का संभव सो बंध है। मात्र मोक्ष की इच्छा का संकल्प हो सो भी बंध है। संकल्प मात्र की उत्पत्ति ही बंध है।

मोक्ष—नित्य और अनित्य वस्तु के विचार से अनित्य संसार के सुख दुःख विषय में और सब क्षेत्रों में रहने वाली ममता रूप बंधन का नाश सो मोक्ष है।

उपास्य आदि—सब शरीरों में रहने वाले चैतन्य ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाला गुरु उपास्य है। विद्या से नाश हुए प्रपंच के कारण संस्कार वाला ज्ञानावशेष रूप ब्रह्म ही विषय है। सब के भीतर जो रहता है सो अपना चैतन्य स्वरूप है ऐसा जो जानने वाला है सो विद्वान् है। कर्तृत्वादि अहं भाव में जो रहता है सो मूढ़ है ब्रह्मा विष्णु, ईशान, इन्द्रादिक के ऐश्वर्य को इच्छा से जो उपास, जप, अग्निहोत्रादिक कर के आत्मा को संताप देने वाला है तथा अत्युग्र राग द्वेष, हिंसा और दंभादिक से युक्त जो तप है सो आसुर तप है। ब्रह्म सत्य



रूप है, जगत् मिथ्या रूप है इस प्रकार के अपरोक्ष ज्ञानानि से ब्रह्मा आदिक ऐश्वर्य की आशा में युक्त बीज रूप संकल्प की उत्पत्ति का जो संताप सो तप है। प्राणोन्द्रियादि अन्तःकरण के गुणों में परे नञ्चिदानन्दमय नित्य युक्त जो ब्रह्म स्थान सो परम पद है। देश, काल और वस्तु के परिच्छेद में रहित जो चिन्मात्र स्वरूप सो ग्राह्य स्वस्वरूप है। स्वस्वरूप में अतिरिक्त नायामय बुद्धि इन्द्रिय का विषय रूप जगत् का सत्य रूप में जो चिन्तवन है सो आग्राह्य है। सब धर्मों का त्याग करके ममता और अहङ्कार से रहित होकर ब्रह्मके शरण में जाना, तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, सर्वज्ञत्वं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चनः इत्यादि महा वाक्यों के अनुभव वाले ज्ञान से "मैं ही ब्रह्म रूप हूँ" इस प्रकार के निश्चय होने के पश्चात् निर्विकल्प ज्ञमाधि में स्वतन्त्र जो यति विचरता है वह ही सत्यासी, मुक्त, पूज्य, योगी परमहंस, अवधूत और ब्राह्मण है। जो गुरु के अनुग्रह में इस निरालंब उपनिषद् का अध्ययन करता है वह अग्नि में व वायु से पवित्र होता है, उसको पुनरावृत्ति नहीं होती उसको पुनरावृत्ति नहीं होती। फिर जन्म नहीं लेता पुनः उत्पन्न नहीं होता।



## धुरिका उपनिषद्

[ १० ]

धुरिका अर्थात् छुरी के समान संसार को काटने वाली धारणा का योग की सिद्धि के लिये व्याख्यान करता है। इस धारणा की प्राप्ति के पश्चात् योगी का पुनर्जन्म नहीं होता ॥१॥ वेद तत्त्व के अर्थ की विधि के अनुसार जैसे ब्रह्मा ने कहा है एकान्त देश में आसन लगा कर बैठे ॥२॥ जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है तैसे मन को हृदय में मंकोच करके वारह मात्रा से प्रणव युक्त पूरक करके नव वरीर धीरे धीरे ॥३॥ पूर्ण करे और सब द्वारों को बन्द करले। छाती, मुख, ग्रीवा और हृदय को किंचिद् ऊंचा रखे ॥४॥ नासिका के मध्य भाग में रहने वाले प्राण को हृदय में धारण करे, वहां रहने वाले प्राण को धीरे से उत्सर्ग करे ॥५॥ स्थिरता से अंगुष्ठ से आरम्भ करके दो मुक्तों के भाग में जंघाओं में तीन तीन ॥६॥ दो जानुओं में दो ऊरुमें गुदा और शिरः इन में तीन तीन समाहार करके बायु का स्थान जो नाभि प्रदेश है, उसमें आश्रय करे ॥७॥ इन नाभि प्रदेश में सुषुम्ना नाड़ी अनेक नाड़ियों से आवृत है। अणु, रक्त, पीत, कृष्ण, ताम्र, विलोहित अनेक नाड़ियां हैं ॥८॥ परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म शुक्ल विस्तार वाली नाड़ी का आश्रय करे। जैसे मकड़ी तंतु का विस्तार



करती है तैसे योगी को प्राण का संचार करना चाहिये ॥८॥  
 उस स्थान पर रक्तोत्सल के समान महा पुरपायतन—पुरुष का  
 स्थान है इसको वेदान्त में दहर श्रवर्त्त पुण्डरीक कहते हैं ॥९॥  
 उसको भेदन करके प्राण कंठ में ले जावे । निर्मल बुद्धि  
 न्य तीक्ष्ण खड्ग को ग्रहण करें ॥१०॥ पय के ऊपर के  
 भाग में नहने जाने सब मर्मों का छेदन करे तीक्ष्ण दृढ़ मन  
 में सर्वदा योग का आश्रय करे ॥१२॥ मर्म और जंघा का  
 जो छेदन है उसके इन्द्रवज्र कहते हैं । उसको ध्यान के बल  
 वाली योग की धारणा से छेदन करना चाहिये ॥१३॥ उस के  
 नव्य भाग में प्राण की स्थापना करे और मर्म स्थानों में से  
 प्राण का विसर्जन करे; इन चार रीति के योग के अभ्यास से सब  
 ग्रन्थियोंका निर्भयतासे छेदन करे ॥१४॥ योगी कंठ प्रदेशमें नाड़ी  
 मसूह को दृक्कटा करता है, सब नाडियोंमें एक सी एक नाड़ी  
 उत्तम है ॥१५॥ मुमुम्ना नाड़ी पर ( परब्रह्म ) में लीन होती  
 है यह त्रिगुद्ध नाड़ी ब्रह्म रूपिणी है । वाम में इड़ा नाड़ी रहती  
 है और पिंगला दक्षिण में रहती है ॥१६॥ इन दोनों नाडियों के  
 मध्य में जो स्थान है, उसको जो जानता है सो आराम जानी  
 है । मूक्षम नाडियों का विस्तार बृहत्तर हजार का है ॥१७॥  
 ध्यान से मय नाडियों का छेदन होता है परन्तु मुमुम्ना का  
 छेदन नहीं होता । योग रूपी निर्मल धार वाले और अग्नि के  
 तेज वाले खड्ग द्वारा ॥१८॥ समाधि की प्रभा से योगी इस  
 जन्म में ही सौ नाडियों का छेदन करता है । जैसे मालती  
 पुष्पों के योग से पुष्प की वास तेल में आती है ॥१९॥ इस

रीति से शुभाशुभ से विस्तार वाली मुमुम्ना नाड़ी का ध्यान  
 करे इससे पुनर्जन्म का नाश होता है ॥२०॥ जिसने तप  
 से चित्त को जीत लिया है, ऐसा पुरुष एकान्त का आश्रय करके  
 और अपेक्षा से रहित होकर निस्संग रूप योग के तत्त्व का  
 जानने वाला धीरे धीरे ॥२१॥ पाश का छेदन करके जिस प्रकार  
 हंस धंका रहित होकर आकाश में उड़ जाता है इसी प्रकार यह  
 जीव पाश का त्याग करके संसार को तर जाता है ॥२२॥ जैसे  
 दीपक सबको भस्म करके लय को प्राप्त होता है वैसे ही योगी सब  
 कर्मों का दहन करके लय को प्राप्त होता है ॥२३॥ योगवान्  
 उत्कृष्ट प्राणायाम से दृढ़ किये हुए वैराग्य रूप परधर से घिसे  
 हुए मात्रा के आधार रूप मन से बंध का नाश करके मोक्ष को  
 प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ जब कामनाओं से मुक्त होता है तब  
 श्रमृतपने को प्राप्त होता है । सब ईषणाओं से मुक्त होकर तंतु  
 का छेदन करके बंधन को प्राप्त नहीं होता ॥२५॥



योग





## सर्वसारोपनिषत् ।

[ ११ ]

बंध किस प्रकार है ? मोक्ष किस प्रकार है ? विद्या किसको कहते हैं ? अविद्या किसको कहते हैं ? जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति और तुरीयावस्था कैसे होती है ? अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय क्या हैं ? कर्ता, जीव, पंच वर्ग, क्षेत्रज्ञ, साक्षी, कूटस्थ और अंतर्धर्मि क्या हैं ? प्रत्यगात्मा, परात्मा और माया किसको कहते हैं ?

बंध—देहादिक अनारम में जीव का जो आत्मपने का अभिमान है सो बंध है ।

मोक्ष—अभिमान का नाश सो मोक्ष है ।

अविद्या—जो अभिमान कराती है वह अविद्या है ।

विद्या—जिससे अभिमान निवृत्त होता है वह विद्या है ।

जाग्रत—आदित्य से अधिष्ठित मन आदि चौदह इन्द्रियों से शब्दादिक स्थूल विषयों की जब प्राप्ति होती है तब आत्मा की जाग्रत अवस्था होती है ।

स्वप्न—शब्दादिक का अभाव होते हुए भी जब वासना सहित चौदह इन्द्रियों से वासनामय शब्दादिक की जब प्राप्ति होती है तब आत्मा की स्वप्नावस्था है ।

सुषुप्ति—जब चौदह इन्द्रियां विराम को प्राप्त हो जाती हैं और विशेष ज्ञान के अभाव के पश्चात् जब शब्दादिक की प्राप्ति नहीं होती तब आत्मा की सुषुप्ति अवस्था होती है ।

तुरीया—तीनों अवस्थाओं के भावाभाव का साक्षी, स्वयं भाव से रहित, जब निरन्तर चैतन्य रूप होता है तब तुरीय-चैतन्य कहलाता है ।

अन्नमय—अन्न के कार्य रूप कोशों का समूह अन्नमय कोश कहा जाता है ।

प्राणमय—अन्नमय कोश में जब प्राणादि चौदह वायु रहते हैं तब वह प्राणमय कोश कहलाता है ।

मनोमय—जब इन दोनों कोशों से युक्त (होकर) आत्मा मन आदि चौदह इन्द्रियों से शब्दादि विषयों की और संकल्पादि धर्मों को ग्रहण करता है तब मनोमय कोश कहलाता है ।

विज्ञानमय—जब आत्मा ऊपर के तीन कोश युक्त उत्तम रहते वाले विशेष भावों को जानता है तब विज्ञानमय कोश कहलाता है ।

आनन्दमय—जैसे वट के बीज में वट वृक्ष रहता है ऐसे जब आत्मा इन चार कोशों से युक्त और स्वकारण के अज्ञान में अर्थात् अव्यक्तपने में होता है तब आनन्दमय कोश कहलाता है ।



कर्ता—जन्म श्रान्तःकरण सुख दुःख बुद्धि का आश्रय वाला होता है तब (श्रान्तः) कर्ता कहलाता है। जब इष्ट विषय में बुद्धि होती है तब सुख कहलाता है और जब अनिष्ट विषय में बुद्धि होती है तब दुःख कहलाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये सुख दुःख के हेतु हैं।

जीव—कर्म के अनुसार पुण्य पाप से शरीर को प्राप्त होता है तो भी शरीर प्राप्त न हुआ हो ऐसा जब जाना जाय तब वह उपाधि युक्त जीव कहलाता है।

पंच वर्ग—मनादि, प्राणादि, इच्छा आदि, सत्त्व आदि और पुण्यादि पांच वर्ग हैं।

क्षेत्रज्ञ—इन पांचों वर्गों के धर्म वाला आत्मा विना ज्ञान इन धर्मों से रहित नहीं होता और जो मैं हूँ यह उपाधि आत्मा को संनिधि में शाश्वत रूप से भासती है वह लिङ्ग शरीर है, उसको हृदय ग्रन्थि कहते हैं, उसमें जो चैतन्य प्रकाशता है उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

साक्षी—ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय इन तीनों के आविर्भाव और तिरोभाव को जानने वाला, स्वयं ज्योति आत्मा जो आविर्भाव और तिरोभाव रहित और स्वयं प्रकाश होता है, उसको साक्षी कहते हैं।

कूटस्थ—ब्रह्मा से लेकर चंडी पर्यन्त सब प्राणियों की बुद्धि में जो अवशेष रूपसे देखनेमें आता हुआ और सब प्राणियों की बुद्धि में जो रहता है, उसको कूटस्थ कहते हैं।

अन्तर्यामी—कूटस्थ और उपहित जीव के स्वरूप की पुष्क प्राप्ति का कारण रूप होकर जो मणियों के समूह में सूत्र की समान सब क्षेत्रों में प्रोया हुआ भाषता है उसको अन्तर्यामी कहते हैं।

प्रत्यगात्मा—सत्य, ज्ञान, अनन्त और आनन्द रूप, सब उपाधियों से रहित, कड़े, कुण्डल आदि उपाधियों से रहित घन सुवर्ण की समान विज्ञान चिन्मात्र स्वभाव वाला आत्मा जब प्रकाशता है तब वह 'त्वं' पद के अर्थ रूप है।

परात्मा—ब्रह्म, सत्य, ज्ञान और अनन्त रूप है। सत्य का अर्थ अविनाशी है। देश, काल और वस्तुओं के परिच्छेदों के नाश होने पर भी जिसका नाश नहीं होता उसको अविनाशी कहते हैं। उत्पत्ति, विनाश रहित जो अखण्ड चैतन्य है उसको ज्ञान कहते हैं। मिट्टी के विकार में मिट्टी के समान, सुवर्ण के विकार में सुवर्ण समान, तंतु के विकार में तंतु समान और अव्यक्तादि सृष्टि के प्रपञ्चों में पूर्ण व्यापक रूप से जो चैतन्य है उसको अनन्त कहते हैं। सुख चैतन्य स्वरूप वाला, परिमाण रहित, आनन्द के समुद्र रूप और अवशिष्ट सुख रूप वाला आनन्द कहलाता है। जिसके ये चारों लक्षण हैं और जो देश, काल और निमित्त में अव्यभिचारी—निश्चल रहता है, वह परमात्मा 'त्वं' पद का अर्थ है।

परब्रह्म—त्वं पदार्थ रूप उपाधि से और तत्त्वदार्थ रूप उपाधि के भेद से विलक्षण, आकाश के समान सूक्ष्म, सत्ता मात्र स्वभाव वाला परब्रह्म कहलाता है।



माया—अनादि, अलत वाली, प्रमाण और अप्रमाण दोनों को समान, सत् नहीं, असत् नहीं तथा सदसत् भी नहीं, आप ही अधिक रूप से, विकार से रहित दीखती, नत् आदि अन्य लक्षणों से रहित माया है। यह माया अज्ञान रूप, तुच्छ और तीनों काल में असत् रूप है तो भी लौकिक मूढ़जनों की उसमें वास्तविक सदबुद्धि होने से यह ऐसी ही है ऐसा कहना नहीं बनता।

मैं आत्मा उत्पत्ति से रहित, दश इन्द्रियों से रहित, बुद्धि मन अहंकार से रहित ॥१॥ अप्राण रूप, अमन रूप, शुभ्र रूप, बुद्धि आदि का नर्वादा साक्षी रूप, सर्वदा नित्य रूप और चिन्मात्र रूप हैं इसमें संशय नहीं है ॥२॥ मैं कर्ता रूप भोक्ता रूप नहीं हूँ। प्रकृति का नाक्षी रूप हूँ। मेरी समक्षता से देहादि चैतन्य के समान प्रवृत्त हों ऐसे दोखते हैं ॥३॥ मैं स्थाणु, नित्य, सदानन्द, शुद्ध, ज्ञानमय, मल रहित, सब भूतों का आत्मा रूप, विभु, साक्षी रूप हूँ इसमें संशय नहीं है ॥४॥ ब्रह्मरूप, सर्व वेदान्त से जानने योग्य, आकाश वायु के समान होने से अवेद्य नाम, रूप और कर्म से रहित मैं ही ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ ॥५॥ मैं देह नहीं हूँ मुझको जन्म मृत्यु कैसे हो ? मैं प्राण रूप नहीं हूँ इससे मुझमें क्षुधा पिपासा नहीं है। मैं चेतस् रूप नहीं हूँ इसलिये मुझमें शोक और मोह कैसे होंगे ? मैं कर्ता से रहित होने से वंश मोक्ष भाव से रहित हूँ।



वेदान्त



## आत्मप्रबोध उपनिषत् ।

[ १२ ]

प्रत्यक् आनन्द रूप और ब्रह्म पुरुष प्रणव रूप है। अकार, उकार और मकार ये तीन अक्षर प्रणव रूप हैं, इसको अकार कहते हैं। इसका उच्चारण करने से योगी जन्मरूप संसार बंधन से मुक्त होता है। शंख चक्र और गदा को धारण करने वाले नारायण को नमस्कार। नमोनारायण इस मंत्र की उपासना करने वाला वैकुण्ठ में जायगा। जो ब्रह्मरंध्र रूप कमल है, वह विजली के समान प्रकाशता है। यह ब्रह्मण्य देवकीपुत्र रूप से, मधुसूदन रूप से, पुण्डरीकाक्ष रूप से, विष्णु रूप से और अच्युत रूप से है। सब प्राणियों में जो एक नारायण स्थिति करता है। वह कारण रूप पुरुष, कारण से रहित, परब्रह्म रूप ओंकार, शोक मोह रहित और विष्णु रूप है। इस विष्णु के ध्यान करने वालों का नाश नहीं होता। वह द्वैत से अद्वैत रूप होकर अभय होजाता है। जो भिन्नता को देखता है, वह अनेक प्रकार के मृत्यु को प्राप्त होता है। हृदय कमल में जो कुछ उसकी स्थिति प्रज्ञा में है। लोक प्रज्ञा नेत्र है, प्रज्ञा प्रतिष्ठा रूप से और ब्रह्म रूप से है। इस प्रज्ञा से इस लोक का उत्कमण करके दूसरे लोक अर्थात् स्वर्ग में मनुष्य सब कामनायें प्राप्त करता है। वह अमृत रूप होता है। सतत ज्योति जिस लोक में रहती है वह लोक मुझको दीजिये। यह



अक्षत लोक मान से रहित और अभ्युत रूप है। जो इस लोक को प्राप्त होता है, वह अभूत होता है अभूत रूप आकार को नमस्कार है ॥१॥

मुझमें से माया का नाश हुआ है, स्वच्छ दृष्टि रूप वस्त्र मात्र मैं हूँ। अस्मिता का नाश करने वाला, जगत् ईश और जीव के भेद ने रहित है (१) प्रत्यक् अभिन्न रूप है, विधि निषेध का नाश रूप है, आश्रयों से पर है, परमानन्द रूप पूर्ण सवित्र रूप है, (२) अपेक्षा रहित साक्षी है, अपनी महिमा में स्थित है, अचल है, अजर है, अव्यय है, पक्ष विपक्ष भेद से रहित है। (३) एक रस ज्ञान स्वरूप है, मोक्ष आनन्द का एक सिन्धु भी मैं ही हूँ, सूक्ष्म है, अक्षर है, गुण समूह से रहित केवल आत्मा है, (४) तीन गुणों से रहित पद है, कुक्षी स्थान में लोक कलना रूप है, क्लृप्त्य चैतन्य है, निष्कियमान है, तर्क से रहित है। (५) एक है, कला से रहित है, निर्मल, निर्वाण मूर्ति भी है, निरवयव है, अजर है, केवल सन्मात्र सार भूत है। (६) अवधि रहित निज बोध रूप है, शुभ तर भाव रूप है, अभेद्य है, विष्णु है, निन्दा से रहित, अवधि रूप है, परमतत्त्व मात्र है। (७) जानने योग्य है वेद में आराधन करने योग्य, सब भुवनों में सुंदर है, परमानन्द घन है, परमानन्द का एक भूमा रूप है। (८) शुद्ध है, अद्वय है, सर्व भाव रूप है, आदि शून्य है, देशकाल और वस्तु इनके परिच्छेद से रहित है, बंध मुक्त है, अद्भुत आत्मा है, (९) शुद्ध है, अन्तर है, शाश्वत विज्ञान एक रस आत्मा है, शोभन किया हुआ परम तत्त्व मैं हूँ,

बोध और आनन्द को एक मूर्ति भी हूँ। (१०) विवेक और युक्ति की बुद्धि वाला हूँ, अद्वय आत्मा को जानता हूँ तो भी बंध मोक्ष आदि व्यवहार प्रतीत होता है। (११) निवृत्त हुआ प्रपंच भी मुझको नश्य के समान सर्वदा भासता है। जैसे सर्प आदि में रज्जु की सत्ता है, ऐसे प्रपंच में केवल ब्रह्म सत्ता ही है। (१२) मैं प्रपंच का आधार रूप हूँ इसलिए जगत् है ही नहीं, जैसे ईश्वर में रस रूप से शक्कर रहती है तैसे ही (१३) अद्वितीय ब्रह्म रूप से तीनों लोकों में व्याप्त हूँ। ब्रह्मा से लेकर कीटपर्यन्त सब प्राणी मुझ में कल्पित हैं। (१४) बुद्धदे से लेकर तरंग तक जितने विकार समुद्र में दीखते हैं, उन तरङ्गों में स्थित विकारों को जैसे सिंधु नहीं चाहता तैसे ही (१५) आनन्द रूप होने से मुझे विषयानन्द की इच्छा नहीं होती, जैसे वनवान् को दरिद्र होने की इच्छा नहीं होती तैसे ही (१६) मुझ ब्रह्मानन्द में निमग्न को विषय की आशा नहीं होती, विष और अभूत को देखकर बुद्धिमान् पुरुष विष को त्यागता है। (१७) तैसे ही आत्मा को देखकर मैं अन्यात्मा का त्याग करता हूँ, घट में प्रकाशने वाले सूर्य का घट के नाश से नाश नहीं होता (१८) तैसे ही देह को प्रकाशने वाले साक्षी का देह के नाश होने से नाश नहीं होता। मुझको बंध, मोक्षशास्त्र और गुरु कोई नहीं है। (१९) ये सब केवल माया का विकाश मात्र है और मैं माया से रहित अद्वय हूँ। उसके धर्मों से प्राण चला करो और मन कामना से मरता रहो। (२०) आनन्द बुद्धि से पूर्ण मुझको दुःख कहाँ से हो ? मैं आत्मा को प्रत्यक्ष



संज्ञा लोक मान से रहित और अच्युत रूप है। जो इस लोक को प्राप्त होता है वह अमृत होता है अमृत रूप ओंकार को नमस्कार है ॥१॥

मुझमें से माया का नाश हुआ है, स्वच्छ दृष्टि रूप वस्त्र मात्र है। अस्मिता का नाश करने वाला, जगत् ईश और जीव के भेद ने रहित है (१) प्रत्यक् अभिव्यक्त रूप है, विविध निषेध का नाश रूप है, आश्रयों से पर है, परमानन्द रूप पूर्ण सवित्र रूप है, (२) अभेक्षा रहित साक्षी है, अपना महिमा में स्थित है, अचल है, अजर है, अव्यय है, पक्ष विपक्ष भेद ने रहित है। (३) एक रस ज्ञान स्वरूप है, मोक्ष आनन्द का एक सिन्धु भी मैं ही है, सूक्ष्म है, अक्षर है, गुण समूह से रहित केवल आत्मा है, (४) तीन गुणों से रहित पद है, कुक्षी स्थान में लोक कलना रूप है, कृत्स्न चैतन्य है, निष्कियमान है, तर्क से रहित है। (५) एक है, कला से रहित है, निर्मल, निर्वाण सृति भी है, निरवयव है, अज है, केवल है, सन्मात्र सार भूत है। (६) अवधि रहित निज बोध रूप है, शुभ तर भाव रूप है, अभेद्य है, विभु है, निन्दा से रहित, अवधि रूप है, परमतत्व मात्र है। (७) जानने योग्य है वेद में आराधन करने योग्य, सब भुवनों में सुन्दर है, परमानन्द धन है, परमानन्द का एक भूमा रूप है। (८) शुद्ध है, अद्वय है, सर्व भाव रूप है, आदि शून्य है, देशकाल और वस्तु इनके परिच्छेद से रहित है, बंध मुक्त है, अद्व्युत आत्मा है, (९) शुद्ध है, अन्तर है, शाश्वत विज्ञान एक रस आत्मा है, शोभन किया हुआ परम तत्त्व मैं है,

बोध और आनन्द को एक सृति भी है। (१०) विवेक और मुक्ति की बुद्धि वाला है, अद्वय आत्मा को जानता है तो भी बंध मोक्ष आदि व्यवहार प्रतीत होता है। (११) निवृत्त हुआ प्रपंच भी मुझको सत्य के समान सर्वदा भासता है। जैसे सर्प आदि में रज्जु की सत्ता है, ऐसे प्रपंच में केवल ब्रह्म सत्ता ही है। (१२) मैं प्रपंच का आधार रूप है इसलिए जगत् है ही नहीं, जैसे ईश में रस रूप से शक्कर रहती है तैसे ही (१३) अद्वितीय ब्रह्म रूप से तीनों लोकों में व्याप्त है। ब्रह्मा से लेकर कीटपर्यन्त सब प्राणी मुझ में कल्पित हैं। (१४) बुद्धदे से लेकर तरंग तक जितने विकार समुद्र में दीखते हैं, उन तरङ्गों में स्थित विकारों को जैसे सिंधु नहीं चाहता तैसे ही (१५) आनन्द रूप होने से मुझे विषयानन्द को इच्छा नहीं होती, जैसे धनवान् को दरिद्र होने की इच्छा नहीं होती तैसे ही (१६) मुक्त ब्रह्मानन्द में निमग्न को विषय की आशा नहीं होती, विषय और अमृत को देखकर बुद्धिमान् पुरुष विषय को त्यागता है। (१७) तैसे ही आत्मा को देखकर मैं आत्मा का त्याग करता हूँ, घट में प्रकाशने वाले सूर्य का घट के नाश से नाश नहीं होता (१८) तैसे ही देह को प्रकाशने वाले साक्षी का देह के नाश होने से नाश नहीं होता। मुझको बंध, मोक्ष शास्त्र और गुरु कोई नहीं है। (१९) ये सब केवल माया का विकारा मात्र है और मैं माया से रहित अद्वय हूँ। उसके धर्मों से प्राण चला करो और मन कामना से मरता रहो। (२०) आनन्द बुद्धि से पूर्ण मुझको दुःख कहाँ से हो ? मैं आत्मा को प्रत्यक्ष



जानता है, मेरा अज्ञान नष्ट हुआ है। (२१) मेरा कर्तृत्व नष्ट हो गया है, अब कर्तव्य कुछ नहीं है। ब्राह्मणपना, कुल, गोत्र, नाम, सौन्दर्य, जाति (२२) ये स्थूल देह में रहते हैं, स्थूल देह से भिन्न मुझमें नहीं रहते। शूद्र, व्यास, अन्धापना, बहिरापना, काम, क्रोधदि (२३) ये सम्पूर्ण लिङ्ग देह में होते हैं परन्तु मैं लिङ्ग देह से रहित होने से मुझमें कुछ भी नहीं है। जड़पना, प्रिय, मोद, आदि धर्म कारण देह के हैं। (२४) परन्तु मैं नित्य निर्वकायी हूँ, इसलिये वे मेरे नहीं हैं। जैसे धुआँ को सूर्य अन्धकार रूप से दीखता है। (२५) तैसे शूद्र को स्वप्रकाश परानन्द में अन्धेरा दीखता है। चक्षु दृष्टि की बाधला से रोक होने के कारण सूर्य नहीं है; ऐसा माना जाना है (२६) तैसे ही अज्ञान से ढका हुआ जीव 'ब्रह्म' नहीं है' ऐसा मानता है। जैसे अमृत विषसे भिन्न है और विषके दोषोंसे लियावधान नहीं होता (२७) तैसे ही जड़से भिन्न मुझको जड़ोंदि दोषोंका न्यर्श नहीं होता, जैसे एक छोट्टे से दोपक की ज्योति बहुत अन्धकार का नाश करती है (२८) तैसे थोड़ा सा भी ज्ञान महान् अज्ञान का नाश करता है। जैसे तीनों काल में रज्जु में सर्प नहीं है, वैसे ही मुझमें। (२९) अहं-कारादि से देह पर्यंत का जगत् नहीं है। मैं अद्वय रूप हूँ। मैं चेतन रूप होने से मुझमें जड़ता नहीं है। मैं सत्य रूप होने से मुझमें असत्य नहीं है (३०) मैं आनन्द रूप होने से मुझमें दुःख नहीं है। अज्ञान से मुझको दुःख सत्य रूपसे आता है। आत्म प्रबोध उपनिषद् की जो एक मुहूर्त भी उपासना करता है, उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती, पुनरावृत्ति नहीं होती।



## कालाग्नि रूद्र उपनिषद् ।

[ १३ ]

एक समय भगवान् कालाग्नि रूद्र से सनत्कुमार ने पूछा "हे भगवन् ! मुझे त्रिपुण्ड्र की विधि तत्त्व सहित श्रवण कराइये। त्रिपुण्ड्र क्या है, उसका स्थान कौन है, प्रमाण क्या है, कौन सी रेखा है, मन्त्र कौन से है, कौन सी शक्ति का देव कौन कर्ता है और उसका क्या फल है ?" भगवान् कालाग्नि रूद्र ने कहा "जो द्रव्य है, सो अग्नि होत्र की भस्म है। 'सद्यो जातादि' पांच मन्त्र ने इस भस्म को ग्रहण करता, 'अग्नि रिति भस्म, वायु रिति भस्म, व्योमेति भस्म, जल मिति भस्म और स्थल मिति भस्म, इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके 'मान स्तोके' इस मन्त्र से अंगुली पर लेकर 'मानो महान्' इस मन्त्र से जल लेकर 'त्रियायुष' इस मन्त्र से शिर, ललाट वक्ष और स्कन्ध पर 'त्रियायुष' और 'त्र्यंक्' इस मन्त्र से तीन रेखा करता। यह शांभव व्रत कहलाता है। सब देवताओं में इस व्रत को वेद वेत्ताओं ने कथन किया है। पुनः जन्म लेना न पड़े इसलिये मुमुक्षुता धारण करने वाला इसका आचरण करे।" सनत्कुमार ने पूछा "तीन रेखा करने में आती है इसका क्या कारण है ?" उत्तर:—"तीन रेखाओं में से प्रथम रेखा गार्हपत्य रूप, आकाश रूप, रजो रूप, भूलोक रूप, स्वप्न रूप क्रिया शक्ति रूप,



ऋग्वेद रूप, प्रातः सवन रूप, और महेष्वर रूप, है। दूसरी रेखा दक्षिणानि रूप, उकार रूप, सत्व रूप, अन्तरिक्ष रूप, अन्तरात्मा रूप, इच्छा शक्ति रूप, यजुर्वेद रूप, मध्य दिन सवन रूप और सदाशिव रूप है। तीसरी रेखा अद्वितीय रूप, मकार रूप, तम रूप, धौर्लोक रूप, परमात्मा रूप, ज्ञान शक्ति रूप, सामवेद रूप, तृतीय सवन रूप और महादेव रूप है। जो कोई विद्वान्, ब्रह्मचारी, गृहस्थाश्रमी, वानप्रस्थाश्रमी अथवा यति हो और वह जो त्रिपुण्ड्र को धारण करे तो महापातकों और उपपानकों से मुक्त होता है। सब तीर्थों में उसने स्नान किया सा होता है; उसने सब वेदों का अध्ययन किया सा होता है। सब देवताओं का वह ज्ञाता होता है, वह सब रूढ मन्त्रों का जप करने वाला होता है; वह सब भोग का भोगता है और देह त्याग करके शिवपने को प्राप्त होता है। उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती।” इस प्रकार कालानि रूढ ने कहा। जो इसका अध्ययन करता है वह भी उसके समान होता है।



वेदान्त



## तुरीयातीत उपनिषत्

[ १४ ]

पितामह 'ब्रह्मा अपने पिता भगवान नारायण के समीप आकर पूछने लगे "तुरीयातीत अवधूत का मार्ग कैसा है और उसकी स्थिति कैसी होती है?" भगवान नारायण ब्रह्मा से कहने लगे "जो अवधूत मार्ग में होता है, ऐसा पुरुष दुर्लभ है, ऐसे पुरुष बहुत रूप से नहीं होते। यदि कहीं एकाध होता है, तो वह हमेशा पवित्र है, वैराग्य मूर्ति रूप है; ज्ञानाकार रूप से है और वेद पुरुष रूप से है। ऐसा ज्ञानी मानते हैं। जो महा पुरुष है, वह अपना चित्त मुझमें स्थित करके रहा हुआ है और मैं उसमें स्थिति करके रहा हुआ हूँ। वह प्रथम कुटीचक सन्यासी रूप होता है, पीछे क्रम से बहूदक होता है। बहूदक हंस संन्यस्त का अवलम्बन करके पीछे परमहंस रूप होता है और स्वरूपानुसंधान से सब प्रपंच को जानकर, दंड, कमंडलु, कटिसूत्र, कौपीन, आच्छादन और विधि अनुसार कहीं हुई सब क्रियादिक का जल में त्याग करके दिगम्बर रूप होकर, विवर्ण और जीर्ण बालक, अर्जुन का भी त्याग करके विविध निषेध रहित जीवन बिताता है वह क्षीर, तेल, मर्दन, स्नान और ऊर्ध्व पुंड्रादिक (तिलक) का त्याग करता है। वह पुण्य, अपुण्य से रहित होता है। वह ज्ञान और अज्ञान का भी त्याग करता है। उसको शीत, उष्ण सुख



दुःख मान और अपमान नहीं होता । तीन वासनाओं सहित, निन्दा, अनिन्दा, गर्व, मत्सर, दंभ, दर्प, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, भ्रमर्ष, असूया और अपने देह का संरक्षण आदिक का उसने दहन किया होता है । वह अपने शरीर को मृतक के आकार के समान देखता है । वह यत्न से रहित होता है, नियम से रहित होता है, उसको लाभ हानि सब समान होते हैं । एक गाय के समान घास आदि जो कुछ प्राप्त हो उससे निर्वाह करता है और वह लालच से रहित होता है । उसने सब विद्या और पांडित्य रूप प्रपंच का त्याग किया होता है इसलिये वह अपने को गूढ़ रखता है और जंघल और कनिष्ठ के भेद को पूर्ववत् कायम रखता है वह सर्वोत्कृष्ट और सर्वोत्तम अद्वैत रूप से कल्पना करता है । 'मुझसे अन्य कुछ भी नहीं है, ऐसा वह मानता है वह देव गुरु आदि धन का आत्मा में उपसंहार करता है । वह दुःख से दूखी नहीं होता, सुख से हर्ष नहीं मानता । उसे राग में प्रीति नहीं होती, उसकी सब इन्द्रियाँ शुभाशुभ से उपराम को प्राप्त हुई होती है । पूर्व प्राप्त हुए आश्रम, आचार, विचार, विद्या, धर्म प्रभाव आदि की स्मृति उसकी नहीं होती । उसने वर्णाश्रम और आचार का त्याग किया हुआ होता है । रात्रि और दिन उसको समान होता है इसलिये वह सोता नहीं वह विचरता रहता है उसके पास देहमात्र रहा हुआ होता है । उसको जल और स्थल कमंडल रूप से हैं और वह हमेशा उत्पलपने से रहित है तो भी बालक, उत्पल और पिशाच के समान

शकेल विचरता है, किसी से बोलता नहीं परन्तु स्वरूप के ध्यान में रहा हुआ होता है । निरालम्ब का श्रवलम्बन करके आरमणिग्रा से वह और सब विस्मरण करता है, ऐसा तुरीयातीत अवधूत वेष वाला अद्वैत निगु में तत्पर, प्रणय के भाव से युक्त होकर देह का त्याग करता है वह अवधूत है । वह ही कृत कृत्य हो जाता है ॥ ॐ तत् सत् ॥



सत्यास





## अध्यात्म उपनिषत्

[ १५ ]

शरीर के मध्य भाग में अन्न, एक शरीर नित्यरूप आत्मा रहता है। इस आत्मा का पृथिवी शरीर है। वह पृथिवी के मध्य भाग में रहता है तो भी पृथिवी उसे जान नहीं सकती। इस आत्मा का जल शरीर है। जल के मध्य में आत्मा रहता है तो भी जल आत्मा को नहीं जानता। इस आत्मा का तेज शरीर है। तेज के मध्य में आत्मा रहता है तो भी तेज उसको नहीं जानता। इस आत्मा का वायु शरीर है। वह वायु के मध्य में रहता है तो भी वायु उसको नहीं जानता। आत्मा का आकाश शरीर है। आकाश में संचार करते पर भी आकाश उसको नहीं जानता। आत्मा का मन शरीर है, वह मन में रहता है तो भी मन उसको नहीं जानता। आत्मा का बुद्धि शरीर है। आत्मा बुद्धि में रहता है तो भी बुद्धि आत्मा को नहीं जानती। अहंकार उसका शरीर है, वह अहंकार में रहता है तो भी अहंकार उसको नहीं जानता। चित्त उसका शरीर है, वह चित्त में रहता है तो भी चित्त उसको नहीं जानता। अव्यक्त उसका शरीर है, वह अव्यक्त में रहता है तो भी अव्यक्त उसको नहीं जानता। अक्षर उसका शरीर है, वह अक्षर में रहता है तो भी अक्षर उसको नहीं जानता। मृदु उसका शरीर है, वह मृदु में रहता है तो भी मृदु जानता।

उसको नहीं जानता। यह सब प्राणियों का अंतःसत्मात्म श्रुद्धि, दिव्य, प्रकाशरूप और नारायणरूप है।

देह, चक्षु, आदिक अनात्म वस्तुओं में जो 'मैं' और 'मेरा' ऐसा भाव होता है, उसको अध्यास कहते हैं। विद्वान् पुरुषों को ब्रह्म में आत्मिक रखकर अध्यास का त्याग करना चाहिये ॥१॥ बुद्धि और उसकी वृत्ति के साक्षीरूप इस प्रत्यक्ष आत्मा को 'आत्मा मैं हो' ऐसी वृत्ति रखकर अपने और दूसरे में आत्म-बुद्धि का त्याग कर दे ॥२॥ लोगों के अनुसार वर्तने के भाव को त्याग कर देह के अनुवर्तन के भाव का त्याग करे, शब्द के समान वर्तने के भाव का त्याग कर दे, और अपने अध्यास का भी त्याग कर दे ॥३॥ आत्मा के सर्वात्म्यपने को जान कर श्रुतियों और मुक्तियों से उसका अनुभव करके योगियों का मन स्वप्ना में हेमशा स्थिति करके नाश को प्राप्त होता है ॥४॥ निद्रा को, लोक वार्ता को, शब्दादिक को और आत्मविस्मृति को कर्मा भी अवकाश न देकर आत्मा में आत्मा का चिंतन करे ॥५॥ माता पिता के मल से उत्पन्न हुए ऐसे मल मांस वाले शरीर का चण्डाल के समान त्याग करके ब्रह्मरूप से पूं कृतार्थ हो ॥६॥ जैसे घटाकाश का महाकाश में लय होता है तैसे आत्मा का परमात्मा में लय करके हे मुनि ! तू भीनी होजा ॥७॥ आत्मा में हेमशा अविद्युत रूप स्वप्नकाश का अनुभव करके शरीर का और ब्रह्माण्ड का भी मेले के पात्र के समान त्याग कर ॥८॥



श्रानन्द रूप चिदात्मा में, देह में रहने वाली श्रहं बुद्धि को स्थापन करके, सब चिन्हों को त्याग करके तू केवल रूप हो ॥१८॥ जैसे दर्पण में अंतःपुर का भास होता है तैसे जिसमें जगत् का भाग होता है 'वह ब्रह्मरूप में स्वयं हूँ' ऐसा मान कर कृत-कृत्य हो ॥१९॥ श्रहंकाररूप मग्न से मुक्त हुआ अपने स्वल्प को प्राप्त होता है, वह चन्द्र के समान निर्मल, पूर्ण, सदानन्दमय और मयंप्रभा रूप होकर रहता है ॥२०॥ क्रिया के नाश होने से चिन्ता का नाश होता है, चिन्ता के नाश होने से वासना का क्षय होता है और वासना क्षय होने से मोक्ष होता है, उसको जीवन्-मुक्ति कहते हैं ॥२१॥ सबसे और सब दिशाओं में एक ब्रह्म का ही श्रवलोकन करने और सद्भाव रूप भावना दृढ़ होने से वासना का लय होता है ॥२३॥ किसी समय ब्रह्मनिष्ठा में प्रमाद न करना चाहिये । ब्रह्मवादियों को ब्रह्मविद्या में प्रमाद करना गुरु-रूप कहलाता है ॥२४॥ जैसे हाथ से हटाई हुई जलकी काई थोड़ी देर भी नहीं रहती तैसे परांगमुख ऐसे प्राज्ञ को माया श्रावण करती है ॥२५॥ हे निष्ठाप जो मनुष्य जीता हुआ ही केवल श्रवण्या को प्राप्त हुआ है, वह ही केवल विदेह रूप है, ( इमंजित्ये ) समाधि को प्राप्त करके तू निर्विकल्प हो ॥२६॥ जब निर्विकल्प समाधि से श्रद्धेत श्रात्मा का साक्षात्कार होता है तब श्रज्ज्ञान रूप हृदय श्रन्धि का समूल नाश होता है ॥२७॥ इस श्रात्मा में श्रहंभाव को दृढ़ कर देहादि में उसका त्याग करते हुए, घट पटादिक के सामान सब में उदासीन रहना चाहिये ॥२८॥

ब्रह्मा से लेकर स्तंभ पर्यन्त सब मिथ्या उपाधि रूप है इसलिये उनमें एक श्रात्म रूपसे रहने वाले स्वात्म स्वरूपका दर्शन करना चाहिए ॥२९॥ मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, शिव और विश्व रूप हूँ और मेरे सिवाय श्रन्य कुछ भी नहीं है ॥३०॥ आभास सहित सब वस्तुओं का निराश कर के जिसने उनकी अपने श्रात्मा में श्रारोपण किया है और जो श्राप पूर्ण, श्रद्धय और श्रक्रिय रूप से हुआ है ॥३१॥ एक ही परमार्थ वस्तु में विश्व जैसे कल्पना श्रमत् कल्पना रूप, है, पर वस्तु ब्रह्म है, जो निर्विकार, निराकार, और निर्विशेष है, उसमें भेद भाव कहां से हो ? ॥३२॥ श्रात्मा द्रष्टा, दर्शन और इत्यादि भाव से रहित है, निराश्रय रूप है, कल्पना रहित है, महान समुद्र के समान श्रत्यन्त परिपूर्ण है ॥३३॥ जैसे तेज में अंधकार का लय होता है, तैसे जिसमें सब आंति का लय होता है ऐसे चिदात्मा में भेद कहां से हो ? ऐसे एक परम तत्त्व में भेद का कर्ता किस प्रकार संभवित हो सके ॥३४॥ एक परम तत्त्व में भेद किस प्रकार हो ? सुख मात्र सुषुप्ति में भेद किसने देखा है ॥३५॥ यह विश्वचित्त में से उत्पन्न हुआ है और चित्त के श्रभाव से उसमें का कुछ भी नहीं रहता इसलिये परमात्मा में चित्त को एकाग्र करना चाहिए ॥३६॥ श्रब्रह्मनन्द श्रात्मा जो श्रपना स्वस्वरूप है उसको जानकर बाहर और भीतर सदानन्द रसका श्रास्वाद श्रात्मा में होता है ॥३७॥ बोध इसवराय का फल है, बोधका फल उपरति है, उपरति का फल स्वानन्द के श्रभुभवं से होने वाली श्रांति है ॥३८॥ उत्तर २ के श्रभाव से



पूर्व २ का रूप निष्कल है, निवृत्ति हो परम गति है और उपमा से यह प्रानंद है ॥३२॥ माया रूपा उपनिषत्से युक्त जगत् का कारण रूप सर्वज्ञत्वादि लक्षण वाला, पराक्ष और सत्यादि लक्षण वाला तत्त्व कहला जाता है ॥३०॥ जो श्रुतः कारण बालाचैतन्य 'मैं' ऐसे विषयपक्ष से प्रतीत होता है वह तत्पक्ष से कहा जाता है ॥३१॥ माया तथा श्रद्धा जो ईश्वर और जीव को उपाधि है, उनको छोड़कर ब्रह्म न विद्वान् परब्रह्म का अनुभव होता है ॥३२॥ इस प्रकार वेदान्त वाक्यों में प्रतिपादित किए हुए श्रद्धा का जो अनु-नवान है वह श्रवण है युक्ति से निश्चित किए हुए का जो अनु-नवान है वह मनन है ॥३३॥ श्रवण मन ज्ञाप संशय से रहित होने श्रद्धा में जो चित्त को एकाग्रता का होता है वह निदिध्यासन कहलाता है ॥३४॥ व्याप्ता और ध्यान का त्याग करके केवल श्रद्धा का विषय करने वाला निर्वाण स्थान में दीपविद्या के समान स्थिर चित्त को जो श्रद्धा है, वह समाधि कहलाती है ॥३५॥ बुद्धि तो श्राद्धमग्नोत्तर होने से उस काल में जात है समाधि से उठे हुए के स्मरण से अनुमान होती है ॥३६॥ इस अनादि संसार में कर्माणि प्रकार के कर्म संशय हो रहे हैं इस समाधि से सब तत्त्व को प्राप्त हो जाते हैं और बुद्ध (श्राद्ध) धर्म को बुद्धि होती है ॥३७॥ योग जानने वाले इस समाधि को धर्म मेघ कहते हैं यह धर्म रूप श्रद्धा को हजारों कारणों से वर्तती है ॥३८॥ इससे वास्तव ज्ञान का समग्र नाश हो जाता है और पाप पुण्य रूप विज्ञान कर्मों का संशय हुआ होता है वे सब मूल सहित नाश हो

॥३९॥ पहिले जिन वाक्यों का प्रतिबंध रहित सत्य श्रद्धा होता था और अब हृद्य में आसना हो इस प्रकार श्रद्धा को उत्पत्ति होती है ॥४०॥ मोक्ष पदार्थों में वास्तविकता न हो, यह वैराग्य की अवधि है, अहंता का उदय न हो, श्रद्धा को अवधि है ॥४१॥ तीन हुई बुद्धियों की फिर से उत्पत्ति प हो यह उपरान्त की अवधि है और स्थिति प्रज्ञा वाला श्रद्धा है जिसको सदानन्द प्राप्त होता है ॥४२॥

श्रद्धा और श्राद्धा को उपाधियों को छोड़ कर, एका करने योगी निर्विकार, क्रिया रहित ब्रह्म में लीन बुद्धि होता है ॥४३॥ ब्रह्म और श्राद्धा को एक विषय करने वाली विकल्प प्रज्ञा मात्र बुद्धि को प्रज्ञा कहते हैं वह सर्वदा वह प्रज्ञा-श्रद्धा निवृत्त कहलाता है ॥४४॥ जिसको देह और इन्द्रियों में श्रद्धाभाव और अन्य में 'यह' मात्र कहीं भी नहीं होता श्रद्धा निवृत्त जानना चाहिये ॥४५॥

श्रद्धा प्रपत्ति बुद्धि से जीव और ब्रह्म में और ब्रह्म और श्रद्धा में भेद नहीं जानता वह जीवन्मुक्त है ॥४६॥ सत्पुरुषों से श्रद्धा से और दुर्जनों से दुःख प्राप्त होने से जो समभाव में श्रद्धा है, वह जीवन्मुक्त है ॥४७॥ जिसने ब्रह्म तत्त्व को जाना है, उसमें के समान संसार नहीं रहता और जो प्रथम के समान ही श्रद्धा को जानना चाहिये कि वह ब्रह्मत्व से अज्ञान-बहिर्मुख है ॥४८॥ अब तक सुखादि का अनुभव होता है अब तक श्राद्ध



मानने में आता है; क्योंकि फल का उदय पूर्व की क्रिया से ही होता है, क्रिया विना कभी भी नहीं होता ॥४६॥ जैसे जाग्रत अवस्था प्राप्त होने से स्वप्न कर्म का लय होजाता है तैसे ही मैं 'ब्रह्म हूँ' ऐसा ज्ञान होने से संकड़ों और करोड़ों कल्पों के बने हुए संचित कर्मों का लय होता है ॥४७॥ जैसे आकाश किसी से लेपायमान नहीं होता ऐसे ही जिस यति को 'मैं असंग उदासीन हूँ' ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ है वह किसी प्रकार के कर्मों से कभी भी लेपायमान नहीं होता ॥४८॥ जैसे आकाश घट का योग करके और दारु की गंध से लेपायमान नहीं होता तैसे आत्मा उपाधि के योग व उनके धर्मों से लेपायमान नहीं होता ॥४९॥ ज्ञान होने के प्रथम जिसका फल प्राप्त होना आरम्भ हो चुका है ऐसा प्रारब्ध कर्म निशान लगाने के उद्देश्य से छुट चुके हुए वारा के समान, फल दिये बिना नाश को प्राप्त नहीं होता ॥५०॥ बाघ समझकर वारा छोड़ दिया, पीछे से जाना गया कि गाय है तो भी वह वारा स्थिर नहीं होता, वेग से भरा हुआ निशान पर जाकर लगाता ही है ॥५१॥ 'मैं भ्रजर हूँ भ्रमर हूँ' इस प्रकार आत्मा को जानने वाले को—आत्मा में टिके हुए को प्रारब्ध कर्म की कल्पना ही कहाँ से हो ? ॥५२॥ जब देह रूप से स्थिति होती है तब प्रारब्ध सिद्ध होता है, देहात्म भाव ही इष्ट नहीं है इसलिये प्रारब्ध को छोड़ देना चाहिये ॥५३॥ देह का प्रारब्ध कहना भी भ्रांति की कल्पना है ॥५४॥ अध्वस्त पदार्थ सत्य नहीं होता, असत्य का जन्म नहीं होता, जो जन्मा नहीं है उसका नाश नहीं होता और

असत् का प्रारब्ध नहीं होता ॥५५॥ ज्ञान से अज्ञान के कार्य का मूल सहित, नाश होता है तब देह का रहना ही किस प्रकार संभवे ? ऐसी शंका जड़ पुरुषों की होती है । उसका समाधान करने के लिये श्रुति से 'बाह्य दृष्टि' से प्रारब्ध रहता है ऐसा कहा है ॥५६॥ देहादिक सत्य हैं, ऐसा विद्वान् पुरुषों के जानने के निमित्त नहीं ।

ब्रह्म परिपूर्ण आदि और अन्त से रहित, क्रिया के अयोग्य और विक्रिया रहित है ॥५७॥ सद्रूप, चिद्रूप, आनन्द रूप और अध्वय, सवका अपना आप, एक रस, पूर्ण, अनन्त और सब तरफ मुख वाला है ॥५८॥ छोड़ा न जाय ऐना, ग्रहण न क्रिया जाय ऐसा, विषयों से रहित, आश्रय से रहित, निर्गुण, अक्रिय, सूक्ष्म, निर्विकल्प और निरञ्जन है ॥५९॥ जिसको मन ओ वाराण नही पहुँचते, इसलिये जिसका स्वरूप निरूपण नहीं होसक्ता ऐसा, सत्य, परिपूर्ण, स्वतः सिद्ध, शुद्ध ज्ञान स्वरूप ज्यमा रहित ऐना ब्रह्म एक और अद्वितीय है, उसमें नानापना कुछ भी नहीं है ॥६०॥ अपने अनुभव से अपने ही आत्मा को स्वयं अव्यक्त जानकर, सिद्ध होकर, अपने ही निर्विकल्प रूप से मुख पूर्वक आत्मा में रहना ॥६१॥ यह जगत् कहाँ गया, वह कहाँ लीन होगया, और उन कौन ले गया ? यह तो अभी मेरे देखने में आया या ! क्या यह बड़ा आश्चर्य नहीं है ? ॥६२॥ अखंड आनन्द रूप अमृत से बना हुआ, ब्रह्मरूप महा सागर में क्या लेना ? क्या छोड़ना ? क्या भिन्न है ? और क्या विलक्षण है ? कुछ भी नहीं ॥६३॥ इस



स्थिति में मैं कुछ भी देखता नहीं है, सुनता नहीं है, और जानता भी नहीं है ! मैं तो सदानन्दमय अपने स्वरूप से स्व लक्षण हूँ ॥६७॥ मैं असंग हूँ, अंग रहित हूँ, लिंग रहित हूँ, शांत हूँ, अनंत हूँ, निर्मल हूँ और सनातन हूँ ॥६८॥ मैं अकर्ता हूँ, अभीता हूँ, निर्विकार हूँ, क्रिया रहित हूँ, शुद्ध बोध रूप हूँ, केवल हूँ और हमेशा मंगल स्वरूप हूँ, ॥६९॥ यह विद्या प्रथम हिरण्यगर्भ को दी, गई, हिरण्यगर्भ से ब्रह्मा को मिली ब्रह्मा ने घोर अंगिरस को दी घोर अंगिरस ने रैक्व को दी, रैक्व ने राम को दी, राम से तब श्रुत प्राणियों में प्रवृत्त हुई । यह निर्वाण का उपदेश है, वेद का उपदेश है, वेद का उपदेश है ।



वेदान्त



## स्कन्दोपनिषत् ।

[ १६ ]

स्कन्द कहते हैं:—हे महादेव ! मैं आपकी किंचित् कृपा से अच्युत रूप, शिव स्वरूप हूँ और विज्ञानघन हूँ, इससे अधिक क्या होगा ! ॥१॥ जब अन्तःकरण विषयाकार होकर विस्तार को प्राप्त होता है तब अपने स्वरूपका भान नहीं होता और जब अन्तःकरण का नाश होजाता है तब ज्ञान स्वरूप हरि ही रहता है ॥२॥ मैं ज्ञान स्वरूप में स्थित हूँ और अजन्मा हूँ, इससे अधिक और क्या है ! इसके सिवाय सब जड़ स्वप्न के समान नष्ट होने वाला है ॥३॥ चैतन्य और जड़ का जो द्रष्टा है वह ही अच्युत, ज्ञान स्वरूप है, वह ही महादेव है, वह ही महा हरि है ॥४॥ वह ही ज्योतिषों का ज्योति है, वह ही परमेश्वर है, वह ही परब्रह्म वह ही ब्रह्म मैं हूँ, इसमें संशय नहीं है ॥५॥ जीव शिव है, शिव जीव है, वह जीव केवल शिव है, जिस प्रकार छिलके से ढका हुआ धान होता है, छिलका उत्तर जाने से चावल होजाता है ॥६॥ इसी प्रकार ( कर्म में ) बंधा हुआ जीव है, कर्म ( वासना ) नाश होने पर सदा शिव है, इसी प्रकार पाश में बाधा हुआ जीव है, पाश से छूटा हुआ सदा शिव है ॥७॥ शिव विष्णुरूप है और विष्णु शिव रूप है, शिवका हृदय विष्णु है और विष्णु का हृदय शिव है ॥८॥ जैसे शिवमय विष्णु है ऐसे ही विष्णुमय शिव है



इनमें जब मैं भान्तर नहीं देखता हूँ तब मैं इसी शरीर में कल्याण को प्राप्त हुआ हूँ ॥१॥ जिस प्रकार शिव और केशव में भेद नहीं है इसी प्रकार देह को देवालय कहा है और जोव केवल शिव है, अज्ञान निर्माल्य को छोड़ कर सोडह ( वह मैं हूँ ) इस भाव से, उसका पूजन करे ॥२०॥ अभेद देखना ज्ञान है, मन का विषय ( वृत्ति ) रहित होना ध्यान है, मन के मल का त्याग न्नान है और इन्द्रियों को रोकना शौच है ॥११॥ ब्रह्म स्त्री अमृत का पान करे, देह रक्षा के लिये भिक्षा का भोजन करे, द्रव्य में रहित एकान्त स्थान में अकेला वास करे, जो बुद्धिमान इस प्रकार का आचरण करे सो मुक्ति को प्राप्त हो ॥१२॥ श्री परमधाम, कल्याण स्वरूप, चिरायु को नमस्कार है, हे नृसिंह देवेश ! आपकें प्रमाद से विरिचि, नारायण, शंकर स्वरूप, अचिन्त्य, अव्यक्त, अनंत, अव्यय, वेद स्वरूप ब्रह्म को आत्म स्वरूप से जानते हैं ॥१३॥ जो विद्वान् पुरुष उस विष्णु के परम पद को स्वर्ग के विस्तार के समान नेत्रों से प्रत्यक्ष देखते हैं ॥१४॥ वे विद्वान् ब्रह्म भाव में लीन होकर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं वह विष्णु का परम पद है वह ही निर्वाण का उपदेश है, वह ही वेद का उपदेश है वह ही वेद का उपदेश है ॥१५॥



वेदान्त



## तेजो विन्दु उपनिषत् ।

[ १७ ]

विश्वारामा हृदय में टिका हुआ ध्वंकार स्वरूप तेजोविन्दु परंज्यान रूप है । जो आणु रूप, शंखु रूप, शान्त, स्थूल, सूक्ष्म और पर है ॥ १ ॥ दुःख से प्राप्त होने योग्य, कठिनाई से आराधना करने योग्य, कठिनाई से देखने योग्य मुक्त और अव्यय स्वरूप है मुनि और विद्वानों को उसका साक्षात् ध्यान दुर्लभ है ॥२॥ नियमिताहार करनेवाला, क्रोधको जीतने वाला, संग को जीतनेवाला, इन्द्रियों को जीतनेवाला, द्वन्द्व रहित अहंकार रहित, आचाररहित, परिग्रहरहित, ॥३॥ जो अगम्य वेदका कर्ता, स्थिर मनने प्राप्त होनेयोग्य और तीनों (विदे) को जिसके मुख्यमें जानता है, वह तीनों धाम वाला हंस कहलाता है ॥४॥ उस विष्णु के परम पद को तन्त्रा रहित, आश्रय रहित, चन्द्र रूप कला वाला, सूक्ष्म, परम और अत्यन्त गुप्त जानो ॥५॥ वही तीन मुख वाला, तीन गुण के स्थान रूप, तीन धातु वाला, रूप रहित निरञ्जल, विकल्प रहित, आकार रहित और आश्रय रहित ॥६॥ उपाधि रहित स्थान वाणों और मनका आविषय, भाव से ग्रहण करने योग्य स्वभाव वाला, शरीर रहित और अविनाशी पद है ॥७॥ वह अद्वितीय, भानन्द से अतीत, दुःख से देखने योग्य, मुक्त, अव्यय स्वरूप,



चित्तवन करने योग्य, विशेष मुक्त, सनातन, अचल और नाश रहित है ॥८॥ वह ब्रह्म है, वह अध्यात्म है, वह विष्णु है, वह शरणा है। चित्तन न किया जाय ऐसा जो चिन्मय आत्मा है, वह परम आकाश रूपसे स्थित है ॥९॥ वह शून्यसे विरुद्ध, शून्य भाव वाला परंतु शून्य से अतीत और हृदय में स्थित है। न ध्यान है, न ध्यान करने वाला है और न ध्यान करने योग्य ध्येय ही है ॥१०॥ न सब है, केवल परम शून्य है, उसने ॐ न पर है न अपर, न अपर से पर है। वह चित्तवन करने के अयोग्य, और न जानने योग्य है, न सत्य न पर है ऐसा जानो ॥११॥ शूनियों से न भिला हुआ, देवताओं से न भिला हुआ पर जानो लोभ, मोह, भय, गर्व, काम, क्रोध और पाप रूप नहीं है ॥१२॥ शीत उष्ण भूख प्यास और संकल्प विकल्प रूप नहीं है। उसमें न ब्रह्म कुल का दर्प है, न मुक्ति की ग्रन्थि का संचय है ॥१३॥ न भय है, न सुख दुःख है, न मान अपमान है। इन भावों से छुटा हुआ, वह ब्रह्म ग्रहण करने योग्य है और वही परम है ॥१४॥

यम, नियम, त्याग, मोन देश और काल। आसन, मूल बंध, देह की समानता और दृष्टि की स्थिरता ॥१५॥ प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा आराम ध्यान और समाधि ये क्रम से अंग कहे हैं ॥१६॥ सब ब्रह्म है इन प्रकार के ज्ञान से और इन्द्रिय समूह का संयम यह यम कहा जाता है, इस प्रकार कहे हुए यम का वारम्बार अभ्यास करना चाहिये ॥१७॥ सजातीय

( मैं असंग ब्रह्म है इस प्रकार ) का प्रवाह और विजातीय ( मैं जीव हूँ इस प्रकार ) का तिरस्कार यह परानन्द रूप नियम विद्वानों से नियम से किया जाता है ॥१८॥ त्याग अत्यन्त पूज्य और शीघ्र मोक्ष का देने वाला है ॥१९॥ मन सहित वाणी जिसको न प्राप्त करके निवृत्त होती है ऐसे योगियों को प्राप्त होने योग्य मौन का पण्डित सदा आचरण करे ॥२०॥ जो वाणी का विषय न हो उसे कौन कह सकता है ? यद्यपि प्रपंच का कथन हो सकता है, तो वह भी शब्द से रहित अनिर्वचनीय है ॥२१॥ अथवा जो सब स्वाभाविक हो जाय वह मौन है। वाणी का मौन तो बालकों के लिए है, ब्रह्मवादियों के लिये अयोग्य है ॥२२॥ जिसमें आदि अन्त और मध्य में जगत् नहीं है, जिस करके यह हमेशा व्याप्त है, वह देश निर्जन कहा गया है ॥२३॥ ब्रह्मा आदि सब भूतों की कल्पना निषेध ( जितनी देर में पलक बन्द किए जाय उस काल—क्षण का १६२०० वाँ भाग ) से है और अखण्ड आनन्द, अद्वितीय ब्रह्म काल शब्द से कहा गया है ॥२४॥ जिसमें नित्य ब्रह्म का चित्तवन मुख से हो, उसको आसन जाने, जो इससे अन्य प्रकार का है वह सुख का नाश करने वाला है ॥२५॥ सिद्धि प्राप्त करने के लिए सब भूतों के आदि रूप और विरव के अद्वितीय अधिष्ठान आसन है जिसमें टिकने से सिद्धों को सिद्धि प्राप्त हुई है, उसको सिद्धासन कहते हैं ॥२६॥ जो सब लोकों का मूल है, जो मूल चित्त का बंधन है, वह मूल बंध ब्रह्मवादियों को सेवन करने योग्य है ॥२७॥



समान ब्रह्म में लीन होने को अङ्गों की समानता जाने, सूखे वृक्ष के समान सीधा रहना समानता नहीं है ॥२८॥ ज्ञानमयी दृष्टि करके जगत् को ब्रह्ममय देखे, वही दृष्टि परम उदार है, नात्मिका के अग्र भाग को देखने वाणी उदार नहीं है ॥२९॥ अथवा जहाँ द्रष्टा, दर्शन और दृश्य का भ्रन्त हो जाय वहाँ ही दृष्टि करनी चाहिये, नात्मिका के अग्र भाग को देखने वाली नहीं ॥३०॥ चित्त आदि सर्व भागों में ब्रह्म रूप की भावना करके सब दृष्टियों का रोकना प्राणायाम कहलाता है ॥३१॥ प्रपञ्च का निषेध करना रेचक कहा गया है । मैं ब्रह्म ही हूँ, यह दृष्टि पुरकवायु कहलाती है ॥३२॥ उस दृष्टि की निश्चलता कुंभक प्राणायाम है; यह प्राणायाम ज्ञानियों के लिए है अज्ञानियों के लिए नात्मिका दबाना है ॥३३॥ विषयों में आत्मपना देखकर मनका चैतन्य में रंग जाना प्रत्याहार जानना चाहिये, उसका वारम्बार अभ्यास करना चाहिए ॥३४॥ जहाँ-जहाँ मन जाता है वहाँ-वहाँ ब्रह्म के देखने से मन की धारणा होती है, वह धारणा उत्तम मानी गई है ॥३५॥ 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस प्रकार की निरालम्ब सदृष्टि से परमानन्द देने वाली स्थिति का नाम ध्यान है ॥३६॥ और निर्विकार बुद्धि ब्रह्माकार होकर फिर दृष्टि का विस्मरण होना समाधि कहलाती है ॥३७॥ जब तक इस प्रकार के अर्कान्नम (वास्तविक) आनन्द की प्राप्ति न हो तब तक साधु अच्छी प्रकार से अभ्यास करे; जब तक पुरुष का लक्ष्य स्वयं प्रत्यक्ष न हो जावे ॥३८॥ बाद योगीराज साधन से मुक्त होकर सिद्ध होता है तब उसके मन

और वाणी का विषय ही अपना स्वरूप हो जाता है ॥३९॥ पन्तु समाधि करते हुए विष्णु अवस्थ आते हैं । अनुसन्धान का त्याग, श्रीलस्य, भोग की इच्छा ॥४०॥ लय, शन्यकार, विज्ञेय, तेज, पसीना और शून्यता, इस प्रकार के बहुत से विध्वन ब्रह्म ज्ञानियों को त्यागने चाहिए ॥४१॥ भाव दृष्टि से भावना है, शून्य दृष्टि से शून्यता है, ब्रह्म दृष्टि से पूर्णता है, उस (ब्रह्म दृष्टि) से पूर्णता का अभ्यास करे ॥४२॥ जो मनुष्य इस परम पवित्र ब्रह्म नाम वाली दृष्टि को छोड़ते हैं वे पशुओं के समान दृष्टा ही जीते हैं ॥४३॥ जो इस दृष्टि को जानते हैं और जान कर जो उसे बढ़ाते हैं वे पुरुष धन्य हैं, और तीनों लोकों में वन्दना करने योग्य हैं ॥४४॥ जिनकी दृष्टि समान होकर दृढ़ हुई है और फिर परिपक्व हुई है, वे ही सत्य ब्रह्म भाव को प्राप्त हुए हैं, इससे शब्दवादी नहीं प्राप्त होते ॥४५॥ ब्रह्म वार्ता में दुशल, दृष्टिहीन और राग वाले वे भी अज्ञानता के कारण वारम्बार आते जाते हैं ॥४६॥ वे (ज्ञानी) ब्रह्ममती दृष्टि के बिना आधे क्षण भी नहीं टिकते जैसे कि ब्रह्मादि, सनकादि शुक्रादि टिकते हैं ॥४७॥ जिसका कार्य कारण रूप होता है, उसके कार्य में कारण ही उत्पन्न होता है । इस प्रकार कार्य के अभाव का विचार करने से स्वरूप से कारण नाश हो जाता है ॥४८॥ जब वाणी को अविषय रूप वस्तु शुद्ध होती है तब शुद्ध चित्त वालों को परम दृष्टि का ज्ञान उदय होता है ॥४९॥ तीव्र वेग से भावना की हुई जो वस्तु निश्चय स्वरूप है उसका दृश्य



अदृश्य करके ब्रह्माकार से चितवन करे ॥४०॥ बुद्धि को चैतन्य रस से पूर्ण करके विद्वान् नित्य सुख में टिके ॥

दूसरा अध्याय ।

कुमार ने शिवजी से पूछा कि अखण्ड एक रस चिन्मात्र का स्वरूप कहिए । वे परम शिव बोले:—अखण्ड एक दृश्य है, अखण्ड एक रस जगत् है । अखण्ड एक रस भाव है, अखण्ड एक रस आप है ॥१॥ अखण्ड एक रस मन्त्र है, अखण्ड एक रस क्रिया है, अखण्ड एक रस ज्ञान है, अखण्ड एक रस जल है ॥२॥ अखण्ड एक रस पृथ्वी है, अखण्ड एक रस आकाश है, अखण्ड एक रस शस्त्र है, अखण्ड एक रस श्रुति है ॥३॥ अखण्ड एक रस ब्रह्म है, अखण्ड एक रस व्रत है, अखण्ड एक रस जीव है, अखण्ड एक रस भ्रज है ॥४॥ अखण्ड एक रस ब्रह्मा है, अखण्ड एक रस विष्णु है । अखण्ड एक रस रुद्र है, अखण्ड एक रस मैं हूँ ॥५॥ अखण्ड एक रस आत्मा है, अखण्ड एक रस गुरु है, अखण्ड एक रस लक्ष्य है, अखण्ड एक रस महर्लोक है ॥६॥ अखण्ड एक रस देह है, अखण्ड एक रस मन है, अखण्ड एक रस चित्त है, अखण्ड एक रस मुख है ॥७॥ अखण्ड एक रस विद्या है, अखण्ड एक रस अव्यय है, अखण्ड एक रस नित्य है, अखण्ड एक रस परम है ॥८॥ अखण्ड एक रस किञ्चित् है, अखण्ड एक रस पर है, अखण्ड एक रस से अन्य षडानन नहीं है, नहीं है ॥९॥ अखण्ड एक रस से नहीं है,

अखण्ड एक रस से निरन्तर नहीं है, अखण्ड एक रस से किञ्चित् है, अखण्ड एक रस से मैं हूँ ॥१०॥ अखण्ड एक रस स्थूल है, अखण्ड एक रस से मैं हूँ ॥१०॥ अखण्ड एक रस सूक्ष्म अखण्ड स्वरूप बाला है, अखण्ड एक रस वैद्य अखण्ड एक रस आप है ॥११॥ अखण्ड एक रस गुह्य है, अखण्ड एक रसार्दिक है, अखण्ड एक रस जानने बाला है, अखण्ड एक रस स्थिति है ॥१२॥ अखण्ड एक रस माता है, अखण्ड एक रस पिता है । अखण्ड एक रस भाई है अखण्ड एक रस पति है ॥१३॥ अखण्ड एक रस सुजाता है, अखण्ड एक रस विराट है, अखण्ड एक रस शरीर है, अखण्ड एक रस शिर है ॥१४॥ अखण्ड एक रस भीतर है, अखण्ड एक रस बाहर है, अखण्ड एक रस पुनः है, अखण्ड एक रस अमृत है ॥१५॥ अखण्ड एक रस गोत्र है, अखण्ड एक रस घर है, अखण्ड एक रस गुप्त रखने योग्य अखण्ड एक रस चन्द्रमा है ॥१६॥ अखण्ड एक रस तारे अखण्ड रससूर्य है । अखण्ड एक रस क्षेत्र है, अखण्ड एक रस पृथ्वी है ॥१७॥ अखण्ड एक रस शान्त है, अखण्ड एक रस निर्गुण है, अखण्ड एक रस साक्षी है, अखण्ड एक सुहृद् है ॥१८॥ अखण्ड एक रस वन्धु है, अखण्ड एक रस सखा है, अखण्ड एक रस राजा है, अखण्ड एक रस नगर है ॥१९॥ अखण्ड एक रस राज्य है, अखण्ड एक रस प्रजा है, अखण्ड एक रस तः ( ऊँची ध्वनि ) है, अखण्ड एक रस जप है ॥२०॥ अखण्ड एक रस ध्यान है, अखण्ड एक रस पद है, अखण्ड एक भद्रण कर योग्य है, अखण्ड एक रस महात्मा है ॥२१॥ अखण्ड एक रस



ज्योति है, अक्षण्ड एक रस वन है, अक्षण्ड एक रस मोहन है, अक्षण्ड एक रस हृदि है ॥२८॥ अक्षण्ड एक रस होम है, अक्षण्ड एक रस जल है, अक्षण्ड एक रस स्वर्ग है, अक्षण्ड एक रस आप है ॥२९॥ मय कुछ अक्षण्ड एक रस और चिन्मात्र है, इस प्रकार मानना करें। अक्षण्ड एक रस ऐसा परम चिन्मात्र ही चिन्मात्र है ॥३०॥ संसार से रहित चिन्मात्र है (और संसारी) मय चिन्मात्र ही है, मय मय चिन्मात्रमय, निरवयव चिन्मय ही है ॥३१॥ आरभ्य साय और चिन्मय अक्षण्ड एक रस जानो सर्वलोक के चिन्मात्र तुम्हारे और मेरे को चिन्मय जानो ॥३२॥ आकाश, सूर्य, जल, वायु, अग्नि, किम्बु, मित्र जो किंचित् और किंचित् नहीं है, मय चिन्मात्र ही है ॥३३॥ सब अक्षण्ड एक रस हैं जो जो है चिन्मात्र ही है। दूर, वर्तमान और सर्वव्य मय चिन्मात्र ही है ॥३४॥ द्रव्य और काय चिन्मात्र है, मान भेद चिन् ही है, जाया चिन्मात्र मय है और मय चिन्मय ही है ॥३५॥ बोलना चिन्मात्र है, जो जो है चिन्मात्र ही है। असत् और सत् चिन्मात्र है, आदि और अंत मय चिन्मय है ॥३६॥ आदि और अंत चिन्मात्र है, गुरु और झिल्य आदि चिन्मय है। यदि द्रष्टु और दृश्य चिन्मात्र है तो मया चिन्मय ही है ॥३७॥ मय आनन्द्य ही चिन्मात्र है, देह भी चिन्मात्र है। लिंग, कारण चिन्मात्र मित्राय मित्रमात्र नहीं रहते ॥३८॥ भू, वा भी चिन्मात्र है, सूर्य, अमूर्तार्थ चिन्मय है। गुण पण चिन्मात्र है, जीव चिन्मात्र स्वल्प है ॥३९॥ चिन्मात्र से मित्राय भेदना नहीं है, चिन्मात्र से मित्राय जानना

नहीं है, चिन्मात्र से मित्राय मन्त्रादि नहीं हैं, चिन्मात्र के मित्राय देवता नहीं है ॥४०॥ चिन्मात्र के मित्राय दिक्पाल नहीं हैं चिन्मात्र से व्यूहहार है, चिन्मात्र से परब्रह्म है, चिन्मात्र के मित्राय कोई भी नहीं है ॥४१॥ चिन्मात्र के मित्राय माया नहीं है, चिन्मात्र के मित्राय पूजन नहीं है। चिन्मात्र के मित्राय मानने योग्य नहीं हैं, चिन्मात्र के मित्राय सत्यता नहीं है ॥४२॥ चिन्मात्र के मित्राय कोशादि नहीं हैं, चिन्मात्र के मित्राय वस्तु नहीं हैं। चिन्मात्र के मित्राय मौन नहीं है, चिन्मात्र के मित्राय अमोक्षता नहीं है ॥४३॥ चिन्मात्र के मित्राय वैराग्य नहीं है, सब चिन्मात्र से ही है। जो और चितना चिन्मात्र है, जो और चितना दीक्षता है ॥४४॥ जो चितना और दूर स्थित सब चिन्मात्र ही है। जो और चितने मत्तादि, जो और चितने नमस्त में आते हैं ॥४५॥ जो और चितने वेदान्त हैं, सब चिन्मात्र ही है। चिन्मात्र के मित्राय गमन नहीं है, चिन्मात्र के मित्राय मोक्ष नहीं है ॥४६॥ चिन्मात्र के मित्राय लक्ष्य नहीं है, सब चिन्मात्र ही है। अखंड एक रस ब्रह्म चिन्मात्र के मित्राय विद्यमान नहीं है ॥४७॥ आस्त्रमे, मुक्त्रमे, तुम्हें और ईश्वर अखंड एक रस आप है। इस प्रकार जो एक रूपता में श्रवणा में ही है, इस प्रकार जानता है ॥४८॥ उसको एक बार ही ऐसा जानने से मुक्ति होती है। यथार्थ ज्ञानने से वह स्वयं गुरु होता है ॥४९॥



## तीसरा अध्याय ।

कुमार ने पिता से पूछा:—आत्मा का अनुभव फिर कहिए ।  
 वे परम शिव बोले:—मैं परब्रह्म स्वरूप हूँ, मैं परमानन्द हूँ, मैं  
 केवल ज्ञान हूँ, मैं केवल परम हूँ ॥१॥ मैं केवल शान्त रूप हूँ । मैं  
 केवल चिन्मय हूँ । मैं केवल नित्य रूप हूँ । मैं केवल सनातन  
 हूँ ॥२॥ मैं केवल सत्त्व रूप हूँ, मुझको छोड़कर मैं ही मैं हूँ । मैं  
 सर्व रहित स्वरूप हूँ, मैं विदाकाशमय हूँ ॥३॥ मैं केवल तुर्य रूप  
 हूँ, केवल तुर्यातीत हूँ, सदा चैतन्य रूप हूँ, मैं सच्चिदानन्दमय हूँ ॥४॥  
 केवल आकार रूप हूँ, मैं सदा शुद्ध रूप हूँ । मैं केवल ज्ञान रूप  
 हूँ । मैं केवल प्रिय हूँ ॥५॥ निर्विकल्प स्वरूप हूँ, चेष्टा रहित हूँ,  
 रोग रहित हूँ । सदा असङ्ग स्वरूप हूँ, मैं अव्ययनिर्विकार हूँ ॥६॥  
 सदा एक रस रूप हूँ सदा चिन्मात्र स्वरूप हूँ, अपरिच्छिन्न रूप  
 हूँ । अखंड आनन्द रूप वाला हूँ ॥७॥ सत्य परमानन्द रूप हूँ,  
 मैं चित्त परानन्द हूँ । मैं वाणी और मन का अविषय भीतर और  
 बाहर का रूप हूँ ॥८॥ मैं आत्मानन्द स्वरूप हूँ, मैं सदा शिव आत्मा  
 आनन्द हूँ । मैं आत्मा रामस्वरूप हूँ, मैं ही सदा शिव आत्मा  
 हूँ ॥९॥ आत्म प्रकाश रूप हूँ, मैं आत्म ज्योति रस हूँ । आदि  
 मध्य और अन्त से रहित हूँ, मैं आकाश के समान हूँ ॥१०॥ मैं  
 नित्य, शुद्ध, चित्त आनन्द, अव्यय, सत्ता मात्र हूँ, मैं नित्य, शुद्ध,  
 विबुद्ध, एक सच्चिदानन्द हूँ ॥११॥ नित्य शेष स्वरूप हूँ, मैं सदा  
 सब से अतीत हूँ । रूप से अतीत स्वरूप, परमाकाश स्वरूप

हूँ ॥१२॥ भूमा आनन्द स्वरूप हूँ, मैं सदा भाषा रहित हूँ ।  
 सबका अविष्टान रूप हूँ, मैं हमेशा चैतन्य धन हूँ ॥१३॥ देह  
 भाव से रहित हूँ, हमेशा चिन्ता से रहित हूँ । मैं चित् शुक्ति  
 रहित हूँ, एक रस विदात्मा हूँ ॥१४॥ मैं सब दृश्य से रहित हूँ,  
 मैं ही दृष्टि रूप हूँ । हमेशा पूर्ण रूप हूँ । मैं सदा नित्य तुम  
 हूँ ॥१५॥ मैं ब्रह्म ही सब होऊँ, मैं चैतन्य ही हूँ । भूमि आकाश  
 स्वरूप मैं ही मैं हूँ ॥१६॥ मैं महान् आत्मा हूँ, मैं ही पर से पर  
 हूँ । मैं ही अन्य के समान भासता हूँ, मैं ही दारी के समान  
 हूँ ॥१७॥ मैं शिष्य के समान भासता हूँ, तीनों लोकों का आश्रय  
 हूँ । मैं तीनों काल से अतीत हूँ, मैं वेदों से उपासना किया जाता  
 हूँ ॥१८॥ मैं शास्त्र से निर्णय किया गया हूँ, मैं चित्त में स्थित हूँ,  
 मेरे सिवाय कुछ नहीं है, मेरे सिवाय पृथिवी नहीं है ॥१९॥ मेरे  
 सिवाय जो जो है, वह नहीं है, निश्चय करो । मैं ब्रह्मा हूँ, सिद्ध हूँ,  
 मैं सदा नित्य शुद्ध हूँ ॥२०॥ मैं निर्गुण केवल आत्मा हूँ, मैं सदा  
 निर्विकार हूँ । केवल ब्रह्म मात्र हूँ, मैं अजर अमर हूँ ॥२१॥ आप  
 ही आप भासता हूँ, आप ही सदा आत्म स्वरूप हूँ । आप ही  
 आत्मा में स्थित, आप ही परम गति हूँ ॥२२॥

आप ही आप भोगता हूँ, आप ही आप रमण करता हूँ । आप  
 ही ज्योति, आप ही आप महान् हूँ ॥२३॥ आप अपने आत्मा  
 को देखने को अपने आत्मा में आप प्रवेश करता हूँ । अपने  
 आत्मा की विशेष मात्रा से अपने आत्मा में ही सुख से वैरा  
 हुआ हूँ ॥२४॥ अपने चैतन्य में आप स्थित होता हूँ, अपने



आत्म राज्य के सुख में स्मरण करता हूँ, अपने आत्मा के सिंहासन पर बैठकर, आत्मा से अन्त्य का चितवन न करे ॥२५॥ चित् रूप मात्र ब्रह्म ही, सच्चिदानन्द रूप अद्वितीय आनन्द धन में हूँ, मैं केवल ब्रह्म हूँ ॥२६॥ मैं हेमेशा सब से शून्य हूँ, मैं सर्वोत्तम आनन्द वाला हूँ, मैं नित्यानन्द स्वरूप हूँ, मैं नित्य आत्माकाश हूँ ॥२७॥ मैं ही चैतन्य आदित्य स्वरूप वाला हृदय आकाश हूँ, आत्मा से आत्मा में तुम हूँ मैं अव्यय, रूप रहित हूँ ॥२८॥ मैं नित्य मुक्त स्वरूप वाला एक की संख्या से रहित हूँ, मैं आकाश से भी सूक्ष्म हूँ, मैं आदि अंत के अभाव वाला हूँ ॥२९॥ मैं सर्व प्रकाश रूप हूँ, मैं वार पार मुख हूँ, मैं सत्ता मात्र स्वरूप हूँ, शुद्ध मोक्ष स्वरूप वाला हूँ, ॥३०॥ मैं सत्य आनन्द स्वरूप हूँ, मैं ज्ञान आनन्द धन हूँ, मैं सच्चिदानन्द लक्षण वाला विज्ञान मात्र रूप हूँ, ॥३१॥ यह सर्व ब्रह्म मात्र है ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है, वह सदानन्द मैं हूँ, मैं ही सनातन ब्रह्म हूँ ॥३२॥ तू और यह वह और यह मेरे सिवाय कुछ नहीं है। मैं चित चैतन्य स्वरूप हूँ मैं ही परम शिव हूँ ॥३३॥ अत्यन्त भाव स्वरूप मैं हूँ, मैं ही मुख स्वरूप हूँ, साक्ष्य वस्तु के अभाव से मुझमें सदा साक्षीपना नहीं है ॥३४॥ केवल ब्रह्म मात्रपने से मैं सनातन आत्मा हूँ, मैं ही आदि शेष हूँ मैं ही मैं शेष हूँ ॥३५॥ मैं नाम रूप रहित हूँ मैं आनन्द स्वरूप हूँ, सर्व भाव स्वरूप वाला इन्द्रियों का अभाव रूप हूँ ॥३६॥ मैं सदा आनन्द स्वरूप वंश और मोक्ष से रहित हूँ, मैं आदि चैतन्य मात्र हूँ, मैं अखंड

एक रस हूँ ॥३७॥ मैं वाणी और मनका अविषय हूँ, मैं सर्वत्र सुख वाला हूँ, मैं सर्वत्र पूर्ण रूप हूँ, मैं भूमा आनन्दमय हूँ ॥३८॥ मैं सर्वत्र तुम रूप हूँ, मैं परम अमृत का रस हूँ, एक अद्वितीय सत् ब्रह्म मैं ही हूँ, इसमें संशय नहीं है ॥३९॥ सब वेदों का विषय, सर्व शून्य स्वरूप हूँ, मैं मुक्त हूँ, मैं मोक्ष रूप हूँ निर्वाण सुखरूप वाला हूँ ॥४०॥ मैं सत्य विज्ञानमात्र हूँ, मैं सन्मात्र आनन्द वाला हूँ, मैं निर्विकल्प स्वरूप वाला तुरीयातीत रूप हूँ ॥४१॥ मैं सर्वदा अज रूप हूँ निरंजन, निरोग हूँ, मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, नित्य हूँ, मैं प्रभो हूँ ॥४२॥ ओकार का अर्थ स्वरूप हूँ, मैं निष्कलंक हूँ, चैतन्याकार स्वरूप हूँ, न मैं हूँ न वह मैं हूँ ॥४३॥ व्यापार रहित स्वरूप वाला मैं किंचित् स्वरूप हूँ, मैं आभास रहित और अंश रहित हूँ, मैं न मन हूँ, न इन्द्रिय हूँ ॥४४॥ मैं न बुद्धि हूँ, न विकल्प हूँ न मैं देहादि तीनों हूँ, मैं जाग्रत स्वप्न रूप नहीं हूँ, न सुषुप्ति स्वरूप वाला हूँ ॥४५॥ न मैं तीन ताप रूप हूँ, न तीन ऐषना वाला हूँ, मुझ चैतन्य आत्मा में श्रवण और मनन सिद्ध नहीं होता ॥४६॥ मुझमें कुछ सजातीय नहीं है, न मुझमें कहीं विजातीय है, न मेरा कोई स्वगत है, न मुझमें कहीं तीनों भेद है ॥४७॥ मन रूप असत्य है, बुद्धि रूप असत्य है। अहंकार की सिद्धि नहीं है इसलिये मैं नित्य शाश्वत और अजन्मा हूँ ॥४८॥ तीनों देहों को असत् जानो, तीनों काल को हेमेशा असत् जानो, तीनों गुणों को असत् जानो, क्योंकि मैं ही एक पवित्र सत्य स्वरूप हूँ ॥४९॥ सब सुने हुए को असत्य जानो, सब वेदों को



सदा असत्य जानो, सब शास्त्रों को असत्य जानो, मैं ही सत्य चैतन्य स्वरूप हूँ ॥१५०॥ तीनों सृष्टियों को असत्य जानो, सब भूतों को सदा असत्य जानो, तत्त्वों को असत्य जानो, मैं भूमा सदा शिव हूँ ॥१५१॥ गुरु शिष्य को असत्य जानो, गुरु के मंत्रको असत्य जानो, जो दृश्य है उसको असत्य जानो, मुझे इस प्रकार का न जानो, ॥१५२॥ जो चित्तवन करने योग्य है उसको असत्य जानो, जो न्याय है उसे सदा असत्य जानो । जो हित है उसको असत्य जानो, मुझे इस प्रकार का मत जानो ॥१५३॥ सब प्राणों को असत्य जाना, सब भोगों को असत्य जानो । देखे हुए और नुने हुए को असत्य जानो ओत प्रोत सब असत्य मय है ॥१५४॥ कार्य श्रकार्य को असत्य जानो, नष्ट हुए और प्राप्त हुए को असत्य जानो । दुःख अदुःख को असत्य जानो, सर्व और असर्व को असत्य जानो ॥१५५॥ पूर्ण अपूर्ण को असत्य जानो, धर्म अधर्म को असत्य जानो, लाभ अलाभ को असत्य जानो, जीत हार को असत्य जानो ॥१५६॥ सब शब्दों को असत्य जानो, सब स्पर्शको सदा असत्य जानो, सब रूपको असत्य जानो सब रसोको असत्य जानो ॥१५७॥ नर्वर्ण्य को असत्य जानो, सर्व अज्ञान को असत्य जानो सदा सब असत्य ही है, संसारको उत्पत्ति असत्य है ॥१५८॥ सब गुण भी असत्य हैं, सत्य मात्र मैं ही हूँ । अपने आत्म मंत्र को सदा देखे, अपने परम मंत्र का सदा अभ्यास करे ॥१५९॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मंत्र दृश्य पापों का नाश करता है । “मैं ब्रह्म हूँ” यह मंत्र अन्य मंत्रों का नाश करता है ॥१६०॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मंत्र देह के दोषों का नाश करता है । “मैं ब्रह्म हूँ” यह मंत्र जन्मों के पाश

को नाश करता है ॥१६१॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मंत्र मृत्यु के पाश को नाश करता है “मैं ब्रह्म हूँ” यह मंत्र द्वैत के दुःख को नाश करता है ॥१६२॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र बुद्धि को नाश करता है । “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र चित्ता के दुःख को नाश करता है ॥१६३॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र बुद्धि को व्यक्तिको नाश करता है । “मैं ब्रह्म हूँ” चित के वंश को नाश करता है ॥१६४॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र सब व्यक्तियों को नाश करता है । “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र सर्वशोक को नाश करता है ॥१६५॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र कामादि को क्षण भर में नाश कर देता है “मैं ब्रह्म हूँ” कोष शक्ति को नाश करता है ॥१६६॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र चित्त वृत्ति का नाश करता है । “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र संकल्प आदि को नाश करता है ॥१६७॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र करोड़ों दोषों को नाश करता है । “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र सब तन्त्रों को नाश करता है ॥१६८॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र आत्मा के अज्ञान को नाश करता है । “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र आत्म लोक की जय की देने वाला है ॥१६९॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र अखंड सुख का देने वाला है । “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र चैतन्यता को देता है ॥१७०॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र अनात्म रूप असुर को मारने वाला है । “मैं ब्रह्म हूँ” यह वज्र अनात्म रूप पर्वतों को हरण करता है ॥१७१॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र अनात्म रूपी असुरों को हरण करता है । “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र उन सबसे छुड़ा देता है ॥१७२॥ “मैं ब्रह्म हूँ” यह मन्त्र ज्ञान आनन्द को देता है । सात करोड़



महामन्त्र है, वे सी करोड़ जन्म के देने वाले हैं ॥७३॥ इसलिङ्ग इन सब मंत्रों को त्यागकर इसी मंत्र का अभ्यास करे । शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है इसमें जरा सा भी सन्देह नहीं है ॥७४॥

चौथा अध्याय ।

कुमार ने परमेश्वर से पूछा:—जीवन्मुक्त और विदेह मुक्त की स्थिति कहिए । वे परम शिव बोले:—में चिदात्मा हूं, परात्मा हूं, मैं निर्गुण पर से पर हूं ऐसा जानकर जो आत्म मात्र रूप में स्थित है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥१॥ मैं तीनों देहों से भिन्न हूं, मैं शुद्ध चैतन्य हूं । मैं ब्रह्म हूं, इस प्रकार का जिसका निश्चय है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥२॥ मैं आनन्द घन रूप हूं, परानन्द घन हूं, जिसकी देहादिक नहीं है, जो ब्रह्म ही है इन प्रकार जिसका निश्चय है, जो परमानन्द से पूर्ण है वह जीवन्मुक्त कहलाता है ॥३॥ जिसको किंचित अहङ्कार नहीं है, जो चिन्मात्र रूप से स्थित है । चिन्मात्र जिसका (अन्तः) निश्चय है, जो एक चिन्मात्र स्वरूप वाला है ॥४॥ जो सर्वत्र पूर्ण रूप आत्मा है, सर्वत्र आत्म स्वरूप वाला, आनन्द रति वाला, अविकारी, परिपूर्ण चित्त स्वरूप वाला ॥५॥ शुद्ध चैतन्य रूप सर्व सद्ग से रहित, नित्य आनन्द स्वरूप, प्रसन्न आत्मा और जो अन्य चिन्ताओं से रहित ॥६॥ जो किंचित् अस्तित्व से भी रहित है, वह जीवन्मुक्त कहलाता है । न मेरा चित्त है, न मेरी बुद्धि और अहङ्कार है, न इन्द्रियाँ हैं ॥७॥

न मेरा कभी देह है न मेरे कहीं प्राणादिक हैं न मेरी माया है न मेरा काम है, न मेरा क्रोध है, मैं पर हूं ॥८॥ न मेरा किंचित् यह है, न मेरा किंचित् कहीं जगत् है, न मेरा दोष है, न मेरा लिङ्ग है, न मेरे नेत्र हैं, न मेरा मन है ॥९॥ न मेरे कान हैं, न मेरी नासिका है, न मेरी जिह्वा है, न मेरे हाथ हैं, न मेरा जाग्रत है न मेरा स्वप्न है, न मेरा जरासा भी कारण है ॥१०॥ न मेरा तुरीय है, ऐसा जो है सो जीवन्मुक्त कहलाता है । यह सब मेरा कुछ नहीं है यह सब मेरा कहीं नहीं है ॥११॥ न मेरा काल है, न मेरा देश है, न मेरी वस्तु है, न मेरी बुद्धि है न मेरा स्नान है न मेरी संख्या है, न मेरा देव है, न मेरा मन्दिर है ॥१२॥ न मेरा तीर्थ है, न मेरी सेवा है, न मेरा ज्ञान है, न मेरा पद है, न मेरा बन्धन है न मेरा जन्म है, न मेरा बचन है, न मेरा सूर्य है ॥१३॥ न मेरा पुण्य है, न मेरा पाप है, न मेरा कार्य है, न मेरा शुभ है, न मेरा जीव है, इस प्रकार मेरे—स्वात्मा में तीनों जगत् किंचित् भी नहीं है ॥१४॥ न मेरा मोक्ष है, न मेरा द्वैत है, न मेरा वेद है, न मेरी विविध है, न मेरा पास है, न मेरा दूर है, न मेरा बोध है, न मेरा एकांत है ॥१५॥ न मेरा गुरु है, न मेरा शिष्य है, न मेरा न्यून है, न मेरा अधिक है, न मेरा ब्रह्मा है, न मेरा विष्णु है, न मेरा रुद्र है, न चन्द्रमा है ॥१६॥ न मेरी पृथ्वी है, न मेरा जल है, न मेरा वायु है, न मेरा आकाश है, न मेरा अग्नि है, न मेरा गोच है, न



मेरा लक्ष्य है, न मेरा संसार है ॥१७॥ न मेरा ध्याता है, न मेरा ध्येय है, न मेरा ध्यान है, न मेरा मंत्र है, न मेरा शीत है, न मेरा उष्ण है, न मेरी प्यास है, न मेरी भूख है ॥१८॥ न मेरा मित्र है, न मेरा शत्रु है, न मेरा मोह है, न मेरा जय है, न मेरा आगे है, न मेरा पीछे है, न मेरा ऊपर है, न मेरी दिशा है ॥१९॥ न मेरा जरा या भी वक्तव्य—कहने योग्य है, न मेरा जरा सा भी अंतव्य सुनने योग्य है। न मेरा थोड़ा या भी मन्तव्य है, न मेरा जरा सा भी व्यातव्य है ॥२०॥ न मेरा जरा सा भी भोक्तव्य है, न मेरा जरा सा भी स्मरण करने योग्य है, न मेरा भोग है न मेरा रोग है, न मेरा योग है, न मेरा लय है ॥२१॥ न मेरी सूर्वाता है, न मेरी गार्ति है, न मेरा वंश है, न मेरा प्रिय है। न मेरा मोद, प्रमोद है, न मेरा मोटा है, न मेरा पतला है ॥२२॥ न मेरा लम्बा है, न मेरा छोटा है, न मेरी वृद्धि है, न मेरा नाश है। न मेरा अध्वारोप अधवा अपवाद है, न मेरा एक है, न मेरे बहुत हैं ॥२३॥ न मेरा अंधपना है, न मेरा मंदपना है, न मेरी जरासी भी चातुर्यता है। न मेरा मांस है, न मेरा रक्त है, न मेरा मेद है, न मेरी चर्बी है ॥२४॥ न मेरी मज्जा है, न मेरी हड्डी है, न मेरी त्वचा है, न मेरे सात प्रकार के धातु हैं। न मेरा सफेद है, न मेरा लाल है, न मेरा नीला है, न मेरा पृथक् है ॥२५॥ न मेरा ताप है, न मेरा लाभ है, मेरा मुख्य गीण कुछ भी नहीं है। न मेरी अंति है, न मेरी स्थिरता है न मेरा गुप्त है न मेरा कुल है ॥२६॥ न मेरा त्याज्य है, न मेरा ग्राह्य है, न मेरा हास्य है, न मेरी नीति है, न मेरा वृत्त है, न मेरी

न्याति है, न मेरा सोच है, न मेरा सुख है ॥२७॥ न मेरा ज्ञाता है, न मेरा ज्ञान है, न मेरा ज्ञेय है, न मेरा स्वयं है, न मेरा तू पना है, न मेरा मैं पना है, न मेरा तू है, न मेरा मैं है ॥२८॥ न मेरा बुढ़ापा है, न मेरा बालकपन है, न जराया भी जीवन है। मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, इस प्रकार निश्चय है ॥२९॥ मैं चेतन्य हूँ, ऐमा वह जीवन्मुक्त कहा जाता है। ब्रह्म ही मैं हूँ, चित्त ही मैं हूँ, मैं पर हूँ, इसमें संशय नहीं है ॥३०॥ आप ही आप हंस हूँ आप ही आप स्थित, आप ही आप को देखे, अपने आत्म राज्य में सुख से निवास करे ॥३१॥ अपने आत्माद्वन्द को आप भीने, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है। आगे आप ही एक बीर, आप ही प्रभु स्मरण किया गया, अपने स्वरूप में आप आनन्द माने वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥३२॥ ब्रह्म स्वरूप शान्त आत्मा, ब्रह्मानन्द युक्त, सुखी। स्वच्छ रूप महा मौनी, वह विदेह मुक्त है ॥३३॥ सर्वात्मा, समान रूप आत्मा, शुद्ध आत्मा, और मैं के उत्थान रूप एक से रहित एक आत्मा, सब की आत्मा, अपना आत्म मात्र स्वरूप ॥३४॥ आज आत्मा और अमृत आत्मा नव मैं हूँ, स्वयं निर्विकार आत्मा मैं हूँ। लक्ष आत्मा, सुन्दर आत्मा मैं हूँ, चुपचाप आत्म स्वभाव वाला मैं हूँ ॥३५॥ आनन्द आत्मा, प्रिय आत्मा, मोक्ष आत्मा, वंश से रहित, ब्रह्म ही मैं हूँ, अथवा चित् ही मैं हूँ, इस प्रकार भी वह चितवन नहीं करता ॥३६॥

जो चिन्मात्र से ही स्थित हो, वह ही विदेह मुक्त है ॥३७॥ निश्चय मैं ब्रह्म हूँ, इस निश्चय को भी त्याग कर आनन्द से



परिपूर्ण आंतर वाला हो वह ही विदेह मुक्त है ॥३८॥ सर्व है तथा नहीं है इन प्रकार के निरूप्य को त्याग कर टिकता है । मैं ब्रह्म हूँ और नहीं हूँ इस प्रकार सच्चिदानन्द मात्र स्वरूप मैं हूँ, ॥३९॥ वह किञ्चित्, कहीं कभी आत्मा का स्पर्श नहीं करता चुप ही स्थित है चुपचाप, और कुछ सत्य नहीं है ॥४०॥ वह परमात्मा, गुणों में अतीत, सर्वारमा, भूत भावन है । काल भेद, वस्तु भेद, देशभेद, स्वभेद ॥४१॥ ऐसा उसको किञ्चित् भी भेद नहीं है । अथवा मैं, तू, वह, वह किञ्चित् भी विद्यमान नहीं है । यह काल का आत्मा, काल से रहित है ॥४२॥ यह शून्य आत्मा, सूक्ष्म रूप आत्मा, विश्व आत्मा, विश्व से रहित है । देव आत्मा, देव रहित आत्मा मेघ आत्मा, मेघ रहित है ॥४३॥ वह सर्वत्र जड़ रहित आत्मा, सब का आंतरात्मा सब संकल्पों से रहित आत्मा, ऐसा मैं हमेशा चिन्मात्र हूँ, ॥४४॥ मैं केवल परमात्मा हूँ, केवल ज्ञान स्वरूप हूँ । सनामात्र स्वरूप आत्म हूँ, जगत् का अन्य किञ्चित् भी भय नहीं है ॥४५॥ जीव ईश्वर की वाणी कहां, इसी प्रकार वेद शास्त्रादि कहां और मैं कहां ? यह चैतन्य ही है, मैं भी चैतन्य ही हूँ ॥४६॥ जो इस प्रकार के निरूप्य से भी जो शून्य है, वह ही विदेह मुक्त है । चैतन्य मात्र सच्चिद, अपने आत्मा में प्रसन्न सुख से बैठा हुआ ॥४७॥ जो अपरिच्छिन्न अणु स्थूल आदि से रहित तुर्य का तुर्य परानन्द है, वह ही विदेह मुक्त है ॥४८॥ वह नाम रूप रहित सच्चिदानन्द पर, मुखस्वरूप, तुरीयसे अतीत रूप शुभ अशुभ से रहित है ॥४९॥ वह योग रूप और योग युक्त आत्मा

बंध मोक्ष से रहित है गुण अगुण से रहित देश काल आदि से रहित है ॥५०॥ साक्षी, साक्षी से रहित ( यदि ऐसा ) वह कुछ है ( ऐसा कहो तो वह ठीक नहीं है ) वह कुछ भी नहीं है । जिस को न प्रपंच का भान है, न ब्रह्माकार का भान है ॥५१॥ वह अपने स्वरूप में आप प्रकाशता है, अपने स्वरूप में आप प्रेम रखता है । उसका आनंद वाणी का अविषय है और वह आप वाणी और मनका अविषय है ॥५२॥ इस प्रकार जो पर से भी पर भाव वाला है, वह ही विदेह मुक्त है । चित् वृत्ति से अतीत जो चित् वृत्ति का प्रकाशक है ॥५३॥ और सर्व वृत्ति से रहित है, वह ही विदेह मुक्त है । उस काल में 'मैं विदेही हूँ' इस प्रकार देह स्मरण से वह रहित है ॥५४॥ यदि कुछ भी स्मरण हो तो सब वह से युक्त है यानी विदेह नहीं है । उसका बाहरी स्वरूप दूसरों से अदृष्ट है और वह परमानन्द चैतन्यधन है ॥५५॥ औरों को न दीखता हुआ उसका बाह्य आत्मा सब वेदान्तों का विषय है । वह ब्रह्म रूप अमृत का रसास्वाद है, ब्रह्म स्पी अमृत रसायन है ॥५६॥ ब्रह्म स्पी अमृत रस युक्त है, ब्रह्म रूप अमृत का रस आप है, ब्रह्म स्पी अमृत के रस में मग्न होकर ब्रह्मानन्द से शिवका पूजन करता है ॥५७॥ ब्रह्म रूप अमृत के रस से पुत्र हुआ वह ब्रह्मानन्द का अनुभव करते वाला है । वह ब्रह्मानन्द और ब्रह्मानन्द रूप है और ब्रह्मानन्द रस का प्रकाश करने वाला है ॥५८॥ ब्रह्मानन्द परम ज्योति है, ब्रह्मानन्द अखंड है । ब्रह्मानन्द के रस से ब्रह्मानन्द का कुटुम्ब रूप नाद है ॥५९॥ वह



ब्रह्मानन्द रस मुक्त है, ब्रह्मानन्द एक चित् घन है और ब्रह्मानन्द रस का प्रवाह है, ब्रह्मानन्द रस से पूर्ण है ॥६०॥ वह ब्रह्मानन्द रूपी मित्रों से मुक्त है, ब्रह्मानन्द आत्मा में स्थित है, उसके लिये यह सब आत्म रूप है, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं है ॥६१॥ मय आत्मा है, मैं आत्मा हूँ, परम आत्मा हूँ, पर आत्मा हूँ, शिवानन्द स्वरूप आत्मा हूँ ऐसा अनुभव करे वह ही विदेह मुक्त है, ॥६२॥ जो पूर्ण रूप महान् आत्मा है जिनको आत्मा ही प्रिय है, जो शश्वत सवका अन्तर्यामी रूप है निर्मल और निरात्मा स्वरूप है ॥६३॥ जो निर्विकार स्वरूप, शुद्ध, शांत रूप वाला तथा शांत और अशांत दोनों स्वरूप हैं, जिसको आत्मा के नानापना का भाव नहीं है ॥६४॥

जो जीवात्मा और परमात्मा इस प्रकार के सब चित्तवन्तसे रहित मुक्त अमुक्त स्वरूप और मुक्त अमुक्त भाव से रहित है ॥६५॥ वंश मोक्ष स्वरूप और वंश मोक्ष ने रहित, द्वैत अद्वैत स्वरूप और द्वैत अद्वैत से रहित ॥६६॥ सर्व असर्व स्वरूप और सर्व असर्व से रहित, मोद प्रमोद रूप और मोद आदि से रहित है ॥६७॥ तथा सब संकल्पों से रहित, वह ही विदेह मुक्त है । जो पाप रहित, निर्मल, प्रबुद्ध, पुरुष स्वरूप ॥६८॥ आनन्द आदि से रहित, अमृतमय और अमृत स्वरूप, तीन काल स्वरूप और तीनों काल से रहित है ॥६९॥ जो संपूर्ण, प्रमाण न करने योग्य, जो प्रमाण रूप और प्रमाण से रहित जो नित्य प्रत्यक्ष रूप, नित्य प्रत्यक्ष रूप नित्य प्रत्यक्षनिर्यय किया गया हुआ ॥७०॥

अन्य से रहित स्वभाव वाला, अन्य से रहित स्वयं प्रकाश, जो विद्या और अविद्या में अनुमान करने योग्य परन्तु विद्या अविद्या से रहित है ॥७१॥ जो नित्य अनित्य से रहित, यहाँ और वहाँ से रहित, घम आदि छःओं से रहित, मुमुक्षुता आदि से रहित ॥७२॥ मयूह देह से रहित, सूक्ष्म देह से रहित, कारण आदि में रहित, तुरीय आदि से रहित ॥७३॥ अन्नकोश से रहित, प्राणकोश से रहित, मनोमयकोश से रहित, विज्ञान आदि कोशों से रहित ॥७४॥ आनन्दकोश से रहित तथा पंच कोशों से रहित है । जो निर्विकल्प स्वरूप, विकल्प से रहित ॥७५॥ दृश्य के सम्बन्ध से रहित और शब्द के सम्बन्ध से रहित है, जो सदा समाधि से शून्य, आदि, मध्य और अन्त से रहित ॥७६॥ प्रज्ञान वाक्य में रहित, 'अहं ब्रह्मास्मि' से रहित । 'तत्त्वमसि' आदि से रहित, 'अयमात्मा ब्रह्म' से रहित ॥७७॥ ओंकार वाक्य से रहित, सर्व वाक्य से रहित, तीनों अवस्थाओं से रहित, नाश रहित, चेतन स्वरूप ॥७८॥ आत्मा अब जिसको ज्ञेय नहीं है, जो कुछ है यह है, इस स्वरूप वाला तथा जो भान और अभान से रहित है, वह ही विदेह मुक्त है ॥७९॥ आत्मा को ही देख, अपने आत्मा ही को जान, हे षडानन ! अपने आत्मा को ही आप भोग और स्वस्थ हो ॥८०॥ अपने आत्मा में ही आप तुम होकर अपने आत्मा में आप विचर । आत्मा में ही मोद आनन्द कर और विदेह मुक्त हो, यह उपनिषत् है ॥



पांचवां अध्याय ।

निदाघ नाम मुनि ने ऋषु से पूछा—हे भगवन् ! आत्म अनारम का विवेक कहिए । वे ऋषु बोले—ब्रह्म सब वाणिष्यों की अवधि है, गुरु सब चिंताओं की अवधि है । आत्मा सबका कारण और कार्य है परन्तु स्वयं कार्य कारण से रहित है ॥१॥ वह सब संकल्प से रहित, सर्व नादमय शिव है । सबसे रहित चिन्मात्र है, सर्व आनन्दमय है पर है ॥२॥ सर्व तेज रूप प्रकाश रूप है, नाद आनन्दमय आत्मा है । सब अनुभवों से मुक्त, सर्व ध्यान से रहित है ॥३॥ सब नाद कलाओं से अतीत अव्यय और आत्म अनारम विवेक आदि भेद अभेद से रहित ऐसा यह आत्मा मैं हूँ ॥४॥ आशांत अशांत से रहित जो नाद का आंतर्ज्योति रूप है, जो महा वाक्य के अर्थ से दूर है, 'ब्रह्मास्मि' से अति दूर है ॥५॥ तत् शब्द से रहित, त्वं शब्द से रहित तथा वाक्य के अर्थ से रहित है, जो क्षर अक्षर से रहित है, वह ही नाद का आन्तर्ज्योति है ॥६॥ अखंड एक रस अथवा 'मैं आनन्द हूँ' इससे रहित, सबसे अतीत स्वभाव वाला, वही नाद का आन्तर्ज्योति है ॥७॥ आरम शब्द से रहित तथा जो आत्म के शब्दार्थ से रहित है तथा जो सच्चिदानन्द से रहित है ऐसा ही यह सनातन आत्मा है ॥८॥ इसका कथन करना अशक्य है, जो वेदवाक्यों से अगम्य है, जिससे बाहर कुछ नहीं है, भीतर कुछ नहीं है और न कुछ है ॥९॥ जिसका कार्य और कारण ब्रह्म ही है ऐसा आत्मा

ही है, इसमें संशय नहीं है; जिसका शरीर नहीं अथवा जीव नहीं है तथा भूत भौतिक नहीं है ॥१०॥ जिसका नाम रूप, भोज्य, भोग अथवा भोक्ता नहीं है, जो सत्, असत् नहीं है अथवा जिसकी स्थिति भी नहीं है, जो क्षर अक्षर नहीं है ॥११॥ गुणी अथवा गुण रहित भी नहीं है, वह सम आत्मा ही है, इसमें नशय नहीं है । जिसका वाक्य, वाचक अथवा श्रवण मनन नहीं है ॥१२॥ अथवा जिसमें गुरु शिष्यादि भेद, देव, लोक, गुरु, अगुरु, अथवा धर्म अधर्म अथवा शुद्ध अशुद्ध जरा भी नहीं है ॥१३॥ जिसमें काल अकाल, निरव्यय या संशय नहीं है, जिनमें मन्त्र अमन्त्र अथवा विद्या अविद्या नहीं है ॥१४॥ जिसमें द्रष्टा, दर्शन, दृश्य जरा सां नाम मात्र भी हो तो अनारमत्व का प्रसङ्ग आता है अथवा अनारम मन ॥१५॥ अथवा अनारम जगत् भी जहाँ नहीं है, कभी भी नहीं है, इस प्रकार निरव्यय कर वह सर्व संकल्प शून्य होने से, सर्व कार्य रहित होने से ॥१६॥ केवल ब्रह्म मात्र होने से, अनारम नहीं है, ऐसा निरव्यय कर । तीनों देह रहित होने से, तीनों काल रहित होने से ॥१७॥ जीव के तीनों गुणों के अभाव से, तीनों ताप से रहित होने से, तीनों लोक रहित होने से सब आत्मा है, इस प्रकार के उपदेश से ( यह अनारम नहीं है, ऐसा निरव्यय कर ) ॥१८॥ उसके चित्त के अभाव से चित्तवन करने योग्य और देह के अभाव से बुढ़ापा नहीं है, पैरों के अभाव से उसकी गति नहीं है, हाथ के अभाव से क्रिया नहीं है ॥१९॥ जीव के



पाँचवाँ अध्याय ।

निद्राय नाम धुनि ने श्चन्द्र से गुछा—हे भगवन् ! आत्म धनात्म का विवेक कहिए । वे श्चन्द्र बोले—ब्रह्म सब वर्णिग्यों की श्रवधि है, गुरु सब चित्तायो की श्रवधि है । आत्मा सबका कारण और कार्य है परन्तु सब कार्य कारण से रहित है ॥१॥ यह सब संकल्प से रहित, सर्व नादमय विग्रह है । सर्वसे रहित चित्मात्र है, सर्व आनन्दमय है पर है ॥२॥ सर्व तेज सब प्रकाश सब है, नाद आनन्दमय आत्मा है । सब प्रानुभवों से मुक्त, सर्व स्थान से रहित है ॥३॥ सब नाद कलाओं से शरीर प्रत्यय और आत्म धनात्म विवेक आदि नेद प्रनेद से रहित ऐसा यह आत्मा है ॥४॥ आनन्द प्रजापति से रहित जो नाद का आनन्दपूर्ण रूप है, जो ब्रह्मा वाक्य के सर्व से दूर है, 'अद्वैतिय' से श्रुति दूर है ॥५॥ सब सब से रहित, सर्व सब से रहित तथा वाक्य के सर्व से रहित है, जो सब प्रकाश से रहित है, वह ही नाद का आनन्दपूर्ण है ॥६॥ सर्वद एक गग श्रवणा 'स आनन्द है' इससे रहित, सर्वसे शरीर मन्वाद्य वाक्या, ब्रह्मा नाद का आनन्दपूर्ण है ॥७॥ आत्म सब से रहित तथा जो आत्म के सन्दर्भ से रहित है तथा जो सर्वदानन्द से रहित है ऐसा ही यह सनात्म आत्मा है ॥८॥ इसका कथन करना श्रवण है, जो वेदवाक्यों से श्रवण है, जिससे वाक्य कुछ नहीं है, जोन कुछ नहीं है और न कुछ है ॥९॥ जिसका कार्य और कारण ब्रह्मा ही है ऐसा आत्मा

ही है, इससे संशय नहीं है; जिसका शरीर नहीं श्रवणा भीर नहीं है तथा द्रव भीतिक नहीं है ॥१०॥ जिसका नाम सब, नहीं है तथा द्रव भीका नहीं है, जो सब, प्रमत्त नहीं है श्रवणा जिसकी स्थिति भी नहीं है, जो सब प्रमत्त नहीं है ॥११॥ गुणी श्रवणा गुण रहित भी नहीं है, वह सब आत्मा ही है, इससे संशय नहीं है । जिसका वाक्य, वाक्य श्रवणा श्रवण मनन नहीं है ॥१२॥ श्रवणा जिससे गुरु श्रित्यादि नेद, वेद, लोक, गुरु, प्रमत्त, श्रवणा धर्म श्रवण श्रवणा श्रुत श्रुत अत्र भी नहीं है ॥१३॥ जिससे काल प्रकाश, निद्रव्य या संशय नहीं है, जिससे मन्त्र श्रमन्त्र श्रवणा जिहा श्रवणा नहीं है ॥१४॥ जिससे द्रष्टा, दर्शन, द्रष्टा अत्र या नाम माय भी ही तो प्रनात्मसद का द्रव्य आत्मा है श्रवणा प्रनात्म मत ॥१५॥ श्रवणा प्रनात्म अमत्त भी ब्रह्मा नहीं है, कभी भी नहीं है, इस प्रकार निद्रव्य कर वह सर्व संकल्प शून्य होने से, सर्व कार्य रहित होने से ॥१६॥ केवल ब्रह्मा माय होने से, प्रनात्मा नहीं है, ऐसा निद्रव्य कर । दोनों देह रहित होने से, दोनों काल रहित होने से ॥१७॥ श्रवण के दोनों गुणों के प्रभाव से, दोनों जग से रहित होने से, दोनों लोक रहित होने से सब आत्मा है, इस प्रकार के ज्ञान से ( यह प्रनात्म नहीं है, ऐसा निद्रव्य कर ) ॥१८॥ इसके चित्त के प्रभाव से चित्तवन करने योग्य और देह के प्रभाव से ब्रह्मा नहीं है, दोनों के प्रभाव से उद्यकी श्रुति नहीं है, श्रवण के प्रभाव से प्रिया नहीं है ॥१९॥ श्रवण के



अभाव से मृत्यु नहीं है, बुद्धि के अभाव से सुखादिक नहीं है, धर्म नहीं है, पवित्र नहीं है, सत्य नहीं है और भय नहीं है ॥२०॥ उसके लिये अक्षरों का उच्चारण नहीं है, गुरु शिष्यादि भी नहीं है; एक के अभाव में दूसरा नहीं है और दूसरे के अभाव में एकता नहीं है ॥२१॥ सत्यता है तो किञ्चित् असत्य नभय नहीं है और यदि सत्यता होवे तो सत्यता न घटेगी ॥२२॥ यदि शुभ है तो अशुभ जान क्योंकि अशुभ से शुभ कहा जाता है, यदि भय है तो अभय जान, अभय से भय प्राप्त होवे ॥२३॥ बंध है तो मोक्ष है, बंध के अभाव में मोक्षता कहाँ? यदि मरण हो तो जन्म हो, जन्म के अभाव में मरण नहीं है ॥२४॥ यदि तू हो तो मैं हो, तू नहीं तो मैं भी नहीं। यह है तो वह है, वह के अभाव में यह नहीं है ॥२५॥ है है तो नहीं है, नहीं है तो है किञ्चित् नहीं है कार्य है तो कुछ कारण भी है, कार्य के अभाव में कारण नहीं है ॥२६॥ द्वैत है तो अद्वैत है द्वैत के अभाव में दोनों नहीं हैं। यदि दृश्य है तो द्रष्टा भी है, दृश्य के अभाव में द्रष्टा भी नहीं है ॥२७॥ यदि भीतर है तो बाहर है, भीतर के अभाव में बाहर नहीं है। पूर्णता है तो कुछ अपूर्णता उत्पन्न करती है ॥२८॥ इसलिये यह तू, यह मैं, ये ऐसा कहीं नहीं है। सत्य में दृष्टांत नहीं है अन्न में द्रष्टांत नहीं है ॥२९॥ परब्रह्म मैं हूँ, इस प्रकार स्मरण करने वाला मन नहीं है, यह जगत् ब्रह्म मात्र है, मैं और तू भी ब्रह्म मात्र है ॥३०॥ मैं केवल चिन्मात्र हूँ, अनात्मा नहीं हूँ, इस प्रकार निश्चय कर। यह प्रपञ्च

है हो नहीं न कहीं उत्पन्न हुआ है, न कहीं स्थित है ॥३१॥ चित्त को प्रपञ्च कहते हैं वह सर्वदा नहीं है; न प्रपञ्च है, न चित्तादि न अद्वैतकार, न जीव ॥३२॥ माया के कार्य आदिक नहीं है, माया नहीं है और भय नहीं है। कर्ता नहीं है, क्रिया नहीं है, श्रवण मनन नहीं है, ॥३३॥ दो प्रकार की समाधि नहीं है, प्रज्ञाप प्रमाण आदि नहीं हैं अज्ञान भी नहीं है अवि-वेक भी कभी नहीं है ॥३४॥ तथा चार अनुबन्ध और तीन संवन्ध भी नहीं है। न गंगा न गया सेतु है न भूत है न अन्य ही है ॥३५॥ न कहीं भूमि है न जल है न अग्नि है न वायु है न आकाश है न देवता न दिक्पाल न वेद न गुरु है ॥३६॥ न कहीं दूर न पास न कहीं अन्त है न मध्य है न कहीं स्थिति है न द्वैत है न अद्वैत है न सत्य है न असत्य है न यह है ॥३७॥ बंध मोक्षादिक नहीं है सत् या असत् या सुखादि या जाति नहीं है गति नहीं है वर्ण नहीं है न लौकिक है ॥३८॥ नव हो ब्रह्म है ब्रह्म नहीं है इस प्रकार भी नहीं है। चित्त ही है और नहीं भी है मैं चित् हूँ इस प्रकार कहना नहीं है ॥३९॥ मैं ब्रह्म हूँ ऐसा नहीं है या मैं नित्य शुद्ध हूँ यह नहीं है वाणी से कहा हुआ या मन से माना हुआ कुछ भी नहीं है ॥४०॥ बुद्धि से निश्चय किया हुआ वह नहीं है चित्त से जाना हुआ नहीं है योगी का योगादि नहीं है सदा सब सदा सब नहीं है ॥४१॥ वह दिन रात्रि आदिक नहीं है स्नान ध्यान आदिक नहीं है श्रौति नहीं है अनात्मा नहीं है ऐसा निश्चय कर ॥४२॥ वेद



शास्त्र पुराण कार्य कारण ईश्वर लोक भूत प्रजा एकाता सब मिथ्या हैं इसमें संशय नहीं है ॥४३॥

बंध मोक्ष सुख दुःख ध्यान चित्त सुर असुर गीण मुख्य पर और अन्य सब मिथ्या है इसमें संशय नहीं है ॥४४॥ वाणी जो कुछ कहती है संकल्पों से कुछ कल्पा जाता है मन से जो चित्त-वन किया जाता है सब मिथ्या है इसमें संशय नहीं है ॥४५॥ जो कुछ बुद्धि से निश्चय किया जाता है चित्त से जो कुछ निश्चय किया जाता है शास्त्र से जो रचा जाता है नेत्रों से जो जो देखा जाता है ॥४६॥ कानों से जो सुना जाता है जो अन्य सद्भाव है तथा नेत्र कान और शरीर यह सब मिथ्या है यह अच्छी प्रकार से निश्चय किया गया है ॥४७॥ यह इस प्रकार ही कहा गया है। यह इस प्रकार ही कल्पा गया है। तू मैं वह यह वह मैं और अन्य सद्भाव ॥४८॥ जो कुछ लोक में प्रतीत होता है सब संकल्प और भ्रम है। सब अभ्यास है सब गोप्य है सब भोगों का भेद है ॥४९॥ सब दोषों के भेद से है, आनात्मा नहीं है, ऐसा निश्चय कर। मुझ और तुझ मेरा और तेरा ॥५०॥ मेरे लिये तेरे लिये मुझसे इत्यादि यह सब मिथ्या हो। रक्षक विष्णु है इत्यादि, ब्रह्मा सृष्टि का कारण ॥५१॥ और संहार रुद्र करता है यह सब मिथ्या है ऐसा निश्चय कर। स्नान, जप, तप होम, स्वाध्याय, देव पूजन ॥५२॥ मंत्र, तंत्र, सतसङ्ग, गुण दोष व्रताना, श्रुतिःकरण का सद्भाव, अविद्या का संभव ॥५३॥ तथा

अनेक करोड़ ब्रह्मांड सब मिथ्या हैं, ऐसा निश्चय कर। सब उपदेशकों की वाणी का कथन, जिस किसी का निश्चय किया हुआ ॥५४॥ जो कुछ जगत में दीखता है, जो कुछ जगत् में देखा जाता है; जो जो जगत् में वर्तता है; सब मिथ्या है ऐसा निश्चय कर ॥५५॥ जिस किसी अक्षर कर के कहा हुआ जिस किसी से निश्चय किया हुआ जिस किसी से कहा हुआ जिस किसी से विचारा हुआ ॥५६॥ जिस किसी से जो दिया गया जिस किसी से जो किया गया; जहाँ जहाँ धुम कर्म है जहाँ जहाँ अयुध कर्म है ॥५७॥ जो जो तू करता है मच मुच मव मिथ्या है ऐसा निश्चय कर। तू ही परमात्मा है। तू ही परम गुरु है ॥५८॥ तू ही आकाश रूप है, तू हमेशा साक्षी रहित है, तू ही सर्व भाव है तू ब्रह्म है, इसमें संशय नहीं है ॥५९॥ तू काल रहित है, सदा चैतन्य परब्रह्म है। सर्व प्रकार से तू अपनता ही स्वरूप है, तू चैतन्य धन स्वरूप है ॥६०॥ तू सत्य है, तू सिद्ध है, तू सनातन है, तू मुक्त है, तू मोक्ष है, तू आनंद अप्रमत्त है। तू देव है, तू शांत है, तू निरामय है, तू ब्रह्म है, तू पूर्ण है, तू पर से पर है ॥६१॥ तू सम है, सत्य है, सनातन है, सत्य आदि वाक्य से तू जाना जाता है। तू सब भ्रमों से रहित है। तू सदा स्थित है, तू ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र आदि विशेष भाव वाला है ॥६२॥ तू सर्वप्रपंच भ्रम से रहित है, तू सब भूतों में प्रकाशमान है। तू सर्वज्ञ संकल्प से रहित है। तू सर्व वेदान्तों के अर्थ से प्रकाशित है ॥६३॥ सर्वज्ञ सतोष, बाला



तु मुख से वंश हुआ है। सर्वत्र गति आदि से तु रहित है। सर्वत्र लक्ष्यादिसे तुरहित है, सर्वदा विष्णुआदि देवताओं से ध्यान किया जाता है ॥६४॥ तु चैतन्य आकार स्वरूप है तु शंकुश रहित चिन्मात्र है। तु आत्मा मेंही स्थित है तु निर्गुण सबसे शून्य ॥६५॥ तु शानन्द है, तु पर है, तु एक ही श्रद्धितीय स्वरूप है। तु चैतन्य धन शानन्द रूप है, परिपूर्ण स्वरूप वाला है ॥६६॥ तु मलय है, तु तु है, तु ज्ञाता है तु वह है, तु जानता है, तु देखता है। तु सच्चिदानन्द रूप है, तु निश्चय प्रभु वासुदेव है ॥६७॥ तु अमृत है, तु त्रिभु है, तु चंचल और अचल है। तु सर्व है तु सर्व रहित है, शान्त श्रमान्त से रहित है ॥६८॥ तु सत्तामात्र प्रकाश है, तु ही सामान्य भक्ता है। तु नित्य सिद्ध स्वरूप है, सब सिद्धियों से रहित है ॥६९॥ तु किञ्चित्मात्र विशेष शून्य है, अणु मात्र से रहित है। तु होनेपने से रहित है, नहीं होनेपने आदि से रहित है ॥७०॥ तु लक्ष्य और लक्षणा से रहित है, निर्विकार निरामय है। तु सब नादों के भीतर है, ब्रह्मा काग्रा से रहित है ॥७१॥ तु ब्रह्मा, विष्णु और ईश्वर से रहित है, तु अपने स्वरूप को देखता है, तु अपने स्वरूप का बोध है, तु अपने शानन्द समुद्र में मग्न है ॥७२॥ अपने आर्य राज्य में तु आप ही है, स्वयं भाव से रहित है। तु श्रेष्ठ पूर्ण स्वरूप है, तु अपने से कुछ भी नहीं देखता ॥७३॥ तु अपने स्वरूप से नहीं चलाता, तु अपने स्वरूप से फलता है। तु अपने स्वरूप से अन्न नहीं है, निश्चय कर कि मैं ही तु हूँ ॥७४॥ जो कुछ यह प्रत्यक्ष है, जो आ जगत् में विद्यमान है,

दृश्य रूप और दृष्टि रूप है सब प्राण के सींग के समान है ॥७५॥ शूनि जल अग्नि वायु आकाश मन और बुद्धि अहङ्कार, तेज लोक भुवन मण्डल ॥७६॥ नाश जन्म सरय पुण्य पाप जय आदि का राग काम क्रोध लोभ ध्यान श्रेष्ठ ध्येय तथा गुण ॥७७॥ गुरु शिष्य उपदेश आदि अन्त सम शुभ भूत भविष्य वर्तमान लक्ष्य लक्षण अद्वय ॥७८॥ सम विचार संतोष भोक्ता भोग आदि रूप यमादि श्रष्टांग योग जाना और श्रान्ता ॥७९॥ आदि मध्य और अन्तरंग ग्रहण के योग्य छोड़ने योग्य हरि शिव इन्द्रियाँ और मन तथा तीनों श्रवस्त्रायें ॥८०॥ चौबीस तस्व और चार साधन सजातीय विजातीय क्रम से भू आदि लोक ॥८१॥ सब वर्णाश्रम का आचार मन्त्र तन्त्रादिकों का संग्रह विद्या श्रविद्या सर्व वेद जड़ श्रजड़ ॥८२॥ वंश मोक्ष का विभाग ज्ञान विज्ञान का रूपक अथवा बोध श्रबोध का स्वरूप द्वैत श्रद्वैत का कथन ॥८३॥ सब वेदान्त का सिद्धान्त सब शास्त्रार्थ का निर्णय अनेक जीवों का मृत्यु भाव अनेक जीव आदि का निर्णय ॥८४॥ जो जो चित्त से ध्यान किया जाता है जो जो संकल्प किया जाता है जो बुद्धि से निश्चय किया जाता है जो जो गुरु से सुना जाता है ॥८५॥ जो जो वाणी कहती है जो जो आचार्य का कथन है। जो जो इन्द्रियों से प्रतीत होता है जो जो पृथक् विचारा जाता है ॥८६॥ जो कुछ महान् वेद के पारदशियों से न्याय द्वारा निश्चय किया गया है शिव लोकों का संहार करता है विष्णु तीनों जगत् को पालता है ॥८७॥ ब्रह्मा लोकों को उत्पन्न करता



है इस प्रकार आदि की क्रिया आदिक जो जो पुराणों में है जो जो वेदों में निरुपेय है॥ ८८॥ सब उपनिषदों का भाव मन्त्र मन्त्र के योगों के समान है, मैं देह है इस प्रकार का संकल्प अन्तःकरण का माना हुआ ॥ ८९॥ मैं देह हूँ इस प्रकार का संकल्प महान् संसार कहलाता है। मैं देह हूँ यह संकल्प ही बंध कहलाता है ॥ ९०॥ मैं देह है इस प्रकार का संकल्प दुःख कहलाता है। मैं देह है इस प्रकार का जो मान है उसको नरक समझे ॥ ९१॥ मैं देह है इस प्रकार का संकल्प सब जगत् कहलाता है। मैं देह है इस प्रकार का संकल्प हृदय की ग्रन्थि कहलाता है ॥ ९२॥ मैं देह है इस प्रकार का ज्ञान अज्ञान कहलाता है। मैं देह है इस प्रकार का ज्ञान ही असत्य भावना है ॥ ९३॥ मैं देह है इस प्रकार की बुद्धि श्रविद्या कहलाती है। मैं देह है इस प्रकार का ज्ञान ही दैत कहलाता है ॥ ९४॥ मैं देह है इस प्रकार का संकल्प ही सच्चा जीव है। मैं देह है इस प्रकार का ज्ञान ही परिच्छिन्न कहा गया है ॥ ९५॥ मैं देह है इस प्रकार का संकल्प प्रत्यक्ष महा पाप है मैं देह है इस प्रकार की बुद्धि ही प्रसिद्ध नृपणा दांपत्य रूप रोग है ॥ ९६॥ जो कुछ भी संकल्प है वह तीनों ताप कहा गया है। काम क्रोध वंश है सर्व दुःख है सब दांपत्य रूप है काल करके नाना स्वरूप कारण करने हैं यह जो कुछ है सब संकल्प का जात है। हे सोम्य ! ऐसे इस क्रियतको मन का विचार जान ॥ ९७॥ मन ही सब जगत् है मन ही महा मन्त्र है। मन ही संसार है मन ही तीनों जगत् है ॥ ९८॥ मन ही महा दुःख है मन ही जरा आदिक है। मन ही काल

है और मन ही मल है ॥ ९९॥ मन ही संकल्प है मन ही जीव है। मन ही चित्त है मन ही अहङ्कार है ॥ १००॥ मन ही महा बंध है मन ही अन्तःकरण है। मन ही पृथ्वी है मन ही जल है ॥ १०१॥ मन ही तेज है मन ही महान् वायु है। मन ही आकाश है। मन ही व्यर्थ रूप है ॥ १०२॥ स्वर्ग रूप मन गन्ध पार्श्वों को या मन से द्रुप है। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आदि मनोमय कहे जाते हैं ॥ १०३॥ दिक्पाल वसु रथ आदित्य मनोमय हैं। इत्यज द्रव्य जन्म अज्ञान मन के समझे गये मनोमय हैं। इत्यज द्रव्य जन्म अज्ञान मन के समझे गये हैं ॥ १०४॥ जो कुछ संकल्प है वह नहीं ही है, ऐसा निश्चय कर। सब जगत् नहीं है, नहीं है गुरु शिष्य आदिक भी नहीं है यह उपनिषत् है ॥ १०५॥

यथा अभ्यास ।

ऋषु ने कहा:—सब सत् चित्तमय ज्ञान सर्व सत् चित्तमय व्यापक है। सच्चिदानन्द अद्वैत है, सच्चिदानन्द अद्वय है ॥ ११॥ सच्चिदानन्द अमात्र है सच्चिदानन्द अन्य रूप है सच्चिदानन्द रूप मैं हूँ सच्चिदानन्द ही आकाश है ॥ १२॥ सच्चिदानन्द ही तू है सच्चिदानन्द रूप मैं हूँ ये मन बुद्धि अहङ्कार चित्त समूह ॥ १३॥ ये न तू है न मैं हूँ न अन्य कोई है सब केवल ब्रह्म ही है। न वाग्य न पद न वेद न अक्षर न जड़ कहीं है ॥ १४॥ न मध्य न आदि न अन्त न सत्य न बंध न दुःख न सुख भाव, न माया, न प्रकृति है ॥ १५॥ न देह है, न सुख है, न



घ्राण है, न जिह्वा है, न तालू है, न दांत, न श्रोष्ठ, न मस्तक है, न श्वास उश्वास ही है ॥६॥ न पसीना, हड्डी, मांस है, न रक्त है, न मूत्र है। न दूर, न पास, न अङ्ग, न उदर, न मुकुट है ॥७॥ न हाथ पैर का चलना, न शास्त्र, न उपदेश न जानने वाला, न ज्ञान, न ज्ञेय है, न जाग्रत, न स्वप्न, न सुषुप्ति है ॥८॥ मुझ में तुरियातीत किंचित् नहीं है, सर्व सच्चिदमय व्यापक है। न अध्यात्मिक है, न अधिभूत है, न अधिदेव है, न मायिक है ॥९॥ न विश्व तैजस, प्राज्ञ, विराट्, सूत्रात्मा, ईश्वर है, न आगे जाने की चेष्टा है, न नष्ट है, न प्रयोजन है ॥१०॥ त्यागने योग्य, ग्रहण करने योग्य वा दूषित नहीं है, न पवित्र अपवित्र है, न मोटा है, न पतला है, न क्लेद, न काल, न देश का कथन है ॥११॥ न सब, न भय, न दैत, न वृक्ष, तृण पर्वत, न ध्यान, न योग संसिद्धि न ब्राह्मण, न क्षत्रीय, न वैश्य ॥१२॥ न पक्षी, न मृग, न अङ्गी, न लोभ, न मोह, ही है। न मद, न मत्सरता, न काम क्रोधादि हैं ॥१३॥ स्त्री, शूद्र, बिल्ली आदि और भक्ष्य भोज्य आदिक नहीं हैं। न मोटा पतला है, न आस्तिक्य है, न वार्ता ही का अवसर है ॥१४॥ न लौकिक है, न लोक है, न व्यापार है न मूढ़ता है, न भोक्ता, भोजन, भोज्य है, न पात्र है, न पान है, न पीने योग्य है ॥१५॥ न शत्रु, मित्र, पुत्र आदि है, न माता पिता, बहिन न जन्म है, न मृत्यु है, न बुद्धि है। मैं देह हूँ, यह भ्रम है ॥१६॥ न शून्य है, न अशून्य है, न अन्तःकरण है, न संसार है, न रात्रि है, न दिन रात्रि है, न ब्रह्मा है, न हरि है, न

शिव है ॥१७॥ न वार, पक्ष मास आदिक है, न संवत्सर है न स्थूल है, न ब्रह्म लोक है न वैकुण्ठ लोक है, न कैलाश है न अन्य लोक है ॥१८॥ न स्वर्ग है, न देवता इन्द्र है न अग्नि, है न श्लोक है, न अग्निहोत्री है, न यम है, न यमलोक है, न लोक पाल है ॥१९॥ नम्र, भुवः श्रीर स्वः ये तीन लोक है, न पाताल है न भूतल है न अविद्या है, न विद्या है, न माया है, न जड़ प्रकृति है ॥२०॥ न स्थिर है, न क्षणिक है, न नाश है, न गति है और न दीड़ना है। न मुक्त है न बध्य है, न ध्यान है, न मंत्र है न कहीं जप है ॥२१॥ न पदार्थ है, पूजने योग्य है, न अभिषेक है, न पूजा है। न पुष्प है, न फल है, न पत्र, गंध, पुष्प आदि धूप है ॥२२॥ न स्तोत्र है, न नमस्कार है, न थोड़ी सी भी प्रदक्षिणा है, न प्रार्थना है, न प्रथक् भाव है, न हवि है, न अग्नि की वन्दना है ॥२३॥ न होम है, न कर्म है, न दुर्वचन है, न सुन्दर भाषण है, न गायत्री है, न संधि है, न ध्यान है, न मन की दृष्ट स्थिति है, ॥२४॥ न दुराशा है, न दुष्टात्मा है, न चंडाल है, न पौलकस (एक प्रकार की नीच जाति) है। न दुःसह है, न निन्दा है, न किरात है, न केतव है ॥२५॥ न पक्षपात है, न पक्ष है, न आभूषण है, न चोर है, न दम्भ है, न दम्भ करने वाला है, न नीच है, न श्रेष्ठ ॥२६॥ एक, दो, तीन चार, नहीं है, महान्ता है, न अल्पपना है, न पूर्ण है, न परिच्छिन्न है, न काशी है, न व्रत है, न तप है ॥२७॥ न गोज है, न कुल है, न मूत्र है, न व्यापकता है, न शून्यता है, न खी है, न सुवती है, न बूढ़ी है, न



कथा है, न तत्तु पना है, ॥२८॥ न सूतक है, न जन्म है, न आंतर्मुख है, न भ्रम है, न महा वाक्य है, न एकता है, न अणिमा आदि सिद्धियां हैं ॥२९॥ सर्व चैतन्य मात्र होने से सदा सब दोष नहीं है, सर्व सत्यमात्र रूप होने से सच्चिदानन्द मात्र है ॥३०॥ सब ब्रह्म ही है, अन्य नहीं है, इसी प्रकार वह मैं हूँ वह वह मैं हूँ वह ही मैं हूँ, वह ही मैं हूँ, मैं सनातन ब्रह्म हूँ ॥३१॥ मैं ब्रह्म ही हूँ, संसारी नहीं हूँ, मैं ब्रह्म ही हूँ, मुझसे मन नहीं है, मैं ब्रह्म ही हूँ, मुझसे बुद्धि नहीं है, मैं ब्रह्म ही हूँ इन्द्रियां नहीं हूँ ॥३२॥ मैं ब्रह्म ही हूँ देह नहीं हूँ, मैं ब्रह्म ही हूँ, विषय नहीं हूँ। मैं ब्रह्म ही हूँ, जीव नहीं हूँ, मैं ब्रह्म ही हूँ, भेद वाला नहीं हूँ ॥३३॥ मैं ब्रह्म ही हूँ, जड़ नहीं हूँ मैं ब्रह्म ही हूँ मुझमें मरण नहीं है। मैं ब्रह्म ही हूँ प्राण नहीं हूँ, मैं पर से परब्रह्म ही हूँ ॥३४॥ यह ब्रह्म है, पर ब्रह्म है, सत्य ब्रह्म है, वह प्रभु है। काल ब्रह्म है, कला ब्रह्म है, सुख ब्रह्म है, स्वयं प्रकाश है ॥३५॥ एक ब्रह्म है, दो ब्रह्म है, मोह ब्रह्म है, शमादिक ब्रह्म है, दोष ब्रह्म है, गुण ब्रह्म है, दम, शान्त, विभु, प्रभु, ब्रह्म, हैं ॥३६॥ लोक ब्रह्म है, गुरु ब्रह्म है, शिष्य ब्रह्म है, सदाशिव ब्रह्म है। पूर्व ब्रह्म है, पर ब्रह्म है, शुद्ध ब्रह्म है, शुभ अशुभ ब्रह्म है ॥३७॥ जीव ही मदा ब्रह्म है, मैं सच्चिदानन्द हूँ। सर्व ब्रह्ममय कहा है, सब जगत् ब्रह्म मय है ॥३८॥ संहृ रहित आप ही ब्रह्म है, अपने से अन्य कुछ नहीं है। सब आत्म ही है, शुद्धात्मा है, सब चिन्मात्र अदि-तीय है ॥३९॥ आत्मा नित्य निर्मल रूप है, आत्मा से

अन्य कुछ नहीं है। अणु मात्र शुद्ध रूप है, अणु मात्र यह जगत् है ॥४०॥ अणु मात्र शरीर है, अणु मात्र सत्य है। अणु मात्र अचिन्त्य है, अथवा अणु मात्र चिन्त्य है ॥४१॥ ब्रह्म ही सब चिन्मात्र है, ब्रह्म मात्र तीनों जगत् है, आनन्द परमानन्द है, अन्य कुछ न कुछ है ॥४२॥ चैतन्य मात्र ओंकार है, ब्रह्म ही सब आप है। मैं ही सब जगत् हूँ, मैं ही परम पद हूँ ॥४३॥ मैं ही गुणातीत हूँ, मैं ही पर से पर हूँ। मैं ही पर ब्रह्म हूँ, मैं ही गुरुओं का गुरु हूँ ॥४४॥ मैं ही सबका आधार हूँ, मैं ही सुख का सुख हूँ। आत्मा से भिन्न जगत् नहीं है, और आत्मा से भिन्न सुख भी नहीं है ॥४५॥ आत्मा से भिन्न गति नहीं है, सब जगत् आत्ममय है। आत्मा से भिन्न कहीं नहीं है, आत्मा से भिन्न तुण भी नहीं है ॥४६॥ आत्मा से भिन्न तुष (भ्रमा) नहीं है, सब जगत् आत्मामय है। ब्रह्म मात्र यह सब है, ब्रह्म मात्र असत् नहीं है ॥४७॥ सब सुना हुआ ब्रह्म मात्र है, ब्रह्म ही केवल आप है। ब्रह्म मात्र सब द्रव है, ब्रह्म मात्र रस और सुख है ॥४८॥ ब्रह्म मात्र चिदाकाश सच्चिदानन्द अद्वितीय है, ब्रह्म के सिवाय अन्य नहीं है, ब्रह्म से भिन्न जगत् नहीं है ॥४९॥ ब्रह्म से भिन्न मैं नहीं हूँ, ब्रह्म के सिवाय फल नहीं है। ब्रह्म से भिन्न तुण नहीं है, ब्रह्म से भिन्न पद नहीं है ॥५०॥ ब्रह्म से भिन्न गुरु नहीं है, ब्रह्म बिना शरीर असत्य है। ब्रह्म से अन्य अहंता तुम्ह पना यह वे, कहीं नहीं है ॥५१॥ अपने को ब्रह्म स्वरूप जान। अपने से अन्य कुछ नहीं है, जो कुछ जगत् में देखा जाता है, जो कुछ लोगों से



कहा जाता है ॥१२॥ जो कुछ कही भी भोगा जाता है, वह सब असत्य ही है। कर्त्ता भेद, क्रिया भेद, गुण भेद रस आदिक ॥१३॥ यह सब लिंग भेद असत्य ही है। सदा सुख काल भेद, देश भेद, वस्तु भेद, जीत हार ॥१४॥ जो जो भेद है, वे केवल असत्य ही हैं। अन्तःकरण असत्य है, इन्द्रिय आदिक असत्य है ॥१५॥ प्राण आदिक सब असत्य है, शरीर असत्य है, पांच कोश असत्य है देवता असत्य है ॥१६॥ छः विकार आदि असत्य हैं, शत्रु वर्ग असत्य हैं, छः ऋतु असत्य हैं और छः रस असत्य हैं ॥१७॥ मैं सच्चिदानन्द मात्र हूँ यह जगत् कभी उत्पन्न नहीं हुआ है। मैं परं सत्य आत्मा ही हूँ, अन्य संसार दृष्टि नहीं है ॥१८॥ मैं सत्य आनन्द रूप हूँ, चैतन्य घन आनन्द स्वरूप हूँ, मैं ही परानन्द हूँ, मैं ही पर से पर हूँ ॥१९॥ यह सब ज्ञानाकार है, मैं अद्वितीय ज्ञान आनन्द रूप हूँ, मैं सबका प्रकाश रूप हूँ, सर्व अभाव स्वरूप हूँ, ॥२०॥ मैं ही सदा भासता हूँ, कहीं असत्य है, तू ही चिन्मात्र आनन्द रूप वाला परब्रह्म है ॥२१॥ चैतन्य आकार है, चैतन्य आकाश है, चैतन्य ही परम सुख है, मैं आत्मा ही हूँ, असत् नहीं हूँ, मैं कूटस्थ हूँ श्रेष्ठ गुरु हूँ ॥२२॥

मैं सच्चिदानन्द मात्र हूँ और यह जगत् उत्पन्न ही नहीं हुआ है काल नहीं है, जगत् नहीं है, माया प्रकृति भी नहीं है ॥२३॥ मैं ही साक्षात् हरि हूँ, मैं ही सदाशिव हूँ, मैं शुद्ध सत्त्व को प्रकाश

करने वाला शुद्ध चैतन्य भाव हूँ ॥२४॥ मैं अद्वितीय आनन्द मात्र हूँ, चैतन्य घन एक रस हूँ, सब सदा ब्रह्म ही है, सब केवल ब्रह्म ही है ॥२५॥ सब सदा ब्रह्म ही है, सब ही ब्रह्म चेतन है, मैं सबका अन्तर्यामी रूप हूँ, सर्व साक्षीपने के लक्षण वाला हूँ ॥२६॥ परमात्मा परंज्योति, परंशाम, परगति, सब वेदान्त का सार हूँ, सब शास्त्रों से निश्चित किया गया हूँ ॥२७॥ मैं योगानन्द स्वरूप हूँ, मुख्य आनन्द महोदय हूँ, मैं सब ज्ञान का प्रकाश हूँ, मुख्य विज्ञान स्वरूप हूँ, ॥२८॥ मैं तुर्य अतुर्य का प्रकाश हूँ, तुर्य अतुर्य आदि से रहित हूँ, मैं चैतन्य अक्षर हूँ, मैं सत्य हूँ, वासुदेव अजर, अमर हूँ ॥२९॥ मैं ब्रह्म चिदाकाश हूँ, नित्य ब्रह्म निरंजन हूँ, शुद्ध, बुद्ध सदायुक्त, अनाम, अरूप हूँ ॥३०॥ मैं सच्चिदानन्द रूप हूँ, यह जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है। सत्य असत्य जगत् नहीं है, संकल्प, कलना आदिक नहीं हैं ॥३१॥ नित्य आनन्दमय ब्रह्म, केवल हमेशा आप है, अनन्त अविकारी, शांत, एक रूप और अनामय है ॥३२॥ यदि मुझसे कुछ अन्य है तो वह मृगजल के समान मिथ्या है। यदि वंध्या पुत्र के वचन में भय है तो यह कुछ है ॥३३॥ शत्रुके सींगों से सिंह मर जाय तो जगत है। मृग तृष्णा जल से तुम हो जाय तो यह जगत है ॥३४॥ मनुष्य के सींगों से नष्ट हो जाय तो यह भी है। गंधर्व नगर के सत्य होने में जगत हमेशा है ॥३५॥ आकाश में नीलता सत्य हो तो जगत सत्य होगा। सीपों में रूपा सत्य हो तो जगत मृषा होगा ॥३६॥ रस्सी के सर्प से मनुष्य मर जाय तो संसार हो।



सोने के बाण से ज्वाला अग्नि नाश हो जाय तो जगत है ॥७७॥  
 विन्ध्याचल के वन में खीर हो जाय तो जगत उत्पन्न हुआ है ।  
 कैले के स्तम्भके काठ से रसोई बनजाय तो जगत है ॥७८॥ गवार  
 पाठ के रूप से पाक सिद्ध होजाय तो जगत हो । विज्र के दीपक  
 से शैवेरा चला जाय तो यह जगत है ॥७९॥ मास सं पहिले  
 मरा हुआ मनुष्य आजाय तो जगत है । यदि मठे का दूध हो  
 जाय तो नित्य जगत है ॥८०॥ गौ के धन से निकाला हुआ दूध  
 फिर भर दिया जाय तो जगत है । मट्टी के रेत में समुद्र उत्पन्न  
 हो जाय तो जगत हमेशा वस्तु है ॥८१॥ कछुये के रोमों में मस्त  
 हाथी बांध दिया जाय तो जगत है । कमल की डण्डी के तन्तु से  
 मेरु चलते लगे तो जगत हो ॥८२॥ तरंगों की माला से समुद्र  
 बांध दिया जाय तो जगत है । अग्नि की ज्वाला नीचे की जाय  
 तो सर्वदा जगत है ॥८३॥ अग्नि की ज्वाला ऊन्ही हो तो जगत  
 हो, जलती हुई अग्नि मण्डल में कमलों की वृद्धि हो तो यह जगत  
 हो ॥८४॥ महान् हिमाचल में नील हो तो जगत हो, मेरु आकर  
 नेत्र की पुतली में स्थित हो तो यह जगत है ॥८५॥ अंग का शब्द  
 वाणी रहित हो, मेरु चलायमान हो, मच्छर सिंह को मार डाले  
 तो यह जगत सत्य हो ॥८६॥ अणु रूप कोटर के विस्तार होने में  
 तोन लोक हों तो यह जगत है, क्षणिक के फूस की आग नित्य  
 हो तो जगत हो ॥८७॥ स्वप्न की देखी हुई वस्तु जाग्रत में रहे तो  
 जगत हो, नदी का वेग किसी प्रकार निरचल होजाय तो जगत  
 हो ॥८८॥ भूख का भोजन अग्नि हो तो जगत की कुछ कल्पना

हो । जन्मका अन्धा रत्न परोक्षक हो तो यह जगत् सदा हो ॥८९॥  
 नपुंसक के पुत्र को स्त्री का सुख हो तो जगत हो । शश के सींगों  
 से रथ बन जाय तो जगत हो ॥९०॥ हाल की जन्मी हुई कन्या  
 भोग के योग्य हो तो जगत हो । बंध्या गर्भ प्राप्ति के सुख की  
 जानने वाली हो तो जगत हो ॥९१॥ काक हंस के समान चले  
 तो जगत निरचल हो । गधा सिंह के साथ युद्ध करे तो जगत की  
 स्थिति हो ॥९२॥ गधा हाथी की चाल चले तो जगत हो । चन्द्र  
 सूर्य से प्रकाश किया हुआ संपूर्ण जगत स्वयं जड़ है ॥९३॥ चन्द्र  
 सूर्य आदि को छोड़कर राहु दीखता हो, भृष्ट बीज उत्पन्न होकर  
 वृद्धि हो तो जगत सत्य हो ॥९४॥ दारिणी धनवानों का सुख भोगे  
 तो जगत हो । कुत्ते के वीर्य से सिंह उत्पन्न हो तो जगत है ॥९५॥  
 मूढ़ ज्ञानी के हृदय को जान ले तो कल्पना हो । कुत्ता संपूर्ण  
 समुद्र को पी ले तो मन हो ॥९६॥ शुद्ध आकाश मनुष्यों पर गिर  
 पड़े तो जगत हो । अथवा भूमि पर आकाश गिरे, अथवा  
 आकाश के पुष्प सुगंध वाले हों ॥९७॥ शुद्ध आकाश में वन  
 उत्पन्न हों और चले तो जगत है । शुद्ध दर्पण में प्रतिबिम्ब नहीं  
 पड़े तो जगत है ॥९८॥ अज की कुक्षि में जगत नहीं है, आर्य  
 कुक्षि में जगत नहीं है । भेद कलना, द्रुत श्रद्धेत किसी प्रकार से  
 विद्यमान नहीं है ॥९९॥ यदि यह माया का कार्य है ऐसा भेद है  
 तो वह ब्रह्म की भावना है । मैं देह है यह दुःख है तो मैं ब्रह्म है  
 यह निश्चय है ॥१००॥ हृदय ग्रन्थि के होने से ब्रह्म चक्र खेदा  
 जाता है । संशय प्राप्त होने पर ब्रह्म के निश्चय का आश्रय



करे ॥१०१॥ अनात्म रूप चोर है तो आत्म रूप रत्न का रक्षण है । ब्रह्म नित्य आनन्दमय, केवल सर्वदा भाप है ॥१०२॥ इस प्रकार के दृष्टान्तों से ब्रह्म मान साधा जाता है । ब्रह्म सब भुवन है, भुवनों का नाम छोड़ दे ॥१०३॥ मैं ब्रह्म हूं इस प्रकार निरवयव करके मैं भाव को त्याग दे । सोये हुए के हाथ में रहे हुए पुष्प के समान सब ही लय होजाता है ॥१०४॥ न देह है, न कर्म है सब केवल ब्रह्म ही है । न शत है, न कार्य है, न चार अक्षरधामें है ॥१०५॥ तीन लक्षणाओं का विज्ञान सब केवल ब्रह्म ही है । सब व्यापार छोड़कर मैं ब्रह्म है, इस प्रकार भावना कर ॥१०६॥ सदैव रहित मैं ब्रह्म हूँ, मैं चैतन्य स्वस्व ब्रह्म हूँ । मैं सविद्यानन्द मान हूँ, ऐसा निरवयव करके उसको भी छोड़ दे ॥१०७॥

यह शङ्कर का किया हुआ महाशारत्त नास्तिक भूतत्वा, पुरा-चारी, दुष्टात्मा हर किसी को न देना चाहिए ॥१०८॥ गुरु भक्ति से शुद्ध किए हुए अस्त-केरण वाले महात्मा को अन्धवी तरह से भास, छः भास, एक वर्ष परीक्षा करके देना चाहिए ॥१०९॥ सब उपनिषदों के अन्वयास को दूर से त्याग कर आदर सहित तेजो विन्दु उपनिषद् का सर्वदा प्रसन्न होकर अन्वयास करे ॥११०॥ एक बार अन्वयास मान से भाप ब्रह्म ही होता है, भाप ब्रह्म ही होता है यह उपनिषद् है ॥



विदास्त



## योग बृहदामणि उपनिषत्

[ १८ ]

योगियों के हित की कामना से मैं योगबृहदामणि उपनिषद् को कहता हूँ । यह योग वेत्ताओं से सेवन किया गया है, गुरु है और केवल्य सिद्धि को देने वाला है ॥१॥ आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के छः अङ्ग हैं ॥२॥ एक सिद्धासन और दूसरा पद्मासन कहा गया है । छः चक्र, सोलह आधार, तीन लक्ष्य और पांच आकाशों को ॥३॥ जो अपने देह में नहीं जानता, उसको सिद्धि किस प्रकार हो ? आधार चक्र चार दल वाला है, स्वाधिष्ठान चक्र छः दल वाला है ॥४॥ नाभि में दश दल वाला कमल है, हृदय में बारह दल वाला पद्म है । विशुद्ध नाम का चक्र सोलह दल वाला है और अमृतोक्ते मध्य में दो दल वाला कमल है ॥५॥ महापद्म ब्रह्म रत्न में हजार दल की शैलवा वाला चक्र है । आधार पहिला चक्र है, दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र है ॥६॥ मोति स्थान में है, दोनों के मध्य में है उसको काम रूप कहते हैं । काम नाम का चार दल वाला कमल गुहा के स्थान में है ॥७॥ उसके मध्य में काम नाम की, शिखों से वस्त्रता की गर्द, योगि कहलाती है । उसके मध्य में पश्चिम का तरफ मुख नामा लिंग स्थित है ॥८॥ नाभि से मणि के समान बिम्ब बाल को जो जानता है, वह योगी त्व



है तबे हुए सोने के समान प्रकाश वाला, पिचली पीरेखा के समान समकला हुआ ॥६॥ तीन कोण वाला मेढ़ के नीचे स्थित वह्नि का पुर है । समधि में अनन्त और विद्यतोमुख परम ज्योति दीखनी है ॥१०॥ महा योग में उसको देखने से भ्रान्त जाना नहीं रहता । स्व शब्द ने प्राण होता है स्वाधिष्ठान जगका आश्रय होता है ॥११॥ वह स्वाधिष्ठान के आश्रय होने से मेढ़ भी कहा जाता है । यहाँ जो तंतु से पियेये हुए मणि के समान सुगुम्ना से प्रोगा हुआ कन्द है ॥१२॥ नाभि मण्डल में वह मणि पूरक चक्र कहलाता है । पुण्य पाप से रहित बारह दल वाले महा चक्र में ॥१३॥ जब तक जीव तत्व को नहीं जानता तब तक भ्रमण करता है । मेढ़ से ऊपर नाभि से नीचे कन्द में पक्षी के झण्डे के समान योनि है ॥१४॥ वहाँ वहतर हजार नाड़ियाँ उत्पन्न हुई हैं, उन वहतर हजार नाड़ियों में वहतर प्रधान कहलाती हैं ॥१५॥ उनमें से दश प्राण को चलाने वाली मुख्य समझी जाती हैं । इडा, पिंगला और तीसरी सुगुम्ना है ॥१६॥ गांधारी हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुसा, कुह और शंखिनी दशवीं कही गई हैं, ॥१७॥ इस नाड़ी महाचक्र को योगियों को सदा जानना चाहिए । इडा वाम भाग में स्थित है, पिंगला दक्षिण भाग में स्थित है ॥१८॥ सुगुम्ना मध्य देश में, गांधारी वायं नेत्र में । हस्तिजिह्वा दक्षिण नेत्र में, पूषा दक्षिण कर्णों में ॥१९॥ यशस्विनी वायें कर्णों में, अलम्बुसा मुख में, कुह लिंग देश में और शंखिनी मूल स्थान में है ॥२०॥ इस प्रकार क्रम से एक एक

द्वार का आश्रय करके सब नाड़ियाँ स्थित हैं, इडा, पिंगला और सुगुम्ना प्राण मार्ग में स्थित हैं ॥२१॥ चन्द्र, सूर्य और अग्नि देवता सदा प्राण को चलाने वाले हैं । प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान नाम के वायु हैं ॥२२॥ नाग, कूर्म, कुकर, देवदत्त और धनंजय (उपवायु) हैं । प्राण नित्य हृदय में स्थित है, अपान गुदा मंडल में ॥२३॥ समान नाभि देश में, उदान कण्ठ के मध्य में और व्यान सब शरीर में है, ये पांच प्राण ही मुख्य हैं ॥२४॥ डकार लेने में नाग और पलक मूंदने में कूर्म कहा गया है । कुकर छींक लाने वाला और देवदत्त जन्माई लेने में जानो ॥२५॥ सर्व व्यापी धनंजय मरने पर भी नहीं छोड़ता । इन नाड़ियों में सब जीव तन्तु भ्रमण करते हैं ॥२६॥ जिस प्रकार भुज दण्ड से फेंकी हुई गेंद चलती है इसी प्रकार प्राण अपान से फेंका हुआ जीव नहीं ठहरता ॥२७॥ प्राण अपान के वश हुआ जीव नीचे, ऊपर, वाम और दक्षिण मार्ग से दौड़ता है; कंचल होने से दिखाई नहीं देता ॥२८॥ जिस प्रकार रस्सी से बांधा हुआ श्येन पक्षी गया हुआ भी खिच आता है इसी प्रकार गुणों में बांधा हुआ जीव प्राण अपान करके खिचता है ॥२९॥ प्राण अपान के वश हुआ जीव नीचे ऊपर जाता है । अपान प्राण को खेंचता है और प्राण अपान को खेंचता है ॥३०॥ ऊपर और नीचे स्थित इन दोनों को जो जानता है वह योगवित है । वह हकार शब्द द्वारा बाहर आता है और सकार शब्द द्वारा फिर भीतर घुसता है ॥३१॥ इस



प्रकार 'हंस हंस' इस मन्त्र को जीव सदा जपता है। दिन रात में इस्कीम हजार छः सौ ॥३२॥ इस संख्या युक्त मन्त्र को जीव सदा जपता है। यह अत्रपा नाम की गायत्री योगियों को सदा मोक्ष की देने वाली है ॥३३॥ इसके संकल्प मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है। इसके समान विद्या, इसके समान जप ॥३४॥ इसके समान ज्ञान न हुआ न होगा। कुण्डलिनी में उत्पन्न हुई गायत्री प्राण को धारण करने वाली है ॥३५॥ प्राण विद्या महा-विद्या है, जो उसको जानने वाला है, वह वेद को जानने वाला है। कन्द के ऊपर कुण्डल के आकार वाली आठ प्रकार की कुण्डली शक्ति ॥३६॥ ब्रह्म द्वार के मुख को नित्य मुख में ढाँप कर स्थित है। उपद्रव रहित ब्रह्म जिस द्वार में होकर जाना होता है ॥३७॥ परमेश्वरी उस द्वार को मुख से ढाँप कर सोई हुई है। वह्नियोग से जगाई हुई वह मन और प्राण सहित ॥३८॥ मुख उठाकर मुष्मता में मुई के समान ऊपर जाती है। जिस प्रकार कुंजी से घर को खोलने हैं, इसी प्रकार कुण्डलिनी से योगी मोक्ष के द्वार का भेदन करे ॥३९॥

दोनों हाथों को संकुचित करके, दृढ़ रीति से पचासन लगा कर और ठोड़ी को छाती पर दृढ़ रीति से लगा कर चित्त में बारम्बार उस (ब्रह्म) का ध्यान करता हुआ वायु को ऊपर खींचे, पूरणा किये हुए वायु को छोड़ने से मनुष्य शक्ति के प्रभाव से अतुल बोध को प्राप्त होता है ॥४०॥ श्रम से उत्पन्न हुए पसीने से

अंगों को मले। कड़वे, खट्टे पदार्थ और लवण का त्याग कर दूध का भोजन करे ॥४१॥ ब्रह्मचारी, सूक्ष्म आहार करने वाला योग परायण योगी माल भर के बाद मिट्ट हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है ॥४२॥ चिकना, मधुर आहार पेट का चौथा अंश खाली छोड़कर, शिव की प्रीति के लिये भोजन करे, वह मिता-हारी कहलाता है ॥४३॥

कन्द के ऊपर कुण्डल के आकार वाली आठ प्रकार की कुण्डली शक्ति मूँहों को बंधन करने वाली और योगियों को सदा मोक्ष की देने वाली है ॥४४॥ महामुद्रा, नममुद्रा, ओड्याण, जलंधर और मूलबंध को जो जानता है वह योगी मुक्ति का पात्र है ॥४५॥ एड़ी में दृढ़ दबा कर योनि को सकोड़े और अपान को ऊपर खींचे; यह मूल बंध कहलाता है ॥४६॥ मूल बंध सदा करने से अपान और प्राण की एकता और सूत्र पुरीष की न्यूनता होने से वृद्ध भी जवान होजाता है ॥४७॥ जिससे थका हुआ महा पक्षी उड्याण करता है, वह उड्याण मृत्यु रूपी हाथी के लिये सिंह है ॥४८॥ उदर से नाभि के नीचे तानना पश्चिम ताण कहलाता है। उड्याण बंध उदर में होता है, इसलिये वहाँ बंध कहा जाता है ॥४९॥ नीचे जाने वाले आकाश और जल को शिर में बाँध देता है। इसलिये जालंधर बंध कष्ट और दुःख समूह को नाश करने वाला है ॥५०॥ कंठ संकोच लक्षण वाले जालंधर बंध के करने से अमृत अग्नि में नहीं पड़ता और न वायु दोड़ता



है ॥११॥ जीम को उलटो करके कपाल के छिद्र में प्रवेश करा कर दृष्टि भ्रुकुटी के मध्य में लगाने से खेचरी मुद्रा होती है ॥१२॥ जो खेचरी मुद्रा को जानता है उसको रोग, मरण, निद्रा, सुख, व्यास और सुख नहीं होती ॥१३॥ रोग से पीड़ा को नहीं प्राप्त होता, न कर्मों से लिपायमान होता है, किसी से बाधा नहीं पहुँचाया जाता, जो खेचरी मुद्रा को जानता है ॥१४॥ जिससे चित्त आकाश में विचरता है और जिज्ञा आकाश में विचरती है, इसलिये वह खेचरी मुद्रा सब निद्रों से नमस्कार की गई है ॥१५॥ पैर से लेकर मस्तक तक के शरीरों को पोषण करने वाली शिरायें जहाँ होती हैं ऐसा शरीर विन्दु में स्थित है ॥१६॥ जिज्ञा के ऊपर का छिद्र खेचरी द्वारा जिसने मूँद दिया है उसका विन्दु कामिनो के आर्त्तिगन से भी क्षय नहीं होता ॥१७॥ जब तक विन्दु देह में स्थित है तब तक मृत्यु का भय कहां ? और जब तक खेचरी मुद्रा बाँधी हुई है तब तक विन्दु नहीं जाता ॥१८॥ और निकला हुआ भी आत्मिकों प्राप्त हुआ विन्दु योनि मुद्रा द्वारा शक्ति से रोका जाने से ऊपर जाता है ॥१९॥ वह विन्दु सफ़ेद और लाल दो प्रकार का है, सफ़ेद शुक्ल कहलाता है और लाल महारज कहलाता है ॥२०॥

सिन्दूर समुद्र के समान चमकने वाले सूर्य के स्थान में रज स्थित है, चन्द्रमा के स्थान पर शुक्ल स्थित है, दोनों की एकता दुर्लभ है ॥२१॥ विन्दु रक्षा है, रज शक्ति है, विन्दु चन्द्रमा है,

रज सूर्य है; दोनों के संगम से हो परमपद प्राप्त होता है ॥२२॥ जब वायु करके शक्ति को चलाने से श्रित हुआ रज विन्दु के साथ नदा एकता को प्राप्त होता है तब दिव्य शरीर हो जाता है ॥२३॥ शुक्ल चन्द्र से संयुक्त और रज सूर्य से संयुक्त है, उन दोनों की समान रस वाली एकता को जो जानता है, वह योगविवर है ॥२४॥ सर्व नाड़ियों का शोषण, चन्द्र सूर्य का चलाना और रसों का सुखाना महामुद्रा कहलाती है ॥२५॥ छाती पर ठोड़ी रख कर और योनि को बाँधे चरण से देर तक दबाकर और फ़ैलाये हुए, दक्षिण पाद को दोनों हाथों से पकड़ कर, दोनों बाँधों हुई काँधों को श्वास से भर कर धीरे-धीरे रेचन करे ॥ यह मनुष्यों की ध्यावि को नाश करने वाली महामुद्रा कहलाती है ॥२६॥ चन्द्र श्रवण से अभ्यास करके फिर सूर्य श्रवण से अभ्यास करे, जब संन्या वरावर होजावे तब मुद्रा को छोड़ देवे ॥२७॥ अप्रयत्न हो प्रयत्न नहीं होजाता किन्तु सब निरस भी रस होजाते हैं और छाया हुआ घोर विष भी अमृत के समान पच जाता है ॥२८॥ जो महामुद्रा का अभ्यास करे उसके क्षय, कुष्ठ, मग्नन्दर, गुल्म, अर्जोण और आग होने वाले रोग क्षय होजाते हैं ॥२९॥ मनुष्यों को महा मिट्टि की देने वाली यह महामुद्रा कही है, यह प्रयत्न से गुप्त रखनी चाहिए और हर किसी को देने न चाहिए ॥३०॥ पद्मासन बना कर, शरीर और शिर को समान करके, नासिका के अग्र भाग में दृष्टि करके अव्यय श्वाकार का एकांत में जय



करे ॥७१॥<sup>३६</sup> नित्य, शुद्ध, बुद्ध, निर्विकल्प, निरञ्जन, नाम रहित, अनादि, मृत्यु रूप, एक, तुरीय, जो भूत, भविष्य और वर्तमान में सदा अवच्छेद रहित परब्रह्म है, उससे ज्योतिरूप परा शक्ति उत्पन्न हुई । (पराशक्ति रूप) आत्मा से आकाश हुआ, आकाश से वायु हुआ, वायु से अग्नि हुआ, अग्नि से जल हुआ, और जल से पृथ्वी हुई । इन पांच भूतों के पांच पति सदा शिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा हैं । उनमें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उत्पत्ति स्थिति और लय करने वाले हैं । ब्रह्मा, राजस है, विष्णु सात्विक है और रुद्र तामस है । इस प्रकार ये तीनों गुणयुक्त हैं । ब्रह्मा देवताओं में प्रथम हुआ । ब्रह्मा उत्पन्न करने के लिये, विष्णु स्थिति के लिये, रुद्र नाश करने के लिये और चन्द्रमा भोग के लिये, इस प्रकार प्रथम उत्पन्न होने वाले हुए । इनमें से ब्रह्मा से लोक, देवता, तिर्यक् नर और स्थावर उत्पन्न होते हैं । उन मनुष्य आदि का शरीर पांच भूत समूह का है । ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, ज्ञान और विषय, प्राणादि पांच वायु, मन बुद्धि चित्त और अहंकार स्थूल कल्पे हुये हैं । वह (शरीर) ही स्थूल प्रकृति कहलाता है । ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय ज्ञान और विषय, प्राणादि पांच वायु, मन और बुद्धि सूक्ष्म में स्थित लिंग कहलाता है । तीन गुणों से युक्त कारण है । इस प्रकार नवके तीन शरीर वर्तते हैं । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय ये चार अवस्थाएँ हैं उन अवस्थाओं के अधिपति विश्व, तैजस, प्राज्ञ और आत्मा ये चार पुरुष हैं । विश्व स्थूल का भोक्ता है, तैजस एकांतका भोक्ता है, आनन्द का भोक्ता

प्राज्ञ है, उससे पर सबका साक्षी है ॥७२॥ वह सब जीवों में योग काल में सदा पृथक् रहता है और सब अवस्थाओं में अधोमुख या नीचे तटस्थ रूप से आनन्द रूप है ॥७३॥ अकार, उकार और मकार तीन वर्णों को, तीन वेदों को, तीन लोकों को, तीन गुणों को, तीन अक्षरों को, तीन स्वरों को प्रणव प्रकाशता है । अकार सब जन्तुओं में जाग्रत् में नेत्रों में वर्तता है, उकार स्वप्न में कंठ में और मकार सुषुप्ति में हृदय में ॥७४॥ अकार स्थूल, विनाद और विश्व है । उकार सूक्ष्म, हिरण्यगर्भ और तैजस है । मकार कारण अवाकृत और प्राज्ञ है । अकार राजस, रक्त, ब्रह्मा और चेतन कहलाता है । उकार सात्विक, शुक्ल और विष्णु कहलाता है ॥७५॥ मकार तामस, कृष्ण और रुद्र कहलाता है । प्रणव से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, प्रणव से विष्णु उत्पन्न हुआ ॥७६॥ प्रणव से रुद्र उत्पन्न हुआ, प्रणव ही पर हुआ । अकार में ब्रह्म लय होता है, उकार में विष्णु लय होता है ॥७७॥ मकार में रुद्र लय होता है परन्तु प्रणव प्रकाशता रहता है । वह ज्ञानियों में ऊपर जाने वाला होता है, अज्ञानी में नीचे मुख वाला होता है ॥७८॥ इस प्रकार निरुच्य प्रणव स्थिति है, जो उसको जानता है, वह वेद का जानने वाला है । अनाहत स्वरूप से ज्ञानियों में ऊपर जाने वाला होता है ॥७९॥ तेल की अवच्छिन्न धारा और लम्बे घंटों के नाद के समान प्रणव की ध्वनि है । उसका अग्र ब्रह्म कहलाता है ॥८०॥ वह अग्र ज्योतिमय और अवाच्य है । सूक्ष्म बुद्धि से महारमा उसको देखते हैं । जो उसको जानता है, वह वेद



का जानने वाला है ॥८१॥ जाग्रत में दोनों नेत्रों के बीच में हंन ही प्रकाशता है । सकार क्षेत्रो कहलाता है, निश्चित यह त्वं पद है ॥८२॥ हकार परमेश्वर है, यह तत् पद निश्चित है । जो जन्तु सकार का ध्यान करता है, निश्चय हकार ही होजाता है ॥८३॥ इन्द्रियों करके जीव बांधा जाता है, आत्मा नहीं बांधा जाता ममता से जीव होता है, ममता रहित केवल होता है ॥८४॥ भूः भुवः स्वः त्रैलोक्य, चन्द्र, सूर्य और अग्नि देवता जिसका मात्राओं में स्थित है, वह परम ज्योति ॐ है ॥८५॥ क्रिया, इच्छा और ज्ञान तथा बाह्यी रीती और वैष्णवी, ये तीन प्रकार की मात्राएँ जिसमें स्थित है, वह परम ज्योति ॐ है ॥८६॥ वाणों से उसे नित्य जपे, शरीर से उसका अभ्यास करे, मन से उसे नित्य जपे, वह परम ज्योति ॐ है ॥८७॥ पवित्र हो या अपवित्र जो प्रणव को सदा जपता है, वह कमल पत्र के समान पापों से लिपायमान नहीं होता ॥८८॥ वायु चलने पर विन्दु चलित होता है और निश्चल होने पर निश्चल होता है । ( विन्दु स्थिर होने से ) योगी निश्चलता को प्राप्त होता है, इसलिये वायु का निरोध करे ॥८९॥ जब तक वायु देह में स्थित है तब तक जीव नहीं मरता । उसका निकल जाना मरण है इसलिये वायु का निरोध करे ॥९०॥ जब तक वायु देह में स्थित है तब तक जीव नहीं जाता । जब तक दृष्टि भ्रुकुटियों के मध्य में है तब तक कालका भय कहां ॥९१॥ अल्प कालके भयसे ब्रह्मा प्राणायाम परायण हुआ, इसलिये योगी और मुनि भी प्राणों का निरोध करें ॥९२॥ हंस छत्वीस शृंगुल बाहर

जाता है । वाम और दक्षिण मार्ग से प्राणायाम किया जाता है ॥९३॥ जब सब मलयुक्त नाड़ी चक्र शुद्ध होजाता है, तब ही योगी प्राण को रोकने में समर्थ होता है ॥९४॥ योगी पद्मासन लगा कर चन्द्र से प्राण को पूर्ण करे, यथाशक्ति धारण करे और फिर नूर्य द्वारा निकाल देवे ॥९५॥ अमृत के समुद्र के समान, गी के सफेद दूध की उपमा वाले चन्द्रमा के विभव का ध्यान करता हुआ प्राणायाम करने में सुखी होवे ॥९६॥ ककड़ते हुये प्रज्वलित अग्नि रूप, हृदय में स्थित पूज्य आदित्य मण्डल का ध्यान करता हुआ योगी प्राणायाम करने में सुखी होवे ॥९७॥ इडा नाड़ी से प्राण को पिये फिर रोक कर दूसरी (पिंगला) से निकाल देवे । फिर पिंगला से वायु को पीकर और रोककर वाई (इडा) से निकाल देवे । इस प्रकार से सूर्य और चन्द्रमा दोनों विंदुओं के ध्यान करने से योगी की नाड़ियां दो मास के बाद शुद्ध हो जाती हैं ॥९८॥ इच्छानुसार वायु का धारण करना, अग्नि का प्रज्वलित करना, नाद का प्रकट होना और आरोग्यता ये नाड़ी शोधन करने से उत्पन्न होते हैं ॥९९॥ जब तक प्राण देह में स्थित है तब तक अपान को रोकें । आकाश में ऊपर और नीचे गति वाली एक श्वास वाली मात्रा है ॥१००॥ रेचक, पूरक और कुम्भक प्रणव स्वरूप है । प्राणायाम बारह मात्रा युक्त होता है ॥१०१॥ बारह मात्रा संयुक्त सूर्य, चन्द्रमा दोष समूह को नाश करने वाले हैं ऐसा योगियों को जानना चाहिए ॥१०२॥ बारह पूरक करे, कुम्भक सोलह हो और रेचक दश हो, वह ओंकार



प्राणायाम कहलाता है ॥१०३॥ हलकी में बारह मात्रा और मध्यम में दूनी मानी गई हैं, उत्तम में तीन गुणी कही हैं, यह प्राणायाम का निर्णय है ॥१०४॥ हलकी में पसीना उत्पन्न होता है, मध्यम में कम्प होता है उत्तम में स्थान को प्राप्त होता है इसलिए वायु का निरोध करे ॥१०५॥ योगी पद्मासन लगाकर, गुरु रूप धिक् को नमस्कार करके, नासिका के अग्र भाग में दृष्टि लगाकर एकांत में प्राणायाम का अभ्यास करे ॥१०६॥

नव द्वारों को तथा प्राणों को रोककर दृढ़ धारणा पूर्वक शक्ति चालन करके काल रूप कुण्डलिनी को अग्नि और अपान के साथ ऊपर ले जाय। फिर इस विधि से आत्म ध्यान करते हुए उसके मस्तक में स्थिर करे। जब तक यह स्थिर रहे तब तक ही महात्माओं के नङ्ग की विशेषता है ॥१०७॥ यह प्राणायाम पातक रूपी ईधन के लिये अग्नि है और संसार रूपी समुद्र का सेतु सदा योगियों से कहा जाता है ॥१०८॥ आसन से रोग को और प्राणायाम से पातक को नाश करते हैं, योगी मन के विकारों का प्रत्याहार से त्याग करता है ॥१०९॥ धारणा से मन के धैर्य को प्राप्त करता है, समाधि में अद्भुत चैतन्य को प्राप्त करता है और शुभाशुभ कर्मों का त्याग करके मोक्ष को प्राप्त करता है ॥११०॥ बारह प्राणायाम का प्रत्याहार कहलाता है, बारह प्रत्याहार से शुभ धारणा उत्पन्न होती है ॥१११॥ योग वेत्ताओं ने बारह धारणा को ध्यान कहा है और बारह ध्यान की समाधि कहलाती है ॥११२॥ समाधि में जो परम ज्योति, अनन्त

और विश्वतोमुख है, उसके देखने से उसका गमन और किया कर्म नहीं रहता ॥११३॥ दोनों चरण मेढ़ पर लगा आसन बांध कर, कर्ण, नेत्र, और नासिका के द्वारों को अंगुलियों से रोक कर पवन को मुख से पूर्ण करे, उसको अपान सहित छाती में रोक कर फिर मूर्धा में स्थिर धारण करे, इस प्रकार योगेश्वर उसमें मन लगा कर तत्त्व की विशेष समता को प्राप्त करते हैं ॥११४॥ पवन आकाश में प्राप्त होने पर घंटादि वाजों की महान् ध्वनि उत्पन्न होती है, यह नाद सिद्धि कही गई है ॥११५॥ प्राणायाम से युक्त होने से, सब रोग नाश हो जाते हैं, प्राणायाम से रहित के सब रोग उत्पन्न होते हैं ॥११६॥ हुचकी, खांसी, श्वास, शिर, कर्ण, आंखों की पीड़ा अनेक प्रकार के रोग पवन के विकार से होते हैं ॥११७॥ जिस प्रकार सिंह, हाथी, व्याघ्र, धीरे धीरे वश हो जाते हैं, इसी प्रकार सेवन किया हुआ वायु वश हो जाता है, नहीं तो साधक को मारता है ॥११८॥ नियम पूर्वक वायु को छोड़े, नियम पूर्वक भरे, नियम पूर्वक रोके, इस प्रकार सिद्धि को प्राप्त करे ॥११९॥ विषयों में यथा क्रम से चक्षु आदि का जो चलना है, उनका जो रोकना है, वह प्रत्याहार कहलाता है ॥१२०॥ जिस प्रकार तीसरे काल में सूर्य का प्रकाश कम हो जाता है इसी प्रकार योगी तीसरे अङ्ग में स्थित मन के विकार को दूर करे, यह उपनिषत् है। इति योग ब्रह्मसिंह उपनिषत् ॥

योग



## शारीरकोपनिषत् ।

[ १६ ]

शरीर पृथिवी आदि महाभूतों का समुदाय है। कड़ी है, सो पृथिवी है, जो बहने वाला है, वह जल है। जो उष्ण है वह तेज है, जो संचार करता है, वह वायु और जो पोला है, वह आकाश है। श्रोत्रादि ज्ञान इन्द्रियां हैं। आकाश में श्रोत्र, वायु में त्वचा, अग्नि में नेत्र, जल में जिह्वा और पृथिवी में घ्राण है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन्द्रियों के यथा क्रम से विषय हैं ये पृथिवी आदि महाभूतों से क्रम से उत्पन्न हुए हैं। बाणी, पाणि, पाद, पायु, और उपस्थ कर्मेन्द्रियां कही जाती हैं। उनके क्रम से वचन, ग्रहण करना, चलना, त्यागना और आनन्द ये विषय पृथ्वी आदि महाभूतों से क्रम से उत्पन्न हुए हैं। मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त ये चार अन्तःकरण हैं। उनके क्रम से संकल्प विकल्प, निश्चय, अभिमान और विचार स्वरूप ये विषय हैं। मन का स्थान कण्ठ, बुद्धि का मुख, अहङ्कार का हृदय और चित्त का नाभि है। हृद्भि, चमड़ी, नाड़ी, रोंगटे और मांस ये पृथ्वी के अंश हैं। मूत्र, कफ, लोह, वीर्य और पसीना ये जल के अंश हैं। भूख, प्यास, आलस्य, मोह और मैथुन अग्नि के अंश हैं। फँलना, दीड़ना स्थूलादि (मुड़ना, सकोड़ना, चलना) पलक खोलना बन्द करना आदि (डकार,

छींक, जंभाई और मूतक शरीर को फुलाना) वायु के अंश हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय आकाश के अंश हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध पृथ्वी के गुण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस जल के गुण हैं। शब्द, स्पर्श और रूप अग्नि के गुण हैं। शब्द और स्पर्श वायु के दो गुण हैं। शब्द एक गुण आकाश का है। सात्त्विक, राजस और तामस तीनों गुणों के लक्षण हैं। अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्रोध न करना, गुरु की सेवा करना, शौच, संतोष, सीधापन ॥१॥ मान रहितपना, पाषण्ड रहितपना, आस्तिकपना, अहिंसकपना, इतने गुण विशेष करके सात्त्विक के जानने चाहिये ॥२॥ मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, मैं अभिमान वाला वक्ता हूँ। ब्रह्म वेत्ताओं ने ये गुण राजस के कहे हैं ॥३॥ निद्रा, आलस्य, मोह, राग मैथुन और चोरी। ब्रह्म वादियों ने ये गुण तामस के कहे हैं ॥४॥ सात्त्विक ऊपर है; मध्य में राजस है और नीचे तामस है। सत्य ज्ञान सात्त्विक है। धर्म ज्ञान राजस है। तिमिरांध तामस है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्य ये चार प्रकार की अवस्थाएँ हैं। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और चार अन्तःकरण, इन चौदह इन्द्रियों युक्त जाग्रत है। चार अन्तःकरण से युक्त स्वप्न है, एक चित्त इन्द्रिय वाली सुषुप्ति है। तुरीय केवल जीव युक्त ही है। खुले हुए पलक और मुँदे हुए पलक के बीच में टिका हुआ जीव परमात्मा के मध्य में जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है, इस प्रकार जाना जाता है, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण



शरीर बुद्धि इन सत्तरह का सूक्ष्म शरीर लिङ्ग कहलाता है ॥१५॥ मन, बुद्धि, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि जल पृथिवी; ये प्रकृति के आठ विकार हैं, सोलह शरीर हैं ॥१६॥ श्रोत्र त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण यह पांच । गुदा, उपस्थ, हाथ, पैर शरीर बाणी दशमी है ॥१७॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस शरीर गंध; ये तेईस प्रकृतियां हैं ॥१८॥ चोवीसवां अन्धक्त प्रधान है, पुरुष उनसे पर है ॥



## ब्रह्मविद्या उपनिषत् ।

[ २० ]

ब्रह्मविद्या उपनिषत् को कहते हैं:—उस अद्भुत कर्म करने वाले विष्णुरूप के प्रसाद से ध्रुवानि ब्रह्म विद्या का रहस्य कहना है ॥१॥ ब्रह्मवादियों ने जिंस ब्रह्म को ॐ एकाक्षर कहा है, उस के शरीर, स्थान शरीर तीन काल को मैं कहता हूँ ॥२॥ उस (ॐकार) में तीन देव, तीन लोक, तीन वेद शरीर तीन अग्नि कहे हैं । उस तीन अक्षर रूप शिव की तीन शरीर अर्ध यामी साढ़े तीन मात्रायें हैं ॥३॥ ऋग्वेद, गार्हपत्य, पृथ्वी शरीर ब्रह्मा को ब्रह्मवादियों ने अकार का शरीर कहा है ॥४॥ यजुर्वेद अंतरिक्ष, दक्षिणाग्नि शरीर देव विष्णु भगवान् उकार का (शरीर) कहा गया है ॥५॥ सामवेद, स्वर्ग, आहवनीय शरीर परमदेव ईश्वर मकार का (शरीर) कहा गया है ॥६॥ शंख के मध्य का अकार सूर्य मण्डल के मध्य में है । चन्द्र के समान उकार उस (चन्द्र) के मध्य में टिका हुआ है ॥७॥ मकार धूम रहित अग्नि के समान शरीर विजली की उपमा वाला है । इस प्रकार तीनों मात्राओं को चन्द्र, सूर्य, शरीर अग्नि रूप जानना चाहिए ॥८॥ जैसे दीपक की शिखा उसके ऊपर होती है । उसी प्रकार अर्ध मात्रा को प्रणव के ऊपर जानना चाहिए ॥९॥ वह पुरा शिखा कमल सूत्र के समान अत्यन्त सूक्ष्म दिखलाई देती



है। वह सूर्य के समान बाही सूर्यकी भेदन करने तथा ध्वत्सा ॥१०॥ कहलाए हुआ नाभियों की भेदन करके सब प्राणियोंको वरदान देने वाली, सब को व्याप्त करके सर्वोपेक्षित होती है ॥११॥ कसिके घटके नाद किस प्रकार शक्ति में लीन हो जाती है इसी प्रकार सब ऐश्वर्य की हल्का करके वाते की उसकी शक्ति के लिए अँकार की योजना करनी चाहिये ॥१२॥ जिसमें सब लीन होता है वह परब्रह्म कहलाता है। और बुद्धि ब्रह्म में लीन हो जाती है, वह प्रभृत होने के शेष समझी जाती है ॥१३॥ वायु, प्राण और आकाश तीन प्रकार की जीव संज्ञा है। उस प्राण रूप जीव का प्रमाण वात के अग्रभाग का सौभाग्य भाग कला गया है ॥१४॥ नाभि स्थान में विरव का पुद्गल तत्व, निर्मल शिव रूप आदित्य के समान किरणों से सबको प्रकाशना हुआ स्थित है ॥१५॥ सवार और हकार की जीव सदा जयता है। नाभि के छिद्र में निकलता हुआ यह विषयों की व्यापकता से रहित है ॥१६॥ इसलिए इष में से निकले हुये घी के समान अपने कारण से युक्त इस कला रहित की पांच प्राणायाम द्वारा जाने ॥१७॥ जैसे लकड़ी से मया हुआ दूध इस प्रकार जब चार कला से युक्त हृदय में स्थित देह में प्रमण कराया जाता है ॥१८॥ (तब) इस (देह) में अविश्रांत महापक्षी शीघ्र वास करता है। जब स्वास रुक जाता है तब जीव निष्कलापने को प्राप्त होता है ॥१९॥ आकाश में स्थित कला रहित का ध्यान करके संसार बंधन से मुक्त होता है। जो हृदय में स्थित स्व प्रकाश चित् आनन्द रूप अनाहत ध्वनि युक्त हंस

की जानता है, वह हंस कहलाता है। रेचक पूरक की ओर कर कुम्भक से स्थित विद्याय ॥२०-२१॥ नाभि के स्रव में प्राण ध्यान की रोक कर समान करके मस्तक में स्थित प्रभृत के स्वाद की आधार रहित ध्यान द्वारा पी कर ॥२२॥ नाभि के मध्य में दीपक के आकार वाते तैज वाते महादेव की प्रभृत का सिंघन कलौ हुए जो हंस हंस इस प्रकार जप करता है ॥२३॥ उसकी जरा मरण रोगादि पुण्यो पर नहीं होते। इस प्रकार आर्यामा आदि सिद्धियों के निर्मित दिन प्रतिदिन करे ॥२४॥ सदा अभ्यास में प्रीति जाना पुरुष ईश्वरत्व को प्राप्त करता है। बहुत से इस एक मार्ग से निरन्तर को प्राप्त हुए हैं ॥२५॥ हंस विद्या के सिंघाव नित्यत्व का अल्य कोई साधन नहीं है। जो हंस नाम की पर-मेस्वरी महा विद्या को देता है ॥२६॥ उसकी सदा पुद्गल बुद्धि से सेवा करनी चाहिये। इस जगत में शुभ, अशुभ या अल्य जो कुछ गुरु ने कहा हो ॥२७॥ उसकी संतोष युक्त सिष्य विचारे विना हो करे। इस हंसविद्या को मनुष्य गुरु से प्राप्त करके ॥२८॥ आत्मा में आत्मा की साक्षात् निरन्तर ब्रह्म जान कर ब्रह्मधर्म से युक्त देह जाति आदि संबंधों को ॥२९॥ तथा वेद और अल्य आश्यों की पर की रज के समान त्याग देवे और गुरु भक्ति सदा करे इससे मनुष्य कल्याण को प्राप्त होता है ॥३०॥ गुरु साक्षात् हरि है, अन्य नहीं ऐसा श्रुति कहते हैं ॥३१॥ श्रुति ने जो कहा है वह सब परमार्थ हो है, इसमें संशय नहीं है इस-लिये श्रुति के विरोध होने पर कुछ भी प्रमाण नहीं है और जो अप्रमाण हो वह प्रमर्षकारी ही होती है ॥३२॥



देह में स्थित को भगवत् और देह से रहित को निष्कल कला से रहित जानना चाहिए। प्राप्त-गुण के उपदेश से जानने योग्य वह सर्वत्र समान स्थित है ॥३३॥ जो हंग हंस इस प्रकार बोलती है। ब्रह्मा, हरि और निव है, वह गुण मुख से सर्वत्र मुख वाले परब्रह्मा को प्रत्यक्ष प्राप्त करता है ॥३४॥ सितियों में जैसे तेल और पुष्प में गन्ध रहता है, इसी प्रकार पुष्प के घरीर में बाहर और भीतर वह स्थित है ॥३५॥ जिन प्रकार लोक में गलीति को हाथ में लेने वाला वस्तु को देख कर उस गलीति को त्याग देता है इसी प्रकार ज्ञान से ज्ञेय को देख कर पीछे ज्ञान को भी त्याग दे ॥३६॥ सब को पुष्प के समान जानने और उसकी गन्ध को कला रहित जानने, सबको दृष्ट ज्ञाने और उसकी छाया को कला रहित ज्ञाने ॥३७॥ निष्कल और सकल भाव सर्वत्र ही स्थित है, कलायुक्त भाव उपाय है और उपाय (प्राप्त होने योग्य वस्तु ब्रह्म) कला रहित है ॥३८॥ कला सहित में सब भाव है, कला रहित में कोई नहीं है। एक मात्रा, दो मात्रा और तीन मात्रा भेद से ॥३९॥ अर्ध मात्रा को परा-उत्तम जानने। उसके ऊपर पर से पर है। पांच प्रकार का पांच देवत वाला सकल पढ़ा जाता है ॥४०॥ ब्रह्माका हृदय स्थान है, विष्णु कंठ में स्थित है, तालूके मध्य में रुद्र स्थित है और मन्त्रक में महेश्वर है ॥४१॥ नासाके अग्र भाग में श्रन्धुनको जानने, उसके श्रन्धुन परमपद है परन्तु पर कोई नहीं है, ऐसा घास्त्र का निर्णय है ॥४२॥ उस देहतीनको नासाके अग्र में बाहर श्रंगुल का ज्ञाने, उनका श्रन्त उसको ज्ञाने, उससे

स्थित प्रभु व्यापक है ॥४३॥ मनको श्रम्य में लगावे, श्रम्यवा नेत्र को श्रम्य पर डालें तो भी योगियों का योग अपरिच्छिन्न ही रहता है ॥४४॥

यह परम गुप्त है, यह परम गुप्त है। इससे बढ़कर और कुछ नहीं है, इससे बढ़ कर और गुप्त नहीं है ॥४५॥ शुद्ध ज्ञान रूपी श्रम्य को प्राप्त करके परम श्रम्य का निर्णय होता है, गुप्त से भी श्रम्यन्त गुप्त को प्रयत्न करके ग्रहण करना चाहिए ॥४६॥ यह श्रम्य जो पुत्र न हो उसको न देना चाहिए, जो सिष्य न हो उसको कभी न देना चाहिए। गुरुदेव के भक्त, निरय भक्ति परायण को ॥४७॥ यह शास्त्र देना चाहिए, दूसरे को नहीं देना चाहिए, यदि दे तो इसका दाता नरक को जाता है कभी सिद्धि नहीं प्राप्त होती ॥४८॥

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ श्रम्यवा संन्यासी हो वह कहीं भी रहता हो वह श्रम्य ब्रह्म को जानने वाला जानी ही है ॥४९॥

इस शास्त्र के ज्ञान से सब श्रम्यवाओं में विषयों में श्रासक्त विषयो मनुष्य भी दूसरे देह में शुभ को प्राप्त होता है ॥५०॥ ब्रह्म हरया और श्रम्यवादि के पुष्प और पापों से लिस नहीं होता। प्रेरक, बोधक और मोक्ष देने वाले श्रेष्ठ समर्थ गये हैं ॥५१॥ संसार में इस प्रकार इन तीनों प्रकार के माचार्यों को जानने, प्रेरक मार्ग दिखलाता है, बोधक स्थान पर बनाता है ॥५२॥ मोक्ष



देने वाला परम तत्त्व है, जिसको ज्ञान कर परमात्मा को प्राप्त होता है ।

हे गौतम ! देह में प्रत्यक्ष पूजन को संक्षेप से सुन ॥१३॥ इस पूजन को करने से इह मनुष्य सनातन अव्यय पद को प्राप्त होता है और मयं ही देह में कला रहित बिन्दु को देखता है ॥१४॥ हे वत्स ! दोनों श्रयणों के समान दिन रात्रि में प्रथम रेचक; पूरक और कुम्भक प्राणायाम को करके मार्ग जानने वाला नदा देखता है ॥१५॥ प्रथम दोनों का उच्चारण करके यथाक्रम से पूजन करे, नमस्कारसे, योगसे और मुद्रासे आरम्भ करके अर्चन करे ॥१६॥ हे वत्स ! सूर्य का ग्रहण प्रत्यक्ष यजन कहा गया है । जैसे जल में जल इसी प्रकार ज्ञान से ही सायुज्य कहा है ॥१७॥ योगाभ्यास का श्रम करने से इतने गुण वर्तते हैं । इसनिये योग करके सब दुःखों को बाहर करके ॥१८॥ हंस मंत्र का उच्चारण करता हुआ योग रूप ध्यान करके ज्ञान की तन्मयता को प्राप्त करे । ज्ञान में परम स्वरूप को प्राप्त होता है ॥१९॥ प्राणियों के देह के मध्य में अच्युत हंस सदा स्थित है । हंस परम सत्य है, हंस ही शक्ति वाला है ॥२०॥ हंस ही परम वाक्य है, हंस ही वेदों का सार है, हंस ही परम खड्ग है, हंस ही पर से पर है ॥२१॥

सब देवों के मध्य में स्थित हंस ही महेश्वर है । पृथिवी से लेकर शिव पर्यन्त और अकारादि वर्णों से ॥२२॥ 'क्ष' कार तक हंस ही मात्राओं के समान स्थित है, मात्रा रहित मंत्र का

कहीं भी उपदेश नहीं दिया जाता ॥२३॥ हंस रूप उपमा रहित ज्योति देवों के मध्य में स्थित है । दक्षिण की तरफ मुंह करके ज्ञान मुद्रा धारण करे ॥२४॥ और हंस मंत्र का स्मरण करता हुआ सदा समाधि करे । निर्मल स्कटिक के आघार वाले परम उत्तम दिव्य रूप ॥२५॥ मध्य देश में ज्ञान मुद्रा वाले आराम रूप, परमहंस का स्मरण करे । प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, वायु ॥२६॥ पांच कर्मेन्द्रियों से युक्त होकर क्रिया शक्ति और बल वाले होते हैं । नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय ॥२७॥ पांच ज्ञानेन्द्रियों से युक्त होकर ज्ञान शक्ति और बल वाले होते हैं । शक्ति में अग्नि और नाभि चक्र में सूर्य स्थित है ॥२८॥ प्रथम बंध मुद्रा करे, नासिका के श्रय और अपने नेत्रों में अकार में अग्नि कहा है, उकार में अग्नि हृदय में स्थित है ॥२९॥ मकार में और त्रिकुटियों के मध्य में प्राण शक्ति को लगावे । ब्रह्म ग्रन्थि अकार में और विष्णु ग्रन्थि हृदय में स्थित है ॥३०॥ खड्ग ग्रन्थि त्रिकुटियों के मध्य में अक्षर वायु भेदन की जाती है । अकार में ब्रह्मा स्थित है, उकार में विष्णु स्थित है ॥३१॥ मकार में खड्ग स्थित है, उसके अन्त में पर से पर है । कण्ठ को सकोड़ कर नाड़ी आदि जिसकी शक्ति से अचल हो जाती है ॥३२॥ बिद्धा को दवाकर सोलह आघार वाली, ऊपर जाने वाली, तीन शिखर वाली, तीन प्रकार की, ब्रह्मरंध्र में जाने वाली अत्यन्त सूक्ष्म उस सुषुम्ना नाड़ी को तथा ॥३३॥ त्रिशंख, वज्ररूप रश्मिकार



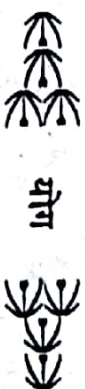
रूप, ऊर्ध्व माल वाली, भ्रुकुटियों की तरफ जति वाली कुण्डली और प्राणों को चला कर, चन्द्र मण्डल को भेदन करके ॥७४॥ वज्रकुम्भ का साधन करते हुये नी द्वातों को बन्द करे । प्रीति पूर्वक निर्गुण मन को पवन पर आरुढ़ करे ॥७५॥ तो ब्रह्म स्थान में नाद होवे और शांति की नाडी अमृत वषति वाली होवे । षट्चक्र मण्डल के भेदन करने से ज्ञान दीपक प्रकाशित होता है ॥७६॥ सब भूतों में स्थित देव सबके ईश्वर का नित्य पूजन करे । उस आत्म रूप, ज्ञान रूप, रोग रहित को देख कर ॥७७॥ सर्व व्यापक माया रहित को दिव्य रूप से देखता हुआ 'हंस-हंस' इस वाक्य को बोले, प्राणियों के देह में स्थित वह प्राण और अपान की ग्रन्थि भ्रजपा कहलाती है ॥७८॥ सदा इक्षीस हजार छः सौ उच्चारण करता हुआ हंस सोऽहम् कहलाता है ॥७९॥ कुण्डली के पूर्व भाग में भ्रवोलिंग का, शिखा में पश्चिम लिंग का, भ्रुकुटियों के मध्य में ज्योतिर्लिंग का यती नित्य ध्यान करे ॥८०॥ मैं अभ्युत हं, मैं भर्चिर्य हं, मैं तर्क में न आऊँ ऐसा हं, मैं भ्रजन्मा हं, मैं प्राण रहित हं, मैं काया रहित हं, मैं भ्रजों से रहित हं, मैं भय रहित हं ॥८१॥ मैं अशब्द हं, मैं अरूप हं, मैं स्पर्श रहित हं । मैं अद्वय हं, मैं रस रहित हं, मैं गन्ध रहित हं, मैं अनादि अमृत हं, ॥८२॥ मैं नाश रहित हं, मैं लिंग रहित हं, मैं भ्रजर हं, मैं कला द्रवित हं । प्राण रहित हं, मैं अमृत (गुणा नहीं) हं, मैं भर्चिर्य हं, मैं भ्रक्ति हं ॥८३॥ मैं अन्तर्यामी हं, मैं पकड़ने योग्य नहीं हं, मैं कथन न करने योग्य

और लक्षण रहित हं । मैं योग रहित हं, मैं गात्र रहित हं, मैं चक्षु रहित हं, मैं वाणी रहित हं ॥८४॥ मैं अदृश्य हं, मैं वर्य रहित हं, मैं अक्षण्ड हं, मैं अक्षुत हं, मैं न मुना हुआ हं, न देखा हुआ हं, मैं खोजने योग्य हं, मैं अमर हं ॥८५॥ मैं वायु रहित, आकाश रहित, तेज रहित, अव्यभिचारि हं, मैं न माना हुआ हं, न जन्मा हुआ, अति सूक्ष्म अविकारी हं ॥८६॥ मैं रजोगुण तमोगुण रहित हं, सत्तोगुण रहित, गुण रहित हं, मैं माया रहित अनुभव स्वरूप हं, मैं अनन्य भविष्य हं ॥८७॥ मैं अद्वैत हं, मैं अपूर्ण हं, मैं बाहर रहित हं, मैं भीतर रहित हं, मैं श्रोत रहित हं, मैं अदीर्घ हं, मैं टुकड़ा रहित हं, मैं रोग रहित हं ॥८८॥ मैं अद्वय आनन्द रूप विज्ञान घन हं, मैं विकार रहित हं । मैं इच्छा रहित हं, मैं लेप रहित हं, मैं अद्वय भर्कर्ता हं ॥८९॥ मैं अविद्या के कार्य से रहित हं, वाणी और रसना का भविष्य हं । मैं अल्प नहीं हं, मैं शोक रहित हं, मैं विकल्प रहित और विषय अग्नि रहित हं ॥९०॥ मैं आदि, मध्य और अन्त से रहित हं, मैं आकाश के समान हं, मैं आरम चेतन्य रूप हं, मैं आनन्द चेतन घन हं, ॥९१॥ मैं आत्म संस्था हं, आनन्द अमृत रूप हं, मैं भीतर हं, मैं आत्मकाम हं, मैं आकाश से परम आत्मा ईश्वर हं ॥९२॥ मैं ईशान हं, मैं पूज्य उत्तम पुरुष हं, मैं उच्छिष्ट हं, मैं उपद्रष्टा हं, मैं पर से पर हं ॥९३॥ मैं केवल हं, कवि हं, कर्म का अव्यय और कारण का अविध्वंसित हं, मैं गुप्त आश्रय हं, गुप्त रखने वाला हं, मैं नेत्रों का नेत्र



है ॥६४॥ मैं चित् आनन्द है, चेतनता देने वाला, चिद्वत्, चिन्मय है। मैं ज्योतिमय है, मैं उत्तम ज्योतियों में ज्योति है ॥६५॥ मैं अंधेरे का साक्षी है, मैं अंधेरे से पर तुर्य का तुर्य है, मैं दिव्य देव है, मैं दुर्दर्श, दृष्टि का आधार ध्रुव है ॥६६॥ मैं नित्य है, मैं दोष रहित है, मल रहित और किया रहित है। मैं निर्मल और निर्विकल्प है, निश्चल और नाम रहित है ॥६७॥ मैं निर्विकार, नित्य पवित्र, निर्गुण और स्पृहा रहित है, मैं इन्द्रिय रहित नियामक है, मैं कला रहित और अपेक्षा रहित हूं ॥६८॥ मैं पुरुष परमात्मा है, मैं परम पुराण हूं, मैं आर पार हूं, मैं प्राज्ञ प्रपंच का नाश करने वाला है ॥६९॥ मैं परम अमृत है, प्राचीन पूर्ण प्रभु है, मैं पूर्ण आनन्द एक बोध रूप हूं, मैं प्रत्यक्ष एक रस हूं ॥१००॥ मैं प्रज्ञाता हूं, मैं प्रशान्त, प्रकाश, परमेश्वर हूं, मैं द्वैत अद्वैत से विलक्षण एक प्रकार से चितवन करने योग्य हूं ॥१०१॥ मैं बुद्ध हूं, मैं भूतपाल हूं, मैं प्रकाश रूप भगवान् है, मैं महान् महाज्ञेय महेश्वर हूं ॥१०२॥ मैं विमुक्त हूं, मैं विशुद्ध, श्रेष्ठ और व्यापक हूं, वैश्वानर, वासुदेव विश्व का चक्षु हूं ॥१०३॥ मैं विश्व से अधिक हूं, निर्मल विष्णु विश्व का करने वाला हूं, मैं शुद्ध हूं, लूकल शान्त हूं, शाश्वत हूं, शिव हूं ॥१०४॥ मैं सब भूतों का आंतरात्मा सनातन हूं। मैं अपनी महिमा में सदा स्थित एक साथ प्रकाशित हुआ हूं ॥१०५॥ मैं सब का आन्तर, ज्योति सबका अधिपति हूं, मैं सब भूतों का निवास स्थान हूं, मैं सर्व व्यापक स्वयं राजा हूं ॥१०६॥ सबका

साक्षी, सबका आत्मा सब भूतों का गुहालय ॥ सब इन्द्रियों और गुणों का प्रकाश, सब इन्द्रियों से रहित हूं ॥१०७॥ मैं तीनों स्थानों से शरीर हूं, मैं सब पर अनुग्रह करने वाला हूं। मैं सच्चिदानन्द, पूर्ण आत्मा सबके प्रेम का विषय हूं ॥१०८॥ मैं सन्मात्र सिद्ध और सबका आत्मा हूं ॥१०९॥ अधिष्ठान, सन्मात्र, स्वआत्मा के बंध को हरने वाला हूं। मैं सबका प्राप्त करने वाला हूं, मैं सबका द्रष्टा और सबका अनुभव हूं ॥११०॥ जो इस प्रकार तत्त्व से जानता है, वह ही पुरुष कहलाता है, यह उपनिषत् है ॥



योग



## योग तत्त्वोपनिषत् ।

[ २१ ]

योगियों के हित की इच्छा से मैं योग तत्त्व को कहता हूँ, जिसके सुनने और पढ़ने से मत्र पापों से छूट जाता है ॥१॥ सब भूतों का आदि भगवान् विष्णु ही महान तपस्वी और महा योगी है । वह पुरुषोत्तम योग मार्ग में दीपक के समान दिखार्द देता है ॥२॥ पितामह ब्रह्मा ने उस जगन्नाथ की आराधना करके और नमस्कार करके पूछा “आयुग सहित योग तत्त्व मुझमें कहिये” ॥३॥ उससे हृषीकेश भगवान् ने कहा मैं तत्त्व को कहता हूँ, सुनः—

सब जीव सुख दुःख के माया जाल से घिरे हुए हैं ॥४॥ उनकी मुक्ति करनेवाला माया जालको काटनेवाला, जन्म, मृत्यु जरा और व्याधि का नाश करने वाला और मृत्युसे पार करनेवाला यही मार्ग है ॥५॥ केवल्य परम पद अनेक मार्ग करके कठिनाई में प्राप्त होने योग्य है, ( कर्मांक ) शास्त्र जाल में पड़े हुआ की बुद्धि उससे मोहित है ॥६॥ स्वात्म प्रकाश रूप अकथनीय पद को देवता भी नहीं कह सकते तो उसका शास्त्र से किस प्रकार प्रकाश किया जाय ॥७॥ कला रहित, मल रहित, शांत, सर्वस पर उग्रद्व रहित ऐसा वह ही जीव रूप होने से पुण्य और पाप के फलों से युक्त होता है ॥८॥

वह परमात्मा पद, नित्य, सर्व भाव और पदसे असीत, ज्ञान रूप, माया रहित है, तो वह किस प्रकार जीवत्व को प्राप्त हुआ ? ॥९॥

जलके समान उसमें से स्फुरन हुआ, उस ( स्फुरन ) में से अहंकार उत्पन्न हुआ, और पांच महा भूत रूप, धातु से वंधा हुआ, गुण रूप पिंड हुआ ॥१०॥ सुख दुःख से युक्त होकर जीने की भावना करने लगा इसलिये पंडितों ने परमात्मा में जीव भाव कहा है ॥११॥ काम, क्रोध, भय, मोह, लोभ, मद, रजोगुण, जन्म मृत्यु, दुःखता, शोक, तन्त्रा, भूख, प्यास, ॥१२॥ तुषणा, लज्जा, भय, दुःख, विषाद और हर्ष, इन दोषों से छुटा हुआ वह जीव केवल माना गया है ॥१३॥ इसलिये दोष के नाश करने के लिये मैं तुम्हें उपाय बताता हूँ । योग रहित ज्ञान किस प्रकार अवल मोक्ष को देने वाला हो ? ॥१४॥ ज्ञान रहित योग भी मोक्ष करने में समर्थ नहीं है । इसलिये मुमुक्षु ज्ञान और योग का दृढ़ अभ्यास करे ॥१५॥ अज्ञान से ही संसार है, ज्ञान से ही निवृत्त होता है । आदि में ज्ञान स्वरूप ही है, और ज्ञान ही ज्ञेयका एक मात्र साधन है ॥१६॥ जिस करके केवल्य, परमपद, कला रहित, निर्मल, साक्षात् सच्चिदानन्द रूप, उत्पत्ति स्थिति संहार और पुराण के ज्ञान से रहित, अप्रपन्ना रूप जाना जाय वह ज्ञान कहलाता है । अब मैं तुम्हें योग कहता हूँ ॥१७-१८॥



हे ब्रह्मा ! व्यापार के भेदसे योगके बहुत से भेद हैं मंत्रयोग, लययोग हठ और राजयोग ॥१९॥ आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति ये योग की अवस्थाएँ सर्वत्र की गई हैं ॥२०॥ हे ब्रह्मा ! इनके लक्षण मैं संक्षेप से कहता हूँ, सुतः—जो मात्रा युक्त बारह सौ मंत्र जपे ॥२१॥ वह कम से अष्टिमा आदि गुण युक्त ज्ञानका प्राप्त करता है। इस योग को अल्प बुद्धि मन्द साधन करता है ॥२२॥ चित्त का लय रूप लययोग करोड़ों प्रकार का कहि गया है। चलते, बैठते, सोते, खाते, कला रहित ईश्वर का ध्यान करे ॥२३॥ वह ही लययोग है। अब हठयोग सुन। यम, नियम आसन, प्राणों का संयम ॥२४॥ प्रत्याहार, धारणा और भ्रुकुटी मध्य में हरि का ध्यान, समाधि—समतावस्था यह अष्टांग योग कहलाता है ॥२५॥ महामुद्रा, महाबन्ध, महा वेध और खेचरी, जालंधर, उड्डियाण और मूलबन्ध ॥२६॥ दीर्घ प्रणव का अनुसंधान, परम सिद्धांतका ध्वन, वज्रोत्तोलो भ्रमरोत्तोल और सहजोत्तोल तीन प्रकार की मानो गई है ॥२७॥ हे ब्रह्मा ! इनमें प्रत्येक के ठीक २ लक्षण सुन।

यमों में एक सूक्ष्म आहार ही मुख्य है, अन्य नहीं ॥२८॥ हे चतुरानन ! निमनों में एक अहिंसा ही मुख्य है। सिद्ध, पद्म, सिंह और भद्र ये चार आसन हैं ॥२९॥ हे चतुरानन ! प्रथम अभ्यास काल में विघ्न होते हैं। आलस्य, अपनो बढ़ाई करना, हर्षपने की बातें, मंत्र आदि साधन ॥३०॥ धातु और लो की लोलुपता आदिक को बुद्धिमान् मृग तृष्णा और रोग जान कर

इन सब विघ्नों को पुण्य के अभाव से त्याग दे ॥३१॥ फिर स्वयं पद्मासन बैठकर प्राणायाम करे। सूक्ष्म द्वार वाला छिद्र रहित सुन्दर मठ बनावे ॥३२॥ सुन्दर गोबर से लिपा हुआ प्रयत्न पूर्वक निर्मल किया हुआ हो। खटमल, मच्छर, और मकड़ी से रहित हो और प्रयत्न पूर्वक ॥३३॥ दिन प्रतिदिन भाड़ कर शुद्ध किया जाय और विशेष करके धूप गुगल आदि सुगन्धों से सुगन्धित किया जाय ॥३४॥ मृगचर्म, वस्त्र और कुशा के न अत्यन्त ऊँचे और न अत्यन्त नीचे आसन पर बुद्धिमान् पद्मासन से बैठ कर ॥३५॥ सीधा शरीर कर, हाथ जोड़, इष्ट देवता को नमन करे। फिर दक्षिण हाथ के अंगुठे से पिंगला (नाड़ी) को ॥३६॥ रोक कर इडा नाड़ी से धीरे-धीरे वायु को भरे। फिर यथा शक्ति विरोध रहित कुम्भक करे ॥३७॥ फिर धीरे से पिंगला को छोड़े वेग से नहीं। फिर पिंगला से वायु खँचकर धीरे-धीरे उदर को भर ॥३८॥ यथा शक्ति धारण करके इडा से धीरे-धीरे निकाले। जिससे छोड़े उसीसे भर के विरोध रहित धारण करे ॥३९॥ न शीघ्र न विलम्ब से जानु की प्रदक्षिणा करके चुटक। बजावे इतने काल को मात्रा कहते हैं ॥४०॥ इडा द्वारा सोलह मात्रा से धीरे-वायु को भरकर, कुम्भक करे पोछे चौसठ मात्रा तक कुम्भक करे ॥४१॥ फिर पिंगला नाड़ी से बत्तीस मात्रासे निकाले। पिंगला से भर कर पूर्व के समान सावधान होकर ॥४२॥ सवेरे, दोपहर संध्या और आधी रात को चार बार धीरे-२ भस्सी कुम्भकों तक का अभ्यास करे ॥४३॥ इस प्रकार तीन मास के अभ्यास से



नाड़ियों की शुद्धि हो जाती है। जब नाड़ियों की शुद्धि होजाती है तब जो बाहर के चिन्ह ॥४४॥ योगी की देह में उत्पन्न होते हैं, उन सब को कहता है। शरीर का हल्कापन, कांति, जठराग्नि का बढ़ना ॥४५॥ तथा तब शरीर की कृपता अवश्य होती है। योग में विघ्न करने वाला आहार श्रेष्ठ योगी को वर्जित है ॥४६॥ तमक सरसों, खट्टा, उष्ण, रूखा और तीक्ष्ण पदार्थ, हरा शाक, हींग आदि अग्नि, स्थी, मार्ग का सेवन ॥४७॥ मवेरे का स्नान, उवास और काया के क्लेशों का योगी त्याग दे। अभ्यास काल में प्रथम दूध घी के भोजन श्रेष्ठ हैं ॥४८॥ गेहूँ, मूँग और चावल को योगी वृद्धि करने वाला जाने। ऐसा करने से वायु धारण करने में इच्छा-नुसार समर्थ होता है ॥४९॥ इच्छानुसार वायु धारण करने से केवल कुम्भक सिद्ध होता है। रेचक पूरक रहित केवल कुम्भक सिद्ध होने पर ॥५०॥ उसको तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। प्रथम पसीना आता है, उसको मल लेवे ॥५१॥ फिर क्रम से धीरे-धीरे वायु धारण करने से आसन पर स्थित देहो के देह में कम्प होता है ॥५२॥ फिर अधिक अभ्यास करने से मेंडक का सा शब्द होता है, जिस प्रकार मेंडक उछल २ कर चलता है ॥५३॥ पचासन से बँठा हुआ योगी तब भूतल में जाता है। उससे अधिक अभ्यास से भूमि का त्याग हो जाता है ॥५४॥ पचासन से बँठा हुआ वह भूमि छोड़कर वर्तता है और मनुष्य से न होने योग्य चेष्टा आदि करने का सामर्थ्य उत्पन्न होता है ॥५५॥ योगी अपना सामर्थ्य किसी को दिखावे नहीं, स्वयं अपने आप देखे

तो उससे अधिक उत्साह बढ़ता है। फिर वह योगी थोड़े या बहुत दुःख से पीड़ा को नहीं प्राप्त होता ॥५६॥ अल्प मल मूत्र धाला और अल्प निद्रावाला हो जाता है कीचड़, नजला, लार, पसीना और मुख में दुर्गन्ध ॥५७॥ ये सब इसके पीछे उसको किसी प्रकार से नहीं होते।

उससे अधिक अभ्यास करने से बहुत बल उत्पन्न होता है ॥५८॥ जिसको भूचर सिद्धि होजाती है, भूचरों पर जय प्राप्त करनेको समर्थ होता है। व्याघ्र, शरभ हाथी अथवा गवय ॥५९॥ अथवा सिंह उस योगी के हाथ से ताड़न किये हुए मरजाते हैं। काम देव के समान योगी कारूप होजाता है ॥६०॥ उसके रूप वश होकर स्त्रियां उसके संगम को इच्छा करती हैं। यदि यह संगम करे तो उसका बिन्दु क्षय हो जाता है ॥६१॥ स्त्रियों का संग छोड़ कर आदर से अभ्यास कर। बिन्दु को धारण करने से योगी के अंग में सुगन्ध उत्पन्न होता है ॥६२॥ तब एकांत में बैठ कर पूर्व किए हुए पापों के नाश करने के लिये प्लुत मात्रा से प्रणव को जपे ॥६३॥ प्रणव मंत्र सब विघ्नों और सब दोषों का हरने वाला है। इस प्रकार अभ्यास योग से आरम्भ ही में सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥६४॥ तब पवन के अभ्यास परायण होने से घटावस्था होती है। प्राण, अपान, मन, बुद्धि तथा जीवात्मा और परमात्मा ॥६५॥ इनके एक दूसरे के अविरोध से जब एकता घटती है। तब वह घटावस्था कहलाती है; मैं उसके चिह्न कहता है ॥६६॥



जो पूर्व में अभ्यास कहा है, उसका चौथा अंश ग्रहण करे। दिन में या रात में एक पहर मात्र अभ्यास करे ॥६७॥ प्रति दिन एकवार केवल कुम्भक करे। योगी कुम्भक में स्थित होकर इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से जो भली प्रकार खींच लेता है वह प्रत्याहार कहलाता है जो जो नेत्रों से देखे उस उसको 'वह आत्मा ही है' इस प्रकार भावना करे ॥६८-६९॥ जो कर्णों से सुने उस उसको 'वह आत्मा है' इस प्रकार भावना करे। जो जो नासिका से प्राप्त करे उस उसको 'वह आत्मा है' ऐसी भावना करे ॥७०॥ जिह्वा से जो जो रस खावे उस उसको वह आत्मा है' ऐसी भावना करे। त्वचा से योगी जिस २ को छुये उस २ को 'वह आत्मा है' ऐसी भावना करे ॥७१॥ इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों के उन २ सुखों को योगी प्रति दिन एक पहर तक आलस्य रहित प्रयत्न पूर्वक साधन करे ॥७२॥ ज्यों २ योगी के चित्त का सामर्थ्य दृढ़ होता जाता है, त्यों २ दूरका सुनना, क्षण में तेर से आना तथा ॥७६॥ वचन सिद्ध, काम रूपपना, अदृश्य हो जाना तथा मल मूत्र लेपन करने से लोहे आदिका सोना हो जाना ये सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं ॥७४॥ सदा अभ्यास के योग से उस की आकाश में गति हो जाती है। बुद्धिमान् योगी को योग की सिद्धि के लिये सदा भावना करनी चाहिए ॥७५॥ सिद्धि में ये विघ्न होते हैं, बुद्धिमान् उनमें प्रीति न करे। योगीराज अपने सामर्थ्य को हर किसी को न दिखलावे ॥७६॥ जैसे मूढ़, मूर्ख अथवा बहिरा होता है इसी प्रकार लोगों से अपने सामर्थ्य के

गुप्त रखने को वर्ते ॥७७॥ शिष्य अपने अपने कार्य के लिये प्रार्थना करते हैं, इसमें संशय नहीं है परंतु उस २ कर्म के करने में व्यग्र होने से अपने अभ्यास को न भूल जावे ॥७८॥ गुरु के वाक्य को न भूल कर दिन रात अभ्यास करे। इस प्रकार सदा अभ्यास के योगसे घटावस्था होती है ॥७९॥ विज्ञा अभ्यास किये वृथा बातों से सिद्धि नहीं होती। इसलिये प्रयत्न पूर्वक सदा योग का अभ्यास करे ॥८०॥ फिर अभ्यास योग से परिचय अवस्था होती है। यत्न से अग्नि और कुंडली सहित वायु का परिचय करके ॥८१॥ भावना करके सुषुम्ना में हठ रहित प्रवेश करे। वायु के साथ चित्त को महापथ (सुषुम्ना) में प्रवेश करे ॥८२॥

जिसका चित्त और पवन सुषुम्ना में प्रवेश करता है उसके लिये भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश ॥८३॥ इन पांचों में देवताओं की पांच प्रकार की धारणा कही जाती है। पैर से जानु तक पृथिवी का स्थान कहलाता है ॥८४॥ पृथिवी चार कोण वाली, पीले रंग की और 'ल' वर्ण वाली है, पृथिवी में वायु को आरोप कर के लकार से युक्त हो कर ॥८५॥ सुवर्ण के रंग वाले चार भुजा वाले और चार मुख वाले ब्रह्मा का ध्यान करता हुआ पांच घड़ी तक धारणा करे तो पृथिवी पर जय प्राप्त होता है ॥८६॥ पृथिवी के योग से उस योगी का मृत्यु नहीं होता। जानु से गुदा पर्यन्त जल का स्थान कहा है ॥८७॥ जल अर्ध चन्द्र



वाना शुक्ल और 'वं' बीज वाला कहा गया है। जल में वायु का आरोप कर के वकार से युक्त हो कर ॥८८॥ चार भुजा वाले, शुद्ध स्फटिक के समान तथा पीले वस्त्र वाले, अच्युत नारायण देव का स्मरण करता हुआ ॥८९॥ पांच घड़ी तक धारणा करे तो सब पापों से अत्यन्त मुक्त हो जाता है। फिर जल से भय नहीं होता, न जल से मृत्यु होता है ॥९०॥ गुदा से ले कर हृदय पर्यन्त अग्नि का स्थान कहा है। अग्नि तीन कोण वाला, लाल, 'रक्' अक्षर से उत्पन्न हुआ है ॥९१॥ अग्नि में वायु का आरोप करके 'र' अक्षरसेयुक्त दीप्तिमान् तीन नेत्रवाले, वर देने वाले तरुण सूर्य के समान प्रकाश वाले, सब ग्रंथ में भस्म लगाये हुए, अत्यन्त प्रसन्नता वाले रुद्र का स्मरण करते हुए पांच घड़ी तक धारणा करे वह अग्नि से जलाया नहीं जाता ॥९२-९३॥ उनका शरीर अग्नि मंडल में प्रवेश करने पर भी नहीं जलता। हृदय से लेकर भ्रुकुटी मध्य तक वायु का स्थान कहा है ॥९४॥ वायु छः कोण वाला, कृष्ण, यकार अक्षर से प्रकाशित है। महर्षों के स्थान में यकार अक्षर से प्रकाशित मान्य है ॥९५॥ वहां विष्वतोमुख सर्वज्ञ ईश्वर की धारणा करे। पांच घड़ी तक धारणा करने से वायु के समान आकाश में जाने वाला होवे ॥९६॥ उस योगी को वायु से भय अथवा मरण नहीं होता। भ्रुकुटी के मध्य से नूर्धा के अन्त तक आकाश का स्थान कहा गया है ॥९७॥ आकाश गोल, घुमां रूप और हुकार अक्षर से प्रकाशित है, आकाश में वायु का आरोप

करके हुकार के ऊपर शंकर ॥९८॥ जो विन्दु रूप महादेव है, व्योम के आकार वाले सदाशिव है, शुद्ध स्फटिक के समान है, द्विज का चन्द्रमा मस्तक पर धारण किये हुए है ॥९९॥ पांच मुख वाले, सौम्य, दश भुजा वाले, तीन नेत्र वाले, सब अन्न धारण किये हुए, सब भूषणों से भूषित ॥१००॥ पार्श्वों के अर्ध देह वाले, सब कारणों के कारण हैं, उनको आकाश में धारणा करने से निश्चय आकाश में चलने की गति होती है ॥१०१॥ जहाँ कहीं भी टिका हुआ अत्यन्त सुखको भोगता है।

इस प्रकार बुद्धिमान् योगी पांच प्रकारको धारणा करे ॥१०२ तब शरीर दृढ़ होजाता है, उसका मृत्यु नहीं होता और वह महा-मति ब्रह्मा के लय होने पर भी दुःखी नहीं होता ॥१०३॥ छः घड़ी तक वायुको आकाश में रोक कर इष्ट सिद्धि देने वाले देवताओं का इस प्रकार ध्यान करे ॥१०४॥ सगुण ध्यान करने से अणिमा आदिक सिद्धियां प्राप्त होती हैं। निर्गुण ध्यान युक्तको उससे समाधि होती है ॥१०५॥ बारह दिन में ही समाधि को प्राप्त करे यह बुद्धिमान् वायु को रोक कर जीवन्मुक्त होता है ॥१०६॥ जीवात्मा और परमात्मा को समान अवस्था समाधि है। यदि अपनी देह को छोड़ने की इच्छा होतो स्वयं छोड़ देवे ॥१०७॥ परब्रह्म में लय होने से फिर उसका उत्थान नहीं होता। यदि अपना शरीर प्रिय हो तो उसे न छोड़े ॥१०८॥ अणिमादि सिद्धियों से युक्तमव लोको में विहार करता हुआ, कभी अपनी इच्छासे देव होकर स्वर्ग में महत्त्वता को प्राप्त होता है ॥१०९॥ अपनी इच्छाअथवा विचारसे



ही मनुष्य अथवा पक्ष हो जाता है, सिंह व्याघ्र हाथी अथवा घोड़ा होकर अपनी इच्छा से ही अनेकता को प्राप्त हो जाता है ॥११०॥ महेश्वर योगी अपनी इच्छानुसार वर्तित्व करता है ।

अभ्यास के भेद से भेद है, फल तो समान ही है ॥१११॥ वार्ये पैर की एड़ी को योगि स्थान में लगावे । दाहिने पैर को पसार कर हाथों से दृढ़ पकड़े रहे ॥११२॥ ठोड़ी को छाती पर रख फिर वायु से पूर्ण करे । कुम्भक से यथाशक्ति धारण करके रेचन करे ॥११३॥ वार्ये ग्रंग से अभ्यास करके फिर दार्ये ग्रंग से अभ्यास करे । जो पैर फैलाया हुआ था उसको जांघ पर मुकावे ॥११४॥ यह ही महाबंध है, उसको दोनों तरफ से अभ्यास करे । महाबंध में स्थित योगी एकाग्र बुद्धि से पूरक करके ॥११५॥ कण्ठ मुद्रा से धारण किये हुए वायु की गति को रोक कर दोनों नथनों का संकोच करने से वायु शीघ्र भर जाता है ॥११६॥ यह ही महावेध सिद्धि से नित्य अभ्यास किया जाता है । कपाल के भीतर के छिद्र में जिह्वा को उलट कर धारण करे ॥११७॥ और अकुटी के मध्य में दृष्टि रखे, यह त्रैचरी मुद्रा होती है । कण्ठ को सकोड़ कर दृढ़ बुद्धि से छाती पर रखे ॥११८॥ यह जालंधर नाम का बंध मृत्यु रूपी हाथी के लिये सिंह है । जिससे बंधा हुआ प्राण सुषुम्ना में उड़ जाता है ॥११९॥ इसलिये इसको योगियों ने उडुपान बंध कहा है । एड़ी के भाग से योनी को भली प्रकार दबाकर संकोच करे ॥१२०॥ अपान को ऊपर उठाना योगि-बंध कहलाता है । प्राण और

अपान तथा नाद और बिन्दू मूल बंध से एकता को ॥१२१॥ प्राप्त होने से योग की सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है । विपरीता नाम की करणी सब व्याधियों को नाश करने वाली है ॥१२२॥ नित्य अभ्यास कराने वाले की-जठराग्नि को बढ़ाने वाली है और उस सार्धक का आहार बढ़ाने वाली है ॥१२३॥ यदि थोड़ा आहार हो तो उसी क्षण अग्नि देह को नाश करे । प्रथम दिन क्षण भर नीचे की धिर और ऊपर की पैर वाला होवे ॥१२४॥ और क्षण से कुछ अधिक प्रतिदिन अभ्यास बढ़ावे । तो तीन मास में भुरियां और वालों की सफेदी नहीं दिखाई देगी ॥१२५॥

जो एक पहर तक नित्य अभ्यास करे तो काल को जीतने वाला होवे । जो योगी वज्रोली का अभ्यास करता है वह सिद्धि का पात्र है ॥१२६॥ यदि ( वज्रोली ) प्राप्त हो जाय तो योग सिद्धि उसके हाथ में ही स्थित है । वह श्रुत भविष्य को जान जावे और निश्चय आकाशचारी होवे ॥१२७॥ जो अमरी का प्रतिदिन पान करे तथा नासिका द्वार नास ले और वज्रोलीका नित्य अभ्यास करे, वह अमरीली कहलाती है ॥१२८॥ तब राजयोग होता है, देर नहीं लगती । जब राज योग द्वारा योगी क्रिया से रहित होते हैं ॥१२९॥ तब उनको निश्चय विवेक और वैराग्य प्राप्त होता है । विष्णु भगवान ही महा योगी, महा ऐश्वर्य वाला और महा तप वाला है ॥१३०॥ तत्त्व मार्ग से



दीपक के समान वह पुरुषोत्तम दिखाई देता है, जो स्तन प्रथम पिपा या उसको ही दवाकर भ्रानन्द भोगता है ॥१३१॥ जिन योनि में से उत्पन्न हुआ था उसी योनि में रमता है। जो माता है वह फिर भार्या और जो भार्या है वह फिर माता होती है ॥१३२॥ जो पिता था वह ही पुत्र होता है और पुत्र पिता होता है। इस प्रकार संचार चक्र द्वारा कृप चक्र में घड़ों के समान ॥१३३॥ नाना योनियों में भ्रमता हुआ भुनकर लोकों को प्राप्त होता है। तीन लोक, तीन वेद, तीन संख्या, तीन स्वर ॥१३४॥ तीन अग्नि, तीन गुण, सब तीन अक्षरों में स्थित हैं, तीनों अक्षर और आधे अक्षर को भी जो योगी पढ़ता है ॥१३५॥ उसमें यह सब प्रोया हुआ है, वह सत्य है, वह परम पद है। पुण्य में जिस प्रकार गन्ध है, दूध में जिस प्रकार घी है ॥१३६॥ जेने तिल में तेल है, जैसे परधर में सोना होता है वैसा वह व्यापक होता है।

हृदय स्थान में कमल स्थित है, उसका मुख नीचे की तन्क है ॥१३७॥ ऊपर डन्डी है, नीचे बिंदु है, उसके मध्य में मन स्थित है। अकार में रेचन किया हुआ कमल उकार से भेदन किया जाता है ॥१३८॥ मकार में नाद को प्राप्त करता है, अमाना निष्कल शुद्ध स्फटिक के समान कला रहित और पाप नाशक है ॥१३९॥ योग युक्त पुरुष उस परम पद को प्राप्त करता है। जिस प्रकार कछुआ अपने हाथ, पैर, सिर आदि को अपने में

धारण करता है ॥१४०॥ इसी प्रकार सब द्वारों में भर कर दवाया हुआ वायु नौ द्वारों के बन्द होने से ऊपर चला जाता है ॥१४१॥ घटमें वायु रहित दीप के समान कुंभक जान। नौ द्वार रोकें हुये होने से निर्जन उपद्रव रहित देश में ॥१४२॥ योग का सेवन करने से केवल आत्म रूप से श्रेष्ठ रहा हुआ है ऐसा निश्चय करके जान यह उपनिषत् है ॥ इति योग तत्त्वोपनिषत् समाप्त ॥



योग





## सुबालोपनिषत् ।

[ २२ ]

“वह क्या था ?” वे विचारने लगे । उससे कहा “वह न सत् था, न अमत् था, उसमें से तम उत्पन्न हुआ, तम में से भूतादि, भूतादि से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि ने जल, जल से पृथ्वी हुई । वह ( पृथ्वी ) अण्ड रूप हुई, उन ( अण्ड ) ने संवत्सर मात्र रह कर अपने दो विभाग किये, नीचे का भाग पृथ्वी और ऊपर का आकाश हुआ मध्य में पुरष हुआ, वह दिव्य पुरुष हजारों विर वाला, हजारों आंखों वाला, हजारों पैर वाला और हजारों भुजाओं वाला था । उसने प्रथम भूतों का मृत्यु उत्पन्न किया, उस तीन अक्षर वाले, तीन विर वाले, तीन पाद वाले और खण्ड परगु वाले को ( देखकर ) ब्रह्मा डरता है । उसने ब्रह्मा में प्रवेश किया, उसने मानसी सात पुत्र उत्पन्न किए । उन सात विराट ने मानसिक मय प्रजा उत्पन्न की, वे ही प्रजापति हुए ब्राह्मण उसके मुख से हुए, भुजाओं से क्षत्रियों को उत्पन्न किया, उसको जंघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए । चन्द्रमा मन से उत्पन्न हुआ, नेत्रों में सूर्य उत्पन्न हुआ, श्रोत्रों से वायु और प्राण हृदय से यह सब उत्पन्न हुआ ॥ इति प्रथम खण्ड समाप्त हुआ ॥१॥

अपान से निषाद, यज्ञ, राक्षस और गन्धर्व, हट्टी से पर्वत, रोमों से श्रोत्राधि और वनस्पति, ललाट से क्रोध रूप रुद्र उत्पन्न

होता है । उस महान् भूत के निष्पात में से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र व्याख्यान, उपव्याख्यान और सब भूत होते हैं । उस हिरण्यज्योति आत्मा में भुवन और विश्व टिके हुए हैं । उसने अपने दो भाग किये, आधे से स्त्री और आधे से पुरुष । देव होकर देवों को उत्पन्न किया, ऋषि होकर ऋषियों को यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, ग्राम और वन के पशुओं को ( इसी रीति से ) उत्पन्न किया । एक गी हुई, दूसरा बेल, एक घोड़ी, दूसरा घोड़ा, एक गधी, दूसरा गधा, एक विश्वम्भरी और दूसरा विश्वम्भर हुआ । अन्त में उसने वैश्वानर होकर सब भूतों को जलाया । पृथिवी जल में लय हुई, जल तेज में लय हुआ, तेज वायु में लय हुआ, वायु आकाश में लय हुआ, आकाश इन्द्रियों में, इन्द्रियां तन्मात्राओं में, तन्मात्रा भूतादि में लय हुई । भूतादि महत् में लय हुए, महत् अव्यक्त में लय हुआ, अव्यक्त अक्षर में लय हुआ, अक्षर तम में लय हुआ और तम परदेव में मिल गया । उससे परे न सत् है, न असत् है, यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है यह वेद का उपदेश है ॥ इति दूसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥२॥

पूर्व में यह असत् ही था । आत्मा उत्पत्ति रहित, भूत रहित प्रतिष्ठा रहित, शब्द रहित, स्पर्श रहित, रूप रहित, रस रहित, गन्ध रहित, व्यय रहित, महान् भाव से रहित, बुद्धि से रहित, जन्म रहित, मान कर धीरे पुरुष शोच नहीं करता । प्राण रहित,



मुख रहित, श्रोत्र रहित, वाणी रहित, मन रहित, तेज रहित, चक्षु रहित, नाम और गोत्र से रहित, शिर रहित, हाथ पंर रहित, चिकनाई रहित, लोह रहित, प्रमाण रहित, न ह्रस्व, न दीर्घ, न स्थूल, न अणु, न अल्प, पार रहित, अकथनीय, न प्राप्त करने योग्य, तर्क रहित, न प्रकाश करने योग्य, न छुपाने योग्य अन्तर रहित, बाह्य रहित, वह न कुछ खाता, है और न कोई उसको खाता है। उसको मृत्यु, दान, उपवास युक्त तप, ब्रह्मचर्य, निर्वेदन ( वैराग्य ) और संन्यास इन छः अंगों ने प्राप्त करे। दम्, दान और दया इन तीनों को धारण करे जो इस प्रकार जानता है, उसका प्राण उत्क्रमण नहीं करता, यहां ही लय हो जाता है। वह ब्रह्म होकर ब्रह्म को ही प्राप्त होता है॥ इति तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

हृदय के मध्य में लाल मांस का पिण्ड है, उसमें वह दहर रूप कमल, कुमुद के समान अनेक प्रकार से खिलता हुआ है। हृदय में दश छिद्र होते हैं, जिनमें प्राण स्थित है। जब वह प्राण से युक्त होता है तब बहुत प्रकार के नदी और नगर देखता है, जब व्यान के साथ युक्त होता है तब देवता और ऋषियों को देखता है और जब अपान के साथ युक्त होता है तब यक्ष, राक्षस और गन्धर्वों को देखता है, जब उदान के साथ युक्त होता है तब देवलोक, देव, स्कन्द और जयन्त को देखता है और जब समान के साथ युक्त होता है तब देवलोक और धनों को देखता है। जब वैरम्भ के साथ संयुक्त होता है तब

देखे हुए, सुने हुए, खोये हुए, न खोये हुए, सत् और असत् सब को देखता है। ये दश दश नाड़ियां होती हैं, उन एक एक की वहतर वहतर शाखा हजार नाड़ियां होती हैं, जिसमें यह आत्मा मोता और शब्दों को करता है। जब वह दूसरे कोश में सोता है तब इस लोक और परलोक को देखता है, सब शब्दों को जानता है, वह संप्रसाद कहलाता है। प्राण शरीर की रक्षा करता है, ठरी, नीली, पीली, लाल और सफेद नाड़ियां अधिर पूर्ण हैं। यहां यह दहर कमल कुमुद के समान अनेक प्रकार से खिलता हुआ है, जैसे केश के हजारों भाग किए हों वैसे ही मूक्षम हिता नाम की नाड़ियां हैं। हृदय आकाश के पर कोश में यह दिव्य आत्मा सोता है, जहां सोया हुआ न किसी कामना की इच्छा करता है, न किसी स्वप्न को देखता है, न वहां देव, न देवलोक, न अयज्ञ, न यज्ञ, न माता, न पिता, न वन्धु न सम्बन्धी, न चोर, न ब्रह्म हत्यारा, तेजःपुञ्ज अमृत स्वरूप जल में जैसे जल मग्न हो वैसे है। फिर उस मार्ग से सम्प्राप्त ( आत्मा ) जाग्रत में दीड़ता है" इस प्रकार उसने कहा॥ इति चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥४॥

जो स्थानियों को स्थान देता है, स्थान, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, चक्षु अथात्म है, द्रष्टव्य अधिभूत है और आदित्य अधिदेवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो चक्षुश्रोत्रों में, जो द्रष्टव्य में, जो आदित्य में, जो नाड़ियों में जो प्राण में, जो विज्ञान—बुद्धि में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में है, जो इन



सर्वके भीतर धूमता है सो यह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे । श्रोत्र अध्यात्म है, श्रोतव्य अधिभूत है, दिशा उनमें अधिदेवत है, नाड़ी उनमें सम्बन्ध वाली है, जो श्रोत्र में, जो श्रोतव्य में, जो दिशाश्रो में, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो बुद्धि में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में है, जो इन सर्वके भीतर धूमता है, सो यह आत्मा है उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित अनन्त आत्मा की उपासना करे । नासिका अध्यात्म है, धातव्य अधिभूत है, पृथ्वी उनमें अधिदेवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो नासिका में, जो धातव्य में, जो पृथ्वी में, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो बुद्धि में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में धूमता है, सो यह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय शोक रहित अनन्त आत्मा की उपासना करे । जिह्वा अध्यात्म है, चखने योग्य अधिभूत है, वरुण उनमें अधिदेवत है, नाड़ी उससे सम्बन्ध वाली है, जो जिह्वा में, जो चखने योग्य में, जो वरुण में, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो बुद्धि में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सबके भीतर धूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे । त्वचा अध्यात्म है, स्पर्श के योग्य अधिभूत है, वायु उनमें अधिदेवत है, नाड़ी उनसे संबंध वाली है, जो त्वचामें, जो स्पर्श करने योग्य में, जो वायु में, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो बुद्धि में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में धूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक

रहित अनन्त आत्मा की उपासना करे । मन अध्यात्म है, मन्तव्य अधिभूत है, चद्र उनमें अधिदेवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो मन में, जो मन्तव्य में, जो चन्द्र में जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो बुद्धि में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में धूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित अनन्त आत्मा की उपासना करे ॥ बुद्धि अध्यात्म है, वोढव्य अधिभूत है, ब्रह्मा उनमें अधिदेवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो बुद्धि में, जो वोढव्य में, जो ब्रह्मा में, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो विज्ञान में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में धूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित अनन्त आत्मा की उपासना करे ॥ अहंकार अध्यात्म है, अहंकार करने के योग्य अधिभूत है, रुद्र उनमें अधिदेवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो अहंकार में, जो रुद्र में, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो विज्ञान में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में धूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे ॥ चित्त अध्यात्म है, चित्तन योग्य अधिभूत है, क्षेत्रज्ञ उनमें अधिदेवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो चित्त में, जो चित्तन योग्य में, जो क्षेत्रज्ञ में, जो प्राण में, जो विज्ञान में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में धूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे ॥ वाणी अध्यात्म है, वक्तव्य



अधिभूत है, अग्नि उनमें अधिदेवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाक्सी है, जो वाणी में, जो वक्तव्य में, जो अग्नि में, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो विज्ञान में, जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में धूमता है, वह आत्मा है उस अजर, अमर, निर्भय, शोक रहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे ॥ हाथ अध्यात्म है, एकड़ने योग्य अधिभूत है, इन्द्र उनमें अधिदेवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो हाथ में, जो एकड़ने योग्य में, जो इन्द्रमें, जो नाड़ियों में, जो प्राण में, जो आनन्द में जो हृदयाकाश निर्भय शोकरहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे । पाद अध्यात्म है, चलना अधिभूत है, विष्णु उनमें अधिदेवत है, नाड़ी उनसे सम्बन्ध वाली है, जो पाद में जो चलने में जो विष्णु में, जो नाड़ियों में जो प्राण में जो विज्ञान में जो आनन्द में जो हृदयाकाश में, जो इन सब में धूमता है, वह आत्मा है, उस अजर, अमर निर्भय शोकरहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे ॥ पायु अध्यात्म है, त्यागने योग्य अधिभूत है, मृत्यु उनमें अधिदेवत है, नाड़ी उनमें सम्बन्ध वाली है, जो पायु में जो त्यागने योग्य पदार्थ में जो मृत्यु में जो नाड़ियों में जो प्राण में जो विज्ञान में जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में जो इन सब में धूमता है, वह यह आत्मा है, इस अजर, अमर निर्भय शोकरहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे ॥ उपस्थ अध्यात्म है, आनन्द अधिभूत है प्रजापति उनमें अधिदेवत है, नाड़ी

उनसे सम्बन्ध वाली है, जो उपस्थ में जो आनन्द में, जो प्रजापति में जो नाड़ियों में जो प्राण में जो विज्ञान में जो आनन्द में, जो हृदयाकाश में, जो इन सब में धूमता है, वह यह आत्मा है, उस अजर, अमर, निर्भय शोकरहित, अनन्त आत्मा की उपासना करे ॥ यह ही सर्वज्ञ है, यह ही सबका ईश्वर है, यह सबका अधिपति है, यह अंतर्धामिनी है, यह सबका कारण है जो सबको मुख पूर्वक उपासना करने योग्य है और जो सब सुखों की उपासना नहीं करता, जो वेद शास्त्रों से उपासना करने योग्य है और जो वेद शास्त्रों की उपासना नहीं करता, जिसके यह सब अन्त है, और जो किसी का अन्त नहीं है, इसलिये पर है, सब का नेत्र है, प्रशास्ता अन्नमय है भूतात्मा प्राणमय है, इन्द्रिय आत्मा मनोमय है, संकल्पात्मा विज्ञानमय है, कालात्मा आनन्दमय है, लयात्मकपना नहीं है तो द्वैत कहां, मरण नहीं है तो अमृत कहां न अन्तर्प्रज्ञ है, न बहिर्प्रज्ञ है, न दोनों ( भोतर बाहर ) प्रज्ञ है, न प्रज्ञानधन है न प्रज्ञा है । अप्रज्ञ भी नहीं है, न जाना हुआ है, न जानने योग्य है, यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है ॥ इति पंचर्वा स्रष्ट समाप्त हुआ ॥५॥

यह कुछ भी प्रथम नहीं था । यह प्रजा मूल रहित और आधार रहित उत्पन्न होती है । दिव्य देव एक नारायण चक्षु और द्रष्टव्य है, नारायण श्रोत्र और श्रोतव्य है, नारायण ज्ञाण और ज्ञातव्य है, नारायण जिह्वा और रसयितव्य है, नारायण त्वचा



और स्पर्शयितव्य है, नारायण मन और मन्तव्य है, नारायण बुद्धि और बोद्धव्य है, नारायण अहङ्कार और अहं कर्तव्य है, नारायण चित्त और चैतव्य है, नारायण वाणी और वक्तव्य है, नारायण पायु और त्यागने योग्य है, नारायण पाद और गंतव्य आनन्द का विषय है और नारायण धाना, विधाता, कर्ता, विकर्ता है । दिव्यदेव एक नारायण आदित्य, रुद्र, मरुत, वयु, अरवनी-कुमार, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, मंत्र, अभिन, धृत, और आहुति है । नारायण उत्पत्ति और स्थिति रूप है । दिव्य देव एक नारायण माता, पिता भाई, स्थान, शरण, सन्मित्र और गति है, नारायण विराट है, सुदर्शना, अजिता, मोक्ष्या, मोघा, कुमार, अमृत, सत्या, मध्यमा, नासीरा, शिशुरा, सूर, सूर्या और स्वरा में नाडियों के दिव्य नाम जानने चाहिए । नारायण गर्जता है, गाता है, वहन करता है, वर्षता है । वरुण, यम, चन्द्रमा, कला, कलि, धाता ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, दिन, आधादिन, कला, कल्प ऊर्ध्व और दिशा सब नारायण है । जो कुछ है, जो कुछ था, जो कुछ होगा (जो अन्न से बुद्धि को प्राप्त होता है और जो अमृत रूप है, उन सबका यह परमात्मा) वह सब पुरुष ही है । उस विष्णु के परमपद को विद्वान् सदा देखते हैं, वह आकाश के समान फैला हुआ है । काम क्रोध रहित ब्राह्मण सदा ज्ञाननिष्ठामें रह कर उसको प्राप्त करते हैं । वह विष्णु का परमपद है । यह

निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है यह वेद का उपदेश है ॥ इति छठा खंड समाप्त हुआ ॥६॥

शरीर के भीतर गुहा में अज, एक, नित्य स्थित है, जिसका पृथिवी शरीर है, जो पृथिवी के भीतर संचार करता है, जिसको पृथिवी नहीं जानती । जिसका जल शरीर है, जो जल के भीतर संचार करता है, जिसको जल नहीं जानता । जिसका तेज शरीर है, जो तेज के भीतर संचार करता है, जिसको तेज नहीं जानता । जिसका वायु शरीर है, जो वायु के भीतर संचार करता है, जिसको वायु नहीं जानता । जिसका आकाश शरीर है, जो आकाश के भीतर संचार करता है, जिसको आकाश नहीं जानता जिसका मन शरीर है, जो मन के भीतर संचार करता है, जिसको मन नहीं जानता । जिसका बुद्धि शरीर है, जो बुद्धि के भीतर संचार करता है, जिसको बुद्धि नहीं जानती । जिसका अहंकार शरीर है, जो अहंकार के भीतर संचार करता है, जिसको अहंकार नहीं जानता । जिसका चित्त शरीर है, जो चित्त के भीतर संचार करता है, जिसको चित्त नहीं जानता । जिसका अव्यक्त शरीर है, जो अव्यक्त के भीतर संचार करता है, जिसको अव्यक्त नहीं जानता । जिसका अक्षर शरीर है, जो अक्षर के भीतर संचार करता है जिसको अक्षर नहीं जानता । जिसका मृदु शरीर है, जो मृदु के भीतर संचार करता है, जिसको मृदु नहीं जानता वह ही सब भूतोंका अन्तरात्मा, पाप रहित दिव्य देव एक नारायण है । यह विद्या अग्रान्तरतम ( विष्णु ) की स्त्री,



अपान्तरतमं ने ब्रह्मा को दी ब्रह्मा ने घोरंगिर को दी, घोरंगिर ने रेक्व को दी, रेक्व ने राम को दी, और राम ने सब प्राणियों को दी। यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है ॥ इति सात्वां खण्ड समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

शरीर के भीतर गुहा में रहा हुआ यह सबका शुद्ध आत्मा है, दीवारपर खिंचे हुए चित्रके समान गंधर्व नगरकी उपमा वाले केलेके वृक्षके गर्भ के समान सार रहित, मेद, मांस और पसीने से युक्त, जल के बुदबुदे के समान चंचल और अत्यन्त नाशवान् शरीर के मध्य में अर्चित रूप, दिव्य देव रूप, असंग, शुद्ध, तेज रूप शरीर वाले, रूप रहित, सबके ईश्वर, अर्चित, शरीर रहित गुहा में रहे हुए अमृत रूप शोभायमान और आनन्द रूप उस आत्मा को भिन्न कर के विद्वान् देखते हैं। उसके लय होने पर नहीं देखते ॥ इति आठवां खण्ड समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

रेक्व ने अपने गुरु से पूछा "हे भगवान् ! सब किस में अस्त होते हैं ?" उसने उससे कहा "चक्षु को प्राप्त होता है, चक्षु को भी अस्त करके जाता है, द्रव्यको प्राप्त होता है, जो द्रव्य को भी अस्त कर के जाता है, आदित्य को प्राप्त होता है, जो आदित्य को भी अस्त करके जाता है विराट को प्राप्त होता है, जो विराट को भी अस्त कर के जाता है, प्राण को प्राप्त होता है, जो प्राण को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्दको प्राप्त होता है,

जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त कर के जाता है; वह उस अमृत, अभय अशोक, अनन्त, निर्वाज को प्राप्त होता है" इस प्रकार कहा ॥ "श्रोत को प्राप्त होता है, जो श्रोत्र को भी अस्त कर के जाता है, श्रोतव्य को प्राप्त होता है, जो श्रोतव्य को भी अस्त करके जाता है, दिशा को प्राप्त होता है, जो दिशा को भी अस्त कर के जाता है, सुदर्शना को प्राप्त होता है, जो सुदर्शना को भी अस्त करके जाता है, अपान को प्राप्त होता है, जो अपान को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त निर्वाज को प्राप्त है" "नासिका को प्राप्त होता है, जो नासिका को भी अस्त कर जाता है, घ्रातव्य को प्राप्त होता है, घ्रातव्य को भी अस्त करके जाता है, पृथिवी को प्राप्त होता है, जो पृथिवी को भी अस्त करके जाता है, जिता को प्राप्त होता है, जो जिता को भी अस्त करके जाता है, व्यान को प्राप्त होता है, जो व्यान को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त, निर्वाज को प्राप्त होता है" ॥ इस प्रकार कहा ॥



“जिज्ञा को प्राप्त होता है, जो जिज्ञा को अस्त करके जाता है, रसयितव्य को प्राप्त होता है जो रसयितव्य को भी अस्त करके जाता है, वरुण को प्राप्त होता है, जो वरुण को भी अस्त करके जाता है, सौम्या को प्राप्त होता है, जो सौम्या को भी अस्त करके जाता है उदान को प्राप्त होता है, जो उदान को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है” इस प्रकार कहा ॥ “तत्त्वा को प्राप्त होता है, जो तत्त्वा को भी अस्त करके जाता है, स्पर्शयितव्य को प्राप्त होता है, जो स्पर्शयितव्य को भी अस्त करके जाता है, जो वायु को भी अस्त करके जाता है मोघा को प्राप्त होता है, जो मोघा को भी अस्त करके जाता है, समान को प्राप्त होता है, जो समान को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है” इस प्रकार कहा ॥ “वाणी को प्राप्त होता है, जो वाणी को भी अस्त करके जाता है वक्तव्य को प्राप्त होता है। जो वक्तव्य को भी अस्त करके जाता है,

अग्नि को प्राप्त होता है, जो अग्नि को भी अस्त करके जाता है, कुमार को प्राप्त होता है, जो कुमार को भी अस्त करके जाता है, वैरभ को प्राप्त होता है, जो वैरभ को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है” इस प्रकार कहा ॥ “पाद को प्राप्त होता है, जो पाद को भी अस्त करके जाता है, गन्तव्य को प्राप्त होता है, जो गन्तव्य को भी अस्त करके जाता है विष्णु को प्राप्त होता है, जो विष्णु को भी अस्त करके जाता है, सत्या को प्राप्त होता है, जो सत्या को भी अस्त करके जाता है, संवर्ग्यमी







को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है” इस प्रकार कहा । “अहङ्कार को प्राप्त होता है, जो अहङ्कार को भी अस्त करके जाता है, अहं कर्तव्य को प्राप्त होता है, जो अहं कर्तव्य को भी अस्त करके जाता है, रुद्र को प्राप्त होता है, जो रुद्र को भी अस्त करके जाता है, असुरा को प्राप्त होता है, जो असुरा को भी अस्त करके जाता है, इवेत को प्राप्त होता है, जो इवेत को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय, अशोक, अनन्त, निर्बीज को प्राप्त होता है” इस प्रकार कहा ॥ “चित्त को प्राप्त होता है, जो चित्त को भी अस्त करके जाता है, चेतयितव्य को प्राप्त होता है, जो चेतयितव्य को भी अस्त करके जाता है, क्षेत्रज्ञ को प्राप्त होता है, जो क्षेत्रज्ञ को भी अस्त करके जाता है, भास्वती को प्राप्त होता है, जो भास्वती को भी अस्त करके जाता है, नाग को प्राप्त होता है, जो नाग को भी अस्त करके जाता है, विज्ञान को प्राप्त होता है, जो विज्ञान को भी अस्त करके जाता है, आनन्द को प्राप्त होता है, जो आनन्द को भी अस्त करके जाता है, तुरीय को प्राप्त होता है, जो तुरीय को भी अस्त करके जाता है, वह उस अमृत, अभय अशोक अनन्त निर्बीज को प्राप्त होता है” इस प्रकार कहा ॥ “जो इस निर्बीज को जानता है, वह

निर्बीज ही हो जाता है । वह न जन्मता है, न मरता है, न मोहित होता है, न भेदन किया जाता है, न जलाया जाता है, न छेदन किया जाता है, न कांपता है न कोप करता है, सबका दहन करने वाला, यह आत्मा कहलाता है । यह आत्मा सैकड़ों प्रवचनोंसे प्राप्त नहीं होता, न बहुते सुनने से, न बुद्धि ज्ञानके आश्रय से, न मेधा से, न वेदों से न यज्ञों से न उग्र तपों से न सांख्य से न योग से न आश्रमों से और न अन्य किसी उपाय से आत्मा को प्राप्त कर सकते हैं । शुश्रूषा ( श्रवण करने की इच्छा वाले ) और मोन व्रत धारण करने वाले, ब्राह्मण, प्रवचन श्रुथान और प्रशंसा से उसको प्राप्त करते हैं । शांत दांत उपरति और तितिक्षा वाला होकर आत्मा में आत्मा को देखता है । जो इसको जानता है वह सबका आत्मा होता है” ॥ इति नवमां संद न्मास हुम्ना ॥ ६ ॥

फिर देव ने गुरु से पूछा “अगवान् ! सब किसमें स्थित हैं ?” कहा “रसातल लोक में” ( पूछा ) रसातल लोक किस में प्रोत प्रोत है ?” कहा “भूलोक में” ( पूछा ) भूलोक किस में प्रोत प्रोत है ?” कहा “भुवर्लोक में” ( पूछा ) “भुवर्लोक किस में प्रोत प्रोत है ?” कहा “स्वर्लोक में” ( पूछा ) “स्वर्लोक किस में प्रोत प्रोत है ?” कहा “महर्लोक में” ( पूछा ) “महर्लोक किस में प्रोत प्रोत है ?” कहा “जन लोक में” ( पूछा ) “जनलोक किस में प्रोत प्रोत है ?” कहा “तपलोक में” ( पूछा ) “तपलोक किस



में प्रोत प्रोत है ?" कहा "सत्यलोक में" (पूछा) "सत्यलोक किस में प्रोत प्रोत है ?" कहा "प्रजापति लोक में" (पूछा) "प्रजापति लोक किस में प्रोत प्रोत है ?" कहा "ब्रह्मलोक में" (पूछा) ब्रह्मलोक किस में प्रोत प्रोत है ?" कहा "सर्व लोक आत्मा रूप ब्रह्म में मणियों के समान प्रोत प्रोत है इस प्रकार आत्मा में स्थित इन लोकों को जो जानता है, वह आत्मा ही हो जाता है यह निर्वाण का उपदेश है यह वेद का उपदेश है यह वेद का उपदेश है" ॥ इति दसवां खंड समाप्त हुआ ॥ १० ॥

फिर रेक्व ने पूछा "हे भगवान ! यह विज्ञान पन आत्मा उत्तममण करता हुआ किस करके कीन २ सी भ्रवरथाओं को रथाग करके जाता है ?" उसने कहा "हृदय के मध्य में लाल मांस का पिंड है, जिसमें वह हृदय कमल कुमुद के समान अनेक प्रकार से खिलता हुआ है उसके मध्य में समुद्र है समुद्र के मध्य में कोष है और उसमें चार नाड़ियाँ हैं रमा, भरमा इच्छा और अणुनर्भवा उत्तम रमा पुण्य से पुण्य लोक को ले जाती है । भरमा पाप से पाप को ले जाती है । इच्छा नाड़ी से जिस पाप का स्मरण करता है, उसको प्राप्त होता है । अणुनर्भवा से कोष को तोड़ता है कोष को तोड़ कर शीर्षकपाल को तोड़ता है शीर्षकपाल को तोड़कर पृथिवी को तोड़ता है पृथिवी को तोड़ कर जल को तोड़ता है जलको तोड़ कर तेजको तोड़ता है तेज को तोड़कर वायु को तोड़ता है वायु को तोड़ कर आकाश को

तोड़ता है आकाश को तोड़ कर मन को तोड़ता है मनको तोड़ कर भूतादि को तोड़ता है भूतादि को तोड़ कर महत् को तोड़ता है महत् को तोड़ कर अव्यक्त को तोड़ता है अव्यक्त को तोड़ कर अक्षर को तोड़ता है अक्षर को तोड़ कर मृत्यु को तोड़ता है और मृत्यु को तोड़ कर परमदेव के साथ एक रूप होता है । उससे परे न सत् है न असत् है । यह निर्वाण का उपदेश है यह वेद का उपदेश है यह वेद का उपदेश है ॥" इति प्यारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

ॐ नारायण से भक्त हुआ । वह ब्रह्मलोक में पका फिर महा सर्वर्तक में पका फिर आदित्य में पका और फिर क्रव्यादि में पका । फकुंदायुक्त और दासी भक्त त्याज्य है प्रयाचित भक्त पवित्र है । प्रयाचित और बिना संकल्प के प्राप्त हुआ भक्त भक्षण करे याचना कभी न करे ॥ इति बारहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

प्रजापति ने कहा "बालक के समान रहे, बालक का स्वभाव प्रसंग और निर्दोष होता है । मौन से पंखितार्थ से, मध्वि रहित होकर यानी संन्यास से वेद में कहे हुए कैवल्य को प्राप्त होता है । महान् पद को जान कर, युक्ष के भूल में भेले कुबेले वस्त्र धारण किए हुए, प्रसह्याय, अकेला, समाधि में स्थित, आत्मकाम, आत्मकाम, निष्काम, जीर्णकाम होकर वास करे । हाथी, सिंह, शीश, मच्छर, नीले, सर्प, राक्षस, गर्धर्ष को मृत्यु रूप



(भारनेवाला) जानकर किसीसे न डरे। शुश्रूषके समान रहे, छेदनकिया हुआ भी कोप न करे, न कांपे पत्थर के समान रहे। छेदन किया हुआ भी कोप न करे, न कांपे आकाश के समान रहे, छेदन किया हुआ भी कोप न करे, न कांपे, सत्य से रहे ( क्योंकि यह आत्मा सत्य है। सब गन्धों का पृथ्वी हृदय है, सब रसों का जल हृदय है, सब रूपों का तेज हृदय है, सब स्पर्शों का वायु हृदय है, सब शब्दों का आकाश हृदय है सब गतियों का अव्यक्त हृदय है, सब सर्वोंका मृत्यु हृदय है, और मृत्यु परदेव (ब्रह्म) के साथ एक रूप होता है। उस से पर न सत् है, न असत् है, न सत् असत् है। यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, ॥ इति तेरह्वां खण्ड समाप्त हुआ ॥१३॥

ॐ पृथ्वी अन्न है, जल अन्नाद (अन्न को भक्षण करने वाला) है जल अन्न है ज्योति अन्नादि है, ज्योति अन्न है वायु अन्नाद है, वायु अन्न है, आकाश अन्नाद है, आकाश अन्न है इन्द्रियां अन्नाद है, इन्द्रियां अन्न हैं मन अन्नाद है, मन अन्न है बुद्धि अन्नाद है, बुद्धि अन्न है अव्यक्त अन्नाद है, अव्यक्त अन्न है अक्षर अन्नाद है, अक्षर अन्न है मृत्यु अन्नाद है, और मृत्यु परदेव के साथ एक रूप होता है। उस से पर न सत् है न असत् है, न सत् असत् है, यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है ॥” इति चौदहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥१४॥

फिर रैक्व ने उससे पूछा, “हे भगवन् ! जो यह विज्ञानघन उत्कृमण करता है, वह किस करके कौन कौन सी अवस्थाओं को जलाता है ?” उसने कहा “जो यह विज्ञान घन उत्कृमण करता है, वह प्राण को जलाता है अपान, व्यान, उदान, समान वैरम्भ, मुख्य, अन्तर्यामी, प्रभञ्जन, कुमार, श्येन, श्वेत, कृष्ण, नाग को जलाता है, पृथिवी जल तेज वायु और आकाश को जलाता है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय महत् लोक और परलोक को जलाता है। लोकालोक को जलाता है, धर्मधर्म को जलाता है, पीछे अभाम्भकर, अभर्म्याद, निरालोक को जलाता है, महत् को जलाता है, अव्यक्त को जलाता है, अक्षर को जलाता है और मृत्यु को जलाता है। मृत्यु परदेव के साथ एक रूप होता है। इससे पर न सत् है, न असत् है, न सत् असत् है, यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है” ॥ इति पन्द्रहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

सोबाल बीज ब्रह्म उपनिषत् अप्रशान्त को न देना चाहिये, अप्रुज को न देना चाहिये, अशिष्य को न देना चाहिये, एक वर्ष तक साथ रखे बिना न देना चाहिये, कुल शील की परीक्षा किये बिना न देना चाहिये, न कहना चाहिये जिसकी देव में परा-भक्ति हो और वंसी देव में हो, वंसी ही गुरु में हो, उस ही महात्मा को इसमें कहे हुए अर्थ प्रकाश होते हैं। यह निर्वाण का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है, यह वेद का उपदेश है ॥ इति सोलहवां खण्ड समाप्त हुआ ॥१६॥ इति सुबालोपनिषत् समाप्त ॥





## कुण्डिकोपनिषत् ।

[ २३ ]

गुरु की सेवा में प्रीति रखकर जिसने वेदों को पढ़ लिया है और जिसको ब्रह्मचर्य आश्रम को समाप्त करने की गुरु से आज्ञा मिली है वह आश्रमी कहलाता है ॥ १ ॥ समान स्त्री से विवाह कर यथाशक्ति अग्नि को धारण करके ब्रह्मयज्ञ करे और उसका दिन रात पूजन करे ॥ २ ॥ पुत्रों को धन बांट कर, ग्राम सम्बन्धी कामों को सोंप कर वन मार्ग से विचरता हुआ पवित्र देश में भ्रमण करता हुआ ॥ ३ ॥ वायु को भक्षण करता हुआ, या जल का पान करता हुआ अथवा विहित कन्द मूल से अपने शरीर का पोषण करे और ऐसे कष्ट से पृथिवी पर प्राप्त न गिरावे ॥ ४ ॥ इतने से ही पुरुष को संन्यास कैसे कहा जाय ? वह तो नाम मात्र ही है, उसे संन्यास कैसे कहा जाय ॥ ५ ॥ इसलिये फल की इच्छा से रहित संन्यास में युक्त होकर, अग्नि और वरुण को छोड़कर वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण करता है ॥ ६ ॥ लोगों के समान स्त्री में आसक्त, संयम से वन में जाकर संसार सुख को छोड़कर वृथा ही कर्षों अनुष्ठान करता है ॥ ७ ॥ अथवा गर्भवास के भय से और शीत उष्ण से डरा हुआ दुःखों का स्मरण करके भोगों को कर्षों छोड़ता है ॥ ८ ॥ मैं गृह, उपद्रव रहित परम पद में प्रवेश करने की इच्छा करता हूँ

इसलिये अग्नि को छोड़कर मृत्युञ्जय परब्रह्म को भजता हूँ । परन्तु अथ्यात्म मन्त्रों को जपे । भगवां वस्त्र धारण करके दीक्षा लेवे, कांक्ष और उपस्थ के वालों को छोड़कर सब क्षीर करावे । ऊँची भुजा करके स्वच्छन्द से घूमे । घर रहित, भिक्षा का भोजन करने वाला होकर विचरे । निदिध्यास करता रहे । जंनुओं को रक्षा के निमित्त पवित्र धारण करे । इसके विषय में यह कहा है । कमण्डलु, चमस, छीका त्रिविष्टप, जूता शीत निवारण करनेवाली गुदड़ी तथा पहनने का कौपीन ॥ १॥ पवित्र (पानी छानने का वस्त्र) स्नान करने की घांती और अंगोष्ठा इनके सिवाय जो कुछ भी है, उसको यती त्याग देवे ॥ १० ॥ नदी किनारे शयन करने वाला होवे अथवा देवालय के बाहर रहे । सुख दुःख से शरीर को बिना प्रयोजन न तपावे ॥ ११ ॥ स्नान पान तथा शौच, पवित्र जल से करे । स्तुति किया हुआ संतुष्ट न होवे और निन्दा किया हुआ दूसरों की श्लाघा न देवे ॥ १२ ॥ भिक्षादि का क्षप्प, स्नान का जल यथा प्राप्त ग्रहण करे । इस प्रकार की वृत्ति धारण करके यती जप करे ॥ १३ ॥ विद्वान् समय के लिए मन्त्र के संयोग को मन से भावना करे । आकाश से वायु, वायु से अग्नि अग्नि से जल, जल से पृथ्वी । इन श्रुतों में व्यापक को मैं प्राप्त हुआ हूँ । अन्तर, अन्तर, अन्तर, को प्राप्त हुआ हूँ । भुक्त भक्ष्य सुख के समुद्र में बहुत प्रकार की विश्व स्वी नहरें भागा रूप वायु से हिलाई हुई उन्नत होती हैं और स्वयं होती हैं ॥ १४ ॥ वेदें आकाश का मेघवत्



सम्बन्ध नहीं है इसी प्रकार मेरा देह से सम्बन्ध नहीं है। इसलिए इस (देह) के धर्म जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति मुक्त में कहाँ ॥१५॥ आकाश के समान मैं कल्पना से दूर हूँ आदित्य के समान भास्य पदार्थों से विलक्षण हूँ पर्वत के समान मैं नित्य निश्चल हूँ। मैं समुद्र के समान पार से रहित हूँ ॥१६॥ मैं नारायण हूँ, मैं नरकान्तक हूँ, मैं पुरान्तक हूँ, मैं पुण्य हूँ, ईश हूँ, मैं अखण्ड बोध हूँ, सबका साक्षी हूँ, मैं ईश्वर रहित हूँ, अहङ्कार और ममता से रहित हूँ ॥१७॥

प्राण अपान के संयम करने के विषय में यह कहा है घृण्य और गुदा के बीच में दोनों हाथों को रख कर बैठे। दांतों से धीरे से जिह्वा को दबाकर जब मात्र बाहर निकाले ॥१८॥ दृष्टि को श्रोत्र और भूमि पर स्थापित करे। जिससे श्रवण और नासिका में गन्ध पहुँचे ॥१९॥

जो ब्रह्म में तत्पर है वह ब्रह्म ही है, हव ही शिव पद है, पूर्व जन्मों में प्राप्त किए पुण्य वाला उसको अभ्यास से प्राप्त करता है ॥२०॥ वायु के नाद का उत्पन्न होना हृदय का तप कहलाता है वह देह का भेदन करके ऊपर, अव्यय सूर्या को प्राप्त होता है ॥२१॥ अपने देह में सूर्या की प्राप्ति परम गति है। जो उसको प्राप्त होते हैं वे परम्पर के जानने वाले फिर नहीं लौटते ॥२२॥ जैसे घर के धर्म दीपक की स्पर्श नहीं करते इसी प्रकार साक्ष्य के धर्म विलक्षण शक्तिवासी और उदासीन साक्षी

की स्पर्श नहीं करते ॥ २३ ॥ यह जड़ शरीर चाहे जल में, चाहे रथल में लुड़के में उसके धर्मों से लिपायमान नहीं होता जैसे घटके धर्मों से आकाश लिपायमान नहीं होता ॥ २४ ॥ मैं क्रियारहित हूँ विकाररहित हूँ कलारहित हूँ आकाररहित हूँ विकल्परहित हूँ नित्य हूँ आचार रहित अद्वय हूँ ॥ २५ ॥ सबका आत्मा हूँ सर्व हूँ सब से अतीत अद्वय हूँ केवल अखंड बोध रूप हूँ निरंतर स्वयं आनन्द रूप हूँ ॥ २६ ॥ अपने को ही सर्वत्र देखता हुआ अपने को अद्वय मानता हुआ और अपने आनन्द को भोगता हुआ मैं निर्विकल्प हूँ ॥ २७ ॥ जाता हुआ ठहरा हुआ बैठा हुआ उभरा हुआ अन्य प्रकार से भी विद्वान् आत्माराम मुनि इच्छा पूर्वक सदा वास करे ॥ २८ ॥ इति उर्ध्वनिषित् ॥

इति कुण्डिकोपनिषत् समाप्त ।



## संन्यासोपनिषत् ।

[ २४ ]

अब संन्यास उपनिषत् कहते हैं। जो कम कम से त्याग करता है, वह संन्यासी होता है। यह संन्यास क्या कहलाता है? संन्यस्त कैसा होता है? जो क्रियाओं से आत्मा की रक्षा करता है, माता, पिता, स्त्री, पुत्र बंधुओं की सम्मति लेकर, अपने सब ऋत्वजों को पूर्व के समान प्रणाम करके वैश्वानर यज्ञ को करे, यजमान सर्वस्व दे देवे, ऋत्विज सब घृत आदि को पात्रों के सहित हवन कर दे। आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि सम्य और आवस्वथ्य इन सबको प्राण अपान व्यान उदान और समान इन सब को आरोपित करे। शिखा सहित केशों को त्याग कर, यज्ञोपवीत को तोड़ कर पुत्र को देख कर इस प्रकार उपदेश देवे कि तू यज्ञ है तू सर्व है। यदि अपुत्र होवे तो आत्मा का इसी प्रकार ध्यान करके किसी को न देखता हुआ पूर्व अथवा उत्तर दिशा को चला जावे। तीनों वर्णों में भिक्षा करे हाथ रूपी पात्र में भोजन करे औषधि के समान भोजन का आचरण करे यानी औषधि के समान भोजन करे प्राण को रक्षा के लिये यथा प्राप्त भोजन करे जिससे चरबी की वृद्धि न हो। दुबला होकर ग्राम में एक रात नगर में पाँच रात बसे। वर्षा के चार महीने ग्राम अथवा नगर में वास करे अथवा दो महीने वास

करे पक्ष को ही महीना समझना। फटे वस्त्र अथवा छाल के वस्त्र ग्रहण करे अन्य ग्रहण न करे। जो अशक्त होता है और क्लेश से तपता है वह तप है। इस प्रकार कम से संन्यास करता है अथवा जो इस प्रकार देखता है उसका यज्ञोपवीत क्या है? उसकी शिखा क्या है? अथवा उसका आचमन कैसा है? उससे कहा जो उसका आत्म-ध्यान है वह ही उसका यज्ञोपवीत है विद्या शिखा है सर्वत्र स्थित जल से उदर पात्र द्वारा कार्य करे जल के किनारे धर है। ऐसा ब्रह्म वादी कहते हैं। सूर्य के अस्त होने पर उसका आचमन कैसा है? उनसे कहा जैसा दिन में है वैसा ही रात्रि में है उसके लिये न रात है न दिन है, तो भी ऋषियों ने कहा है जो इस प्रकार आत्मा को धारण करता है उसके लिये एक ही बार दिन हो जाता है॥ इति प्रथम अध्याय ॥

चालीस संस्कारों से युक्त सबसे विरक्त होकर चित्त को शुद्ध करके आशा असूया इर्ष्या और अहङ्कार को जला कर चारों साधनों से युक्त ही संन्यस्त के योग्य होता है। जो संन्यस्त का निश्चय करके फिर नहीं करता वह कृच्छ्र व्रत ही करे तो फिर संन्यस्त करने के योग्य होता है॥१॥ जो संन्यास से पतित हो जो पतित को संन्यास देवे और जो संन्यास में विघ्न करने वाला हो इन तीनों को पतित जानो॥२॥ नपुंसक पतित अङ्गहीन स्त्रेण (खोजा) बहिरा बालक गुणा प्रषड करने वाला लिंगी चक्री कोटी वेखानस (बोद साधु) द्विज संस्कार



रहित वस्त्रों को पहनने वाला गंगा अग्नि से रहित और नारितक वैराग्य युक्त हो तो भी संन्यास के योग्य नहीं है, और यदि संन्यस्त वे तब भी महावाक्यों के उपदेश के अधिकारी नहीं हैं पतित मन्थासी की संतान खराब नख वाला लाल (मैले) दांत वाला पागल श्रृङ्ग से विकल ये भी संन्यास के योग्य नहीं हैं ॥३॥ तत्काल वैराग्य हुआ हो उसको, महा पातकियों को संस्कारहीनों को और लोक निंदा से दूषित हुआओं को संन्यास न देवे ॥४॥ व्रत यज्ञ तप दात होम न्याय्याय से रहित और सत्य तथा शौच से अष्ट हुए को संन्यास न देवे ॥५॥ ये लोग श्रातुर संन्यास के सिवाय कम संन्यास के योग्य नहीं हैं ।

‘ॐ भूः स्वाहा’ ऐसा कहकर शिखा उखाड़ डाले यज्ञोपवीत को न उतारे ‘यज्ञ वल ज्ञान वैराग्य और मेधा (बुद्धि) को दे’ ऐसा कहकर यज्ञोपवीत को काट डाले “ॐ भूः स्वाहा” यह कह कर जल में वस्त्र और कटि सूत्र को त्याग कर “संन्यस्तमया” इस मंत्र को तीन बार बोले । संन्यासी ब्राह्मण को देख कर सूर्य अपने स्थान से चलायमान होता है (और कहता है) यह मेरे मण्डल को भेद कर परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥६॥ साठ पीछे के कुलों का और साठ भागामी कुलों का उद्धार करता है जो प्राज्ञ संन्यासी “संन्यस्त” इस मंत्र को कहता है यानी संन्यास लेता है ॥७॥ जो संतान से उत्पन्न हुए दोष हैं जो देह से उत्पन्न हुए दोष हैं उनको प्रेषाग्नि इस प्रकार जला देता है जिस प्रकार भूमी का अग्नि सुवर्ण (के मल) को जला देता है ॥८॥

‘सखा ! मेरी रक्षा कर’ इस प्रकार कहकर दण्ड को ग्रहण करे दण्ड बाँस का सौम्य बिना छिला समान गाँठों वाला पवित्र भूमि में उत्पन्न हुआ दाग आदि निकाला हुआ बिना जला हुआ कीड़ों का न खाया हुआ पर्व गाँठों से शोभित नारिका तक ऊँचा वा शिर अथवा भोभों के बराबर दंड यती धारण करे ॥९-१०॥ दंड और आत्मा का संयोग सब प्रकार से किया जाता है इसलिये बुद्धिमान दंड के बिना तीन बार वाण फेंका जाय इससे दूर न जावे ॥११॥ “हे माता ! सब से सौम्य जगत् का जीवन जीवन का आधारस्वरूप मेरी रक्षा कर” इस प्रकार कह कर कमण्डलु को ग्रहण करके योगपट्ट से अभिषिक्त होकर सुख से विहार करे ॥धर्म अधर्म को त्यागदे सब और भूँठ दोनों को त्याग दे सच्चे और भूँठे दोनों को त्याग कर जिससे दोनों का त्याग किया है उसको भी त्याग दे ॥१२॥

वैराग्य संन्यासी, ज्ञान संन्यासी, ज्ञान वैराग्य संन्यासी और कर्म संन्यासी चार प्रकार के संन्यासी हुये हैं वे इस प्रकार हैं:—जिसने देखे हुए और सुने हुए विषयों में दृष्टि रहित हो कर पूर्व पुण्य कर्म विशेष से संन्यास किया है वह वैराग्य संन्यासी है । शारत्र के ज्ञान से शुभ अशुभ लोकों के अनुभव और श्रवण से प्रपंच से उपराम को प्राप्त होकर देह वासना शारत्र वासना लोक वासना को त्याग कर वमन किए हुए भ्रज के समान सब प्रकार की प्रवृत्ति को त्यागने योग्य मान कर चारों साधनों से



शुक्त होकर जो संन्यास करता है वह ही ज्ञान संन्यासी है। क्रम २ से सब का अभ्यास कर के सबका अनुभव करके ज्ञान और वैराग्य से स्वरूप के अनुसंधान से देह मात्र शेष रह कर संन्यास लेकर नग्न रहता है वह ज्ञान वैराग्य संन्यासी है ब्रह्मचर्य को समाप्त करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ आश्रम को प्राप्त हो कर वैराग्य न होने पर भी जो क्रमानुसार आश्रमों को त्यागता है वह कर्म संन्यासी है।

वह संन्यास छः प्रकार का होता है—कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस, तुरीयातीत और अवधूत। कुटीचक शिखा यज्ञोपवीत वाला, दण्ड कमण्डलु धारण करने वाला, कौपीन, चादर और कंथा धारण करने वाला, पिता माता और गुरु को आराधना करने वाला, बटलोई, खनित्र (कुदाली), छीका आदि मात्र साधन वाला, एक स्थान पर भ्रम का भोजन करने वाला, श्वेत और खड़ा तिलक धारण करने वाला और तीन दण्ड वाला होता है। बहूदक शिखादि कंथा धारण करने वाला, त्रिपुंड्र धारी, सब प्रकार कुटीचक के समान मधुकर वृत्तिवाला और आठ ग्रास खाने वाला होता है। हंस जटाधारी, त्रिपुंड्र ऊर्ध्व पुङ्गवधारी, अनियत स्थान से माधुकर भ्रम का भोजन करने वाला और कौपीन का टुकड़ा धारण करने वाला होता है, परमहंस शिखा यज्ञोपवीत रहित, पांच धरों से हाथ में भिक्षा मांगने वाला, एक कौपीन धारण करने वाला, एकचादर और एक वांसका

दण्ड वाला हो अथवा एक चादर धारण कर भस्म लगाने वाला और है। सब का त्याग करने वाला होता है। तुरीयातीत गो मुख वृत्ति वाला, तीन धरों में फल अथवा भ्रम का आहार करने वाला, देह मात्र रखने वाला, नग्न, मृतक के समान शरीर वृत्ति वाला होता है। अवधूत नियम रहित होता है, पतित अथवा निन्दित को छोड़कर सब वर्णों में भ्रमण वृत्ति से आहार करने वाला और स्वरूप के अनुसंधान वाला होता है। वृक्ष, तृण और पर्वतों सहित जितना यह जगत् है, वह मैं नहीं हूँ। जो बाहर है, वह अत्यन्त जड़ है, मैं विष्णु वह (जड़) किस प्रकार होके ॥ १३ ॥ थोड़े समय में लय होने वाला जड़ देह मैं नहीं हूँ कर्तों में आने वाला जड़ और क्षण भर टिकने वाला, कल्या हुआ ॥ १४ ॥ शून्य आकृति वाला, शून्य स्वरूप वाला अचेतन शब्द मैं नहीं हूँ। क्षण में नाश होने वाली, प्राप्त और अप्राप्त होने वाली यह त्वचा मुझसे भिन्न है ॥ १५ ॥ चैतन्य की प्रसन्नता से आत्मा की प्राप्त हुआ मैं जड़ स्पर्श नहीं हूँ। आत्मा की प्राप्त हुए मुझको चञ्चल और चञ्चल मन से युक्त जिह्वा से ॥ १६ ॥ द्रव्य के सहारे उत्पन्न होने वाला तुच्छ स्पंद रूप जड़ मैं नहीं हूँ।

इश्वर और दर्शन के लीन होने पर क्षय होने वाला और ज्ञानों नाश होने वाला ॥ १७ ॥ मैं केवल दृष्टा हूँ क्षीण होने वाला जड़ रूप नहीं हूँ। गंध जड़ होने से क्षय होने वाली होने से



नासिका से कल्पी हुई है ॥१८॥ ऐसी तुच्छ नियत आकार वाली जड़ गंध में नहीं है । ममता रहित चित्तवन रहित शांत पांचों इन्द्रियों के भ्रम से रहित ॥ १९ ॥ कला और मेल से रहित मैं शुद्ध चेतन ही हूं चेत्य से रहित चिन्मात्र प्रकाश करने वाला मैं हूँ ॥२०॥ मैं कलारहित बाहर भीतर व्यापक और माया रहित हूँ, निर्विकल्प चिदाभास सर्वत्र व्यापक एक हूँ ॥२१॥ मुझ एक चेतन ने ही ये सब घट पट आदिसे सूर्य पर्यन्त दीपक के समान आरम तेज से प्रकाशित किये जाते हैं ॥ २२ ॥ जैसे अग्नि से चिगानियां उठती हैं इसी प्रकार ये विविध इन्द्रियों की वृत्तियां मुझ तेजस के अंतर प्रकाश से स्फुरित होती हैं ॥ २३ ॥ अनन्त आनन्द की भोगने वाली, परम शांत स्वभाव वाली, शुद्ध, चेतन मय यह दृष्टि सब दृष्टियों में जय की प्राप्त होती है ॥ २४ ॥ सब भावों के भीतर टिकने वाला, चेत्य से रहित, चेतन आत्मा, प्रत्यक् चेतन्य रूप मुझको नमस्कार है ॥ २५ ॥ स्वच्छ सम और विविध शक्तियाँ निर्विकार कला और कल्पना से रहित चित् से की जाती हैं ॥ २६ ॥ तीनों काल की उपेक्षा करने वाली, दृश्य के बंधन से रहित और चेत्य की उपेक्षा वाली चित् की समता ही शेष रहती है ॥ २७ ॥ वही ही वाणी से आगम्य होने के कारण शाश्वत असत्ता के समान विद्रिक्त आत्मा के अभाव समान शेष रहती है ॥ २८ ॥ इच्छा और अनिच्छा वालों के भीतर रहने वाली चित् मलों से धिरी हुई है, पाश में बंधी हुई चिड़िया के समान वह चित् उत्पन्न करने को समर्थ

नहीं है ॥२९॥ इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए दृढ रूपा मोह से जनु पृथ्वी के गड्ढे में गिरे हुए कीड़ों की समता की प्राप्त हुए हैं ॥३०॥

मुझ अविच्छिन्न चेतन आत्मा की नमस्कार है, मैं विरकालसे ही परम प्रत्यक्ष हूँ, प्राप्त हूँ और हमेशा उदित हूँ । मैं विकल्पों से दूर हूँ, जो हूँ, सो हूँ, उसको नमस्कार है ॥३१॥ तुझ मुझ अनन्त की तुझ मुझ चिदात्मा की ( नमस्कार है ) तुझ परमेश्वर की नमस्कार है, मुझ शिव की नमस्कार है ॥३२॥ बैठता हुआ भी नहीं बैठता, जाता हुआ भी नहीं जाता, शांत होकर भी व्यवहार करता है, करता हुआ भी नहीं होता ॥३३॥ यह अत्यन्त सुलभ है, विस्वाप्त वंशु के समान चतुर है । कमल के छिद्र रूप सबके शरीरों में भ्रमर है ॥३४॥ न मुझे भोग प्राप्त करने की इच्छा है, न मुझे भोग त्यागने की इच्छा है, जो आता हो, आओ, जो जाता हो वह जाओ ॥३५॥ मन से मन के छिन्न होने पर, अहंकारपने से रहित होने पर और भाव से भाव नाश होने पर मैं केवल स्वस्थ स्थित हूँ ॥३६॥ भाव रहित, अहंकार रहित, मन रहित, चेष्टा रहित, केवल, सान्द रहित, शुद्ध आत्मा में मेरा शान्त टिकता है ॥३७॥ मैं नहीं जानता हूँ कि तृष्णारूप रस्सी सस्रह को काट कर मेरे शरीर रूप पिंजरे में से अहंकार रहित चिड़िया उड़ कर कहाँ गई ॥३८॥ मैं नहीं जानता यह जिसका भव है, जिसकी बुद्धि विषयमान नहीं होती, और जो सब भूतों में समान है, उसीका जीवन शोभता है ॥३९॥ जो



भीतर भीतल है, जिसकी बुद्धि राग द्वेष से रहित है, जो इस (दृश्य) को साक्षी के समान देखता है, उसीका जीवन शोभता है ॥४०॥ जिसने यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर त्याग और ग्रहण को छोड़ दिया है और चित्त में चित्त को श्रृंखला कर दिया है, उसीका जीवन शोभता है ॥४१॥ ग्रहण करने योग्य और ग्रहण करने वाले का सम्बन्ध दृढ़ जाने पर पूर्ण शान्ति उदय होती है। इस स्थिति को प्राप्त हुई शान्ति मोक्ष कहलाती है ॥४२॥ जैसे युता हुआ वीज फिर जन्मने वाले भ्रंशुर से रहित होता है, इसी प्रकार जीवन्मुक्तों के हृदय में वासना शुद्ध हो जाती है ॥४३॥ पवित्र, परम उदार, शुद्ध सतीगुण बहेरने वाली, आत्मध्यान वाली, नित्य (वासना) सुषुप्ति के समान टिकती है ॥४४॥ चित्त रहित चेतन ही प्रत्यक् चेतन कहलाता है, मन रहित स्वभाव होने से वहाँ कलना रूप मैल नहीं होता ॥४५॥ वह सत्यता है, वह शिवाता है, वह पारमार्थिक अवस्था है, वह सर्वज्ञता है, वह संपूर्ण तृप्ति है, जहाँ मन का छिद्र नहीं है ॥४६॥ वोलाता हुआ त्याग करता हुआ, ग्रहण करता हुआ, पलक खोलता और मँदता हुआ भी, मनन से मुक्त, आनंद रूप, केवल संवित् मैं हूँ ॥४७॥ संवेद्य रूप मत को त्याग कर, मन को परम निर्मूल करके, आशा का पाश रूप अग्नि को काट कर मैं केवल संवित् रूप हूँ ॥४८॥ अशुभ और अशुभ संकल्पों से परम शांत हुआ मैं उपद्रव रहित हूँ, इष्ट अनिष्ट प्रवृत्ति से रहित मैं केवल संवित् रूप हूँ ॥४९॥ अप्रत्यास्य ताप और शीति को त्याग कर, विभाग रहित, जगत में

स्थित। वज्र के खम्भ समान आराम का अवलम्बन करके मैं स्थिर हूँ ॥५०॥ निर्मल और आशा रहित अप्रयत्नी संवित् मैं मैं स्थित हूँ, चेष्टां प्रचेष्टा से मुक्त हूँ, ग्रहण और त्याग से रहित हूँ ॥५१॥ स्वप्रकाश पद में स्थित होकर मैं आंतर संतोष को कब प्राप्त हूँगा और कब शांत मनन वाला होकर पर्वत की गुफा में ॥५२॥ निर्विकल्प समाधि में शिला की समानता को प्राप्त होऊँगा ? शंश रहित ध्यान की विश्रान्ति से मूक हुये मेरे मस्तक पर ॥५३॥ कोपलें कम घोंसला वनावेंगी। संकल्प रूप धृष्टों और तृष्णा रूप लताओं को काट कर मन रूप वन ॥५४॥ विस्तीर्ण श्रमि को प्राप्त होकर मैं यथा सुख विहार करता हूँ। श्रव में उस परमपद को प्राप्त हुआ हूँ, मैं केवल हूँ, मेरी श्रव विजय हुई है ॥५५॥ मैं दुःख रहित हूँ, चेष्टा रहित हूँ, शंश रहित हूँ, इच्छा रहित हूँ, स्वच्छता, धीर्यता, सत्ता, दृढता, सत्यता, ज्ञाता ॥५६॥ आनन्दता, उपशमता, सदा उदित प्रमुक्तिता, पूर्णता, उदारता, सत्यकाश स्वरूप और सदा श्रद्धेत हूँ ॥५७॥ इस प्रकार भिक्षु स्वरूप स्थिति रूप तत्त्वार्थ का चिन्तन करता हुआ निर्विकल्प स्वरूप का जानने वाला होकर निर्विकल्प हूँ ॥५८॥

प्रातुर जोता रहे तो उसको क्रम संन्यास करना चाहिए, वह शूद्र, स्त्री, पतित और रजस्वला के साथ बात चीत न करे। यती देव पूजन के उत्सव का दर्शन न करे क्योंकि संन्यासियों का यह लोक नहीं है, प्रातुर और कुटीचक का श्रूलोक और मुबलोक



है। बहूदक का स्वर्गलोक है, हंस का तप लोक है, परम-हंस का सत्य लोक है, तुरीयातीत और अव्यक्त को स्वरूप के अनुसंधान से भ्रमर और कीट के न्यायानुसार अपने आत्मा में ही कैवल्य है। स्वरूपानुसंधान के सिवाय अन्य शास्त्रों का अभ्यास व्यर्थ है जैसे कूट को केसर का भार व्यर्थ है। यदि के लिये न योग शास्त्र की प्रवृत्ति, सांख्य शास्त्र का अभ्यास, न मन्त्र तन्त्र का व्यापार और न उसके लिए अन्य शास्त्र की प्रवृत्ति है। यदि है तो वह मृतक के ग्राम्भणों के समान है, वह यदि कर्म आचार और विद्या से दूर है। संन्यासी नाम कीर्तन के परापर न हो क्योंकि जो २ कर्म करता है, उस २ के फल का अनुभव करता है। अरंडी के तेल के फेन के समान सबको त्याग देवे, न देवता का प्रसाद ग्रहण करे, न बाहर के देव का पूजन करे, अपने सिवाय सबको त्याग कर मधुकर वृत्ति से आहार करता हुआ डुबला होकर चरबी को न बढ़ाता हुआ विहार करे। माधुकर से कर पात्र से शयन मुख रूपा पात्र से काल व्यतीत करे। आत्म को जानने वाला यदि माप से आहार करे आहार के दो भाग हैं और तीसरा भाग जल का है, वायु के घूमने के लिए चौथा भाग खाली रखे ॥५२॥ नित्य भिक्षा वृत्ति से वर्ते, एक घर के श्रम का भोजन करने वाला कभी न हो, उद्वेग रहित राह देखते रहते हों उनके घर यत्न से जावे ॥६०॥ क्रियावानों के पांच या सात घरों में से भिक्षा लेने की इच्छा करे गो दोही जाय उतना काल मात्र प्रतीक्षा करे, एक बार गया हुआ

फिर न जावे ॥६१॥ रात में खाने से उपवास श्रेष्ठ है, उपवास से बिना मांगा हुआ श्रेष्ठ है, बिना मांगे हुए से भिक्षा श्रेष्ठ है इसलिये भिक्षा से निर्वाह करे ॥६२॥ भिक्षा के समय वायें दायें होकर घरों में प्रवेश न करे, जहाँ दोष न हों, उस घर को मोह से छोड़ न जावे ॥६३॥ श्रद्धा भक्ति से रहित श्रोत्रिय के घर में भी भिक्षा न करे, श्रद्धा भक्ति से युक्त संस्कार हीन के घर भी करले ॥६४॥ अर्सकिलम माधुकरि प्राक्प्रणीत, श्रयाचित, तात्कालिक और उपपन्न पांच प्रकार की भिक्षा कहो गई है ॥६५॥ मन में संकल्प न किये हुए तीन, पांच शयन सात घरों से बहद की मक्खी के समान भिक्षा करना अर्सकिलम माधुकर कहलाती है ॥६६॥ प्रातःकाल में शयन पूर्व दिन में भक्ति से बारंबार प्रार्थना की गई हो, तो वह भिक्षा प्राक्प्रणीत कहलाती है, इस प्रकार भी संन्यासी निर्वाह कर सकते हैं ॥६७॥

भिक्षा के लिये घूमते समय किसी ने निमंत्रण कर दिया तो मधुशुभ्रोंको उस श्रयाचित भिक्षाका भोजन करना चाहिये ॥६८॥ भिक्षा जाने के समय कोई ब्राह्मण आकर भिक्षा के लिये कहे तो उस तात्कालिक नाम की भिक्षा का यदि भोजन करे ॥६९॥ बना हुआ श्रम जो ब्राह्मण मठ पर लाया हो उसको मोक्ष की इच्छा करने वाले मुनि उपपन्न कहते हैं ॥७०॥ यदि माधुकर भिक्षा म्लेच्छ के घर में भी कर लेवे किन्तु बहस्पति के समान पंडित के यहां भी एक ही घर का भोजन न करे।



याचित भयवा अयाचित भिक्षाओं से निर्वाह करे ॥ ७१ ॥  
 स्वर्ग के दोष से वायु जलाने के कर्मों से अग्नि और मूत्र पुरीत  
 से जल दूषित नहीं होता वैसे ही भ्रान्त के दोष से संन्यासी दूषित  
 नहीं होता ॥ ७२ ॥ ध्रुवें रहित और मूसल के शब्द रहित घर  
 में अग्नि बुझ जाने पर जहाँ मनुष्य भोजन कर रहे हों, वहाँ  
 तीसरे पहर के पश्चात् भिक्षा करे ॥ ७३ ॥ निर्दित पतित पाखंडी  
 और देवपूजक को छोड़कर यदि आपर्ति में सब वर्णों के यहाँ  
 भिक्षा कर ले ॥ ७४ ॥ (यदि के लिये) धी कुत्ते के मूत्र के  
 समान शहद मदिरा के समान है, तेल सूकर के मूत्र के समान  
 है । लहसुन संयुक्त रसोई ॥ ७५ ॥ उद्धद, पूषादि गौ के मांस  
 के समान है दूध सूत्र के समान है । इसलिये घृत आदिक को  
 प्रयत्न पूर्वक त्याग देवे । घृत रस आदि संयुक्त भन्न कभी न  
 खावे ॥ ७६ ॥ हाथ ही उसका पात्र है इसलिये उसीसे सदा  
 निर्वाह करे । हाथ रूपी पात्र वाला योगी दूसरी वार भोजन न  
 करे ॥ ७७ ॥ जो मुनि गौ के समान मुख से आहार करता है  
 वह सब में समान होजाता है और अमृत होने के योग्य समझा  
 जाता है ॥ ७८ ॥ धी को खिचर के समान त्याग दे, एकत्र भन्न  
 को मांस के समान, गंध लेपन करने को श्लुद्ध लेपन के समान  
 श्वारको भंगीके समान वस्त्र को भूरे पात्रके समान अमयंग स्नान  
 को स्त्री संगके समान मित्रोंके आह्लादको मूत्र के समान स्पृहा  
 को गौ के मांस के समान, पहिचानने वालों के देश को चण्डाल  
 की वाटिका के समान, स्त्री को सर्पिणी के समान, सुवर्ण को

विव के समान, सभा स्थान को शमशान के स्थान के समान,  
 राजधानी को कुम्भीपाक के समान, एक ही घर के भोजन को  
 भुक्त पिच्छ के समान त्याग दे । देव पूजन न करे । प्रपंच दृष्टि  
 को त्याग कर जीवन्मुक्त होवे । आसन, पात्र लोप, संचय, शिष्य  
 संचय, दिन का सोना, दृष्टा बोलना ये छः यदि को बंधन  
 करने वाले हैं ॥ ७९ ॥ वर्षा सिंवाय जो स्थान है, वह आसन  
 कहलाता है । कहे हुए तूँ वही आदि पात्रों के भ्रमाव में अन्य का  
 ग्रहण करना ॥ ८० ॥ यदि के व्यवहार के लिये, वह पात्र लोप  
 कहलाता है । ग्रहण किये दण्डादि के सिंवाय दूसरे का ग्रहण  
 करना ॥ ८१ ॥ दूसरे काल में उपभोग के लिए संचय कहलाता  
 है । शुश्रूषा, लाभ, पूजा भयवा यश के लिये परिग्रह  
 करना ॥ ८२ ॥ शिष्यों का, जो करुणा से न हो, वह शिष्य  
 संग्रह कहलाता है । प्रकाश रूप होने से विद्या दिन और अविद्या  
 रात्रि कहलाती है ॥ ८३ ॥ विद्या के अभ्यास में जो प्रमाद है,  
 वह दिन का सोना कहलाता है । अभ्यास कथा को छोड़कर,  
 भिक्षा की बात के सिंवाय तथा ॥ ८४ ॥ अनुग्रह और उत्तर  
 देने के सिंवाय अन्य दृष्टा जल्प कहलाता है । मर और मत्सर्य  
 एकात्र है, गंध पुष्प स्पर्श है ॥ ८५ ॥ ताम्बूल और तेल  
 लगाना कांड़ा है, भागों में इच्छा न होना रसायन है । धुशामद,  
 निन्दा, स्वार्थित और च्योति ब्रह्म विव्रय ॥ ८६ ॥ क्रिया, कर्म  
 और विवाद गुरु के वाक्य का उत्सव है ॥ ८७ ॥ सर्षि और विप्रद  
 बाहन है । पलंग शुक्ल चरस है ॥ ८८ ॥ वीर्य का छोड़ना दिन



का सोना है, भिक्षा का आधार सुवर्ण है। विष आमुष है बीज हिंसा है और तीक्ष्णता मयून है ॥ ८८ ॥ सत्यास योग से गृहस्थ के धर्मादिक का छोड़ना व्रत है। गोत्रादि के सब आचार और पिता माता का कुल धन इन सब लिये किसे हमों के सेवन करने से नीच गति को प्राप्त होता है ॥ ८९ ॥ वृद्ध हुआ विद्वान् भी वृद्ध स्त्री का विज्ञान न करे। (क्योंकि) पुरानी कथा में भी पुराना वस्त्र लगता है ॥ ९० ॥ स्यावर, जंगम बीज, सुवर्ण, विष, आमुष इन छः को भ्रम पुरीष के समान यति ग्रहण न करे ॥ ९१ ॥ आपत्ति के सिवाय मार्ग के लिये कोई भी वस्तु यति ग्रहण न करे। आपत्ति में जब तक भ्रम न मिले पञ्चाक्ष को ग्रहण करे ॥ ९२ ॥ निरोगी और युवा भिक्षु किसी के घर में वास न करे। दूसरे के लिए न लेना चाहिये न कुछ देना चाहिये ॥ ९३ ॥ जीवों के सोमाय के लिये यति दीन भाव का आचरण करे, पका हुआ भयवा न पका हुआ मांगने से भ्रमो-गति को प्राप्त होता है ॥ ९४ ॥ भ्रम पान परायण भिक्षु वस्त्रादि रक्षण का वस्त्र ॥ ९५ ॥ इनको ग्रहण करने से यति पतित होता है, इसमें संशय नहीं है, भ्रष्ट नाव का आश्रय करके जीवन्मुक्ति को प्राप्त करे ॥ ९६ ॥ बाणी के दण्ड के लिये मौन रहे, काया के दण्ड के लिये भोजन रहित रहे। मन को दण्ड देने के लिये प्राणायाम किया जाता है ॥ ९७ ॥ जीव कर्म से बंधन को प्राप्त होता है और विद्या से मुक्त होता

है इसलिये पारवर्षी यति कर्म नहीं करते ॥ ९८ ॥ मार्ग में बहुत से वस्त्र (फटे पुराने) पड़े मिलते हैं और भिक्षा सर्वत्र मिल जाती है। पृथिवी विस्तार वाली शय्या है फिर यति किस लिये दुखे हों? ॥ ९९ ॥ यति ज्ञान के अग्नि से संपूर्ण प्रपंच को जला देवे। जो भली प्रकार से आत्मा में अग्नियों का आरोप कर दे वह महा यति अग्नि होत्र करने वाला है ॥ १०० ॥ प्रवृत्ति दो प्रकार की है मार्जरी और वानरी। ज्ञान के अन्धास वालों को तो प्रचानता से मार्जरी है और गीणता से वानरी नाम की है ॥ १०१ ॥ बिना पूछा हुआ किसी से न बोले अन्धाय से पूछा भी न बोले बुद्धिमान जानता हुआ भी जड़ के समान लोक में आचरण करे ॥ १०२ ॥ वह पापों के समूह के उपस्थित होने पर बारह हजार तारक मन्त्र का अन्धास करे। वह पापों का काटने वाला है ॥ १०३ ॥ जो प्रतिदिन बारह हजार का जाप करे उसको बारह महीने में ही परब्रह्म का प्रकाश होता है ॥ १०४ ॥ यह उपनिषत् है ॥ ३० तत्सत् ॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

॥ इति संन्यास उपनिषत् समाप्त ॥



## परमहंस परिब्राजक उपनिषत् ।

[ २५ ]

पितामह ( ब्रह्मा ) ने अपने पिता आदि नारायण के पास जाकर प्रणाम करके पूछा "हे भगवान् ! वरुण आश्रम के धर्म कर्म सब आपके मुख से सुनकर मैंने जानलिया हैं । अब मैं परमहंस परिब्राजकके लक्षण जानना चाहता हूं । परिब्राजक का अधिकारी कौन है ? परिब्राजकके लक्षण कौनसे हैं ? परमहंस कौन है ? परिब्राजक पना कौनसा है ? यह सब मुझसे कहिये ।" उन भगवान् आदि नारायण ने कहा 'सद्यगुरु के समोप सब विद्याओं को परिश्रम से जानकर विद्वान् इस लोक और परलोक के सुख को श्रम रूप जानकर, तीनों एण्डा, तीनों वामना, ममता, अहंकारादिक को वमन किए हुए अन्न के समान त्यागने योग्य समझ कर मोक्ष मार्ग के मुख्य साधन रूप ब्रह्मचर्य को समाप्त करके गृहस्थ होवे, घर से वानप्रस्थ होकर जावे । अथवा दूसरी रीति से ब्रह्मचर्य से ही जावे अथवा घर से जावे अथवा वन से जावे । व्रत वाला या व्रत रहित, न्न/तक या अस्नातक, अग्नि का त्याग किया है या अग्नि रहित, जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन संन्यास ग्रहण करे इस प्रकार जानकर, मन्त्र संसार से विरक्त होकर, ब्रह्मचारी गृहस्थ अथवा वानप्रस्थ पिता माता, स्त्री पुत्र और प्राप्त बांधवों से और उनके श्रमाव में शिष्य और साथियों से सलाह लेकर

उस दिन कोई प्रजापति संबंधी यज्ञ करते हैं परन्तु वह न करे । आग्नेयी ही करे । 'इष्टि अग्नि ही प्राण है' अग्नि प्राण को करता है इस मंत्र से ऋधातवी इष्टि करे । सतेगुण, रजोगुण, तमोगुण ये ही तीन धातु हैं । 'हे अग्नि ! यह प्राण तुम्हारा कारण रूप है, प्राण से उत्पन्न हुए तुम प्रकाश को प्राप्त हो, प्राण के जानने वाले हे अग्नि देव ! तुम बुद्धि को प्राप्त हो और हमारी सम्पत्ति विशेष करो, इस मंत्र से अग्नि को सुंघे । 'जो प्राण अग्नि का कारण रूप है, उस प्राण में अग्नि देव तुम प्रवेश करो' ऐसे कह कर आहुति दे । ग्राम से श्रोत्रिय के स्थान से अग्नि लाकर अपनी कही हुई विधि के अनुसार पूर्व के समान अग्नि को सुंघे । जो आतुर हो और अग्नि न मिले तो जल में हवन करे । 'जल ही सब देवता है, सब देवताओं के लिये हवन करता हूँ स्वाहा, इस प्रकार हवन करके उठकर घृत सहित पवित्र हवि का भोजन करे । यह विधि वीर मार्ग में या अनाशक में यह संप्रवेश में या अग्नि प्रवेश में या महा प्रस्थान में है । जो आतुर (रोगी) हो तो मन से या वाणीसे संन्यासकी विधि करे । स्वस्थ क्रमसे ही आत्म श्राद्ध और विराजा होम करे । अग्नि को आत्मा में आरोप करके लौकिक, वैदिक सामर्थ्य को और अपनी चौदह करण प्रवृत्ति को पुत्र में आरोप करके पुत्र के श्रमाव में शिष्य में और शिष्य के श्रमाव में अग्नि आत्मा में आरोप करके 'तू ब्रह्मा है, तू यज्ञ है...' यह मन्त्र बोल कर ब्रह्म भावना से ध्यान करके सावित्री के प्रवेश जल में सब विद्याओं के अर्थ स्वरूप



वासी, ब्राह्मण्यके आधाररूप वेद माताको, क्रमसे तीनों व्याहृ-  
तियों में लय करके तीनों व्याहृतियोंको भ्रकार, उकार और मकार  
में लय करके सावधान होकर जलकापान करे। प्रणव उच्चारणपूर्व-  
क शिक्षाको उच्चाड़कर, यज्ञोपवीतको काटकर, वस्त्रको भूमिया जल  
में छोड़कर 'ॐ भूः स्वाहा ॐ भुवः स्वाहा ॐ स्वः स्वाहा' इस मंत्र  
से नमन होकर स्वरूपका ध्यान करता हुआ, फिर पृथक् प्रणव और  
व्याहृति पूर्वक मन से और बाणी से 'मैंने संन्यास किया, 'मैंने  
संन्यास किया, मैंने संन्यास किया' इस प्रकार मंद, मध्यम और  
उच्चध्वनि से तीन बार तीन गुणा प्रेक्ष मंत्रका उच्चारण करके एक  
प्रणव के ही ध्यान परायण होकर सब भूतोंको अभय मानकर  
'स्वाहा' इस प्रकार कहकर ऊँची भुजाएं करके 'मैं ब्रह्म हूँ' इस  
प्रकार 'तत्त्वमसि' आदि वाक्य के अर्थ से स्वरूप का अनुसंधान  
करता हुआ उत्तर दिशा को चला जावे। शुद्ध होकर विचरे।  
यह संन्यास है। यदि उसका अधिकांशी न हो तो गृहस्थ की  
प्रार्थना पूर्वक सब भूतों को अभयदान कर, 'हे सखा! मेरे बल  
की रक्षा कर, तू सखा है, तू दुःशासुर को मारने वाला इन्द्र का  
वज्र है, मुझको शक्ति देने वाला हो, जो पाप हो उसको निवारण  
कर।' प्रणव सहित इस मंत्र से लक्षणा सहित वास के दंड की,  
कटिसूत्र की, कौपीन की, कमंडलु की, नीचे के एक वस्त्र की ग्रहणा  
करके सद्गुरुके पास जाकर नमस्कार करके गुरुमुखसे 'तत्त्वमसि'  
महा वाक्यको प्रणव सहित प्राप्त करके पुराने छालके वस्त्र भ्रमणा  
मृग चर्म को धारण करके जल में उतरना, ऊँचे चढ़ना और एक

घर की भिक्षा को त्याग कर तीनों काल स्नान की आचरण  
करता हुआ, वेदान्त के श्रवण पूर्वक प्रणव का अनुष्ठान करता  
हुआ, ब्रह्म मार्ग में मली प्रकार संपन्न होकर अपने भाव की  
आत्मा में छुपा कर, ममता रहित आत्म निष्ठा वाला, काम,  
क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, दंभ, दर्प, अहंकार, असूया,  
गर्व, इच्छा, द्वेष, हर्ष, श्रामर्ष, ममता आदि को त्याग कर, ज्ञान  
वराय से युक्त होकर, धन और स्त्री से विमुख होकर, शुद्ध मन  
वाला होकर सब उपनिषदों के अर्थ को विचारे। ब्रह्मचर्य,  
अपरिग्रह, अहिंसा, सत्य की यत्न पूर्वक रक्षा करे। इन्द्रियों को  
जीत कर, बाहर और भीतर स्नेह रहित होकर शरीर धारण  
करने के निमित्त निवृत्त और पतित की छोड़कर तीनों वर्णों में  
पशुओं के समान द्रोह से रहित होकर भिक्षा करता हुआ ब्रह्म  
होने के योग्य होता है। सब समय में लाभ और हानि को  
समान करके हाथ खोले पात्र में माधुकर अन्न का भोजन  
करता हुआ, चरबो को न बढ़ाता हुआ क्रश होकर 'मैं ब्रह्म हूँ' इस  
प्रकार भावना करता हुआ, भिक्षाके लिए ग्राममें जाकर दृढ़शील हो  
कर न्यास भ्रकेला विचरे। इस प्रकार भाव और वर्तन दोनों का  
आचरण करे। जब अल बुद्धि होवे तब उसर के मंत्र सहित कटिसूत्र  
कौपीन दंड कमंडलु सबको जल में छोड़कर कुटीचक या बहूदक  
या हंस या परमहंस होकर नंगा विचरे। ग्राम में एक रात, तीर्थ  
में तीन रात, शहर में पांच रात, क्षेत्र में सत्त रात, घर रहित,



स्थिर बुद्धि, अग्नि की सेवा रहित, निर्विकार, नियम अनिमय को छोड़कर, प्राण धारण करने के ही निमित्त लाभ हानि को समान करके गौवृत्ति से भिक्षा करे। जल के स्थान को कर्मंडलु जानकर अबाधक एकांत स्थान में बास करने वाला, लाभ हानि में फिर प्रीति न करता हुआ, शुभ अशुभ कर्मों को काटने के परायण हो। सर्वत्र भूतल में शयन करने वाला होकर, क्षीर कर्म को त्याग कर, चातुर्मास नियम ब्रतों को भी छोड़ दे और शुक्ल ध्यान के परायण रहे। धन स्त्री और शहर से विमुख, अनुन्मत्त भी उन्मत्त के समान आचरण करता हुआ, अप्रकट लिंग वाला, अप्रकट आचार वाला, उसका दिन रात एक होने से वह सदा जागने वाला होता है। स्वरूप का अनुसंधान और ब्रह्म प्रणव के ध्यान मार्ग से युक्त संन्यास से देह का त्याग करता है वह परमहंस परिव्राजक होता है।”

ब्रह्मा पूछता है—“हे भगवन् ! ब्रह्म प्रणव किस प्रकार का है ?” उन नारायण ने कहा, “ब्रह्म प्रणव सोलह मात्रा वाला है। वह चारों अवस्था में चारों अवस्था के मिलने से पाई जाती है। जाग्रत अवस्था में जाग्रत आदि चार अवस्था, स्वप्न में स्वप्न आदि चार अवस्था, सुषुप्ति में सुषुप्ति आदि चार अवस्था और तुरीय में तुरीय आदि चार अवस्थाएँ होती हैं। जाग्रत अवस्था में विश्व चार प्रकार का है, विश्व विश्व, विश्व तैजस, विश्व प्राज्ञ और विश्व तुरीय। स्वप्न अवस्था में तैजस चार प्रकार का है, तैजस विश्व, तैजस तैजस, तैजस प्राज्ञ और तैजस तुरीय। सुषुप्ति

अवस्था में प्राज्ञ चार प्रकार का है; प्राज्ञ विश्व, प्राज्ञ तैजस, प्राज्ञ प्राज्ञ और प्राज्ञ तुरीय। तुरीय अवस्था में तुरीय चार प्रकार का है, तुरीय विश्व, तुरीय तैजस, तुरीय प्राज्ञ और तुरीय तुरीय। वह क्रम से सोलह मात्रा पर आरुढ़ रहते हैं। आकार में जाग्रत विश्व, उकार में जाग्रत तैजस, मकार में जाग्रत प्राज्ञ और अर्ध मात्रा में जाग्रत तुरीय, बिन्दु में स्वप्न विश्व, नाद में स्वप्न तैजस, कला में स्वप्न प्राज्ञ, कलातीत में स्वप्न तुरीय, शान्ति में सुषुप्ति विश्व, शान्त्यतीत में सुषुप्ति तैजस, उन्मनी में सुषुप्ति प्राज्ञ, मनोन्मनी में सुषुप्ति तुरीय, वैखरी में तुरीय विश्व, मध्यमा में तुरीय तैजस, पश्यन्ति में तुरीय प्राज्ञ और परा में तुरीय तुरीय। जाग्रत की चार मात्रायें अकार अंश वाली हैं; स्वप्न की चार मात्रायें उकार अंश वाली हैं, सुषुप्ति की चार मात्रायें मकार अंश वाली हैं, तुरीय की चार मात्रायें अर्ध मात्रा के अंश वाली हैं, यह ही ब्रह्म प्रणव है, वह तुरीयातीत परमहंस और अवबूत इनका उपास्य है। उससे ही ब्रह्म प्रकाशता है, उससे विदेह मुक्ति है।”

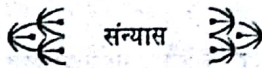
ब्रह्मा पूछता है “भगवन् यज्ञोपवीत रहित, शिखा रहित, सब कर्मों को त्याग करने वाला कैसे ब्रह्म निष्ठा परायण और कैसे ब्राह्मण होता है ?”

उन विष्णु ने कहा “हे बालक ! जो अद्वैत आत्म ज्ञान है, वह ही उसका यज्ञोपवीत है। ध्यान निष्ठा ही उसकी शिखा है।



उसका कर्म पवित्र है, क्योंकि वह सब कर्म कर चुका है वह ब्राह्मण है, वह ब्रह्मनिष्ठा परायण है वह देह है, वह श्रमि है, वह तपस्वी है, वह श्रेष्ठ है, वही सबसे बड़ा है, वही जगद्गुरु है, और वह ही मैं हूँ, ऐसा जान। लोक में परमहंस परिव्राजक एकादिक होता है, वह अत्यन्त दुर्लभ है, वह ही नित्य पवित्र है, और वह ही वेदगुरु महापुरुष है, जिसका चित्त मुझ ही में स्थित है, और मैं उसमें स्थित हूँ, वह नित्य तृप्त है वह शीत उष्ण, सुख दुःख, मान अपमान रहित है वह निन्दा और आमर्ष का सहन करने वाला है, वह छः उमियों में रहित है, और छः भाव विकारों से रहित है वह छोटे बड़े के विचार से रहित है, और वह अपने सिवाय अन्य को देखने वाला नहीं है दिशायें उसके वस्त्र हैं, न वह नमस्कार करता है, न स्वाहाकार, न स्वधाकार और विसर्जन परायण होता है। वह न निन्दा स्तुत करता है, न मन्त्र तन्त्र का उपासक है। अन्य देव के ध्यान से रहित लक्ष अलक्ष को छोड़ने वाला, सब से उपराम वाला वह सच्चिदानन्द, अद्वय, चेतनघन सम्पूर्ण आनन्द का एक बोध वाला, और ब्रह्म प्रणव के अनुसन्धान से मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार के अखंड भाव से कृत कृत्य होजाता है, वह ही परमहंस परिव्राजक है, यह उपनिषत् है।”

॥ इति परमहंस परिव्राजक उपनिषत् समाप्त ॥



संन्यास

## त्रिशिखि ब्राह्मण उपनिषत् ।

[ २६ ]

त्रिशिखी ब्राह्मण आदित्य लोक में गया और उन (आदित्य) के पास जाकर कहा “हे भगवान् ! देह क्या है ? प्राण क्या है ? कारण क्या है ? आत्मा क्या है ?” उसने कहा “इस सबको शिव ही जान !” किन्तु नित्य, शुद्ध, निरंजन, विभु, अद्वितीय, शिव एक अपने प्रकाश से इस सबको देखकर तपे दूये लोहे के पिण्ड के समान एक ही को भिन्न के समान प्रकाशता है। यदि पूछो कि वह प्रकाश करने वाला कौन है तो कहा जाता है। अविद्या सहित ब्रह्म सत् शब्द का वाच्य है। ब्रह्म अव्यक्त, अव्यक्त से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से पांच तन्मात्रा, पांच तन्मात्राओं से पांच महाभूत, पांच महाभूतों से सम्पूर्ण जगत् है। वह सम्पूर्ण क्या है ? भूतों के विकारों के विभाग है। एक ही पिण्ड में भूतों के विकारों के विभाग कैसे होते हैं ? उन उनके कार्य कारण के भेद से अंश तत्त्व, वाचक वाच्य, स्थान भेद, विषय, देवता, कोश भेद, ये विभाग होते हैं। जैसे अन्तःकरण, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये आकाश है। समान, उदान, व्यान, अपान और प्राण ये वायु हैं। श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये अग्नि है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये जल हैं। वाणी, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ ये पृथ्वी हैं। ज्ञान,



संकल्प, निश्चय, अनुसंधान और अभिमान ये आकाश के कार्य और भूतःकरण के विषय ये हैं—एकत्र करुणा, श्रौंख खोलना पकड़ना, फंलना और उधास वायु के कार्य और प्राणादि के विषय हैं। शब्द, स्पर्श रूप, रस और गन्ध अग्नि के कार्य और ज्ञानेन्द्रिय के विषय और जल के आश्रित है। बोलना, पकड़ना, चलना, त्यागना और आनन्द पृथिवी के कार्य और कर्मेन्द्रिय के विषय है। ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के विषयों में प्राण और तन्मात्राओं के विषय भूतर्भूत है। मन और बुद्धि में चित्त और अहंकार भूतर्भूत हैं, आकाश, ठेनना, दर्शन, पिंडीकरण, धारण ये पांच सूक्ष्मतम तन्मात्रा के विषय हैं। इस प्रकार आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक वारह भूत हैं। उनमें, चन्द्रमा, ब्रह्मा, दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, ज्येन्द्र, प्रजापति और यम ये इन्द्रियों के अधिदेवता रूप से बारह नाड़ियों के भीतर स्थित प्राण ही हैं, ये भ्रं हैं। भ्रंओं का ज्ञान रूप ही ज्ञाता है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूत का पञ्चीकरण इस प्रकार है। जाननापना समान वायु के योग से है श्रोत्र द्वारा शब्द गुण वाणी के सहारे आकाश में स्थित है और आकाश स्थित है। मन व्यान के योग से है त्वचा द्वारा स्पर्श गुण हाथ के सहारे वायु में स्थित है और वायु स्थित है। बुद्धि उदान के योग से, चक्षु द्वारा रूप गुण पाद के सहारे अग्नि में स्थित है और अग्नि स्थित है। चित्त अपान के योग से है जिह्वा द्वारा रस गुण उपस्थ

के सहारे जल में स्थित है और जल स्थित है। अहंकार प्राण के योग से है, नासिका द्वारा गंध गुण गुदा के सहारे पृथ्वी में स्थित है और पृथ्वी स्थित है ऐसा वह जानता है। इसमें ये श्लोक हैं। प्रत्येक भूत के अपने आधे भाग और दूसरों की क्रम से सोलह कलाओं से भूतःकरण (आकाश), व्यान (वायु), अक्षि (तेज), जिह्वा (जल) और गुदा (पृथ्वी) ये आकाश के क्रम से ॥१॥ प्रत्येक भूत का मुख्य पहिला भाग और पिछले चार २ भाग आकाश से लेकर पृथिवी आदि में स्थित हैं ॥ २ ॥ मुख्य भाग से ऊपर के सूक्ष्म भूत को जाने, पीछे बने हों उनको स्थूल जाने। इसी प्रकार उससे भ्रंश हुआ और वैसे ही उनसे भ्रंश हुए ॥ ३ ॥ इस प्रकार एक दूसरे का आश्रय करके क्रम से सब भूत प्रोत हैं।

वह पांच भूतों वाली पृथिवी चेतन से युक्त है ॥ ४ ॥ उसी (पृथिवी) से औषधी और भूत हैं, उसीसे चार प्रकार के पिण्ड हैं रस, लोह, मांस, चरबी, हड्डी, मज्जा और वीर्य धातु हैं ॥५॥ कहीं २ उन धातुओं के संयोग से प्राणियों के कुछ पिण्ड हुए, अन्नमय पिण्ड नाभि मण्डल में स्थित है ॥ ६ ॥ उसके मध्य में नाल सहित कमल कोश के समान हृदय है। हृदय के भीतर कर्ता के अहंकार से चेतन ऐसे सत्त्वगुणी देवता बैठे हुए हैं ॥ ७ ॥ इसका बीज मोह रूप जड़ और घन ऐसा तमोगुण का पिण्ड रूप अज्ञान कंठ का आश्रय करके वर्तता है यह जगत् उससे व्याप्त है ॥ ८ ॥ प्रत्येक भूतानंद रूप आत्मा भ्रंश के स्थान परम



पद में अनंत शक्तियों से युक्त होकर जगत् रूप ही भासता है ॥१६॥ जाग्रत सर्वत्र वर्तता है स्वप्न जाग्रत में वर्तता है, सुषुप्ति और तुरीय ये अन्य अवस्थाओं में कहीं नहीं वर्तती ॥१०॥ चारों रूप से शिव स्वरूप सब देशों में भोत प्रोत है, जैसे कि सब महा-फलों में रस सवका प्रवर्तक है ॥११॥ इस प्रकार अन्नमय कोश के भीतर इतर कोश स्थित हैं, जैसे कोश हैं वंसा जीव है और जंसा जीव है वंसा शिव है ॥१२॥ जीव विकारी है और शिव निर्विकार है। कोश उसके विकार हैं और वे सब अवस्थाओं में प्रवर्तक हैं ॥१३॥ जैसे दूध के पात्र में मयने से फेन उत्पन्न होता है, ऐसे ही मन के मयने से बहुते से विकल्प होते हैं ॥१४॥ कर्मों कर्मों से वर्तता है और उनके त्याग से शांति को प्राप्त होता है। दक्षिण अयन में प्राप्त होने से प्रपंच में फंसा हुआ है ॥१५॥ सदाशिव अहंकार के अभिमान से जीव हुआ है, वह अविवेक और प्रकृति के संग से वहाँ मोह को प्राप्त होता है ॥१६॥ वासना के वश होकर वह सैकड़ों योनियों में जाकर सोता है और मोक्ष से विमुख होकर भटका करता है जैसे कि मत्स्य दोनों किनारों पर आता जाता है ॥१७॥ पीछे काल के वश से ही आत्म ज्ञान और विवेक से उत्तर मार्ग परायण होकर एक स्थान से दूसरे स्थान को क्रम से प्राप्त होता है ॥१८॥ अपने प्राण को सुर्घा में धारण करके योगाभ्यास में लगता है, योग से ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञान से योग प्रवृत्त होता है ॥१९॥ वह नित्य ज्ञानयोग परायण योगी नष्ट नहीं

होता, विकार में स्थित शिव को देखता है। किन्तु शिव में तो विकार है ही नहीं ॥२०॥ योग के प्रकाशक (शिव) का अनन्य भाव से योग द्वारा ध्यान करे जिसको योग और ज्ञान नहीं होता उसका भाव सिद्ध नहीं होता ॥२१॥ इसलिये अभ्यास योग से मन का प्राण द्वारा निरोध करे, मानो धुरे की पंजी धार से उसको काट डालो। यमादि आठ योग के आगे के अभ्यास से आत्माज्ञान रूप योग सिद्धा उत्पन्न होती है।

ज्ञानयोग और कर्मयोग दो प्रकार का योग माना गया है ॥२२-२३॥ है उत्तम ब्राह्मण ! अब कर्मयोग सुन ! अथाकुल चित्त वाले का विषयों से वंचन कहाँ ? ॥२४॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! जो संयोग है, वह दो प्रकार का कहा जाता है। शस्त्र विहित कर्मों में कर्म कर्तव्य है ॥२५॥ मन का नित्य निग्रह करना कर्मयोग कहा जाता है, और जो चित्त को सदा अपने कल्याण में लगाना ॥२६॥ वह शिव रूप सब सिद्धियों को देने वाला ज्ञानयोग जानना चाहिए। कहे हुए लक्षण वाले दोनों प्रकार के योग में जिसका मन निर्विकार है ॥२७॥ वह मोक्ष लक्षण वाले परम श्रेय को शीघ्र प्राप्त होता है।

देह इन्द्रियों में वैराग्य को पंडित यम कहते हैं ॥४८॥ परम तत्त्व में सदा अनुराग नियम कहा जाता है। सब वस्तुओं में उदा-सोन भाव उत्तम भासन कहा जाता है ॥२८॥ इस सब जगत् को निष्काम प्रसीति प्राण का संयम है। हे श्रेष्ठ ! चित्त का अंतर्मुखी



भात्र प्रत्याहार है ॥३०॥ चित के निश्चल भाव धारण करने को धारणा जान । 'मै वह चिन्मात्र हूँ' इस प्रकार चितवन करना ध्यान कहलाता है ॥३१॥ ध्यान का भली प्रकार विस्मरण होना समाधि कहलाती है ।

अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, दया, मीथा-पन ॥३२॥ क्षमा धैर्य सूरमाहार और शौच ये दश यम हैं । तप, संतोष, आस्तिकाना, दान, ईश्वर का आराधन ॥३३॥ वेदान्त का श्रवण, लज्जा की बुद्धि और जप व्रत है । हे ब्राह्मण ! स्वस्तिक आदि आसन और उनके अंग यानी त्रिषि कहते हैं—॥३४॥ दोनों पैरों के तलुओं को गरस्पर दोनों घोंटुओं के बीच में करके बैठने को स्वास्तिक आसन कहते हैं ॥३५॥ पीठ के वाम भाग में दायां टकना और दायें भाग में बायें टकने को लगा कर जो गी के मुख के समान हो जाता है, वह गोमुख आसन होता है ॥३६॥ एक चरण को वाम जंघा पर और दूसरे को दक्षिण जंघा पर रख कर वीरासन कहलाता है ॥४०॥ दोनों एड़ियों से गुदा को विपरीत क्रम से दबा कर यानी दाईं से वाम भाग को और बाईं से दक्षिण भाग को दबा कर जो सावधानी से बंठा जाय वह योगासन होता है, इस प्रकार योग के जानने वाले जानते हैं ॥३८॥ जब दोनों जंघाओं पर दोनों पैर के तलुये रखे जाने हैं तब यह पद्मासन नव व्याधि और विष नाश करने वाला होता है ॥३९॥ पद्मासन को लगा कर फिर विपरीत क्रम से दोनों अंगुठों को दोनों हाथों से पकड़े तो बद्ध पद्मासन होता

है ॥ ४० ॥ पद्मासन को लगा कर जान और जंघाओं के बीच में दोनों हाथों को क्षमि में लगा कर आकाश में स्थित रहे, यह कुक्कुट आसन है ॥४१॥ कुक्कुट आसन को लगाकर दोनों मुद्राओं से कंधों को भली प्रकार बांध कर कूर्म के समान सीधा हो तो वह उत्तान कूर्मसन कहलाता है ॥४२॥ दोनों पैरों के अंगुठों को हाथों से पकड़ कर मनुष्य के समान कान तक खींच, उसको धनुरासन कहते हैं ॥४३॥ सीवनी को दोनों एड़ियों से विपरीत रीति से दबा कर दोनों घोंटुओं और हाथों को फैलाने से सिंहासन होता है ॥४४॥ वृषणों के नीचे सीवनी के दोनों पार्श्व भागों में एड़ियों को रख कर पैर और हाथों को बांध कर बैठने से भद्रासन होता है ॥४५॥ सीवनी के दोनों पार्श्व भागों को एड़ियों से विपरीत रीति से दबावे उसको मुक्तासन कहा है ॥४६॥ दोनों हाथों से क्षमि को स्पर्श करके उन हाथों को नुहनी के ऊपर नाभि के दोनों पार्श्व भागों को मोर के समान न्यापति करके ॥४७॥ शिर और पैरों को उठे हुए रखने से मयूरासन कहलाता है । बाईं जंघा के सून में दहिना चरण रख कर और जानु से बाहर वाम पाद जो हाथ से लपेट कर ॥४८॥ और वाम भाग से बायें अंगुठे को पकड़े वह मत्स्येन्द्र आसन होता है । बायें पैर से एड़ी को दबा कर मेढ के ऊपर दक्षिण पर को रख कर ॥४९॥ सोधा शरीर करके बैठे इसको निद्रासन कहा है । दोनों चरणों को क्षमि पर फैला कर, दोनों पैर के अंगुठों को भली प्रकार पकड़ कर ॥५०॥



घोटुओं के ऊपर मस्तक को रखे तो वह आसन परिचितमान कहलाता है जिस किसी प्रकार से सुख और स्थिरता उत्पन्न होती है ॥११॥ वह मुखासन कहलाता है, असमर्थ पुरुष उसको लगावे, जिसने आसन को जीत लिया उसने तीनों जगत् को जीत लिया ॥१२॥

आदि में यम नियम और आसन से युक्त होकर नाड़ियों की शुद्धि करके प्राणायाम करे ॥१३॥ देह का प्रमाण अपनी अंगुलियों से ध्यानावे अंगुली विस्तार वाला है, शरीर से बारह अंगुल अधिक प्राण का प्रमाण है ॥१४॥ देह में स्थित वायु को देह से उत्पन्न हुए अग्नि से योग द्वारा न्यून श्रवण समान करता हुआ ब्रह्म जाना जाता है ॥१५॥ देह के मध्य में तमे हुए मनुष्यों में नीचे की प्रभाव वाला तीन कोण वाला अग्नि का स्थान होता है, और चार कोण वाला चार पद वाले पशुओं में होता है ॥१६॥ पक्षियों का गोल होता है, मर्ष की योनि वालों का छः कोण का होता है। पसीने में उत्पन्न होने वालों का आठ कोण का होता है। मनुष्यों के देह में उस स्थान पर दीपक के समान उज्ज्वल नी अंगुल वाला कन्द स्थान होता है। वह चार अंगुल ऊँचा और चार अंगुल चौड़ा होता है ॥१७॥ तिर्यक्, पक्षियों और चौपायों में झण्डे की आकृति वाला पेट के मध्य में वह स्थित है, उसके मध्य की नाभि कहते हैं ॥१८॥ वहाँ बारह आरे वाले चक्र हैं, उनमें विष्णु आदि की मूर्तियाँ हैं, वहाँ स्थित चक्र को मैं अग्नी माया से घुमाता हूँ ॥१९॥ हे

उत्तम ब्राह्मण ! उन आर्यों में जीव क्रम से इस प्रकार घूमता है जिस प्रकार तन्तु के जाल में मकड़ी घूमती है ॥६०॥ प्राण पर चढ़ा हुआ जीव चलता है, उसके बिना नहीं चलता, उस नाभि के ऊपर कुण्डली का स्थान तिरछा और ऊँचा है ॥६१॥ वह आठ प्रकृति वाली आठ प्रकार की कुण्डली किये हुए है वह वायु तथा अन्न जल के संचार को ठीक ठीक कन्द के पास चारों तरफ से रोक कर सदा स्थित है इसी प्रकार ब्रह्म रंध्यके मुखको मुखसे घेर कर स्थित है ॥६२-६३॥ योग काल में अग्नि सहित पवन से जाग्रत की हुई हृदय आकाश में नाग रूप से अच्यन्त प्रकाश वाली स्फुरित होती है ॥६४॥ अपान से दो अंगुल ऊँची भेद के नीचे तर्क मनुष्यों के देह का मध्य होता है और चौपायों का हृदय में होता है ॥६५॥ तथा औरों का टंडी के मध्य में होता है। (प्राण अपान से संयुक्त सुषुम्ना से देह के मध्य में चार प्रकार से प्रकाशती है) ॥६६॥ कन्द के मध्य में प्रसिद्ध सुषुम्ना नाड़ी स्थित है। वह कमल सूत्र के समान सूक्ष्म सोधी ऊपर गई हुई है ॥६७॥ ब्रह्मरंध्य तक विजुली के समान प्रकाशित नाल वाली वैष्णवी ब्रह्म नाड़ी निर्वाण प्राप्ति का मार्ग रूप है ॥६८॥ इडा और पिण्डला उसके इधर-उधर स्थित हैं, इडा कन्द से बाईं नासिका के पुट तक चली गई है ॥६९॥ पिण्डला उससे दाईं नासिका के पुट तक चली गई है। गांधारी हस्तिजिह्वा दो नाड़ी और अन्य नाड़ियाँ स्थित हैं ॥७०॥ वे उसके आगे पीछे



बाई और दाईं आंख तक मई है। पूषा और यशस्विनी नाड़ियां उसी से निकली हैं ॥७१॥ वे मुद्रा के मूल से दांयें और बायें कान तक गई हैं। अलम्बुसा शुभा नाड़ी मेढू के अन्त तक नीचे गई हुई है ॥७२॥ कन्द के नीचे पैर के अंगूठे तक कौशिकी है। ये दश प्रकार की नाड़ियां कंद में उतरात हुई कही गई हैं ॥७३॥ उसके मूल में बहुत सी सूक्ष्म और स्थूल नाड़ियां हैं स्थूल और सूक्ष्म बहत्तर हजार नाड़ियां हैं ॥७४॥ स्थूल मूल वाली नाड़ियों की भिन्न २ प्रकार से गिनती नहीं हो सकती जैसे पीपल के पत्ते में सूक्ष्म और स्थूल नसें फंसी हुई हैं ॥७५॥ प्राण, अपान, समान उदान, और व्यान। नाग, कूर्म हुकर देवदत्त और घनजय ॥७६॥ प्राणादिक दश वायु दश नाड़ियों में चलते हैं, उन में प्राणादि पांच मुख्य हैं और उनमें दो (प्राण अपान मुख्य हैं ॥७७॥ अथवा प्राण ही मुख्य है और जीव को धारण करता है। मुख और नासिका का मध्य, हृदय नाभि मंडल ॥७८॥ और पैरका अंगुठा, है श्रेष्ठ ब्राह्मण ! ये प्राण के स्थान हैं। हे ब्राह्मण अपान मुद्रा, मेढू जंघा और घांठ में चलता है ॥७९॥ समान मज्ज अंगों में सर्वव्यापी होकर स्थित है। उदान दोनों पैर दोनों हाथ और सब मर्धियों में स्थित है ॥८०॥ व्यान श्रोत्र जंघा कमर, एड़ी, कन्धे और गले में स्थित है। नागादि पांच वायु त्वचा और हड्डी आदिकों में स्थित है ॥८१॥ तुन्द में स्थित जल, अन्न और रसादिकों को एकत्र कर के तुन्द के मध्य में रहता हुआ प्राण पृथक् २ करता है ॥८२॥ इत्यादि चेष्टा प्राण पृथक्

स्थित हो कर करता है। अपान सूत्रादि और विसर्जन करता है ॥८३॥ व्यान वायु में प्राण अपान आदि की चेष्टा की जाती है शरीर में स्थित उदान से आकाश की तरफ उड़ायी जाता है ॥८४॥ समान शरीरादि का पोषण आदि करता है। इकार आदि क्रिया नाग की है। कूर्म की क्रिया आँखों का खोलना मुदना है ॥८५॥ हुकर भूख लगाता है। देवदत्त निद्रा आदि कर्म करता है मूलक शरीर की शोभा आदि घनजय करता है ॥८६॥ नाड़ी भेद, वायु भेद और प्राणों का स्थान और चेष्टा अनेक हैं। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! उनको जान कर हो ॥ ८७ ॥

पूर्वोक्त ज्ञान से युक्त होकर नाड़ियों को शुद्ध करने का यत्न करे। सर्व संबंध से रहित योग के अंगों की सामग्री से संपूर्ण और एकान्त देश में जाकर वहां लकड़ी के बने हुये शुभ स्थान में दर्भ, कुश और काले मृग चर्म का आसन बनावे ॥८८-८९॥ जब तक दोनों अंग समान न होजाय तब तक आसन की सावना करे। आसन पर बैठ कर यथा शक्ति स्वस्तिक आदि आसन भली प्रकार लगावे ॥९०॥ ब्राह्मण सीधा शरीर रख कर समाचित चित्त होकर प्रथम आसन लगाकर नासा के अग्र भाग में दृष्टि करके दांतों से दांतों को न स्पर्श करते हुए ॥९१॥ जिह्वाको तालू में रख कर उपद्रव रहित स्वस्थ चित्त होकर सकोड़े हुए शिर को योग मुद्रा से कुछ २ हाथों को बांध कर कही हुई विविध से प्राणायाम करे। रेचन, पूरण, वायु का शोषन तथा रेचन ॥ ९२-९३ ॥ चार प्रकार से वायु के नियमन को प्राणा-



याम कहते हैं। दहिने हाथ से नासिका के पुट को दबाकर ॥६४॥ फिर धीरे २ पिगला के वायु को बाहर फेंके। हे ब्राह्मण ! इडा से सोलह मात्रा से वायु को भर कर ॥६५॥ भरे हुए को चौसठ मात्रा से रोकें। पिगला वायु को बत्तीस मात्रा से भली प्रकार रेचन करे ॥६६॥ कम से और विपर्यति कम से इस प्रकार बारंवार करे। कुंभ के समान देह में भरे हुए वायु को रोकें ॥६७॥ इस प्रकार पूर्ण करने से सब नाड़ियाँ वायु से भर जाती हैं। हे ब्राह्मण ! ऐसा करने से दस वायु चलने लगते हैं ॥६८॥ हृदय कमल भी प्रत्यक्ष विकस्य जाता है। वहां पाप रहित वायुदेव परात्मा को देखे ॥६९॥ सवेरे, दोपहर, सांझ और आधीरात को धीरे २ अस्सी तक चार बार कुंभक करे ॥ १०० ॥ एक दिन मात्र करने से ही सब पापों से छूट जाता है। प्राणायाम परायाण मनुष्य तीन साल के बाद ॥ १०१ ॥ योगी योग सिद्ध हो जाता है। वायु का जीतने वाला जितेंद्रिय, थोड़ा भोजन करने वाला, थोड़ा सोने वाला, तेजस्वी और बलवान् हो जाता है ॥ १०२ ॥ अकाल मृत्यु को उल्लंघन करके दीर्घ आयु को प्राप्त होता है। पसीना उत्पन्न करने वाला प्राणायाम श्रवण है ॥ १०३ ॥ जिस प्राणायाम में शरीर कंपता है वह मध्यम है। जिसमें शरीर उठ जाता है, वह उत्तम कहा गया है ॥ १०४ ॥ श्रवण प्राणायाम में व्याधि और पापों का नाश होता है, मध्यम में पाप, रोग और महां व्याधि का नाश होता है और उत्तम में ॥ १०५ ॥ उसका

मल मूत्र अल्प होजाता है, देह हल्का होजाता है, उसका भोजन थोड़ा होता है, परन्तु इन्द्रिय और बुद्धि तीव्र होजाती है और वह तीनों काल का जानने वाला होजाता है ॥ १०६ ॥ रेचक और पूरक को छोड़कर जो कुंभक ही करता है, उसको तीनों काल में कुछ दुर्लभ नहीं है ॥ १०७ ॥ यत्न करने वाला नाभि कंद में, नासिका के अग्रभागमें और पेरके अंगुष्ठमें सदा श्रवण संन्यासाल में मनमें प्राण को धारण करे ॥ १०८ ॥ वह योगी सब रोगोंसे मुक्त होकर अमर्षाति रहित होकर जीता है। नाभिकंदमें प्राणधारण करने से कुक्षि के रोग नाश होते हैं ॥ १०९ ॥ नासा के अग्र में धारण करने से दीर्घायु होता है और देह हल्का होता है। ब्राह्म मुहूर्त में वायु को जिह्वा से खेंच कर ॥ ११० ॥ तीन मास तक पीसे तो महान् वाक् सिद्धि होती है। छः मास के अभ्यास से महान् रोग का नाश होता है ॥ १११ ॥ रोगादि से दूषित जिस २ अंग में वायु धारण किया जाता है वायु के धारण करने से वह अंग शरीर होजाता है ॥ ११२ ॥ मनके धारण करनेसे पवन धारण किया हुआ हो जाता है। हे उत्तम ब्राह्मण ! मनके धारण करने का हेतु प्राण कहा जाता है ॥ ११३ ॥ समहित होकर इन्द्रियों को विषयों से रोक कर अपान को ऊपर खेंचे और ऊपर २ धारण करे ॥ ११४ ॥ श्रोतादि इन्द्रियों को हाथों से बंद करके कहे हुए योग करने वाले का मन वश हो जाता है ॥ ११५ ॥



मन के वश हो जाने से प्राण वायु सदा स्वाधीन रहता है। नासिका के छिद्रों में क्रमसे वर्तता है ॥ ११६ ॥

नाडियां तीन होती हैं। उन प्राणायाम करने वाले महा-रमाओं के प्राण जितने काल तक दाहिने नासा पुट से चलता है उतने ही काल बायें से चलता है। इस प्रकार क्रम से चलते हुए प्राण वाला प्राणको जीतने वाला मनुष्य ॥ ११७-११८ ॥ दिन रात, पक्ष, मास, ऋतु भयनादिक काल भेद को समाहित और अन्तर्मुख होकर जानता है ॥ ११९ ॥ भ्रंशुष्ठादि भयने भयवर्षों का स्फुरण वा दर्शन होना बन्द होजाना इन भरिष्टों से जीते हुए ही भयना क्षय मृत्यु जाने ॥ १२० ॥ ऐसा जानकर भेद योगी केवल्य का प्रयत्न करे। जिसके पैर के भंगुंठे और हाथ के भंगुंठे में स्फुरण सुनाई न दे ॥ १२१ ॥ तो उसके जीवन का सान भरके बाद क्षय होता है। जिसके कलाई और एड़ी का स्फुरण बंद हो जावे ॥ १२२ ॥ तो उसके जीवित की छः मास तक स्थित रहें। जिसकी कुहनी में स्फुरण न हो, उसकी तीन मास की स्थित है ॥ १२३ ॥ कोख, शिरन और पांशु में स्फुरण न रहने में एक मास तक जीवे और दृष्टि में स्फुरण न होने से भावे मास जीवे ॥ १२४ ॥ जठर द्वार पर स्फुरण न होने से दश दिन जीवन होता है। जिसकी ज्योति जुगनु के समान हो जाती है उसका जीवन पांच दिन होता है ॥ १२५ ॥ जिह्वा का भय न दीखने पर तीन दिन उसकी स्थिति रहती है। ज्वाला के न दीखने पर दो दिन में निश्चय मृत्यु होजाता है ॥ १२६ ॥ इत्यादि भरिष्ट दृश्य

वायु के क्षय के कारण है इसलिये जप ध्यान परायण होकर अपने कल्याण का यत्न करे ॥ १२७ ॥ मन से परमात्मा का ध्यान करके उसको एक रूपता को प्राप्त करे।

मर्म स्थानों में धारणा भठारह भेद जाती है ॥ १२८ ॥ स्थान से स्थान का जो स्वीचना है, वह प्रत्याहार कहलाता है। पैर का भंगुंठा, एड़ी, जंघा का मध्य ॥ १२९ ॥ उरका मध्य, मुदा का मूल, हृदय, शिरन, देह का मध्य, नाभि, कंठ कुहनी ॥ १३० ॥ तालु का मूल, घ्राण का मूल और आंखों का मंडल, भोंओं का मध्य, मस्तक का ऊर्ध्व मूल घोंद ॥ १३१ ॥ का मूल और हाथों का मूल, है ब्राह्मण ! पांचों मूलों के इस पंचभौतिक देह में, मे महार ( मर्म स्थान ) है ॥ १३२ ॥ युक्त मन का जो यमादि से धारण करना है वही संसार से तारने का कारण रूप धारणा है ॥ १३३ ॥

घोंद से पैर तक पृथ्वी का स्थान कहलाता है। पीली, चार कोण वाली पृथ्वी वज्र से लाञ्छित है ॥ १३४ ॥ पांच घड़ी तक वायु को रोक कर पृथ्वी का ध्यान करना चाहिए। घोंद से कमर तक जल का स्थान कहा है ॥ १३५ ॥ भावे चन्द्र के समान आकार वाला, श्वेत और चांदी से लाञ्छित है। दस घड़ी तक द्वाभ को रोक कर जल का ध्यान करना चाहिये ॥ १३६ ॥ देह के मध्य से कटि पर्यन्त अग्नि का स्थान कहा है। वही सितर के रंग वाली प्रज्वलित अग्नि का पन्द्रह घड़ी ॥ १३७ ॥ प्राण को



नाड़ियों में रोक कर ध्यान करना चाहिये, इस प्रकार कहा है। नाभि के ऊपर नासिका पर्यन्त वायु का स्थान है, वहाँ ॥ १३८ ॥ वेदी के आकार वाला, धुएँ के रंग वाला, वनवान् पवन है। कुम्भक करके पवन को प्राण में बीस घड़ी तक रोक कर ध्यान करना चाहिये, ध्राण से ब्रह्मरंध्र तक आकाश का स्थान है, वहाँ नीले रंग के समान प्रभा है ॥ १३९-१४० ॥ यत्न कर्त्तव्य वाला कुम्भक से आकाश में वायु को रोकें। फिर देह के पृथ्वी अंश में चार भुजा वाले, किरीट वाले ॥ १४१ ॥ अग्निरूढ़ हरि का योगी संसार से मुक्त होने के लिये ध्यान कर्त्तव्य का यत्न करें। सूक्ष्म बुद्धिवाला योगी जलके अंशमें नारायणको पूर्ण करे ॥ १४२ ॥ अग्नि में प्रद्युम्न को, वायु के अंश में संकर्षण को और पीछे आकाश अंश में परमात्मा वासुदेवका तदा स्मरण करे ॥ १४३ ॥ सदा अग्न्यास करने वाले को इस परमात्मा की प्राप्ति शीघ्र हो हो जाती है, इसमें संशय नहीं है।

प्रथम योगासन को बांधकर हृदय देश में हृदय को रोक कर ॥ १४४ ॥ नासा के अग्र भाग में दृष्टि लगाकर त्रिज्ञा की ताल में करके दांतों से दांतों को न स्पर्श करते हुए ऊँचा शरीर करके समाहित होकर ॥ १४५ ॥ शुद्ध आत्मबुद्धि से इन्द्रियों के समूह को रोक कर वासुदेव परमात्मा का चित्तवन करे ॥ १४६ ॥ अपने में व्याप्त रूप का ध्यान कैवल्य सिद्धि को देने वाला है। जो एक पहर कुम्भक द्वारा वासुदेव का चित्तवन करे ॥ १४७ ॥ उस योगी का सात जन्म का किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है।

नाभि कन्द से लेकर हृदय स्थान तक ॥ १४८ ॥ जाग्रत वृत्ति को जाने। स्वप्न वाला कंठ में स्थित होता है। सुषुप्त ताल के मध्य स्थित होता है, तुर्य भोक्तों के मध्य में स्थित होता है ॥ १४९ ॥ और तुर्यातीत ब्रह्मरंध्र में परब्रह्म का लक्ष करता है। जब तक जाग्रत वृत्ति से आरंभ कर के ब्रह्मरंध्र के भीतर है ॥ १५० ॥ तब तक यह तुरीय का आत्मा है, तुर्या के अन्त में विष्णु कहलाता है। ध्यान से युक्त होकर अत्यंत निर्मल आकाश में ॥ १५१ ॥ करोड़ सूर्य को घात वाले हृदय कमल में बैठे हुए नित्य उदय रूप क्षयवा विरह रूप विष्णु का ध्यान करे ॥ १५२ ॥ अनेक आकारों से युक्त, अनेक मुखों से युक्त, अनेक भुजाओं से युक्त, अनेक आयुर्वों से मंडित ॥ १५३ ॥ नाना वर्ण वाले, देव रूप शांत, उग्र आयुष उठाये हुए अनेक नेत्र वाले, कौटि सूर्य के समान प्रभा वाले (विरह रूप विष्णु) का ॥ १५४ ॥ ध्यान करने वाले योगी की सब मन की वृत्तिवां नष्ट हो जाती हैं। हृदय कमल के नय स्थित, चैतन्य, ज्योति, अव्यय ॥ १५५ ॥ कर्त्तव्य के समान गोल आकार वाले, तुर्यातीत, पर से पर, अमल, आनन्दमय, चिन्मय, प्रकाशमान, विशु ॥ १५६ ॥ वायु रहित स्थान के दीपक समान आकृतिम मणि की प्रभा वाले (निर्मल ब्रह्म) का ध्यान करने वाले योगी के हाथ में ही मुक्ति स्थित है ॥ १५७ ॥ विरह रूप देव का स्थूल सूक्ष्म अथवा अन्त जो कुछ रूप है उसको हृदय कमल में देख कर ॥ १५८ ॥ जो योगी ध्यान करता है, उसको वह साक्षात् प्रकाशता है और अणिमा



आदि का फल सुख से ही उत्पन्न होता है ॥ १५६ ॥ जीवात्मा और परमात्मा दोनों काही ज्ञान होकर मैं ही परब्रह्म हूँ इस प्रकार स्थित ॥ १६० ॥ ममाधि है उसको सब दृष्टियों से रहित होकर जानना चाहिए । जो योगी ब्रह्म को संपादन करता है, वह फिर संसार में नहीं आता ॥ १६१ ॥ इस प्रकार तत्त्वों का शोधन करके स्पृहा रहित चित्त वाला योगी, जिस प्रकार इन्द्रिय रहित अग्नि ज्ञान हो जाती है इसी प्रकार स्वयं ज्ञान होता है ॥ १६२ ॥ ग्रहण करने योग्य के अभाव होने पर मन और प्राण निश्चय आत्म ज्ञान युक्त होने से जीव शुद्ध तत्त्व परमात्मा में नमक के डले के समान नोन हो जाते हैं ॥ १६३ ॥ फिर वह मोह जाल के समूह रूप विषय को स्वप्न के समान देखता है जो स्वभाव से ही पूर्ण निश्चल होकर सुषुप्ति के समान आचार करता है ॥ १६४ ॥ वह योगी निर्वाण पद का आश्रय करके कैवल्य को भोगता है, यह उपनिषत् है ।

॥ इति त्रिषिद्धि ब्राह्मण उपनिषद् समाप्त ॥  
योग

## कलि संतरणोपनिषद् ।

[ २७ ]

द्वार के अन्त नारद ने ब्रह्मा के पास जाकर कहा “भगवन् पृथ्वी में विचरता हुआ मैं कलियुग को किस तरह तरुं ?” ब्रह्मा ने कहा “तू ने मुझसे अच्छा प्रश्न किया । सब श्रुतियों का जो गुप्त रहस्य है, उसको सुन जिससे तू कलियुग में संसार को तैर जायगा । भगवान् आदि पुरुष नारायण के नाम उच्चारण मात्र से पाप रहित होता है ।” नारद ने फिर पूछा “वे नाम क्या हैं ?” उन हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) ने कहा “हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥ १ ॥ ये सोलह नाम कलियुग में पाप को नाश करने वाले हैं, सब वेदों में इसमें बढ़ कर अन्य कोई उपाय दिखाई नहीं देता ॥ २ ॥ ये नाम मोलह कला से ढके हुए जीव के आचरण को नाश करने वाले हैं । पीछे वादल के हट जाने से जैसे सूर्य किरण मण्डल प्रकाशता है ऐसे ही परब्रह्म प्रकाशता है ।” फिर नारद ने पूछा “भगवन् इसकी विधि क्या है ?” ब्रह्मा ने कहा इसकी विधि नहीं है ! ब्राह्मण सर्व काल में पवित्र अथवा अपवित्र पढ़ता हुआ सालोक्यता समीपता साध-पता और सायुज्यता को प्राप्त होता है । जो इन सोलह को साढ़े



तीन करोड़ बार जपता है, वह ब्रह्म हत्या में छूट जाता है, वीर हत्या से छूट जाता है। सुवर्ण की चोरी करने के पाप से पवित्र होता है, पित, देव और मनुष्यों के अपकार से पवित्र होता है, सब धर्मों के परित्याग के पाप से शीघ्र पवित्र हो जाता है, शीघ्र मुक्त होना है ॥ इति उपनिषत् ॥

॥ इति श्री कलि संतरणोपनिषत् नमास ॥



## जाबालि उपनिषत् ।

[ २८ ]

भगवान् जाबालिसे पंचादिने पूछा “हे भगवान् परम तत्त्व के रहस्य को कहिये ! तत्त्व क्या है ? जीव कौन है ? पशु कौन है ? ईश कौन है ? मोक्षका उपाय क्या है ?” उन्होंने उससे कहा “अच्छा प्रश्न किया, जो कुछ मैंने जाना है, सब कहता हूँ” फिर उसने उससे कहा “आपने कहाँ से जाना है ?” फिर उन्होंने उससे कहा “पञ्चानन से !” फिर उसने उससे पूछा “उन्होंने कहाँ से जाना था ?” फिर उन्होंने उससे कहा “ईशान से जाना था !” फिर उसने उससे पूछा “उन्होंने उनसे किस प्रकार जाना था !” उन्होंने उससे कहा “उन्होंने उनकी उपासना करके जाना !” फिर उसने उससे कहा “हे भगवान् ! कृपा करके वह सब रहस्य मुझसे कहिये !” उसके प्रश्न करने पर वे सम्पूर्ण तत्त्व का निवेदन करने लगे:—“अहंकार से युक्त पशुपति नंसारी जीव है, वह हों पशु है, सर्वज्ञ पाँच कुर्यांसे युक्त सबका देवर शिव पशुपति है !” “पशु कौन है ?” फिर उन्होंने उनसे कहा “जीव पशु कहलाते हैं, उनका पति होने से वह पशुपति है !” फिर उसने उनसे पूछा “जीव पशु किस प्रकार हैं ?” उनका वह पति किस प्रकार है ?” उन्होंने उससे कहा “जैसे घास खाने वाले, विवेक हीन दूसरे के दास, खेती आदि कर्म में नियुक्त, सब दुःखों के



सहने वाले अपने मालिक के वंशुआ गो आदि पशु हैं, ऐसे उनके मालिक के समान सर्वत्र ईश पशुपति है।" "उसका ज्ञान किस उपाय से होता है ?" फिर उन्होंने उससे कहा " विष्णु धारण करने से" "उसकी विधि किस प्रकार है ? कहाँ कहाँ धारण की जाती है ?" फिर उन्होंने उससे कहा 'सद्योजातादि पाँच ब्रह्म मंत्रों से भस्म ग्रहण करके 'अग्निरतिभस्म' इस मंत्र में अग्निर्मान्त्रित करके 'मानस्तोत्र' इस मन्त्र से धारण करके, जल में गीला करके 'त्रायुष' इस मन्त्र शिर, ललाट, छाती कन्धों में 'त्रायुष और त्रियम्बक' इन मन्त्रों से तीन रेखा करे। यह शुभ व्रत सब वेदों में वेदवासियों से कहा गया है, फिर उत्सव न होने के निमित्त मुमुक्षु उसको करे। फिर सनत्कुमार प्रयाण पूछता है। त्रिपुण्ड्र धारण को तीन प्रकार की रेखा मध्य में ललाट तक, नेत्रों तक और भोंधों तक है। जो उसको प्रथम रेखा है, वह गार्हपत्य अग्नि है, अकार मात्रा है, रजोगुण है, शूलोक है, अपना आत्मा (शरीर) है, क्रिया शक्ति है, ऋग्वेद है, प्रातः सवन है और प्रजापति देव उसका देवता है। जो उसकी दूसरी रेखा है वह दक्षिण अग्नि है, उकार मात्रा है, सतोगुण है, अन्तरिक्ष लोक है, अन्तरात्मा है, इच्छा शक्ति है, यजुर्वेद है, मध्य दिन सवन है, त्रिपुण्ड्र देवता है। जो उसकी तीसरी रेखा है, वह ग्राहवनाय अग्नि है, मकार मात्रा है, तमो गुण है, स्वर्ग लोक है, परमात्मा है, ज्ञान शक्ति है, सामवेद है, तीसरा पहर वनस है, महादेव देवता है। जो विद्वान् ब्रह्मचारी,

गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा यती भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाता है, वह महापातकों और उपातकों से पवित्र होता है। वह सब देव-ताम्रों का ध्यान करने वाला होता है, वह सब तीर्थों में स्नान किया हुआ होता है, वह सब रुद्र मंत्रों का जप करने वाला होता है, वह फिर नहीं लौटता, वह फिर नहीं लौटता।

॥ इति श्री जाबालि उपनिषद् समाप्त ॥





## अमृतनाद उपनिषत्

[ २१ ]

बुद्धिमान् पुरुष को शास्त्र का अध्ययन करके तथा शारम्भार अभ्यास करके उसमें मे सार रूप परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के पदचान् शास्त्र को ( पतीता ) जलती हुई लकड़ी के ममान त्याग देना चाहिये ॥ १ ॥ अकार रूपी रथ पर आरुह होकर और विष्णु रूप बुद्धि को सारथी बना कर ब्रह्मलोक प्राप्ति की इच्छा रखने वाले श्रिकारियों को रुद्र भगवान् के आगन्धन में तत्पर होना चाहिये ॥ २ ॥ जब तक वह रथ के मार्ग में रहे तब तक रथ के भीतर बंठा रहे परन्तु जब आत्मा का स्थान आ पहुँचे तब उसको त्याग कर ब्रह्म में लीन हो जाय ॥ ३ ॥ अकार आदि मात्रा का, स्थूलादि शरीर का, विश्वादि पाद का त्याग करके तथा व्यञ्जन से रहित, स्वर रहित, मकार से मूश्म पद को विद्राज प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ पाँच शब्दादि विषयों में भटकने वाले श्रिति चंचल मय को आत्मा की रश्मि रूप से चिल्लन करना इसको प्रत्याहार कहते हैं ॥ ५ ॥ प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, शारणा, तर्क और समाधि इस रीति से योग के छः श्रेण हैं ॥ ६ ॥ जिस प्रकार पर्वत को धातु में रहने वाला मल श्रमि में तपाने से ज्व जाता है उसी प्रकार प्राण को रोकने से इन्द्रियों में रहने वाला मल जल जाता है ॥ ७ ॥ प्राणायाम से दोषों को, धारणा से

पाप को प्रत्याहार से संसर्ग को और ध्यान से श्रनात्म गुणों को जला देके ॥ ८ ॥ इस प्रकार पाप के नाश होने परचात् आत्मा का चिल्लन करे ॥ ९ ॥ वायु का रेचक और पूरक करे इस प्रकार प्राणायाम तीन प्रकार का है, उनको रेचक, पूरक और कुम्भक कहते हैं ॥ १० ॥ व्याहृति और प्रणव सहित तथा शिरोमन्त्र सहित गायत्री का तीन बार पाठ करते हुए प्राण का नियन्त्रण करना, इसको प्राणायाम कहते हैं ॥ ११ ॥ आधार चक्र में उठाये हुए वायु को एक नासागुद द्वारा बाहर निकाल देना और उदर को संकल्प से रहित, स्थूल प्राणवायु से रहित करना यह रेचक का लक्षण है ॥ १२ ॥ कमल की नाल से जिस प्रकार जल ऊपर खेंचने में आता है, उसी प्रकार बाहर के वायु को भीतर खेंचना यह पूरक का लक्षण है ॥ १३ ॥ ऊपर और नीचे श्वास का न लेना और गान्ध को हिलने न देना इस प्रकार का योग करना कुम्भक का लक्षण है ॥ १४ ॥ अंधे के समान न देखना, वहीरे के समान शब्द न सुनना और देह को काट के नमान देखना यह प्रशान्त का लक्षण है ॥ १५ ॥ मन संकल्पात्मक है ऐसे समझ कर बुद्धिमान् पुरुष उसको आत्मा में नय करे इस प्रकार मन को आत्मा में तल्लीन करना. उसको धारणा करते हैं ॥ १६ ॥ शास्त्रानुक्रमित ऊहापोह को तर्क कहते हैं । साक्षात्कार होने से समभाव की प्राप्ति होती है, उसको समाधि कहते हैं ॥ १७ ॥ सर्व दोष से रहित सुन्दर श्रमि पर दर्भासन विद्योवे, मन से रक्षा का संकल्प करके रथ मंडल का जप



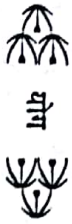
करे ॥१८॥ पश्चात् पद्म, स्वस्ति और भद्रासन आदि किसी भी योगासन से उत्तर की तरफ़ मुख करके बैठे ॥१९॥ नाक के एक छिद्र को श्रृंगुली से ढाँप कर दूसरे छिद्र से वायु को बंधे, अग्नि को नियम में रखकर यानी मूत्र वंश करके नाद ब्रह्म का चिन्तन करे ॥२०॥ ॐ यद् एकाक्षरं मंत्रं ब्रह्म है ॐ इस अक्षर से रेचन करे, इस प्रकार नं दिव्य मंत्रसे पाप नाश होनेके निमित्त अनेक बार किया करे ॥२१॥ पश्चात् मंत्र को जानने वाला बुद्धिमान् मनुष्य उपरोक्त क्रम से ध्यान धरे । नाभि के ऊपरके भागके त्रिषे प्रथम स्थूल आदिकका और तिस पीछे स्थूल सूक्ष्मका ध्यान धरे ॥२२॥ देखी, ऊँची नीची दृष्टि का त्याग करके, स्थिर बैठ कर किंचित् भी हिले चले नहीं, इस प्रकार योगाभ्यास करे ॥२३॥ एक मात्रासे ध्यान होता है चार मात्रा न धारणा तथा बारह मात्रा से योग होता है ऐसा कालानुसारी नियम है ॥२४॥ जो षोडशे रहित, व्यंजन से रहित, न्चर से रहित जिनका तालु कंठ और ओष्ठ स्थान नहीं है, जो नासिका के स्थान से रहित है जिनमें रेफ नहीं है, जो दो उष्म प्राण से रहित है ऐसा जो अक्षर ब्रह्म है सो कभी विकार को प्राप्त नहीं होता ॥२५॥ जिस मार्ग से मन गमन करता है उभी मार्ग से प्राण गमन करता है, इसलिये उस मार्ग से जाने के लिये उसका चिन्तन करे ॥२६॥ हृदय का द्वार, वायु द्वार और मरुतक द्वार अनुक्रम से मोक्ष द्वार सुषिर और ब्रह्म द्वार कहलाते हैं ( यही वह मार्ग है ) ॥२७॥

भय, क्रोध आनन्द, अति स्वप्न, अति जाग्रत, अति आहार अथवा निराहार रहना ये सब योगियों को त्याग करना चाहिये ॥ २८ ॥ इस विधि से सम्यक् प्रकार से क्रम करके चित्तवन करे, इससे तीन मास के भीतर अपने आप ज्ञान का आविर्भाव होता है ॥ २९ ॥ चार मास के पीछे उसे देवताओं का दर्शन होता है, पाँच मास में संसार के क्रम का त्याग और छठे मास में इच्छानुसार केंद्रल्य को प्राप्त होना है इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥ ३० ॥ पृथ्वी तत्त्व की धारणा में प्राण का पाँच मात्रा पर्यन्त उच्चारण करे, जल तत्त्व की धारणा में चार मात्रा पर्यन्त प्राणवका उच्चारण करे अग्नि तत्त्वकी धारणा में तीन मात्रा पर्यन्त प्राणव का उच्चारण करे, वायु तत्त्व की धारणा में दो मात्रा पर्यन्त प्राणव का उच्चारण करे ॥ ३१ ॥ आकाश तत्त्व की धारणा में एक मात्रा पर्यन्त प्राणव का उच्चारण करे और ॐकार का चित्तवन मात्रा से रहित करे, मन से मीथ करके आराम में आत्मा का चित्तवन करे ॥ ३२ ॥ तीन श्रृंगुल माप का प्राण वायु है जो हृदय में इन्द्रियों से प्रतिष्ठित है इसको प्राणवायु कहते हैं और बाहर का प्राण वायु विषय रूप है ॥ ३३ ॥ दिन और रात मिलके मनुष्य के निश्वास एक लाख तेरह हजार एक सौ अस्सी होते हैं ॥ ३४ ॥ आदि प्राण का स्थान हृदय है, अग्नान का स्थान गुदा है, समान का स्थान नाभि प्रदेश है, उदान का स्थान कण्ठ है ॥ ३५ ॥ व्यान वायु सर्व श्रेय में व्यापक होकर रहता है । अनुक्रम से पाँच



प्राण पांच वर्णों वाले हैं ॥ ३६ ॥ प्राण वायु मणि समान रक्त वर्ण है, प्राण के मध्य में रहने वाले अपान वायु का बीरबहुट्टी के समान अत्यन्त नाल है ॥ ३७ ॥ प्राण और अपान दोनों के बीच में रहने वाले समान वायु का वर्ण गऊ के दुग्ध समान श्वेत है, उदान वायु का वर्ण सहज फोका है और व्यान वायु का वर्ण जाला के समान कान्ति वाला है ॥ ३८ ॥ जब वायु मण्डल का छेदन करके मस्तक में जाता है उसके पीछे वह मनुष्य चाहे जहाँ मरे, उसका पुनर्जन्म नहीं होता, उसका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ३९ ॥

॥ इति श्री अमृतनाद उपनिषद् समाप्त ॥



## मैत्रेयी उपनिषद् ।

[ ३० ]

प्रथम अध्याय ।

वृहद्रथ नाम के राजा ने अपने बड़े पुत्र को राज्य दिया । यह शरीर नाशवान् है ऐसा समझ वैराग्य वृत्ति से अरण्य में गया । वहाँ जाकर उसने परम तप का आरम्भ किया । वह ऊँचे हाथकरके सूर्यके सामने देखा करता था । एक सहस्र वर्षके अन्त में राजा के पास एक मुनि आया । यह मुनि बिना धुवों के अग्नि के समान तेज वाला था और तेज से सबको जलाता हो ऐसा दीखता था । वह आत्म ज्ञानी था और उसका नाम शाकायन्य था । उसने राजा से कहा 'हे राजन् ! तू खड़ा हो, खड़ा हो, और जो वरदान चाहता हो सो माँग ।' राजा प्रणाम करके कहने लगा "हे भगवन् ! मैं आत्म ज्ञानी नहीं हूँ, और आप तो तत्व ज्ञानी हैं, मैं आपसे श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ, आप मुझे उपदेश दीजिये ।" तब मुनि ने कहा "समझने में न आये, ऐसा यह परम प्रश्न तू मत पूछ जो कुछ वरदान माँगना हो सो माँगले ।" राजा शाकायन्य मुनि के चरण स्पर्श करके यह गाथा कहने लगा ॥१॥



“कितनेक बड़े समुद्र सूख जाते हैं, पर्वतों के शिखर टूट जाते हैं, ध्रुव पदार्थ चलायमान होते हैं, वृक्षों के स्थान पर स्थल हो जाता है, पृथ्वी डूब जाती है, देवता अपने स्थान से भट्ट होते हैं, संसारमें इस प्रकारके काम और भोग किस कामके हैं कि जिसके आश्रय से दार दार आवागमन हुआ करता है ? इससे आप मेरा उद्धार करने योग्य है, जैसे क्षप में जल से डका हुआ मेंढक हो तैसे मैं इस संसार में पड़ा हूँ, हे भगवन् ! आप हमारा उद्धार करने वाले हैं ॥२॥ हे भगवन् ! यह शरीर मंथन से उत्पन्न हुआ है, ज्ञान से रहित है और केवल नरक ही है। मूत्र द्वारा से निकला हुआ है, हड्डियों में चिना है, मांस से मढ़ा हुआ है, चर्म से सिया गया है, विष्टि, मूत्र, वात, पित्त, कफ, मूत्रा, मेद, वसा और अनेक मल से व्याप्त है। इस प्रकार शरीर की स्थिति होने से आप ही हमारी गति रूप हैं” ॥३॥

तव भगवान् शाकायन्य प्रसन्न होकर राजा से कहने लगे “हे महाराज—इक्ष्वाकु वंश में श्रेष्ठ बृहद्दयः ! तू आत्मज्ञानी है, कृत कृत्य है, तू मूलतः इस नाम से प्रसिद्ध है, तेरे आत्मा का वर्णन इस प्रकार है—तू देख कि जो शब्द स्पर्श वाले अर्थ हैं, वे अनर्थ हों इस प्रकार शरीर में स्थिति करके रहते हैं, इन शब्दादि अर्थों में जो आसक्त है, वह ज्ञातात्मा परम पद का स्मरण नहीं कर सकता (१) तप के नामर्थ में सत्त्व की प्राप्ति होती है, सत्त्व से मन की प्राप्ति है, मन से आत्म प्राप्ति होती है और आत्म साक्षात्कार से पुनरावृत्ति नहीं होती। (२) जैसे

लकड़ी रहित अग्नि अपनी उत्पत्ति विधे लय हो जाता है, तैसे ही वासना का क्षय होने से चित्त अपने कारण में लय हो जाता है (३) जिनका चित्त अपने कारण में लय हो जाता है उनका मन फिर इन्द्रियों के विषयों में मोह को प्राप्त नहीं होता। उन सत्यनिष्ठ पुरुषों के मन की दृष्टियां केवल प्रारब्ध के अनुसार उठती हैं इसलिये वे मिथ्या हैं। (४) यह चित्त ही संसार है, इस का प्रयत्न से शोधन करना चाहिए, जिस प्रकार का चित्त हो पुरुष उसी मय हो जाता है यह सनातन रहस्य है। (५) चित्त के प्रसाद से शुभानुम कर्म का नाश होता है और प्रसन्न आत्मा में स्थिति पाकर अव्यय सुख को भोगता है। (६) जिस प्रकार प्राणी का चित्त आसक्ति वाला होकर विषयों में लुब्ध होता है, इसी प्रकार ब्रह्ममें आसक्त हो तो कौन बंधनसे मुक्त न हो (७) हृदय कमलमें परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। यह परमात्मा साक्षी रूप है और शुद्ध चित्त वाले को परम प्रेम का विषय है (८) वह मन और प्राणी का अविषय है। वह निर्विशेष परमात्मा केवल सत्ता मात्र प्रकाश हो ऐसा एक प्रकाश रूप है और भावना के परे (९) वह हेय और उपादेय से रहित है और सामान्य विशेष भावों से रहित है वह ध्रुव अत्यंत गम्भीर तेज और तम से रहित संकल्प का अभाव रूप आभास से रहित और मोक्ष स्थान रूप है (१०) वह नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाववाला सत्यरूप, सूक्ष्म, विभुरूप, अद्वितीय, आनन्द का सागर रूप, परम रूप, सोहमस्मि इस नाम वाला प्रत्यक् और संशय से रहित है। (११) आनन्द



रूप स्वाश्रय में रहने वाला, आशास्त्री पिशाचिनी का नाश करने वाला, सब प्रकार के संग से रहित और जगत् को माया रूप देखने वाले ऐसे भूमि (अज्ञान रूप) आपत्ति किस प्रकार प्रवेश कर सकें ? (१२) वार्णश्रम और आचार से युक्त अज्ञानी अपने २ कर्म के अनुसार फल प्राप्त करते हैं, जो वार्णदि धर्मों का त्याग करता है वह पुरुष स्वानन्द से तृप्त होता है। (१३) वार्णश्रम धर्म और अवयव युक्त अपना शरीर आदि और अंत वाला और केवल कष्ट ही देने वाला है। अपनी तथा पुत्रादि की देह में जो अभिमान से रहित होता है, वह सुख करने वाले अनंत में स्थिति करता है।" (१४) ॥ ४ ॥

दूसरा अध्याय ।

एक समय मंत्रेय नाम के मुनि कैलाश में गये, वहाँ जाकर महादेव से कहने लगे 'हे भगवन् ! मुझे परम तत्त्व के रहस्य का उद्देश कीजिये ।' महादेव बोले "देह देवालय है और जीव ही शिव रूप है। अज्ञानरूपी निर्माल्य का त्याग कर 'सोहं' (वह और मैं एक हूँ) इस प्रकार की भावना से उनका पूजन करना चाहिये ॥ १ ॥ अभेद का साक्षात्कार ज्ञान रूप है, सब प्रकार के विषयों से रहित होना ध्यान है, मन से दोषों का त्याग करना स्नान रूप है और इन्द्रिय निग्रह करना शीघ्र रूप है ॥ २ ॥ ब्रह्म रूप अमृत पीना चाहिये, देह के रक्षण अर्थ ही भिक्षा करना चाहिये और द्रव्य से रहित ऐसे एकांत स्थान में अकेले रहना

चाहिये। इस प्रकार बुद्धिमान को चलना चाहिये, इस प्रकार करने से मुक्ति होती है ॥ ३ ॥ माता पिता के मल से उत्पन्न मरण धर्म वाला शरीर है ॥ ४ ॥ वह सुख दुःख का स्थान रूप है, अपवित्र होने से स्पर्श करके स्नान करना चाहिये। यह देह धातुओं से बना है, रोग वाला है, पाप का आश्रय और अशाश्वत है ॥ ५ ॥ वह विकार और आकार से पूर्ण है, उसका स्पर्श करके स्नान करना चाहिये, इसमें से स्वाभाविक रीति से ही उत्पन्न हुए मलों का नष्ट करने से सावधान रहना है ॥ ६ ॥ वह दुर्गन्धि युक्त मल वाला है, उसको स्पर्श करके स्नान करना चाहिये। माता पिता सूतक में हैं, ऐसे सम्बन्ध सहित ही जन्म है ॥ ७ ॥ मरण अशौच वाला भी देह है, उसका स्पर्श करके स्नान करना चाहिये। यह मैं हूँ और यह मेरा देह है इस रीति के अभिमान वाला शरीर है और विष्ट, भूत, राल आदि दुर्गन्धि का त्याग करने वाला है ॥ ८ ॥ लौकिक रीति से वह मृत्तिका और जल से शुद्ध और पवित्र होता है परन्तु वास्तविक रीति से तो शरीर चित्त की शुद्धि से शुद्ध होता है, तीनों प्रकार की वासनाओं के क्षय से वह शीघ्र होता है, ज्ञानरूपी मृत्तिका और वंशधरूपी जल से घोलने से देह पवित्र होता है ॥ ९ ॥ अद्वैत भावना भिक्षारूप है और द्रव्य भावना भक्षण करने योग्य नहीं है। गुरु और शास्त्र का कथन किया हुआ भाव ही भिक्षुक की भिक्षा कहलाती है ॥ १० ॥ संन्यास ग्रहण करके संन्यासी अपने ईश को स्वतः छोड़ता है, जैसे चोर जेलखाने से छूट कर दूर



वसता है ॥ ११ ॥ अहंकाररूपी पुत्र का, संपत्तरूपी भाई का, मोहरूपी मन्दिर का और आशास्त्री पत्नी का जब त्याग करने में आता है, तब अन्नद्वय मुक्त होना है ॥ १२ ॥ जिसकी मोह रूपी माता मर गई है, ज्ञानरूप जिसका पुत्र उत्पन्न हुआ है, जिसको ये दो प्रकार के सूतक प्राप्त हुए हैं, ऐसे मुष्मको संन्यायों करनी चाहिये ॥ १३ ॥ हृदयाकाश में चित्तरूपी सूर्य सर्वादा प्रकाशता है, जो अस्त, उदय से रहित है, तो संन्या को क्यों करना चाहिये ॥ १४ ॥ सब एक और अद्वयरूप है, गुरु के उपदेश से जिसको इस प्रकार निश्चय हुआ है, वह ही एकांत स्थान कहा है, मठ अथवा अन्य वन एकांत नहीं है ॥ १५ ॥ जो संशय भाव रहित है, उसको मुक्ति है परन्तु जो संशय वाला है, उसको एक जन्म में अथवा अनेकों जन्मों में भी मुक्ति नहीं है, इस कारण विन्यास को प्राप्त करना चाहिये ॥ १६ ॥ कर्म का त्याग यह संन्यास नहीं है, संन्यास की दीक्षा लेने से संन्यास नहीं होता है, जीवात्मा और परमात्मा की एकता होना, यही संन्यास है ॥ १७ ॥ सब प्रकार की एषणायें जिनको व्रमन किये हुए भोजन के समान हैं और जो देहाभिमान रहित है उसका संन्यास में अधिकार है ॥ १८ ॥ जब मन से सब वस्तुओं में वैराग्य हो तब अधिकारी संन्यास धारण करे नहीं तो वह पतित होता है ॥ १९ ॥ धन की इच्छा से, अन्न और वस्त्र की इच्छा से और प्रशिक्षा प्राप्त होने के निमित्त जो संन्यास लेता है, वह दोनों लोकों से भ्रष्ट होता है और उसे

मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती ॥ २० ॥ तत्त्व का चिंतन उत्तम है, शास्त्र का चिंतन मध्यम है, मंत्र का चिंतन अधम है और तीर्थों का भ्रमण अधम से भी अधम है ॥ २१ ॥ जैसे वृक्ष की शाखा के प्रतिविम्ब में लगे हुए फल का स्वाद वृथा है तैसे ही मूढ़ को अनुभव बिना ब्रह्मानन्द वृथा है ॥ २२ ॥ जिस यति की मधुकरीरूप माता है, वैराग्यरूप पिता है, अद्वैतरूप स्त्री है, ज्ञानरूप पुत्र है, वह मुक्त है, उसको कुछ भी त्यागना न चाहिये ॥ २३ ॥ धन में जो बड़े हैं, वय में जो बड़े हैं, तैसे ही जो विद्या में बड़े हैं, वे सब ही जो ज्ञान में बड़ा है, उसके शिष्य और शिष्य के शिष्यरूप हैं ॥ २४ ॥ जिसका चित्त माया से मूढ़ है और आत्मरूप मुष्मको पूर्णरूप से जिसने प्राप्त किया वे विद्वान् होते भी कौवे के समान क्षुद्र उदर को पूर्ण करने के लिये ही घूमते हैं ॥ २५ ॥ पापाण, सुवर्ण, मणि और मृत्तिका से बनी हुई मूर्ति की बाह्य पूजा मुमुक्षुओं को पुनर्जन्म और भोग को देने वाली है। पुनर्जन्म न हो इसलिये यति को अपने हृदय में ही अर्चन करना चाहिये और बाह्यार्चन का त्याग करना चाहिये ॥ २६ ॥ समुद्र में पानी से भरा हुआ घट भीतर और बाहर से पूर्ण है, तैसे ही आकाश में रहने वाला घट भीतर के भाग में शून्य है और बाहर के भाग में शून्य है (वैसा यह है) ॥ २७ ॥ भाव ग्राह्यरूप से तू मत हो, तैसे ही ग्राहक आत्मारूप से मत हो, सब भावनाओं का त्याग करके शेषरूप से रहने वाला तू हो ॥ २८ ॥ वासना त्याग के साथ द्रष्टा, दर्शन, दृश्य



का त्याग कर, दर्शन के पूर्व द्रष्टा रूप से रहे हुए आत्मा का ही अवलम्बन कर ॥ २९ ॥ सब संकल्प शान्त होने से शिला के समान जो स्थिति है, जो जाग्रत और निद्रावस्था से रहित है, वह ही श्रेष्ठ स्वरूप स्थिति है" ॥ ३० ॥

### । तीसरा अध्याय ।

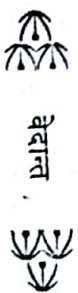
मैं हूँ, पर रूप मैं हूँ, ब्रह्म रूप मैं हूँ, सबका उत्पत्ति स्थान मैं हूँ, सब लोगों का गुरु मैं हूँ, सब लोकों में जो हूँ, वह मैं हूँ, ॥ १ ॥ मैं ही सिद्ध रूप हूँ, परम रूप मैं हूँ, शुद्ध रूप मैं हूँ, मैं हमेशा हूँ वह मैं हूँ, नित्य हूँ, निर्मल रूप मैं हूँ ॥ २ ॥ विज्ञान रूप मैं हूँ, विशेष रूप मैं हूँ, सोम रूप मैं हूँ, सकल रूप मैं हूँ शुभ रूप से मैं हूँ, शोक से रहित रूप से मैं हूँ, चैतन्य रूप मैं हूँ और उत्तम रूप मैं हूँ, ॥ ३ ॥ मैं मान और अपमान से रहित हूँ, मैं निर्गुण हूँ, मैं शिव हूँ, मैं दैत और अदैत से रहित हूँ, मैं द्रव्यों से रहित हूँ, और वह मैं आप हूँ ॥ ४ ॥ भाव और अभाव से रहित मैं हूँ, वाणी से रहित मैं हूँ, कान्ति रूप से मैं हूँ शून्य और अशून्य के प्रभाव रूप से मैं हूँ और शोभन और अशोभन रूप से मैं हूँ ॥ ५ ॥ तुल्य और अतुल्य से रहित हूँ, नित्य शुद्ध और सदा शिव रूप हूँ, सब और सब नहीं, इन दोनों के रहित रूप से, सार्विक रूप से और सदा रूप से मैं हूँ ॥ ६ ॥ एक की संख्या से रहित, दो की संख्या से रहित सद् और असद् रहित रूप

और संकल्प रहित रूप से मैं हूँ ॥ ७ ॥ अनेक आत्मा के भेद रहित रूप से अखंड आनन्द की मूर्ति मैं हूँ, मैं नहीं हूँ, अन्य रूप से मैं नहीं हूँ, देहादिक रहित रूप से मैं हूँ, ॥ ८ ॥ आश्रय और अनाश्रय रहित रूप मे आधार रहित रूप से बंध मोक्ष रहित रूप से शुद्ध ब्रह्म रूप मैं हूँ ॥ ९ ॥ चित्तादि सब से रहित, परम रूप, परात्पर रूप, सदा विचार रूप, विचार रहित रूप हूँ, सो मैं हूँ ॥ १० ॥ मैं ही सनातन, अकार, उकार और मकार रूप हूँ, ध्याता, ध्यान और ध्येय रहित रूप मैं हूँ, ॥ ११ ॥ संपूर्ण रूप सच्चिदानन्द लक्षण रूप सब तीर्थों के स्वरूप परमात्मा रूप और शिव रूप मैं हूँ ॥ १२ ॥ लक्ष्य और अलक्ष्य रहित रूप से अखंड रस रूप माता, मान और मेय रहित रूप से शिव रूप मैं हूँ ॥ १३ ॥ मैं जगत् रूप नहीं हूँ, सबका द्रष्टा रूप, नेत्रादि रहित रूप से बृद्ध रूप, ज्ञान रूप, प्रसन्न रूप और पर रूप हूँ ॥ १४ ॥ सब इन्द्रिय से रहित हूँ, सब कर्मों का कर्ता भी मैं हूँ, सब वेदान्त से तृप्त और शून्य रूप से मैं हूँ ॥ १५ ॥ मुदित और प्रमुदित रूप, सब मौन के फल रूप और सदा नित्य चिन्मय रूप मैं हूँ ॥ १६ ॥ जो कुछ है उससे हीन रूप से, स्वल्प रूप से, चिन्मात्र रूप और चिन्मय हृदय ग्रान्थि रहित रूप से और हृदय कमल के मध्य में रहने वाला मैं हूँ ॥ १७ ॥ छः विकारों से रहित, छः कोशों से रहित, छः शब्दों से रहित, भीतर से भी विशेष भीतर मैं हूँ ॥ १८ ॥ देश काल से रहित, दिशा रूपी वस्त्रों से सुखी ऐसा मैं हूँ, मेरे सिवाय अन्य कुछ नहीं है, मैं विमुक्त हूँ और नकार से रहित



है ॥ १९ ॥ अखंडाकाश रूप, अखंडाकाश रूप, प्रपंच से मुक्त चित्त वाला और प्रपंच से रहित है ॥ २० ॥ सर्व प्रकाश रूप, चिन्मात्र ज्योति रूप, तीनों काल से रहित और कामादि से रहित मैं हूँ ॥ २१ ॥ शरीरादिक के दोषों से रहित, निर्गुण मात्र एक रूप, मुक्ति से रहित मुक्त रूप और मोक्ष रहित मैं सर्वदा हूँ ॥ २२ ॥ सत्य और असत्यादि से रहित, हेमशा केवल सद्भाव से नहीं हूँ, जाने योग्य स्थानसे रहित, गमनादि से रहित हूँ ॥ २३ ॥ मैं हेमशा सम रूप, शांत रूप, पुरुषोत्तम हूँ, ऐसा जिसका स्वानुभव है वह मैं हूँ, इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥ जो कोई एक बार भी यह सुनता है, वह आप ब्रह्म रूप हो जाता है, ऐसा उपनिषत् विद्या कहती है ॥ २५ ॥

॥ इति मैत्रेयी उपनिषत् समाप्त ॥



## नाद विन्दु उपनिषत् ।

[ ३१ ]

अकार की अकार दाईं पंख है, उकार दाईं पंख है, मकार पुच्छ है और अर्ध मात्रा सिर है ॥ १ ॥ गुण उसके पाद आदिक है तरंग उसका शरीर है और धर्म प्रथम उमकी दाईं बाईं आदि हैं ॥ २ ॥ १२ में भूः लोक है, पोट में अंतरिक्ष है, कटि में स्वर्गलोक है, और नाभि में महर्लोक है ॥ ३ ॥ हृदय में जनलोक है, कंठ में तपलोक है और भ्रू और ललाट के मध्य में सत्यलोक है ॥ ४ ॥ वह हजारों मंत्रों से प्रकट 'सहस्राह्यं'.....' इस श्रुति में इस प्रणव मंत्र का वर्णन किया गया है । हंसयोग में पारंगत पुरुष प्रणव की इस प्रकार उपासना करता है ॥ ५ ॥ तब सैकड़ों और करोड़ों पाप कर्म भी उसमें प्रवेश नहीं कर सकते अर्थात् उसके सब पाप नष्ट होजाते हैं ।

अग्नि प्रथम की अकार मात्रा है, वायु दूसरी उकार मात्रा है ॥ ६ ॥ सूर्य देव तीसरी मकार मात्रा है और वरुण चौथी और जज्ञसे श्रेष्ठ अर्ध मात्रा है उसे बुद्धिमान् मनुष्य जानते ॥ ७ ॥ ये चारों मात्रा काल भेद से एक २ की तीन २ होकर बारह होती हैं, इस अकार व्याख्यान धारणा के निमित्त करते हैं ॥ ८ ॥ प्रथम दोषिणो मात्रा, दूसरी विद्या मात्रा (विद्युन्मात्री), तीसरी



पतंगिनी और चौथी मात्रा वायु वंगिनी ॥ ६ ॥ पाँचवी मात्रा नामधेया, छठी ऐन्द्रि, सातवीं वैष्णवी और आठवीं शंकरि ॥ १० ॥ नवमी महति, दशवीं धृति, ग्यारहवीं नारी और बारहवीं ब्राह्मी ॥ ११ ॥ प्रथम मात्रा में जिसका प्राण छूटता है, वह भारतवर्ष का सार्वभौम राजा होता है ॥ १२ ॥ दूसरी मात्रा में जिसका प्राण छूटता है, वह महात्स्य बाला यश होता है, तीसरी मात्रा में जिसका प्राण छूटता है, वह विद्याधर होता है और चौथी मात्रा में जिसका प्राण छूटता है वह गंधर्व होता है ॥ १३ ॥ पाँचवीं मात्रा में जिसका प्राण छूटता है वह नोमलोक में देवत्व को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ छठी मात्रा में जिसका प्राण छूटता है वह इन्द्रके साथ सायुज्यपने को प्राप्त होता है जिसका प्राण सातवीं मात्रा में छूटता है, उसे विष्णु लोक की प्राप्ति होती है और जब आठवीं मात्रा में मृत्यु होता है तब रद के साथ रद लोक को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ नवमी मात्रा में मरण होता है तब महलोक को प्राप्त होता है, दशवीं मात्रा में मृत्यु होने से जनलोक को प्राप्त होता है, एकादश मात्रा में मृत्यु होने से तपलोक को प्राप्त होता है और बारहवीं मात्रा में प्राण का वियोग होने से साक्षात् ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

ब्रह्म शुद्ध, व्यापक, निर्मल और शिवरूप और प्रकाशरूप है, इस ब्रह्म में से ज्योतियों की उत्पत्ति होती है ॥ १७ ॥ जब मन शरीन्द्रिय और गुणातीत होकर उसका लय होता है तब वह उपमा रहित शांत, योगयुक्त शिवमें टिकता है ॥ १८ ॥ वह जीव

जिब मैं तन्मय होकर होकर, त्वरित शरीर को छोड़ता है तब सर्व संग से रहित होकर योग मार्ग से चलता है ॥ १९ ॥ तब उसके सब बंधन टूट जाते हैं, विमल होकर कमलापति होता है और ब्रह्म भाव से परमानन्द की प्राप्ति होती है ॥ २० ॥

आत्मा को सन्त जानते हुए बुद्धिमान् काल व्यतीत करे और सर्व उद्वेग रहित प्रारब्ध को भोग लेता है ॥ २१ ॥ तन्त्र विज्ञान होने पर भी प्रारब्ध छूटता नहीं है परन्तु तन्त्र ज्ञान के पीछे प्रारब्ध दीखता नहीं है ॥ २२ ॥ जैसे स्वप्न के पदार्थ जानने पर मिथ्या होते हैं वैसे देहादि मिथ्या हैं, ऐसे ही जन्मान्तर में किये हुए कर्मों का जो बोध होता है उसे प्रारब्ध कहते हैं ॥ २३ ॥ जैसे स्वप्न के प्रपञ्च में किये हुए कर्मों का स्थूल देह से संबंध नहीं है इसी प्रकार जन्मान्तर के किये हुए कर्मों से पुरुष का भाव नहीं होता ॥ २४ ॥ अज्यस्त का जन्म कहीं और जन्म के अभाव से स्थिति कहां? वस्तुओं के उपादान कारण मूलिका के समान सब प्रपञ्चके उपादान को देखता है ॥ २५ ॥ सब कुछ अज्ञान ही है, जब ऐसा वेदान्त से जाना और जान कर अज्ञान चला गया, तब विद्वत् कहां है! जैसे रस्सी के अबोध से सर्प को भ्रम से ग्रहण करता है ॥ २६ ॥ इसी प्रकार सत्य को न जानने से मूढ़ मनुष्य जगत को देखते हैं, रस्सी के जानने से सर्प का रूप कहीं नहीं दीखता ॥ २७ ॥ अधिष्ठान के जानने से जब प्रपञ्च दूतय हो जाता है तब प्रपञ्च की देह और प्रारब्ध को स्थिति कहां? ॥ २८ ॥ अज्ञानी मनुष्यों के बोध के निमित्त



प्रारब्ध का कथन किया है। काल पाकर प्रारब्ध का क्षय होता है तब ॥ २६ ॥ ब्रह्म-प्रणव संप्रदान से जैसे धारल हट जाने में सूर्य का आविर्भाव होता है, ऐसे ही भ्रमान के निवृत्त होने में नाद ज्योति रूप मंगलकारी आराम का स्वयं आविर्भाव हो जाता है ॥ ३० ॥ योगी को सिद्धासन से बैठ कर वेष्ट्या मुद्रा का अनुसन्धान करना चाहिये और वहिने करणों में सदा होने वाले भीतर के नाद को सुनना चाहिये ॥ ३१ ॥ नाद का अभ्यास करने से बाहर की ध्वनि का रोष होता है। अनुवृत्त नाद में प्रतिकूल नादों को जीत कर तुर्य पद को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ प्रथम सुनने वाले को श्रवक प्रकार के महान् नाद सुनने में प्राप्ते हैं, जैसे २ अभ्यास कइता जाता है तैसे २ सूक्ष्म से सूक्ष्म सुना जाता है ॥ ३३ ॥

प्रथम समुद्र, बादल भेरी और भरने के समान नाद, गन्ध में मृदंग का शब्द, घण्टे का शब्द ॥ ३४ ॥ श्रवण में किनारों, वांगरी दीणा और श्रार का शब्द होता है। ऐसे श्रवक प्रकार के सूक्ष्म से सूक्ष्म नाद सुनाई देते हैं ॥ ३५ ॥ स्थूल नाद सुनने से वड़े भेरी श्राविक के समान नाद होता है, वही सूक्ष्म में सूक्ष्म नाद का ध्यान करे ॥ ३६ ॥ वड़े को छोड़ कर सूक्ष्म में और सूक्ष्म को छोड़ कर वड़े में रमण करने से चंचल मन और कहीं नहीं जाता ॥ ३७ ॥ प्रथम जिन किसी नाद में मन लग जाय उसी में स्थिर करने से मन उसमें लय को प्राप्त हो जाता है ॥ ३८ ॥ बाहर के सब पदार्थों भूल कर हृदय में जल के

समान मन नाद में मिल कर एक रूप होकर 'सहज' ही चिदाकाश में लीन हो जाता है ॥ ३९ ॥ इसलिये संपन्न करने वाले श्रमयोगी को बास पदार्थों में उदासीन होकर उन्मनी भाव को उत्पन्न करने वाले नाद का शीघ्र ही अभ्यास करना चाहिये ॥ ४० ॥ सब चिन्ताओं को छोड़ कर, सब क्रियाओं से रहित होकर एक नाद का ही अनुसंधान करने से चित्त उसी में लय हो जाता है ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार श्रमर रस को पीता है, गन्ध को प्रवेश नहीं करता वही प्रकार नाद में आसक्त हुआ चित्त विषयों की इच्छा नहीं करता ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार नाद के ग्रहण से सर्व चंचलता को छोड़ देता है इसी प्रकार नाद में वद्ध हुआ चित्त रूप श्रान्तकरण में रहने वाला सर्व ॥ ४३ ॥ एकाग्र होकर जगत् को भूल जाता है फिर कहीं भी नहीं जाता। मनरूप मदीन्मत्त हाथी जो विषय रूप वन में घूमा करता था, ॥ ४४ ॥ उसके नियमन करने में समर्थ यह नाद हो वीने प्रकुश के समान है, मन रूप हरिन के वाघने को नाद रूप जान है ॥ ४५ ॥ श्रान्तर समुद्र के रांजने के लिये ज्योति स्वरूप ब्रह्म-प्रणव में संलग्न नाद ही किन्तार है ॥ ४६ ॥ जहाँ मन लय को प्राप्त होता है वह विन्दु का परम पद है। जब तक शब्द की प्रवृत्ति होती है तब तक आकाश की कल्पना है ॥ ४७ ॥ जब रहित होता है तब परब्रह्म में समन होता है, जब तक मन है तब तक नाद है नाद के श्रवण में मनोन्मनी होती है ॥ ४८ ॥ जब शब्द प्रक्षर में क्षीण हो जाता है तब निशब्द रूप परम पद ही रहता है, हमेशा नाद



का अनुसंधान करने से वासना का क्षय होता है ॥ ४६ ॥ जहाँ मन रूप वायु का निसंशय निरंजन में लय होता है, वहाँ हजारों करोड़ नाद और सैकड़ों करोड़ बिन्दु ॥ ४० ॥ सबका ब्रह्म प्रणव रूप नाद में लय हो जाता है, तब सब अवस्थाओं से और सब चिंताओं से रहित होता है ॥ ४१ ॥ जो योगी मरे हुए के समान टिकता है, उसकी मुक्ति में संशय नहीं है, वह शंख भयवा दुन्दुभी का नाद कभी नहीं सुनता ॥ ४२ ॥ स्थिरता वाली उन्मनी अवस्था में शरीर काठ के समान जड़ होजाता है, वह ( योगी ) शीतोष्ण, सुख दुःख को नहीं जानता ॥ ४३ ॥ समाधी में मान भ्रममान नहीं होता चित्तहीन होने से योगी तीनों अवस्थाओं को नहीं प्राप्त होता ॥ ४४ ॥ जाग्रत और निद्रा से रहित स्वस्वरूप में टिक जाता है ॥ ४५ ॥ ईश्वर बिना उसकी दृष्टि स्थिर होती है, प्रयत्न बिना वायु स्थिर होता है अवलम्बन बिना चित्त स्थिर होता है, यह ही भ्रांतर नाद रूप ब्रह्मपना है ॥ ४६ ॥

॥ इति नाद बिन्दु उपनिषत् समाप्त ॥



## अद्वय तारकोपनिषत्

[ ३२ ]

अब हम यति, जितेन्द्रिय और शम दम आदि षट् गुणों से पूर्ण पुरुषों के लिये अद्वय तारक उपनिषत् का व्याख्यान करते हैं । 'मैं चित् स्वरूप हूँ' इस प्रकार हमेशा भाव करता हुआ, आँखों को ठीक २ बन्द रख कर भयवा कुछ खुली रख कर भंतर दृष्टि से भुक्तुटी के ऊपर के आकाश में सच्चिदानन्द तेज समूह रूप परब्रह्म का अवलोकन करते हुए परब्रह्म रूप होजाता है । परब्रह्म को तारक कहने का कारण यह है कि वह गर्भ, जन्म, बुढ़ापा, मरण और संसार इन महाभयों से तारण करता है । जीव और ईश्वर को मायिक जान कर सब विशेष भावों का 'वह नहीं, वह नहीं' इस प्रकार जो त्याग करने से जो प्रवेश रहता है, वह अद्वय ब्रह्म है । इस ब्रह्म की सिद्धि के लिए तीन लक्ष्य का अनुसंधान करना चाहिये । देह के मध्य भाग में सुषुम्ना नाम की ब्रह्म नाड़ी सूर्य के समान रूप वाली और पूर्ण चन्द्र के समान प्रकाश वाली वर्तती है वह मूलाधार से स्मारम्भ होकर ब्रह्मरन्ध्र तक गई हुई है । इस ब्रह्म नाड़ी के मध्य में करोड़ों बिजली के समान प्रकाश वाली कमल के तंतु के समान सूक्ष्म भग वाली कुंडलनी प्रसिद्ध है । मन से इसका दर्शन



करने से मनुष्य भव पापों से रहित होकर मुक्त हो जाता है। तारक ब्रह्म के भोग से कर्मान के उत्पन्न में रहे हुए ललाट के विशेष भाग में तेज के विस्तृतिवर्तियों को जो हमेशा देखता है, वह निन्दित होता है। तर्जनी मंगुली के मध्यभाग से दोनों कानों के छिद्रों को बन्द करने से पुष्कार शब्द उत्पन्न होता है। जब मन उत्तम स्थिति करता है तब चक्षुषों के मध्य भाग में नील ज्योति स्थापन को भ्रंतदृष्टि से देखने से योगी निरतिशय मुख को प्राप्त होता है इसी प्रकार हृदयमें भी देखता है। इस प्रकार भ्रंतदृश्य के लक्षण को मनुष्यभों को उभासना करनी चाहिये।

भद्र बहिरुद्देश्य को कहते हैं:—नासिका के भद्र भाग में कम से चार छद्म दृश्य भ्रमवा वारह भ्रंशुल को दूरी से कुछ नील स्थानता लिये हुए रक्त भ्रंशु के समान प्रकाश जो पीत भ्रुक वर्ण से युक्त है जब उसको आकाश में देखता है तब वह योगी होता है। चल दृष्टि से आकाश में देखने वाले पुरुष की दृष्टि के भ्रान्त ज्योति के किरण वर्तते हैं उनके देखने से योगी होता है। भ्रमवा नेत्र के कोण प्रदेश में तब सुदर्श के समान ज्योति के किरणों को जब दृष्टि देखता है तब वह स्थिर हो जाता है। मन्दक के ऊपर वारह भ्रंशुल पर ज्योति को देखने वाला भ्रन्तु भान को प्राप्त होता है। चाहे वहां स्थित हो जो मन्दक ने आकाश ज्योति को देखता है वह योगी होता है।

भद्र मध्य लक्ष्य का लक्षण कहते हैं:—प्रातःकाल विवादि वरुण वाले भ्रल्लव्ड सूर्य के चक्र के समान, अग्नि के ज्वाला के समान और जलते रहित भ्रन्तरिक्ष के समान देखता है, उनके आकार के समान होकर टिकता है, उसके फिर दर्शन से गुण रहित आकाश हो जाता है। चमकने वाले तार के प्रकाश से प्रकाशमान, प्रातःकाल के भ्रन्तकार के समान परम आकाश होता है। कालानुल के समान प्रकाश वाला महकाश होता है। सर्व में उत्कृष्ट प्रकाश वाला, प्रबल ज्योति तत्त्वाकाश होता है। कोटि सूर्य के प्रकाश के वैभव के समान सूर्याकाश है। इस प्रकार बाहर और भीतर टिका हुआ आकाशपञ्चक तारक का लक्ष्य है। उसमें देखने वाला, कर्म वंश से मुक्त होकर उत्ती आकाश के समान हो जाता है। इस कारण तारक का लक्ष्य ही भ्रमनन्क फल का देने वाला होता है। यह योगी दो प्रकार का है:—पूर्वार्ध तारक और भ्रमनन्क-उत्तमार्ध तारक। इसमें यह लोचक है:—पूर्व और उत्तर विधान करके इस योग को दो प्रकार का जानो। पूर्व को तारक और दूसरे को भ्रमनन्क जानो। नेत्रों में रहे हुए तारकों से सूर्य और चन्द्र के प्रतिबिम्ब दीखते हैं। तारकों में जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य और चन्द्र मण्डल का दर्शन होता है वैसे ही ब्रह्माण्ड के समान पिण्ड में अंतर के मध्य भाग के स्थान में सूर्य और चन्द्र मण्डल दोनों हैं, ऐसा निश्चय करके उनका दर्शन करना चाहिये। दोनों एक ही है ऐसी दृष्टि रखकर मन को मुक्त करके ध्यान करें क्योंकि मनोयोग न



होने से शक्तियों की प्रवृत्ति को भवकाश मिलता है। इसलिये भन्तर दृष्टि से तारक ही का अनुसन्धान करना चाहिये।

यह तारक दो प्रकार का है:—सृति तारक और अस्मृति तारक जो शक्तियों के भन्त में है, वह सृति तारक है। जो दोनों भुक्तियों से अतीत है, वह अस्मृति तारक है। भन्तर के पदार्थों के विवेचन में सर्वत्र मन सहित अभ्यास करना चाहिये। सत्य के दर्शन से युक्त मन से भन्तर में देखने में दोनों तारकों से ऊर्ध्व में टिका हुआ सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म शुक्ल तैजोमय है। वह ब्रह्म मन सहित नेत्रों की आंतर दृष्टि में जाना जाता है। इसी प्रकार अस्मृति तारक दहरादिक भी मन युक्त नेत्रों से जाना जाता है रूपा के देखने में मन चक्षुष्यों के आधीन होने से बाहर के समान भन्तर में भी मन और चक्षु के संयोग से रूप ग्रहण का कार्य होता है इसी कारण मन सहित आंतर दृष्टि से तारक का प्रकाश होता है। दोनों भुक्तियों के मध्य बिल में दृष्टि देने से उनके द्वार के ऊर्ध्व में टिके हुए तेज का आविर्भाव तारक योग है। उसके सहित युक्त मन से तारक की भन्ती प्रकार प्रयत्न पूर्वक योजना करके सावधानी से दोनों भुक्तियों को कुछ ऊर्ध्व में रखे। यह पूर्व भागी तारक योग है। इसका अर्पणमान भ्रमनन्त कहलाता है। तारु के मूल के ऊपर के भाग में महा ज्योति मण्डल होता है। यह योगियों का ध्येय है। इससे अणिमादिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। भन्तर और बाह्य लक्ष्य वाली दृष्टि जब खुलने और

बंद होने से रहित होती है तब आभवा मुद्रा होती है। इस मुद्रा में आरूढ़ ज्ञानी जहाँ निवास करता है, वह भूमि पवित्र होती है। उसके दर्शन से सब लोग पवित्र होते हैं। इस प्रकार के परम योगी की पूजा करनेवाला मुक्त होता है और आंतर लक्ष्य जल (द्रव रूप) ज्योति स्वरूप होता है। परमगुरुके उपदेशसे सहस्रारमें जल ज्योति भ्रमवा बुद्धि की गुहा में रही हुई ज्योति भ्रमवा सोलह (कला) के भन्त में स्थित नुरीय चैतन्य भन्तर्लक्ष्य होता है। यह दर्शन सदाचार का मूल है। आचार्य वेद सम्पन्न, विष्णुभक्त, भस्तर रहित योग का ज्ञाता, योग की निष्ठा वाला, योग स्वरूप पवित्र गुरु भक्ति से युक्त, विशेष रूप से पुरुष को जानने वाला। इन लक्षणों से सम्पन्न गुरु कहलाता है। गु शब्द भ्रमकार है और रु शब्द उसका रोकने वाला है। भ्रमकार को रोकने से गुरु कहलाता है। गुरु ही परब्रह्म है, गुरु ही परमगति है। गुरु ही पराविद्या है, गुरु ही श्रेष्ठ गति है। गुरु ही पराकाष्ठा है, गुरु ही परम धन है क्योंकि वह उपदेश करने वाला है इसलिये श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ गुरु है। एक बार जो इसका उच्चारण करता है, उनका संसार छूट जाता है। सब जन्मों के किए हुए पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। उसकी सब कामनायें पूर्ण होती हैं सब पुरुषार्थ सिद्ध होजाता है, जो इस प्रकार जानता है। यह उप-निषत् है।

॥ इति श्रद्धय तारकोपनिषत् समाप्त ॥

योग



## निर्वाणोपनिषत् ।

[ ३३ ]

अब हम निर्वाणोपनिषत् की व्याख्या करते हैं। वह में परमहंस हैं। परिव्राजक, पश्चिम लिंग वाले यानी संन्यास चिन्ह धारी होते हैं। वे निरहंकार शिवरूप हैं। आकाश सिद्धान्त है अमृत की बड़ी लहरों वाली नदी है। अक्षय निरञ्जन है। निमग्नशय ऋषि है। निर्वाण देवता है। कुल रहित प्रवृत्ति है। निकेवल ज्ञान है ऊर्ध्व वेद है। निरालम्ब पीठ है। ब्रह्म संयोग दीक्षा है। प्रपञ्च का वियोग उपदेश है और सत्त्वोप का पान दीक्षा है। वारह आदित्य का अवलोकन—देखना है। विवेक रक्षा है। करुणा की क्रीड़ा है। आनन्द माला है। एकान्त गुहा में मुक्तासन से बैठना सुख गोष्ठी—सभा है। अकल्पित भिक्षा भोजन है। हंस आचार है। सब भूतों के अन्तर वर्तने वाला हंस है, यह प्रतिपादन है। धर्म कथा है। उदासीनता कौपीन है। विचार दण्ड है। ब्रह्म का अवलोकन करना योगपट्ट है। श्री खड्ग है। दूसरे की इच्छा चरण है। कुण्डलिनी बंध रूप है। परभाव से मुक्त जीवनमुक्त है। कल्याण योग निद्रा है और खेचरी आकाश में गमन करने वाली मुद्रा है। जो परमानन्दी है। तीनों गुणों से रहित है। विवेक से प्राप्त होने योग्य है। मन वाणो का विषय नहीं है। अनित्य

जगत जो उत्पन्न हुआ है, स्वप्न के जगत, बादल के हाथी आदि के समान है। इसी प्रकार देहादि संघात मोह और गुण का बना हुआ जाल न्यूसी में सर्प के संतान कल्पित है। विष्णु ब्रह्मा आदि संकटों नाम से लक्ष्य है। अंकुश मार्ग है। शून्य संकेत नहीं है। परमेश्वर सत्ता है। सत्य सिद्ध योग मठ है। अमर पद तन्त्र स्वरूप है। आदि ब्रह्म स्वसंविद् है। अज्ञपा गायत्री है। विकार को दण्ड देना व्येय है। मन को रोकना कथा है। योग करके सदानन्द स्वरूप का दर्शन है। आनन्द भिक्षा भोजन है। महा शमशान में भी आनन्द वन में निवास है। एकान्त स्थान है। आनन्द मठ है। उन्मनी अवस्था है शारदा चेष्टा है। उन्मनी गति है। निर्मल गात्र है। निरालम्ब पीठ है। अमृत की लहरें आनन्द क्रिया है। शुद्ध चिदाकाश महा निदान्त है। शम दमादि दिव्य शक्तियों के आचरण में देह की तथा मन की आरोप्यता है। पर और अन्तर का संयोग है। तारक उपदेश है। अद्वैत सदानन्द देवता है। अपर्ण भीतर की इन्द्रियों का निग्रह नियम है। भय, मोह, शोक और क्रोध का त्याग त्याग है। पर और अवर की एकता रसास्वाद है अनियामकपना निर्मल शक्ति है। स्वप्रकाश ब्रह्म तन्त्र में शिव शक्ति का मेल रूप प्रपञ्च का छेदन है। तीनों देह कमण्डलु है भाव, अभाव का दहन है। आकाश के आचार रूप ब्रह्म को धारण करता है। तुरीय शिव यज्ञोपवीत है। तन्मय शिखा है। चित्तमय सृष्टि दण्ड है। अखंड ज्ञान कमंडलु है।



कर्म का निर्मूल करना कंथा है। माया, ममता और अहंकार का दहन करना। (शुद्ध चेतन्य में) निर्वाकार है। तीनों गुण रहित स्वल्प का अनुसंधान करना समय है। आत्मा का हरण। मृगचर्म वास है। अनाहत मन्त्र है। अक्रियसे उसका सेवन होता है। स्वेच्छाचार, स्वस्वभाव, मोक्ष परब्रह्म है। नीका रूप आचरण है। शान्तिका संग्रह करना ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य आश्रम में सर्वत्र का त्याग संन्यास है। अन्त में ब्रह्म अखण्डाकार है। शिष्य और पुत्र के सिवाय और किसी को न देना चाहिये, यह उपनिषत् है। ॐ वाणो और मन में शान्ति हो। यह निर्वाणोपनिषत् समाप्त हुआ।

॥ इति निर्वाणोपनिषत् समाप्त ॥



## ध्यान विन्दु उपनिषत्

[ ३४ ]

यदि पर्वत के समान अनेक योजन विस्तार वाले पाप हों तो भी ध्यान योग से छेदन हो जाते हैं, इसके सिवाय दूसरे से कभी भी उनका छेदन नहीं होता ॥ १ ॥ वीजाक्षर परम विन्दु है, और उसके ऊपर नाद स्थित है, वह शब्द अक्षर में लीन होने पर शब्द रहित परम पद है ॥ २ ॥ अनाहत शब्द से परे जो शब्द है उसे प्राप्त करने से योगी संशय रहित होता है ॥ ३ ॥ वात के अग्र भाग के सीवें भाग का हजारवां भाग और उसके अर्ध भाग और उसको अर्ध भाग का भी क्षय हो जाने से निरंजन होता है ॥ ४ ॥ जिस प्रकार पुष्प में गन्ध होता है, दूध में घी होता है, तिलों में तेल होता है और पाषाण में सुवर्ण होता है ॥ ५ ॥ जिस प्रकार घागे में मणि पिरये हुए होते हैं इसी प्रकार उस (निरंजन) में सब भूत प्राणी पिरये हुए हैं। स्थिर बुद्धि वाला जानी मोह रहित होकर ब्रह्म को जान कर ब्रह्म में टिका हुआ होता है ॥ ६ ॥ जैसे तेल का आश्रय तिल है और जैसे गंध का आश्रय पुष्प है इसी प्रकार पुरुष के शरीर में भीतर और बाहर वह (ब्रह्म) टिका हुआ है ॥ ७ ॥ जैसे वृक्ष को सर्पूणें जानने से उसकी छाया कला रहित होती है इसी प्रकार सब कला रहित भाव में सब स्थानों पर आत्मा टिका हुआ है ॥ ८ ॥ ॐ यह जो



एकाक्षर ब्रह्म है, वह सब मुमुक्षुओं को ध्यान करने योग्य है। पृथिवी अग्नि, ऋग्वेद, भू और पितामह ॥ ६ ॥ इनका प्रणव के प्रथम अंश अकार में लय होता है। अंतरिक्ष, वायु, यजु-वद, भुवः और विष्णु जनार्दन ॥ १० ॥ इनका प्रणवके दूसरे अंश उकार में लय होता है। आकाश, सूर्य सामवेद ऋग और महेश्वर ॥ ११ ॥ इनका प्रणव के तीसरे अंश मकार में लय होता है। अकार पीन वर्ण, नोणुण वाला कहा जाता है ॥ १२ ॥ उकार सतोणुणो द्वेते है, मकार तमांणुणो और काले ङग वाला है। आठ अंग वाले चार पाद वाले, तीन नेत्र वाले और पांच प्रकार के देवत वाले ॥ १३ ॥ अकारको जो नहीं जानता, वह ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता है। प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है ॥ १४ ॥ बाण के समान तन्मय होकर नावधानी से वेधन करे। उस पर अवरको जानने से सब क्रियाओं की निवृत्ति होजाती है ॥ १५ ॥ अकार से देवता हुए हैं, अकार से स्वर हुए हैं, अकार से सब चर अचर रूप तीनों लोक उत्पन्न हुए हैं ॥ १६ ॥ लघु पाप को नाश करता है, दीर्घ अव्यय रूप संपत्ति को देता है और अर्ध मात्रा से युक्त प्रणव मोक्ष को देने वाला है ॥ १७ ॥ तैज की अखंडित धार के समान, घंटे के दीर्घ नाद के समान नादके अग्र में अवाच्य रूप प्रणव है, जो उन जानता है वह वेद को जानता है ॥ १८ ॥ हृदय कमल की कर्णिका में स्थिर दीपक की शिला की आकृति वाले, अंगुष्ठ प्रमाण वाले, स्थिर अकार रूप ईश्वर का

ध्यान करे ॥ १९ ॥ इडा नाड़ी से वायु को खेंच कर उदर में भरे और देह के मध्य में उवाला युक्त अकार का ध्यान करे ॥ २० ॥ पुरक ब्रह्मा और कुम्भक विष्णु कहा जाता है, रेचक रूद्र कहा जाता है; ये प्राणायाम के देवता हैं ॥ २१ ॥ आत्मा को नीचे की अरुणो और प्रणव को ऊपर की अरुणो करके मंथन रूप ध्यान के अंगाम से गूढ़ तन्त्र को देखना चाहिये ॥ २२ ॥ अकार ध्वनि करते हुए पूर्ण रेचक होजाने पर नाद का लय भी हो जाता है वहीं आत्मा का दर्शन है। जितना सामर्थ्य हो उतना उसका ध्यान करना चाहिये ॥ २३ ॥ गमनागमन में स्थित और गमनादि से शून्य है, ऐसे करोड़ों सूर्य के समान प्रकाश वाले सबके हृदय में रहे हुए हंस रूप अकार को जो देखते हैं वे पाप रहित होजाते हैं ॥ २४ ॥ जो मन जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय तीनों क्रियाओं का करने वाला है उस मन का जहाँ विलय होता है, वह विष्णु का परमपद है ॥ २५ ॥ हृदय कमल आठ दल वाला और तत्तीस पंखड़ियों वाला है, उसके मध्य में सूर्य टिका हुआ है और उस सूर्य के मध्य में चन्द्र है ॥ २६ ॥ चन्द्र के मध्य में अग्नि है, अग्नि के मध्य में प्रकाश है, और प्रकाश के मध्य में पीठ (आनन) है, जो अनेक प्रकार के रत्नों से जड़ा हुआ है ॥ २७ ॥ उसके मध्य में देव है, जो सब स्थानों पर बसा हुआ निरंजन है, जो धीवत्स कौन्तुभ धारण किये हुए, मोती और मणियों से भूषित है ॥ २८ ॥ जो स्वच्छ स्फटिक के समान, करोड़ों चन्द्र के प्रकाश वाला है, इस प्रकार के विष्णु का विलय युक्त होकर ध्यान



करे ॥२६॥ तिसी के पुष्प के समान नाभि के स्थान में टिके हुए, चार भुजा वाले महा विष्णु का पूरक प्राणायाम करता हुआ चितवन करे ॥३०॥ कुम्भक प्राणायाम करते समय पद्मासन से बैठे हुए, चार मुख वाले, रक्त और गारे रंग वाले पितामह ब्रह्मा का हृदय से ध्यान करे ॥३१॥ रेचक प्राणायाम करते समय ललाट में त्रिनेत्र वाले शंकर का ध्यान करे, जो शुद्ध स्फटिक के समान, कला रहित और पापों का नाश करने वाला है ॥३२॥ केलेके फूलके समान नीचे फूल, और ऊपर डंडी और नीचे मुखवाला सौ शारे वाला, सौ पत्रों से युक्त, विस्तीर्ण कणिका वाला हृदय कमल होता है। वह सर्व वेदमय शिव का, सूर्य, चन्द्र और अग्नि के ऊपर २ चितवन करे ॥३३-३४॥ कमल को खोलने से चन्द्र अग्नि और सूर्य का बोध होता है, उनके बीच को ग्रहण करने से स्थिर आत्मा में विचरता है ॥३५॥ तीन स्थान, तीन मात्रा, तीन ब्रह्म तीन अक्षर, तीन मात्रा और अर्धमात्रा जो इनको जानता है, वह वेद का जानने वाला है ॥३६॥ तन को धार के समान अखंड दीर्घ घन्टे के (प्रणव नाद के अन्त) के समान विन्दु नाद कला से अतीत आत्मा है, जो उसको जानता है, वह वेद का जानने वाला है ॥३७॥ जिस प्रकार कमल की नाल से मनुष्य जल को खेंचता है, इसी प्रकार योगी योग मार्ग में स्थिति होकर वायु को खेंचे ॥३८॥ मूँदे हुए हृदय कमल को अर्ध मात्रा स्वरूप करके सुषुम्ना से खेंचे और भुक्तियों के मध्य में लय करे ॥ ३९॥ और नासिका के मूल से भुक्तियों के मध्य में ललाट में अमृत के स्थान को जाने, वह ब्रह्म का महान् स्थान है ॥४०॥

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के छः अंग हैं ॥ ४१ ॥ जितनी जीव जाति हैं, उतने ही आत्मन है, उनके अनेक भेदों को महेश्वर जानता है ॥ ४२ ॥ सिद्ध, भद्र, सिंह और पद्म ये चार आत्मन हैं। आचार प्रथम चक्र है और स्वाधिष्ठान दूसरा चक्र है योनि स्थान उन दोनों के मध्य में काम रूप कहा जाता है। आचार नाम के गुदा स्थान में चार दलवाला कमल है ॥ ४३—४४ ॥ उसके मध्य में सिद्धों से वन्दना की गई काम नाम की योनि है। तथा योनि के मध्य में परिचम मुखवाला लिङ्ग स्थित है ॥ ४५ ॥ उसके मन्दक में मणि के समान प्रकाश की जो जानता है, वह योग जानने वाला है। तम सोने के आकारवाला, विजली के रेखा के समान चंचल, अग्नि से चार अंगुल ऊपर भेद से नीचे स्वशब्द करके प्राण स्थित है, स्वाधिष्ठान उसका आश्रय है ॥ ४६—४७ ॥ स्वाधिष्ठान चक्र भेद भी कहलाता है, यहाँ जैसे मणि तन्तु से बैसे शरीर वायु से पूर्ण है ॥ ४८ ॥ वह नाभि मंडल चक्र मणि पूरक कहलाता है वारह दल वाले महाचक्र में पुष्प पाप से बंधा हुआ है ॥ ४९ ॥ जीव जब तक तरव को नहीं जानता तब तक अमण करता है। नेद से ऊपर और नाभि के नीचे पक्षी के अंडे के समान जो कन्द है, वहाँ से वहतर हजार नाडियाँ उलग्ना हुई हैं, उनमें वहतर मुख्य कही गई हैं, फिर भी उनमें प्राण को चलाने वाली दश प्रधान हैं, इडा, पिंगला और तीसरी सुषुम्ना ॥ ५०॥ ५१॥ ५२ ॥ गान्धारी, हस्ति जिह्वा,



पूषा, यशस्विनी, श्रालम्बुसा, कुहू और दशवीं शक्तिनी ॥ ५ ॥ इस प्रकार के नाड़ी चक्र योगियों को हमेशा जानना चाहिये । चन्द्र सूर्य और अग्नि देवता इन देवताओं वाली और सदा प्राण जिसमें चला करते हैं ऐसी ॥ ५४ ॥ इडा पिणला और सुषुम्ना तीन मुख्य नाड़ियाँ कही गई हैं । इडा वाम भाग में स्थित है और पिणला दक्षिण भाग में स्थित है ॥ ५५ ॥ सुषुम्ना मध्य देश में स्थित है, प्राण के ये तीन मार्ग कहे गये हैं । प्राण, अपान, समान, उदान, ध्यान ॥ ५६ ॥ नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय । प्राण आदि पाँच और नाग आदि पाँच वायु प्रसिद्ध हैं ॥ ५७ ॥ जीव रूप से ये हजारों नाड़ियों में रहते हैं । जीव प्राण और अपान के वश होकर ऊपर नीचे दौड़ता है ॥ ५८ ॥ वाम, दक्षिण मार्ग से चंचल होने के कारण दिखाई नहीं देता । जिस प्रकार भुजाओं से फेंको हुई गेंद चली जाती है ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार प्राण अपान से फेंका हुआ जीव विश्राम नहीं पाता रस्सी से बंधे हुए पक्षी के समान अपान से प्राण खिंचता है और प्राण से अपान खिंचता है ॥ ६० ॥

जो इनको जानता है वह योगवित् है, हकार द्वारा बाहर आता है और सकार द्वारा भीतर जाता है ॥ ६१ ॥ इस प्रकार हंस हंस कह मन्त्र जीव सदा जपता है, दिन रात में इक्कीस हजार छः सौ इतनी संख्या युक्त मंत्र को जीव सदा जपता है, यह भ्रजपा नाम की गायत्री योगियों को सदा मोक्ष देने वाली है ॥ ६२-६३ ॥ इसके संकल्प मात्र से मनुष्य पापों से से छूट

जाता है । इसके समान विद्या, इसके समान जप और इसके समान पुण्य न हुआ है और न होगा ।

जिस मार्ग से निगमय ब्रह्म के स्थान को पहुँचा जाता है, उस द्वार को मुख से ढांक कर सोई हुई परमेश्वरी योग अग्नि से जगाई हुई, जैसे सुई नागे को ले जाय वैसे, सुषुम्ना मन और प्राण सहित ऊपर जाती है और जैसे कुञ्जी से कपाट भट्ट खोल लेते हैं ॥ ६४-६७ ॥ उस कुण्डलिनी से योगी मोक्ष के द्वार को खोलता है ॥ ६८ ॥ दोनों हाथों को सम्पुटित करके, दृढ़ रीति से पद्मासन बांध कर और ठोड़ी को दृढ़ रीति से वक्षस्थल में लगा कर चित्त में बारम्बार उस (ब्रह्म) का ध्यान करता हुआ, बारम्बार अपान वायु को ऊपर चढ़ाता हुआ, पूर्ण किये प्राण को नीचे ले जाता हुआ मनुष्य (कुण्डलिनी) शक्ति के प्रभाव से श्रुत बोध को प्राप्त करता है ॥ ६९ ॥ जो योगी पद्मासन से बैठ कर नाड़ी द्वारों में वायु को भर कर रोकता है, वह मुक्त है; इसमें संशय नहीं है ॥ ७० ॥ श्रम से उत्पन्न हुए पसीने को श्रंगों में मलने वाला कड़ुये, खटुं और लवण को त्यागने वाला, दूध पीने में प्रीति वाला, सुखी ॥ ७१ ॥ ब्रह्मचारी, सूक्ष्म आहार करने वाला योगी योग परायण होकर एक वर्ष में सिद्ध हो जाता है, इसमें संशय न करना चाहिये ॥ ७२ ॥ [कन्द (मूल) के ऊपर कुण्डलिनी शक्ति वाला वह योगी सिद्ध होता है ] सदा मूल बंध करने से अपान और प्राण की एकता होती है, मल मूत्र कम हो जाता है और बूढ़ा भी जवान हो



जाता है। एड़ी से योनि को दाबकर मुदाको सकोड़े ॥ ७३-७४ ॥ और भ्रयान को ऊपर खेंचे, यह सूत वंध कहलाता है। <sup>ध्रुव</sup>ध्रुवका हुआ प्राण रूप पक्षी जिससे उड़ता है, वह ही उडियाण होता है। उन (उडियाण) वंध का स्वरूप कहा जाता है। उदर में पिछली ताल को नाभि के ऊपर करे ॥ ७५-७६ ॥ यह उडियाण वंध मृग्य रूपी हाथी के लिये सिंह है। मन्त्रक के आकाश से उत्पन्न हुए जल को नीचे जाने से रोकता है ॥ ७७ ॥ यह जालंधर वंध कर्म और दुःख समूह का नाश करने वाला है। कण्ठ का संकोचन करना जिसका लक्षण है, ऐसा जालंधर वंध करने से अमृत अग्नि में नहीं पड़ता और न वायु दीड़ता है।

जिह्वा को उलट कर कपाल के छिद्र में प्रवेश करने से और भ्रुवटियों के बीच में दृष्टि रखने से नेचरी मुद्रा होती है। जो नेचरी मुद्रा को जानता है, उसको रंग और मरण नहीं होता, निद्रा नहीं आती न भूख प्यास लगती है, न मूर्च्छा होती है। वह रोग ने पीड़ित नहीं होता और न कर्मों से त्रिपायमान होता है ॥ ७८-८१ ॥ जिसकी नेचरी मुद्रा है, वह काल से नहीं वंधता क्योंकि उसका चित्त आकाश में विचरता है और जिह्वा आकाश में गमन करती है ॥ ८२ ॥ इसलिये यह नेचरी मुद्रा सिद्धों ने नमस्कार की गई है। जिसने नेचरी से ताल के छिद्र को टक लिया है, कामिनी के आनिगन करने से भी उसका वीर्य नहीं गिरता, जब तक देह में वीर्य स्थित है तब तक मृग्य कहाँ है ॥ ८३-८४ ॥ जब तक नेचरी मुद्रा वंधी रहती है

तब तक वीर्य नहीं जाता, चला हुआ वीर्य भी जब योनि मंडल में प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥ तब भी योनि मुद्रा से निरतन्त्र वंधा हुआ बिंदु आकर्षण शक्ति से खेंचा हुआ हठ से ऊपर की चला जाता है। वह बिंदु सफेद और लाल दो प्रकार है ॥ ८६ ॥ सफेद शुक्ल कहलाता है और लाल महारज कहलाता है। मूत्र के वृक्ष के समान रज योनि स्थान में स्थित है, चन्द्र के स्थान में बिंदु रहता है। उनकी एकता अत्यन्त दुर्लभ है। बिंदु शिव है, रज शक्ति है, बिंदु चन्द्रमा है, रज सूर्य है ॥ ८७-८८ ॥ दोनों के संगम से परम शरीर प्राप्त होता है। वायु द्वारा शक्ति के चलाने से जब रज आकाश में प्रेरित होता है और रज के साथ एकता को प्राप्त होता है, तब शरीर दिव्य हो जाता है। शुक्ल चन्द्रमा के साथ संयुक्त है और रज सूर्य के साथ संयुक्त है ॥ ८९-९० ॥ जो दोनों के एक रस भाव को जानता है, वह योग को जानने वाला है। चन्द्र सूर्य को मिलाना, मन समूह को योगन करना है ॥ ९१ ॥ रसों को भली प्रकार शोषण करना इसके लिये महा मुद्रा कहलाती है ॥ ९२ ॥ ठोड़ी को छाती पर रख कर, बाईं एड़ी से योनि के छिद्र को दबा कर फेंकिये हुए दक्षिण पाद को पकड़ कर, दोनों कुक्षियों को बांध कर भरी हुई श्वास को धीरे-धीरे छोड़े, मनुष्यों के महा पातक को नाश करने वाली यह महा मुद्रा कहलाती है ॥ ९३ ॥



साध सात्मा के निरोग का वर्णन करते हैं । हृद्य के स्थान में भाठ दल वाला कणल है, उसके मध्य में रेखाओं का भवत्वमय करके उसमें जीवात्मा ज्योति स्वरूप अणुभाज रूप से वर्तता है । उसमें सब टिका हुआ होता है । सब जानता है, सब करता है । इस सब चरित्रों का मैं कर्ता मैं भोक्ता, सुखी, दुखी, काना, कंजा, दुबला और मोटा हूँ इस प्रकार स्वतन्त्रता से वर्तता है । पूर्व दल चेत वर्ण वाला है, पूर्व दल में उसका विश्राम होने से भक्ति युक्त भर्मा में बुद्धि होती है । भागेद दल रक्त वर्ण वाला है, जब भागीय दल में विश्राम होता है तब निद्रा और आलस्य में बुद्धि होती है । दक्षिण दल कृष्ण वर्ण वाला है, जब दक्षिण दल में विश्राम होता है तब द्वेष और कोप की बुद्धि होती है ॥ नेत्रदल नील वर्ण वाला है, जब नेत्रदल में विश्राम होता है तब पाप कर्मा हिंसा में बुद्धि होती है । पश्चिम दल रक्तिक के रंग का है, जब पश्चिम दल में विश्राम होता है तब क्रोध और विनोद में बुद्धि होती है । वायव्य दल माण्डिम के रंग का है, जब वायव्य दल में विश्राम होता है तब ज्ञाने, चलने और वैराग्य में बुद्धि होता है । उत्तर दल पीले रंग का है, जब उत्तर दल में विश्राम होता है तब मुख और शृंगार में बुद्धि होती है ॥ ईशान दल वैज्य मणि के रंग वाला है, जब ईशान दल में विश्राम होता है तब दान आदि कृपा की बुद्धि होती है । जब संधियों की संधियों में बुद्धि होती है तब वात, पित्त कफ महा व्याधियों का कोप होता है । जब मध्य में स्थित होती

है तब सब जानती है, गाती है नाचती है, पकती है और आनन्द करती है । जब नेत्र की भ्रम होता है तो भ्रम दूर करने को प्रथम रेखाके मध्य में डुबकी लगाती है, तब निद्रावस्था होती है, प्रथम रेखा चंद्रक गुण(वोपहरिया)के रंग वाली है ॥ निद्रावस्था के मध्य में स्वप्नावस्था है । स्वप्नावस्था में देखी सुनी अनुमान से होनेवाली चालीख्यादि कल्पना करती है, जब भ्रम होता है तब भ्रम दूर करने को दूसरी बीरबुद्धीके रंगवाली रेखा के मध्य से डुबकी लगाती है तब सुषुप्ति अवस्था होती है, सुषुप्तिमें बुद्धि केवल ईश्वरके सम्बन्ध वाली तिर्य्यग्योष स्वरूप होती है, पीछे परमेश्वर की प्राप्ति होती है ॥ तीसरी रेखा पद्मरग के रंग की है, जब तीसरी रेखा के मध्य में डुबकी लगाता है तब तुरीयावस्था होती है । तुरीया में बुद्धि केवल परमात्मा के सम्बन्ध वाली होती है, तिर्य्यग्योष स्वरूप वाली होती है तब दाने २ उपराग को प्राप्त होकर, धर्म ग्रहण करने वाली बुद्धि से मन को आत्मा में स्थित कर के कुछ भी चिंतन न करे । तब प्राण अपान को एक कर के सब विषय को आत्म स्वरूप के लक्ष्य से धारण करता है । जब तुरीयातीत अवस्था होती है, तब सब आनन्द स्वरूप होता है, द्रव्य से अतीत होता है । जब तक देह का प्रारब्ध रहता है, तब तक रहता है, पञ्चात् परमात्म तत्त्व की प्राप्ति होती है, इस प्रकार से मंज होता है, ये आत्म दर्शन के उपाय हैं ॥

चार भागोंके युक्त महा द्वारमें जाने वाले के वायुके साथ स्थित होकर अर्ध त्रिकोण में जाने से अभ्युत ( नाश रहित परमात्मा )



दीखता है ॥६४॥ पूर्वोक्त त्रिकोण स्थान से ऊपर पांच रंग वाले पृथ्वी आदि ध्यान करने योग्य हैं और बीज रंग और स्थान वाले पांच वायु ध्यान करने योग्य हैं। नीले भेष के समान यकार वायु रूप प्राण का बीज है। आदित्य के समान रकार अग्नि रूप अपान का बीज है ॥ ६५ ॥

बन्धुक पुष्प के समान लकार पृथ्वी रूप ध्यान है। शंख के रंग वाला वकार जल रूप उदान का बीज है ॥६६॥ स्फटिक के सदृश हुंकार आकाश रूप समान है। हृदय, नाभि, नासिका, कर्ण और पैर का श्रृंगुठा आदि समान के स्थान हैं ॥६७॥ वह बहतर हजार नाडियों में वर्तते हैं। शरीर से श्रृंगुठाईस करोड़रोम रूप हैं वहाँ भी समान रहता है ॥६८॥ समान प्राण एक है वह ही एक जीव है। चित्त को अच्छी तरह सावधान करके रेचक आदि तीनों करे ॥६९॥ सबको धीरे २ खेंच कर हृदय कमल के कोटर में प्राण अपान को रोककर प्राण का उच्चारण करे ॥१००॥ कंठका संकोचन करके तथा लिंग का संकोचन करके मूलाधार से पद्म तंतु के नमान सूक्ष्म सुषुम्ना का संकोचन करे ॥ १०१ ॥ बीणा दण्ड में उत्पन्न हुआ अमूर्त नाद वर्तता है। शंख नाद आदि के समान उसीके मध्य में ध्वनि होती है ॥१०२॥ कपाल छिद्र के मध्य में चारों द्वारों का मध्य है, वहाँ आकाश रंघ में जाता हुआ नाद मोर के नाद के समान होता है ॥१०३॥ जैसे आकाश में सूर्य जैसे यहाँ आत्मा विराजमान है और ब्रह्मरंघ में

दो मनुष्यों के मध्य शक्ति विराजमान है ॥ १०४ ॥ वहाँ मनको लय करके पुरुष अपने आत्मा को देखे, रत्नज्योति नाद रूप विन्दु परमेश्वर का पद है। जो पुरुष इस प्रकार जानता है, वह केवल्य को भोगता है, यह उपनिषत् है ॥ १०५ ॥

॥ इति ध्यान विन्दु उपनिषत् समाप्त ॥





## मण्डल ब्राह्मण उपनिषत् ।

[ ३५ ]

प्रथम ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य महाशुनि आदित्य लोक को गये, उन आदित्य को नमस्कार करके बोले 'हे भगवान् ! आदित्यका आत्मतत्त्व कहिये' वह नारायण बोले ज्ञान सहित यमादि शृणुं योग कहलाता है। शीत, उष्ण, आहार और निद्राको जीतना, हमेशा शांति निरचलपन और विषय इन्द्रियों का रोकना ये यम हैं। गुरु की भक्ति, सत्य मार्गमें प्रीति, सुख से प्राप्ति हुई वस्तुका अनुभव और उस वस्तु के अनुभव से संतुष्टि, असंगपना, एकांत वास, मन की निवृत्ति, फल में अनिच्छा और वैराग्य का भाव नियम हैं। आसन सुखपूर्वक रहे और बहुत काल तक रहे यह आसन का नियम है। पुरुष, कुम्भक और रेचक भेद से सौलह, चौंसठ और वत्सीय यथा क्रम से प्राणायाम की संख्या है। इन्द्रियों के अर्थ यानी विषयों से मन को रोकना प्रत्याहार है। सब शरीरों में चैतन्य की एकता विचारना ध्यान है। विषयों से निवृत्त करके चित्त को चैतन्य में स्थापित करना धारणा है। ध्यान को भूल जाना ममाधि है। इस प्रकार सूक्ष्म अंग है। जो इस प्रकार जानता है, वह युक्त होता है ॥१॥ देह के पाँच दोष होते हैं:— काम, क्रोध, श्वास निकलना, भय और निद्रा। संकल्प रहित होने से क्षमा, हलका भोजन, सावधानी और तत्व सेवन

करने से उन दोषों का त्याग होता है। निद्रा भय नदी का प्रवाह है, हिमा आदिक तरंग हैं, तृष्णा भँवर है, स्त्री कीचड़ है, ऐसे संसार समुद्र को पार जाने को सूक्ष्म मार्ग का अवलम्बन करके मत्त्वादि गुणों का उल्लंघन करके तारक का अवलोकन करे। मोक्षों के मध्य में सच्चिदानन्द तेज स्थिर पहाड़ का सा तारक ब्रह्म है। उसको प्राप्त करने का उपाय, तीन लक्ष्य का अवलोकन है। मत्ताधार से लेकर ब्रह्मरंध्र तक सुषुम्ना सूर्य के समान प्रकाश वाली है। कमल की डण्डी के तन्तु के समान सूक्ष्म कुण्डलिनी है। वहाँ अंधेरे की निवृत्ति है। उसके दर्शन से सब पापों की निवृत्ति होती है। तर्जनी श्रेणुली के अग्र भाग से दोनों कानों के छिद्र बन्द करने से फुत्कार शब्द होता है। वहाँ मन के स्थित होने से नेत्रों के मध्य में नील ज्योति को देखता है। इसा प्रकार हृदय में भी देखता है। वहिर्लक्ष्य कहते हैं:— नासिका के अग्र में चार, छह, आठ, दस, बारह श्रेणुल पर क्रम से नील ज्योति, रयामता के समान, वीरबुद्धी के समान, पीला और दोनों रंग युक्त आकाश को देखता है, वह योगी है। चल दृष्टि से व्योम भाग को देखने वाले पुरुष की दृष्टि के सामने ज्योति के किरण होते हैं। वहाँ दृष्टि स्थिर हो जाती है, मस्तक के ऊपर बारह श्रेणुल वाली ज्योति देखता है तब अमृतपान को प्राप्त होता है। मध्य लक्ष्य कहते हैं:— प्रातःकाल चित्रादि वर्या, सूर्य, चन्द्र, अग्नि की ज्वाला के समान, इनसे रहित अन्तरिक्ष के समान देखता है। उसके



आकार वाला होता है। अभ्यास से निर्विकार, गुण रहित आकाश होता है। चमकते हुए तारे के आकार वाला, गाढ़ अन्धकार के समान पराकाश होता है। कालानि के समान प्रकाश वाला महाकाश होता है। सबसे ऊँचा परम अद्वितीय प्रकाश वाला तत्त्वाकाश होता है। करोड़ों सूर्य के प्रकाश वाला सूर्याकाश होता है। इस प्रकार अभ्यास से तन्मय होता है, जो इस प्रकार जानता है ॥ २ ॥

पूर्व और उत्तर विभाग से उस योग को दो प्रकार का जानो। पहिले का तारक जानो और दूसरे को अमनस्क जानो। तारक दो प्रकार का है। सृति तारक और अमूर्ति तारक। जो इन्द्रियों का अन्त नक है वह सृति तारक है। जो दोनों भोगों से अतीत है, वह अमूर्ति तारक है। युक्त मन होकर दोनों का ही अभ्यास करे। मन युक्त आन्तर दृष्टि तारक का प्रकाश होता है। दोनों भोगों के मध्य विन में तैजस का आधिपत्य हो जाता है, यह तृप्त तारक है। दूसरा अमनस्क है। तालू का मूल के ऊपर के विभाग में महा ज्योति विद्यमान है। उसके दर्शन से अणिमा आदि त्रिन्द्रियाँ होती हैं। आन्तर और बाहर के लक्ष्य में दृष्टि को बलने और मृदने से रहित रखना, यह शांति मुद्रा है। सब तंत्रों में यह महाविद्या गुप्त रखने योग्य होती है। उसके ज्ञान से संसार का निवृत्ति होती है। उसका पूजन मोक्ष फल देने वाला है। अन्तर्लक्ष्य जल ज्योति स्वरूप होता है। महा ऋषियों के ज्ञानने योग्य, आन्तर और बाहर की इन्द्रियों से न देखी जा

सके ऐसी है ॥ ३ ॥ हजारों किरणों वाला जल ज्योति अन्तर्लक्ष्य है। दूसरे ऐसा कहते हैं, बुद्धि रूपी गुफा में सब अंगों से सुन्दर पुरुष रूप अन्तर्लक्ष्य है मस्तक के भीतर मण्डल में रहने वाला, पाँच मुख वाला, उभा सहाय वाला, नील कण्ठ वाला अत्यन्त शान्त, ऐसा शिव अन्तर्लक्ष्य है ऐसा कोई कहते हैं। कोई कहते हैं कि अंगुष्ठ मात्र पुरुष ही अन्तर्लक्ष्य है। कहा हुआ सब विकल्प आत्मा ही है और उस लक्ष्य को जो शुद्ध आत्म दृष्टि से देखता है वह ही ब्रह्मनिष्ठ होता है। पञ्चोसवां जीव अपने कल्पे हुए चौबीस तत्त्वों को त्याग कर मैं छब्बीसवां परमात्मा हूँ ऐसा निश्चय करने से जीवन्मुक्त होता है। इस प्रकार अन्तर्लक्ष्य को देखने से जीवन्मुक्त की दशा में आप ही अन्तर्लक्ष्य होकर अक्षण्ड मण्डल वाला परमाकाश होता है ॥ ४ ॥

### दूसरा ब्राह्मण ।

अब याज्ञवल्क्य ने आदित्य मंडल के पुरुष से पूछा "हे भगवन् ! आपने अन्तर्लक्ष्य आदिक बहुत प्रकार से कहे। मैंने उस (आत्म तत्त्व) को न जाना। उसको मुझसे कहो।" तब उसने कहा, वह पंच भूतों का कारण, विजली के पर्वत के समान, प्रकाश वाला और वैसे ही चार पीठ वाला है। उसके मध्य में तत्त्व का प्रकाश होता है। वह अत्यन्त गुप्त और अप्रकट है। उसको ज्ञान की नौका पर चढ़ कर जानना चाहिए। वह भीतर और बाहर का लक्ष्य है। उसके मध्य में जगत् लीन है। वह नाद



विन्दु कला से अतीव अखंड मंडल है। वह सगुण और निर्गुण स्वरूप है। उसका जानने वाला विमुक्त होता है। आदि में अग्नि मंडल है। उसके ऊपर सूर्य मंडल है। उसके मध्य में अमृतमय चन्द्र मंडल है। उसके मध्य में अखंड ब्रह्म तेज का मंडल है। वह विजली की किरणों के समान शुक्ल प्रकाश वाला है। वह ही शांभवी लक्षणा है, उसके दर्शन में अभावस, पड़वा और पूर्णमासी तीन दृष्टियाँ हैं। सुदी हुई आंखों से देखना अभावस की दृष्टि है। आधी सुदी हुई आंखों से देखना पड़वा है। आँखें विलकुल खुली रखना पूर्णमा है। इसलिये पूर्णमा का अभ्यास करना चाहिये। उसका लक्ष्य नासिका का श्रग्र भाग है। तब तालू के मूल में गाढ़ा अन्धकार दिखाई देता है। उसके अभ्यास से अखंड मंडल के आकार की ज्योति दीखती है वह ही सच्चिदानन्द ब्रह्म है। इस प्रकार सहज आनन्द में जब मन लवलीन हो जाता है तब आंतो भवी (मुद्रा) होती है। उसको ही खेचरी कहते हैं। उसके अभ्यास से मनकी स्थिरता होती है। फिर वायु की स्थिरता होती है। ये उसके चिह्न हैं। आदि में तारों के समान दिखाई देता है। फिर दर्पण, उसके परचात् चन्द्र मंडल, फिर नव रत्न प्रभा का मंडल, फिर दीपहर के सूर्य का मंडल, फिर अग्नि की शिखा का मंडल, ये क्रम से दोखता है ॥ १ ॥

तब परिचम मुख वाला प्रकाश, स्फटिक, धुवाँ, विन्दु, नाद कला, नक्षत्र, जुगुनु, दीप की शिखा सुवर्ण नव रत्न आदि प्रभा दीखती है। वह ही प्रणव का स्वरूप है। प्राण और अपान

को एकता करके कुम्भक धारण करके दृढ़ भावना से नासिका के श्रग्रभाग को देखना, दोनों हाथों की अंगुलियों से षण्मुखी (कर्ण, नेत्र नासिका को बन्द) करके प्रणव की ध्वनि सुनकर मन वहाँ लीन हो जाता है। उसको कर्म का लेप नहीं होता। सूर्य के उदय और अस्त के काल में कर्म अवश्य करना चाहिये, परन्तु इस प्रकार जानने वाले को चैतन्य रूपी सूर्य के उदय और अस्त के अभाव से कर्म का अभाव होता है। शब्द और काल के लय होने से दिन और रात्रि से अतीत होकर सबके परिपूर्ण ज्ञान से उन्मनी अवस्था की प्राप्ति से ब्रह्म की एकता होती है। उन्मनी अमनस्क होती है, चिन्ता रहित होना उसका ध्यान है। सब कर्मों का नाश आवाहन है। दृढ़ ज्ञान प्राप्त है। उन्मनी भाव पाछा है, सदा अमनस्क अर्थात् है, सदा प्रकाश और अखंड ब्रह्म की वृत्ति रखना स्नान है। सर्वत्र ब्रह्म की भावना गंध है। द्रष्टा के स्वरूप की अवस्था अक्षय है। चैतन्य की प्राप्ति पुष्प है चैतन्य अग्नि स्वरूप धूप है, चैतन्य आदित्य स्वरूप दीप है। परिपूर्ण चन्द्र के अमृत रस को एकत्र करना नैवेद्य है। निश्चलता प्रदक्षिणा है। सोऽहं (वह मैं) भाव नमस्कार और मौन स्तुति है और पूर्ण सन्तोष उसका विसर्जन है, जो इस प्रकार जानता है ॥ २ ॥

इस प्रकार त्रिपुटी छूटने पर तत्तं रहित समुद्र के समान वायु स्थान पर रखे हुए दीप के समान अचल, संपूर्ण भाव अभाव से रहित, केवल्य का प्रकाश होता है। जाग्रत और



निद्रा के भय को जानने से ब्रह्म को जानने वाला होता है। अज्ञान में लीन होने के कारण और मुक्ति के हेतु का अभाव होने से सुषुप्ति और समाधि में मन का लय समान होने पर भी दोनों में महान् अन्तर है। प्रपञ्च मनका कल्पा हुआ होने से समाधि में अज्ञान का विकार मिट जाने से उसके आकार से आकार वाली अखण्डकार वृत्ति वाले आत्म रूप साक्षी चैतन्य में प्रपञ्च का लय हो जाता है। इसलिये भेद के अभाव और मिथ्यापने के भान से कभी वृत्ति बाहर जाय तो भी एक बार प्रकाश रूप सदानन्द के अनुभव होने से ब्रह्म जानने वाला ब्रह्म ही होता है। जिसका संकल्प नाश हुआ है उसके दृष्ट में ही मुक्ति रक्खी हुई है। इसलिये भाव अभाव को छोड़ कर परमात्मा का ध्यान करने से मुक्ति होती है। बारम्बार सब अवस्थाओं में ज्ञान ज्ञेय, ध्यान, ध्येय लक्ष्य, श्रवण, दृश्य अदृश्य और उद्वापोह आदि छोड़कर जो इस प्रकार जानता है वह जीवन्मुक्त होता है। १३॥ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुर्य और तुर्यातीत पाँच अवस्थाएँ हैं। जाग्रत में प्रवृत्त हुआ जीव प्रवृत्ति मार्ग में आसक्त होकर पाप का फल नरकादि मत हो, शुभ कर्म का फल स्वर्ग हो इस प्रकार की इच्छा करता है। वह ही स्वीकार किये हुए वैराग्य से कर्म का फल जन्म रूप संसार अब बस है ऐसा विचार के त्रिमुक्ति की इच्छा करके निवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त होता है। वह ही संसार से तरने के लिये गुरु का आश्रय लेकर कामादि त्याग कर शास्त्र विहित कर्मों का आचरण करते हुए, साधन चतुष्टय

से सम्पन्न होकर हृदय कमल के मध्य में भगवत् सत्ता मात्रका अंतर्लक्ष्य करके सुषुप्ति अवस्था की मुक्ति, ब्रह्मानन्द की स्मृति प्राप्त करके 'मैं ही एक अद्वितीय हूँ', कुछ काल से अज्ञान वृत्तिसे भूलकर जाग्रत की वासनाके फल से 'मैं तैजस हूँ', इस प्रकार उन दोनों के निवृत्त होने पर मैं एक ही अब प्राज्ञ हूँ, स्थान और अवस्थाओं के भेद से ऐसा है परन्तु मैं इनसे अन्य हूँ, इस प्रकार विवेक होने पर शुद्ध अद्वैत ब्रह्म मैं हूँ, इस प्रकार भेद की गन्ध को त्याग कर अपने अंतर में व्यापक भानुमण्डल का ध्यान करके उसके आकार का होने से परब्रह्म के आकार वाले मुक्ति मार्ग पर आरूढ़ होकर परिपक्व होता है। संकल्पादि वाला मन वन्धन का हेतु है, इनसे रहित मन मोक्ष के योग्य होता है। मोक्ष वाला चक्षु आदि पाँच से शरीर प्रपञ्च की गन्ध रहित सब जगत को आत्मरूप देखता हुआ अहंकार को त्याग कर मैं ब्रह्म हूँ, इस प्रकार चित्तवन करता हुआ जो यह है, सब आत्मा ही है, इस प्रकार भावना करता हुआ कृत कृत्य होता है ॥ ४ ॥ सर्व स्मरण नुर्यातीत ब्रह्म रूप योगी होता है। उसकी ब्रह्म के समान वृत्ति करते हैं। वह सब लोकों की स्तुति करने योग्य है सर्व देशों में व्यापक होता है, परमात्मा रूपी आकाश में विन्दु की आरण्य करके शुद्ध अद्वैत जड़ता रहित सहज अमनस्क योग निद्रा के अखण्ड आनन्द पद की अनुवृत्ति से जीवन्मुक्त होता है। योगी आनन्द समुद्र में मन होते है। उनकी अपेक्षा



से इन्द्र आदिक का भ्रान्त्य शोध है। इस प्रकार भ्रान्त्य प्राप्त करने वाला परम योगी होता है, यह उपनिषत् है ॥६॥

तोसरा ब्राह्मण ।

याज्ञवल्क्य महा मुनि ने मण्डल पुराण से पूछा "स्वामिन् ! भ्रमनस्क के लक्षण कहने पर भी याद नहीं है, इसके लक्षण फिर कहिये," तब इस प्रकार मंडल पुराण बोला:—यह भ्रमनस्क भ्रतयन्त रहस्य है जिसके जानने से भी कुतार्थ होता है। वह नित्य शांभवी मुद्रा से युक्त है। परमात्म दृष्टि से उसके प्रत्यक्ष लक्षणों को देखकर उसके पीछे सर्व के ईश्वर, प्रमाण रहित, ब्रज, शिव, परमाकाश, भ्रालम्बन रहित भद्र, ब्रह्मा विद्युत् रुद्रादि का एक मात्र लक्ष्य रूप, सबके कारण को परब्रह्म रूप आत्मा में ही देखता हुआ, यह जीव भ्रतःकरण रूप में विहार करता है, ऐसा निश्चय पूर्वक जान कर भाव भाग्य आदि दृष्टों से भ्रतीत होकर, मनोन्मत्तो के अनुभव को जानकर, उसके पीछे सब इन्द्रियों के क्षय होने में भ्रमनस्क सुख रूप भ्रान्त्यन्त के समुद्र में भन का प्रवाह योग रूप निर्वात स्थान में रक्खे हुए दीपक के समान, भ्रचल परब्रह्म को प्राप्त होता है। तब सूखे प्लुत के समान सूखा और निद्रामय द्वासीस्वप्न के भाग्य से निर्द्वन्द्व और मदा भ्रचंचल गात्र वाला होकर परम शक्ति को प्राप्त करके भन प्रचार से स्रज्य होने से वह परमात्मा में लीन होता है। दूध निकालने के बाद गी के बनो के दूध के समान

सब इन्द्रिय समूह के नष्ट होने से भन का नाश होता है, वह ही भ्रमनस्क है। उस के पीछे नित्य शुद्ध परमात्मा 'मं ही हूं' इस प्रकार तत्त्वमसि के उपदेश से 'तू ही मैं हूं, मैं ही तू है' इस प्रकार तारक योग के मार्ग से ब्रह्म भ्रान्त्य से पूर्ण होकर कुतार्थ होता है ॥ १ ॥ पराकाश में परिपूर्ण भन होकर उन्मत्तो भ्रवस्था को प्राप्त करके सब इन्द्रिय समूह को त्याग कर अनेक जन्मों के किये हुए पुण्य समूह के पत्र होने से कैवल्य फल को पाकर ब्रह्मजानन्त स्वरूप सब क्लेशों और पापों से रहित ब्रह्म मैं हूं, इस प्रकार (अनुभव कर) ब्रह्म कृत्य होता है। परमात्मा पूर्ण होने से तू और मैं में भेद नहीं है। इस प्रकार कहते हुए शिष्य को भ्रालिंगन देकर उसको भान को प्राप्त किया ॥ ३ ॥

॥ चौथा ब्राह्मण ॥

याज्ञवल्क्यने मंडल पुराणसे फिर पूछा "ज्योम पंचकका लक्षण विस्तार से फिर कहिये" वह बोला:—"भाकाश पराकाश, महकाश, सूर्याकाश, परमाकाश इस प्रकार भाकश पांच है। बाहर और भीतर भ्रंशकारभय भाकाश है। बाहर और भीतर कालान्ति के समान पराकाश है। बाहर और भीतर प्रमाण रहित ज्योति की प्रभा वाला तत्त्व महाकाश है, बाहर और भीतर सूर्य की प्रभा वाला सूर्याकाश है। अनिर्वचनीय ज्योति, सर्व व्यापक भ्रतयन्त भ्रान्त्यलक्षणा वाला परमाकाश है। इस प्रकार उस उसके लक्ष्यको देखने से उसका रूप होता है। नव चक्र वाला, छः आधार वाला, तीन लक्ष्य वाला ज्योम पंचक है। जो इनको यथार्थ नहीं जानता वह नाम भाग्य का योगी होता है ॥ १ ॥



विषय वाला मन बंध का और विषय रहित मन मुक्ति का हेतु होता है। इसलिये सब जगत चित्त का विषय है वह ही चित्त आश्रय रहित और मनोन्मनी अवस्था के पक्ष होने पर लय के योग्य होता है। मुक्त पूर्ण में उसके लय करने का अभ्यास करे। मन के लय का कारण मैं ही हूँ। अनाहत शब्द की जो ध्वनि है उस ध्वनि के अन्तर्गत ज्योति है, ज्योति के अन्तर्गत मन है। जिससे तीनों जगत सृष्टि स्थिति और लय का कर्म है।

वह मन जहाँ लय हो जाता है, वह विष्णु का परम पद है। उनके लय होने से भेद के अभाव से शुद्ध अद्वैत की सिद्धि होती है। यह ही परम तत्त्व है उसका जानना बाला बाल, उन्मत्त अथवा पिशाच के समान जड़ कृति से इस लोक में आचरण करे। इस प्रकार अमनस्क के अभ्यास से ही नित्य तुष्टि, अलम मूत्र थोड़ा भोजन हठ अंग तथा जड़ता, निद्रा, दृष्टि और वायु चलना इनका अभाव होता है ब्रह्म के दर्शन से जाने हुए सुख स्वरूप की सिद्धि होती है। इस प्रकार दीर्घ काल तक की हुई समाधि से उत्पन्न हुए ब्रह्म रूपी अद्भुत के पान में परायण होकर वह संन्यासी परमहंस अवस्थत होता है। उसके दर्शन से सब जगत पवित्र होता है। उसकी सेवा करने वाला अज्ञानी भी मुक्त होता है। वह एक सौ एक कुल को तारता है। उसके माता, पिता स्त्री और पुत्र समूह मुक्त होते हैं। यह उपनिषद् है।

॥ इति मण्डल ब्राह्मण उपनिषद् समाप्त ॥



योग



## मिश्रकोपनिषद्।

[ ३६ ]

मोक्ष की इच्छा वाले संन्यासी कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस चार प्रकार के हैं। गीतम, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ कुटीचक नाम के संन्यासी आठ ग्राम का भोजन करके योग मार्ग से ही मोक्ष की प्रार्थना करते हैं। और बहूदक नाम के संन्यासी त्रिदंड, कमंडलु, शिखा, यज्ञोपवीत और काषाय वस्त्र धारण करने वाले ब्रह्मर्षि के घर में मधुमास को छोड़कर आठ ग्राम का भोजन करके योग मार्ग से मोक्ष ही की प्रार्थना करते हैं। और हंस नाम के (संन्यासी) ग्राम में एक रात्रि, नगर में पाँच रात्रि और क्षेत्र में सात रात्रि से उपरांत वास नहीं करते। वे गोमूत्र और गोबर का आहार करने वाले नित्य चांद्रायण व्रत करते हुए योग मार्ग से मोक्ष ही की प्रार्थना करते हैं। और परमहंस नाम के (संन्यासी) सर्वर्तक, आरुणि, इवेतकेतु, जड़ भरत, दत्तात्रेय, शुक, वामदेव, हरीतक आदि आठ ग्राम का भोजन करके योग मार्ग से मोक्ष ही की प्रार्थना करते हैं। वे वृक्ष की जड़, शूल्य गृह, अथवा श्मशान में वास करने वाले वस्त्र सहित अथवा नग्न रहते हैं। उनको धर्म, अधर्म, लाभ, अलाभ, शुद्ध, अशुद्ध और द्वैत नहीं होता, वे मिट्टी का डेला, पत्थर और सुवर्ण



में समान भाव रखते हैं, सब वर्णों में से भिक्षा करके सर्वत्र आरामा ही देखते हैं। वे नौ, निर्द्वन्द्व परिग्रह, रहित, शुक्ल ध्यान परायण, आत्मनिष्ठ वाले प्राण धारण के लिये यथा योग्य समय पर भिक्षा करके शून्य स्थान, देव मन्दिर, पर्यकुटी, बाँवो, वृक्षको जड़, कुम्हार के घर, अग्नि होत्र के स्थान नदी के किनारे, गिरि-शुष्मा, टीला गड्ढा अथवा तोत के स्थान में रह कर ब्रह्म मार्ग में अच्छी प्रकार से नपुत्र होकर शुद्ध मन से परमहंस के आचार से, संन्यास से देह त्याग करते हैं, वे परमहंस नाम के संन्यासी हैं। उपनिषत् समान हुआ।

॥ भिक्षुकोपनिषत् समाप्त ॥



संन्यास



## आश्विनिक उपनिषत् ।

[ ३७ ]

प्रजापति से उत्पन्न हुए अश्वि नाम के एक मुनि एक समय प्रजापति के लोक में गये और पूछने लगे “हे भगवन् किम उपाय करके मैं सब कर्मों का त्याग करूं ?” तब प्रजापति कहने लगे “तुम को पुत्र, भाई, बान्धव, शिखा, यज्ञोपवीत, याग, स्वाध्याय, ऋतोक, इन्द्रलोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तप-लोक सत्यलोक, अतल, तलातल, वितल, सुतल, रसातल, महातल, पाताल और ब्रह्माण्ड सबका त्याग करना चाहिये, ( सब लोकोकी इच्छाओं का त्याग करना ) दण्ड और वस्त्रों में चादर और कोर्पन को ग्रहण करना चाहिये, शेष सबका त्याग करना चाहिये” ॥ १ ॥

शुद्ध ब्रह्मचारी और ज्ञानप्रस्थको अपने उपवीत को भूमि में अथवा जल में त्याग करना चाहिये। अग्निहोत्र के पंचाग्नि को उदरग्नि में आरोपण करना और गायत्री का वाणी रूप अग्नि में आरोपण करना। कुटीचर ( कुटी में रहने वाले ) ब्रह्मचारी को प्रथम कुटुम्ब का त्याग करना, पात्र का त्याग करना, पवित्र का त्याग करना, दण्ड और लोक का त्याग करना, मंत्र रहित होना, ऊर्ध्वगमन यानो इस लोक में या परलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के भाव को छोड़ देना, औषधि रूप से अन्न को खाना,



तीनों काल की सन्ध्या में स्नान करना और सन्धि समय आत्मा की समाधि में व्यतीत करना। सब वेदों में से भारप्यक उपनिषद् का पठन करना, ब्रह्म ज्ञान का पठन करना ॥ २ ॥

में ही ब्रह्म सूत्र रूप है, (वच) उत्पन्न करते वाले को सूत्र कहते हैं (जागृको) उत्पन्न करने वाला ब्रह्म सूत्र में ही है। ऐसा जान कर विद्वान् अधिकारी तीन तार वाले उपवीत का त्याग करे। इस प्रकार जिसको ज्ञान है वह परम विद्वान् अधिकारी है। 'मैंने सब वस्तुओं का त्याग किया है' ऐसे तीन बार कहना मैं सब श्रुत प्राणियोंसे भयरहित हूँ, मुझसे सब प्रवृत्त हो रहा है।

सखा मागोपायीजः सखायोऽनीन्द्रस्य वज्रोऽसि  
वार्ज्यन्तः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारय ।

अर्थ :—हे मित्र, तুম तेजस्वी हो, इन्द्र का सखा वज्र हो, वृत्र का तुमने ही नाश किया। तুম मेरे लिये कल्याणकारी बनो और मेरा जो पाप हो उसका निवारण करो।

इस मंत्र से मन्त्रित वैष्णव दण्ड और कोपीनको धारण करे। औपधि के समान प्राण रक्षणार्थ भद्र भक्षण करे, औपधि समान भद्र भक्षण करे, जिस समय जो मिले भक्षण करे। ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अग्रतिग्रह, मर्य इन सबका यत्न से रक्षण करे ॥ ३ ॥ परमहंस संन्यासियों को आसन शयनादि श्रम पर करना चाहिये और ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये; तैसे ही

यति को मट्टी की हाँदी, तुम्बी पात्र, अथवा लकड़ी के कर्मढबु को रखना चाहिये। काम, क्रोध, हर्ष, रोष, लोभ, मोह, दम्भ, दर्प, इच्छा, असूया, ममत्व और अहंकार आदि का यति त्याग करे। वर्षा ऋतु में संवाचार से एक स्थान पर रहे और आठ मास अकेला अथवा दो साथ रह कर फिरे ॥४॥ इस प्रकार का अधिकार जिसको प्राप्त हुआ है वह विद्वान् उपनयन संस्कार के पश्चात् अथवा उससे भी प्रथम सब वस्तुओं का त्याग करे। पिता, पुत्र अग्नि, उपवीत, कर्म, स्त्री तथा और सब वस्तुओं का त्याग करे, और हाथ रूपी पात्र वा उदर रूपी पात्र को ही साथ रख कर ॐ हि ॐ हि ॐ हि इस उपनिषद् वाक्य का उच्चारण करते हुए भिक्षा मांगे। सब मुच यह ही ब्रह्मज्ञान है, जो अधिकारी इस प्रकार जानता है उसको ढाक की, बैल की पीपल की, अथवा गूलर की लकड़ी का दण्ड तथा मौँजी, मेखला, तथा यज्ञोपवीतका त्याग करना चाहिये, जो इस प्रकार का अधिकारी है वह ही श्रेष्ठ है। जिस पदको नित्य देवता देखा करते हैं अर्थात् इच्छा करते हैं वह ही विष्णु का परमधाम है। स्वर्ग में विस्तार को प्राप्त चक्षु हो उसके समान वह धाम है। इस प्रकार का जो विष्णु का परम धाम है उसको उत्तम अधिकांरी ब्रह्म भाव में तीन होकर प्राप्त होता है, ये ही मोक्ष का उपदेश है, और वेद का उपदेश है ॥ ५ ॥

॥ इति भारतीयक उपनिषद् समाप्त ॥





## मेत्रायणी उपनिषद्

[ ३८ ]

प्रथम प्रपाठक ।

बृहद्रथ नामक राजा ने अपने बड़े पुत्र को राजा के स्थान में स्थापित किया । राजा इस शरीर को अशाश्वत मानता था, वैराग्य उत्पन्न होने से वह अरण्य में गया । वहाँ जाकर उसने परम तपश्चर्या की । ऊँचे बाहु करके श्रीसूर्य नारायण के समक्ष खड़ा रहा । अन्त में सूर्यनारायण की कृपा से राजा के पास एक मुनि आया । यह मुनि धुँवेँ रहित अग्नि के समान अपने तेज से सर्व को दहन करता हो गंगा तेजस्वी और आत्मज्ञानी था । उस मुनि का नाम भगवान् शाकायन्य था । उसने राजा से कहा "हे राजन् ! खड़ा हो वरदान मांग ।" राजा ने मुनि को नमस्कार किया और कहा "हे भगवन् ! मैं आत्मज्ञानी नहीं हूँ, आप तत्त्व ज्ञानी हैं, जो आप उपदेश करेंगे सो मैं एकाग्र चित्त होकर सुनूँगा" मुनि ने कहा "हे ऐश्वराक ! तू कोई अन्य वरदान जो तेरी इच्छा में आवे नो माँग क्योंकि तेरे इस शरीर से आत्म ज्ञान की प्राप्ति होना अशक्य है ।" तब राजा मुनि का चरण स्पर्श

करके इस प्रकार कहने लगा ( १ )

"हे भगवन् ! यह शरीर, हड्डी, चमड़ी, स्नायु, मज्जा, मांस, वीर्य, रक्त, स्लेष्म और मूर्तु से दूषित है । वह विष्टा, मूत्र, वात,

पित्त और कफ से पूर्ण है दुर्गन्धि युक्त है और सर्व प्रकार के सार से रहित है, इसमें भोग की कामना का क्या प्रयोजन है ? ( २ ) यह शरीर काम, क्रोध, लोभ, भय, शोक, ईर्ष्या, इष्ट वस्तुओं का वियोग, अनिष्ट का संयोग, क्षुधा, तृष्णा, जरा, मृत्यु, रोग और शोकादिक से पूर्ण है । ऐसे शरीर में कामोपभोग से क्या फल होगा ? ( ३ ) इस लोक में सब नाशवंत है । हाँस मन्थर और तृण के समान नाश को प्राप्त होते हैं । इस प्रकार सबका मरण जन्म हुआ ही करता है । ( ४ ) कितने बड़े धनुर्धारी, चक्रवर्ती हो गये हैं; जैसे कि सुष्टु मन्, शूरिष्ट मन् इन्द्रधु मन्, कुवलयाश्व, योवनाश्व, वृद्धियाश्व, अश्वपति, शार्वाबिन्दु, हरिश्चन्द्र, अंबरोष, स्वयाति, ययाति, अनरण्य, उक्षसेनोरथ, भरत आदिक राजाओं ने अपने वन्धु वर्ग के अर्घ्य अनेक प्रकार की लक्ष्मी सम्पादन की, और उसका त्याग करके इस लोकसे परलोकको चले गये ( ५ ) और भी लोग गंधर्व, असुर, यक्ष, राक्षस, शूल गण, पिशाच, सर्प और ग्रह के आदि निरोध ( नाश ) को देखते हैं इससे क्या ? ( ६ ) और बड़े महासागर भी सूख जाते हैं, पर्वतों का नाश हो जाता है । अचल पदार्थ हिल जाते हैं अथवा वृक्ष उखड़ जाते हैं, पृथ्वी डूब जाती है और देवताओं का स्वर्ग से पतन होता है । ऐसा जानने वाले मुझको इस संसार के काम और भोगों से क्या ? यदि इनका आश्रय किया जावे तो बारम्बार जन्म मरण ही देखने में आता है । आपको इस संसार से भेरा उद्धार करना चाहिये । जैसे शंखरे कुएँ में मेढक हो इस प्रकार



संसार में हमारी स्थिति है। हे भगवन् ! आप मेरे आश्रय रूप हैं"। (७)

### दूसरा प्रपाठक ।

भगवान् शाकायन्य प्रसन्न होकर राजा से कहने लगे "हे महाराज बृहद्रथ ! तू इक्ष्वाकु वंश के ध्वजशीर्ष का पुत्र है, तू कृत कृत्य है और 'मरुत' नाम से प्रसिद्ध है। आत्मा कैसा है, उसका मैं वर्णन करना हूँ, वह तू श्रवण कर [१] यह प्राणात्मा बाह्येन्द्रियों के रोषण करने रूप योग से ऊर्ध्व गति करने वाला, दुःख से रहित और तम का नाश करने वाला है। यह आत्मा जीव भाव में से छूट कर शिव भाव को प्राप्त होकर अपने तेज से प्रकाशित होता है। यह आत्मा अमृत रूप, अभय रूप और ब्रह्म रूप है [२] हे राजन् ! भगवान् मैत्रेय ने ब्रह्म विद्या रूप उपनिषदों का जो हम से वर्णन किया है सो मैं तुम्हें कहूँगा। पाप से रहित, उत्कट तेज वाले और ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बाल-खिल्य नाम के मुनि कहलाते हैं वे एक समय प्रजापति के पास जाकर कहने लगे 'हे भगवन् ! गाड़ी के समान यह शरीर भ्रमेतन है, ऐसे शरीर को प्रेरणा करने वाला कौन है ? सो आप हमसे कहें' तब भगवान् ब्रह्मा ने कहा [३] 'जो ऊर्ध्व भाग में रहने वाला कहलाता है वह ही शुद्ध, पूत, शान्त, प्राण रहित, मन रहित, अनन्त, अक्षय, स्थिर, शाश्वत, अज, स्वतन्त्र और जो अपने महिमा में रहता है, उससे यह शरीर चैनन समान होता

है, वह ही इस शरीर को प्रेरणा करने वाला है। तब बालखिल्य कहने लगे 'हे भगवन् ! इस इच्छा से रहित ने इस चेतन वाले शरीर को क्यों प्रेरणा की ? इस शरीर को प्रेरणा करने वाला किस प्रकार है सो कहें' प्रजापति कहने लगे [४] 'यह आत्मा सूक्ष्म, अप्राप्त, अदृश्य, पुरुष संज्ञा वाला, अपने अंश से बुद्धि पूर्वक आवर्तन करने वाला, सुषुप्त को बुद्धि पूर्वक जाग्रत करने वाला, जो चेतन मात्र है उसका यह निरुचय करके अंश है। सब शरीरों में क्षेत्रज्ञ रूप से रहने वाला, संकल्प, निरुचय और अभिमान वाला, प्रजापति रूप और सर्वत्र द्रष्टा रूप है इस प्रकार के चेतन ने इस शरीर को चेतन वाला किया है, इसलिये वह प्रेरणा करने वाला कहलाता है।' तब मुनि ने कहा 'जो आत्मा सूक्ष्मादि स्वरूप वाला है, उसको अपने अंश से बर्तव्य किस प्रकार संभवे ? भगवान् प्रजापति ने कहा [५] आद्य में मात्र प्रजापति था, उसको अकेले न सुहाया तब उसने आत्मा का ध्यान करके अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न की। उत्पन्न की हुई इस प्रजा को ज्ञान रहित प्राण से रहित और स्थाणु की समान स्थिर देखा इसलिये उसको ठीक नहीं लगा। प्रजापति ने विचार किया कि मैं उसमें प्रवेश करके उसको चेतना युक्त करूँ, इसलिये उसने वायु रूप बनकर प्रजा में प्रवेश किया। उसने एक रूप से प्रवेश नहीं किया परन्तु पाँच प्रकार का होकर प्रवेश किया। ये पाँच वायु प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान हैं [६] जो ऊर्ध्व गति करता है सो प्राण है, जो नीचे गति करता है सो अपान



वायु है, जो स्थूल भस्म को अपान में योजता है और सब भ्रम में वायु को सम भाग में रखता है, उसको समान कहते हैं, जो जल को और भस्म को ऊपर नीचे ले जाता है, उसको उदान कहते हैं। जो नाड़ियों में व्याप्त होकर रहता है उसको व्यान कहते हैं [७] भस्मयामी भद्रस्य प्राणवायु उपांशु—व्याप्त होकर रहने वाले प्राण वायु को अभिभव करता है। इन दोनों प्राण वायु के मध्य में जो मांस वत् उष्णता है, वह ही पुरुष रूप है, वही वैश्वानर धमिनि है; ऐसा भस्मत्र भी कहा है। उससे जिस भस्म का भक्षण किया जाता है, वह पाचन होता है। जब कान को दाब देते हैं तब जो घोष सुनने में आता है, वह उसका ही है। जब यह प्राणात्मा शरीर में से जाता है तब घोष सुना नहीं जाता। [८] यह आत्मा अपने मनोमय, प्राण, शरीर वहु रूप, सत्य संकल्प और आत्मा पांच प्रकार से विभक्त करके हृदयाकाश में रहता है। हृदयाकाश में रहने से वह मनोमयादिको को भक्तार्थ मानने लगा। वह अपने पांच द्वारों को भेदन करके प्रगट होता है और पांच रश्मि रूप इन्द्रियों से विषयों का भक्षण करता है। इसमें बुद्धि इन्द्रियादि रश्मि रूप हैं, कर्मेन्द्रियां भ्रष्ट रूप हैं, शरीर रथ रूप है, मन शारथी रूप है और स्वभाव चावुक रूप है। इस प्रकार प्रेरित हुआ शरीर चक्र के समान घूमा करता है। मरने के पीछे शरीर चेतन वाला नहीं दीखता इसलिये आत्मा को शरीर का प्रेरक कहा है [९] यह आत्मा शरीर के वक्ष में हो इस प्रकार शुभाशुभ कर्म के फल से अभिभव को प्राप्त हुआ

हो इस प्रकार सब शरीरों में संचार करता है। अथयत्त, सूक्ष्म, ब्रह्म, अप्राज्ञ और ममता से रहित होने से सब प्रकार भ्रव-स्थापों से रहित और कर्तृत्वभाव से रहित है तो भी कर्तारूप हो ऐसे रहता है। [१०] आत्मा, बुद्ध, स्थिर, अचल, संग रहित, दुःख रहित, स्पृहा रहित द्रष्टा रूप रहता है, और अपने चरित्रों को भंगता हुआ गुण रूप वस्त्र से वेष्टित होकर रहता है [११]

### तीसरा प्रपाठक ।

वात्सिल्य कहने लगे 'हे भगवन् ! आप आत्मा की महिमा इस प्रकार कहते हैं तब शुभाशुभ कर्म फल से अभिभव को प्राप्त होने वाला और इसीसे सत् असत् योनियों को प्राप्त होने वाला आत्मा क्या कोई और है ? सुख दुःखादि द्वन्द्व वाली ऊंच नीच गति में यह कौन भ्रमण करता है ?' ऐसा प्रश्न सुनकर प्रजापति ने कहा ॥ १ ॥ "इसरा श्रुतात्मा है जो शुभाशुभ कर्म के फल से अभिभव को प्राप्त होकर सत् असत् योनियों को प्राप्त होता है और मुख दुःखादि द्वन्द्व भाव से अभिभव को प्राप्त होकर ऊंच नीच गति में भ्रमण करता है। यह श्रुतात्मा इस प्रकार है:—भूत शब्द में पांच तन्मात्राएँ कही हैं।

भूत शब्द में पांच महारभूत कहे जाते हैं, इन पंच महारभूतों के समुदाय को शरीर कहते हैं। यह जो शरीर है उसीको श्रुतात्मा कहते हैं। इसमें रहने वाला आत्मा कपाल पर जलकी बिन्दु



समान रहता है। यह अपने प्राकृत गुणों से अभिभव को प्राप्त होता है इसी से मोह को प्राप्त होता है और मोह से आत्मा में रहने वाले कर्ता रूप प्रभु भगवान् को नहीं देखता, गुणों के समूह से पृथ, पापयुक्त, अस्थिर, चंचल, लालसायुक्त, स्पृहावाला, व्यग्र, अभिमान को प्राप्त और इसलिये 'यह वह और मेरा' इत्यदि भाव वाला होकर जिस प्रकार पक्षी जाल से बन्धन में पड़ता है इसी प्रकार अपने को आप ही बाँधता है और किये हुए कर्मों का फल भोगता हुआ भ्रमता है ॥ २ ॥ और अन्यत्र कहा है कि जो कर्ता है वह ही भूतात्मा है, वह इन्द्रियों से कर्मों का कराने वाला भ्रन्तः पुरुष है। जैसे लोह पिंड अग्नि से आवृत होकर कर्ता से कूटा जाता है तब विविध भाव को प्राप्त होता है। इस प्रकार भ्रन्तः पुरुष से आवृत हुआ गुणों से दबा हुआ विविध भाव को प्राप्त होता है। चौरसी लक्ष योनियों में परिणत होने वाला त्रिगुणात्मक भूतात्मा होता है, यह ही उसके विविध प्रकार के रूप हैं। जैसे चक्र का चक्राने वाला चक्र को प्रेरता है वैसे पुरुष इन गुणों का प्रेरक है। जैसे लोह पिंड को कूटने से उसमें रहने वाले अग्नि का पराभव नहीं होता वैसे ही पुरुष का अभिभव नहीं होता परन्तु भूतात्मा का संयोग के दोष से अभिभव होता है ॥ ३ ॥ इस शरीर का उद्भव मैथुन से है, यह शरीर चेतन रहित है, नरक रूप है, मूत्र द्वार से बाहर निकलता है, हड्डियों से बनता है, मांस से वेष्टित होता है, चर्म से ढँधा होता है और विष्टा, सूत्र, पित्त, कफ,

मज्जा मेद, वसा और अन्य बहुत मलों से पूर्ण एक भण्डार के समान है ॥४॥ संमोह, भय, विषाद, निद्रा, तन्द्रा, ब्रण, जरा, शोक, क्षुधा, पिपासा, कुपणता, क्रोध नास्तिव्यता, भ्रमन, मत्सर, क्रूरता, मूढ़ता, निर्लज्जता शठता, उद्धतपना, असमता आदिक गुण यह भूतात्मा (शरीर) तामस गुण युक्त होने से होते हैं। तृष्णा, स्नेह, राग लोभ, हिंसा रति और देखने में आसक्ति, ईर्ष्या, कामना चंचलता, हरण करने की इच्छा, अर्थ प्राप्ति करना मित्र में अनुग्रह, परिग्रह, आश्रय, इन्द्रियों के अनिष्ट विषयों में द्वेष, इष्ट विषयों में प्रीति, इस प्रकार के अनेक राजस गुणों से भूतात्मा परिपूर्ण होता है इसलिये इन गुणों से अभिभव को प्राप्त हुआ अनेक रूपों को प्राप्त होता है" ॥५॥

वीथा प्रपाठक।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी वालखिल्य अति आश्चर्य को प्राप्त हो कहने लगे, "हे भगवन् ! आपको नमस्कार है, हमको उपदेश दीजिये। आपके मित्राय हमको अन्य आश्रय नहीं है। भूतात्माओं में मैं कौन पुरुष इस सबको त्याग कर सायुज्यता को प्राप्त होता है ?" तब शाकायल्य कहने लगे [१] "जैसे महानदी में विवर्त होता है तैसे इन भूतात्मा को पूर्वके कर्म होते हैं, जो अवश्य भोगने पड़ते हैं। जैसे समुद्र का किनारा अवश्य है तैसे भूतात्मा को मृत्यु को प्राप्ति अवश्य होती है। जैसे पशु रस्सी से बाँधा जाता है तैसे शुभाशुभ कर्मों में यह भूतात्मा बँधन को प्राप्त होता है।



बेलखानेमें पड़े हुए जानु की समान अस्वतन्त्र होता है। यम के राज्य में रहता हो इस प्रकार वह अत्यन्त भय युक्त होता है। जैसे कोई मन्दिरा पीकर उन्मत्त हुआ हो ऐसे सुख रूप मन्दिरा से उन्मत्त हो जाता है। दुष्टों से घिर गया हो ऐसे भटकता है। महा सर्पों से काटे हुए के समान विपत्ति से दुखी होता है। महा अन्धकार में हो ऐसे राग से अन्ध हो जाता है। जादू की समान मायामय होता है। स्वप्न की समान मिथ्या देखता है। केंत के वृक्ष के समान सार रहित होता है। नट के समान क्षण क्षण में बेश बदलने वाला होता है। दीवार के ऊपर चित्र के समान मिथ्या सुन्दर है। शब्द स्पर्शादि सब विषय अनर्थ रूप हैं। इनमें आसक्त भूतात्मा परम पद का स्मरण नहीं करता [२] इस भूतात्मा के तैर जाने का उपाय इस प्रकार है:— विद्या की प्राप्ति रूप धर्म का आचरण करना, अपने आश्रम के अनुसार रहना। वह अपने धर्म से ही सवका धारण करता है, अन्य मन्त्र (धर्मरूप) स्तम्भकी शाखाके समान है स्वयंही ऊर्ध्व गति को प्राप्त होते हैं यानी उनका धारण होता है। ऐसा न करने से वे सब नीचे गिरते हैं। यह स्वधर्म वेद में कहा हुआ है इसका उल्लंघन करने वाला आश्रमी नहीं कहलाता। जो अपने आश्रम धर्म को आचरता है उसी को तपस्वी कहते हैं। जो तपस्वी नहीं होता उसको आरम ध्यान को प्राप्ति अर्थात् कर्म शुद्धि नहीं होती। तप से सत्त्व की शुद्ध बुद्धि की प्राप्ति होती है, सत्त्व से मन यानी (प्रयत्न की) दृष्टि की प्राप्ति होती है, मन से आत्मा की प्राप्ति

होती है और आत्म साक्षात्कार होने से संसार चक्र से निवृत्त होता है इन [३] श्लोकों में कहा है कि जैसे लकड़ी बिना अग्नि ज्ञान्त यानी अपनी प्रकृति में लय हो जाती है तैसे वृत्ति का क्षय होने से चित्त अपनी मूल प्रकृति में लय हो जाता है (१) जिनका चित्त अपने कारण में लय हो जाता है उनका मन इन्द्रियों के विषयों में मोह को नहीं प्राप्त होता। उन मत्त कामियों के मन की वृत्तियां केवल प्रारब्ध के अनुसार उठती हैं इसलिये वे मिथ्या हैं (२) चित्त ही संसार है, प्रयत्न करके उसका शोथन करना चाहिये, अर्थात् जैसा चित्त होता है वैसा ही वह बन जाता है यह ही नानातन रहस्य है (३) चित्त की कृपा ने शुभाशुभ कर्मों का नाश होता है, प्रसन्नात्मा में रह कर ही अव्यय सुख की प्राप्ति करता है (४) प्राणी का चित्त जिस प्रकार विषयों में आसक्त होता है यदि ऐसा ही ब्रह्म में आसक्त हो तो कौन मनुष्य वन्धन से मुक्त न हो (५) मन दो प्रकार का है शुद्ध और अशुद्ध। कामना युक्त मन अशुद्ध और कामना रहित मन शुद्ध कहलाता है (६) मन को लय और विक्षेप से रहित और भली प्रकार स्थिर करे, जब मन अभन बन जाता है तब परम पद की प्राप्ति होती है (७) जब तक मन के संकल्पों का क्षय न हो तब तक मन को हृदय में रोका करे, यह ही ज्ञान और मोक्ष है अन्य सब ग्रन्थ का विस्तार रूप है (८) समाधि से जिसका मल दूर हो जाता है, ऐसे मन को आत्मा में मुक्त करने से जो सुख होता है उसका वर्णन वाणी से करना अशक्य है,



वह स्वयं भ्रन्तःकरण से प्राप्त है (६) जैसे जब में जल, अग्नि में अग्नि और आकाश में आकाश एकत्र हुआ देखने में नहीं आता इसी प्रकार जब चित्त का लय होता है तब पुरुष मोक्ष भाव को प्राप्त होता है (१०) मनुष्य का मन ही बंधन और मोक्ष में कारण है, जब मन विषयों में आसक्त होता है तब बंधन को प्राप्त होता है और जब विषयों से रहित होता है तब मुक्त होता है। (११)

कौत्सायनि ने ब्रह्म की इस प्रकार स्तुति की है :—तू ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, वरुण, वायु, इन्द्र और चन्द्र रूप है। (१२) तू मनु, यम, पृथ्वी, अभ्युत स्वार्थ तथा स्वाभाविक अर्थ में और बहुत रूप से स्वर्ग में रहता है (१३) हे विश्वेश्वर ! तुझे नमस्कार है, तू विश्वात्मा, विश्व के कर्म करने वाला, विश्व का भोक्ता, विश्व की माया वाला विश्व कीड़ा-प्रिय और व्यापक है। (१४) शांतात्मा, ऐसे तुझे नमस्कार है, अत्यंत गुह्य ऐसे तुझे नमस्कार है। अर्चित्य, अप्रमेय, आदि और अंत से रहित ऐसे तुझे नमस्कार है। (१५) [ ४ ]

प्रथम केवल तम ही था यह तम पुरुष से प्रेरित होकर विषमता को प्राप्त होता है इससे रज रूप होता है। इस रजस में प्रेरणा होती है तब विषम भाव को प्राप्त होता है यह तम का रूप है। इस तम में प्रेरणा होने से उसमें से सत्व रूप प्रगट होता है, इस सत्य गुण में जब प्रेरणा की जाती है तब वह अंश

रूप से प्रगट होता है। यह अंश चेतन मात्र, सब पुरुषों में क्षेत्रज्ञ रूप और संकल्प, प्रयास, अग्निमान रूप प्रजापति है। उसका प्रथम का शरीर इस प्रकार है :—ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र। जो राजस अंश रूप है सो ब्रह्मा, तमका अंश रूप रुद्र, और सत्त्व का अंश रूप विष्णु, इस प्रकार एक प्रजापति तीन रूप से, आठ रूप से, एकादश रूप से, द्वादश रूप से और अनेक रूप से हुआ है जो प्रगट हुए सब प्राणियों में रहता है, वह सब प्राणियों का आधार रूप और अधिपति रूप है। यह आत्मा भीतर और बाहर सब स्थानों में व्यापक है। [ ५ ]

### पांचवां प्रपाठक ।

जो प्रथम एक था सो दो प्रकार का हुआ, प्राण और आदित्य। ये दोनों पांच प्रकार के होकर रात्रि दिन, भीतर और बाहर सर्वत्र व्याप रहे हैं। आदित्य वहिरात्मा है अन्तरात्मा प्राण है अन्तरात्मा की गति से वहिरात्मा का अनुमान होता है। गति क्या है सो कहते हैं। जो कोई विद्वान् है, जिसका पाप नाश हो गया है, जो श्रेष्ठ है, जो शुद्ध मन वाला है, ब्रह्म में निष्ठा वाला है और जिसने चक्षु बंद किये हैं ऐसा; अन्तरात्मा की गति से वहिरात्मा का स्थूल वस्तु का अनुमान बांधता है, इसको गति कहते हैं। जो इस आदित्य में हिरण्यमय पुरुष रूप से भेरा दर्शन करता है वह हृदय कमल ही में रह कर, हिरण्यगर्भ के समान भोगों को



भोगता है। (१) जो भस्तरात्मा हृदय कमल में रहता है और भस्त्र का भक्षण करता है यानी भोग भोगता है, सो ही अग्नि रूप है स्वर्ग में रहता है, सौर रूप है, कालरूप है अदृश्य रूप है और सब प्राणियों के भस्त्र का भक्षण करता है। कमल किन्को कहते हैं और वह क्या है? जो आकाश रूप है सो कमल है, इसको ये चार दिशा और उपदिशा हैं। यही अग्नि प्राचीन है, प्राण और आदित्य इससे इधर है। व्याहृति के गायत्री युक्त अँकार अक्षर से इनको उपासना करे। (२) ब्रह्म के दो स्वरूप हैं मूर्त और अमूर्त। जो मूर्त स्वरूप है सो भस्त्र है, जो अमूर्त है वही सत्य है, वह ब्रह्म है। जो ब्रह्म है वही ज्योति रूप है जो ज्योति रूप है वही आदित्य रूप है और वही अँकार रूप है। उसने अपने आत्मा को तीन प्रकार से व्यक्त किया है। इसलिये अँकार तीन मात्रा वाला है इन मात्राओंसे सब जगत् व्याप्त है। आदित्य का अँकार रूप से व्याप्त करे और उसमें आत्मा को लगावे (३) और कहा है जो उद्गोष है सो ही प्रणव है, प्रणव हो उद्गोष है आदित्य और उद्गोष यह ही प्रणव है। इस उद्गोषको प्रणवरूप प्रेरक, नाम और रूप वाला, निद्रा रहित और जरा रहित, मृत्पु से रहित और पांच प्रकार का जाने। आकाश में उनकी स्थिति है। ऊर्ध्व मूल वाला, ब्रह्म तक शाखा वाला, आकाश, वायु, अग्नि, उदक और भूमि आदि रूप, एक रूप होकर सर्वत्र व्याप्त और ब्रह्म रूप है। यह आदित्य अँकार के विषे है। इससे अँकार की निरंतर उपासना करे। इसको रस रूप जो जानता

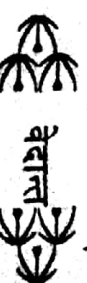
है कि यह अक्षर पुण्य रूप है, इस प्रकार जान कर जिसकी जो कामना होती है वह पूर्ण होती है (४) और कहा है कि इस प्रजापति का अँकार इस अक्षरसे नाद वाला शरीर है, स्त्री पुमान् और नपुंसक से लिंग वाला, अग्नि वायु और आदित्य से प्रकाश वाला विष्णु और रुद्र से अधिपति रूप, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनी में मुख रूप, ऋक् यजुः और साम में विज्ञान रूप, भू भुवः और स्वः से लोक वाला, भूत भविष्य और वर्तमान से काल वाला और प्राण अग्नि और सूर्य से प्रताप वाला है। अक्षर जल और चन्द्र से पोषण करने वाला, और मन बुद्धि अहंकार से चेतन वाला, प्राण आपान और व्यान से प्राण वाला है। कितनेक कहते हैं कि प्रजापति ऐसा कहते हैं कि अमुक शरीर का मैं त्याग करता हूँ इसलिये प्रस्तोता रूप से वह शरीर धारण किया हुआ है। ये ही, हे सत्य काम, पर और अपर रूप है जो अँकार रूप है। (५) यह सब सत्य रूप से था, प्रजापति तपश्चर्या करके भूर्भुवः और नवः बोले। यह प्रजापति का स्थूल अथवा लोक वाला शरीर है। स्वः यह प्रजापति का मस्तक है। भूः नाभि रूप और भुवः पाद रूप है। इस व्यापक पुरुष के चक्षु आदित्य रूप हैं अँकार की मात्राओं महत् अहंकार में नहती हैं। चक्षु से यह प्रजापति मात्रा में संचार करता है। सत्य ही चक्षु हैं इस चक्षु में रहने वाला पुरुष सब विषयों में व्यक्त होता है इसलिये भूर्भुवः और स्वः रूप से उसकी उपासना करे। अक्षर ही प्रजापति और विस्वरात्मा रूप है।



आदित्य की समान इस विश्वात्मा को उपासना होती है यह शरीर प्रजापति और विश्व रूप है और सर्वत्र रहता है इस शरीर में सब और सब में यह शरीर रहता है। इसलिये इस प्रजापति के शरीर की उपासना करे। (६) तत्सवितुर्वरेण्यं इस चरण में सविता को आदित्य भगवान् समझो ब्रह्मवादी कहते हैं कि आत्मा की कामना से याचना करने को यह कहा है। भर्गो देवस्य धीमहि इय चरण के लिये ब्रह्मवादी कहते हैं कि हम किस का चिन्तन करते हैं कि जो सविता रूप से स्थित कर रहा है उसके तेज को। धियो योनः प्रचोदयात् इस चरण से ब्रह्मवादी कहते हैं कि हमारी बुद्धि धैर्य विषे तुम प्रेरणा करो तारक रूप, चक्षु रूप, इस आदित्य में जो भर्ग रहता है, उसकी हम उपासना करते हैं, कान्ति से जिसकी गति सर्वत्र है, उसको भर्ग कहते हैं अथवा जो सबको तपावे उसको भर्ग कहते हैं। भर्ग यह ही रुद्र है। ब्रह्मवादी कहते हैं कि भर्ग अर्थात् जो सर्व लोकों को प्रकाशता है वह भर्ग, भूतमात्र को जो रंजन करता है वह भर्ग है। इस प्रजा का जिसमें गमन होने के पीछे आना नहीं होता, इस प्रकार रक्षा करने वाला होने से उसको भर्ग कहते हैं। शत्रु को तपाने वाला होने से उसको सूर्य, उन्मत्त करने से सविता, दान अर्थात् इच्छा पूर्ण करने से आदित्य, पवित्र करने वाला होने से पावमान और मुमुक्षु को उठाने वाला होने से आदित्य कहते हैं। सत् होने से आत्मा अमृत रूप कह-

लाता है। सो ही आत्मा मनन करने वाला, गमन वाला, खिसकने वाला, आनन्द प्राप्त करने वाला, कर्त्ता, वक्ता, स्वाद लेने वाला, सुंघने वाला, स्पर्श करने वाला और सब के शरीर में रहता है। जब आत्मा में द्वैत ज्ञान होता है सब वह सुनता है देखता है सुंघता है चखता है और स्पर्श करता है और इस प्रकार आत्मा सब जानता है जब अद्वैत भान हो जाता है तब आत्मा कार्य कारण से मुक्त है, कर्ण न हो ऐसा है, उपमा से रहित है, उसकी वाचा क्या है ? (७) यह आत्मा ईशान, शंभु रूप, भव रूप, रुद्र रूप, प्रजापति रूप, विश्व कर्त्ता रूप, हिरण्य-गर्भ, सत्य, प्राण, हंस, शांत, विष्णु, नारायण, भर्क, सविता, धाता, साम्राट् इन्द्र और इन्दु रूप से है। अग्नि से आवृत होकर वही प्रकाशता है; सहस्राक्षि रूप से, हिरण्य-मय रूप से और आनन्द रूप से उसे जानना चाहिये और ध्यान करना चाहिए। सब प्राणी मात्र को अभय देकर मनुष्यको अरण्य में जाकर सब इन्द्रियों के विषयों को अपने शरीरसे बाहर निकाले। इस प्रकार करनेसे परमात्माका साक्षात्कार होता है वह विश्वरूप है, पापों का हरण करनेवाला, जातवेदस् अंतिम गतिरूप, ज्योति, एक, प्रकाशरूप, सहस्र रश्मि रूप, अनेक रूप से स्थिति कर्त्ता और प्रजा का प्राण रूप है, यह ही सूर्य उदय को प्राप्त होता है।

॥ इति मैत्रायणी उपनिषद् समाप्त ॥



वेदान्त



## योग शिखोपनिषत् ।

[ ३६ ]

‘सर्व जीव सुख दुःख और मायाजाल से घिरे हुए हैं, हे शंकर, उनकी मुक्ति किन प्रकार होगी, हे देव, कृपा करके कहिये ॥ १ ॥ सर्वसिद्धि करने वाला माया जाल का काटने वाला, जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि का नाश करने वाला और सुख देने वाला कोई मार्ग कहिये’ ॥ २ ॥ इस प्रकार हिरण्य-गर्भ ने पूछा तब महेश्वर ने कहा, कैवल्य परमपद नाना मार्गों से प्राप्त होना कठिन है ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मा, वह सिद्धि मार्ग से प्राप्त होता है अन्य मार्ग से नहीं; शास्त्रजाल में उनकी बुद्धि फँसी हुई है इसलिए वे मोह को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ स्वात्म प्रकाश रूप, कला रहित, मल रहित, शान्त, सर्वसे परे और उपद्रव रहित ऐमा कैवल्यपद शान्म द्वारा कैसे प्रकाशित होगा ॥ ५ ॥ वह जीवरूप से गुण्य-पाप के फल द्वारा आवृत्त है। परमात्मद निरत्य है; वह तत्वातीत है सर्व भावों से परे है, ज्ञान रूप और निरंजन है। ऐसा कैवल्य पद, जीव भाव को कैसे प्राप्त हुआ, हे देव यह कृपा करके कहिये ॥ ६-७ ॥ अपने में (कैवल्यपद में) वायु के समान स्फुरण हुआ, यही अहंकार उत्पन्न हुआ; तथा पंच भूतात्मक सप्त धातुओं (रक्तमांस अस्थि आदि) से युक्त और गुणारम्भक ऐसा देह उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥ सुख दुःख से

और जीव भाव से युक्त होने से उस विबुद्ध परमात्मा में होने जीव कहलाते हैं ॥ ९ ॥ काम क्रोध, भय, मोह, लोभ, चंचलता, जन्म, मृत्यु, क्षणता, शोक, आलस्य मूख, पाप्म ॥ १० ॥ तुष्णा, लज्जा, भय, दुःख विवाद और हर्ष इन दोषों से युक्त होने पर जीव शिव कहलाता है ॥ ११ ॥ इसलिए दोष नाश करने के लिये मैं तुझसे उपाय कहता हूँ। कोई ज्ञान को उपाय रूप कहते हैं परन्तु केवल ज्ञान से सिद्धि नहीं होती ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मा, इस संसार में योग रहित ज्ञान किस प्रकार मोक्ष देने वाला होगा और ज्ञान रहित योग भी मोक्ष के लिये असमर्थ है ॥ १३ ॥ इसलिये मुमुक्षु ज्ञान और योग का दृढ़ अभ्यास करे। प्रथम ज्ञान के स्वरूप को जाने (वर्णिक) वही एक ज्ञान का साधन है ॥ १४ ॥ वैसे ही मुमुक्षु विचार करे कि अज्ञान किस प्रकार का है। जिसने अपना स्वरूप कैवल्य परमपद जान लिया है ॥ १५ ॥ वह काम, क्रोध, भय आदि दोषों से रहित है। सर्व दोषों से युक्त जीव ज्ञान से किस तरह युक्त हो जायगा ? ॥ १६ ॥ (यदि कहो कि) आत्मरूप ज्ञान जब पूर्ण और व्यापक है तब काम क्रोध, आदि दोष भी स्वरूप से भिन्न नहीं हैं ॥ १७ ॥ फिर उसके लिये विधि क्यों और निषेध भी क्यों ? संसार भ्रम से रहित विवेकी युक्त है ॥ १८ ॥ (तो) हे ब्रह्मन्, वास्तविक वह परिपूर्ण स्वरूप सफल और निष्कल है; और पूर्ण होने से वह ही ॥ १९ ॥ भेदभाव का स्फुरण होने से निष्कल, निर्मल, प्रत्यक्ष परिपूर्ण तथा आकाश



के समान व्यापक होते हुए भी उत्पत्ति स्थिति संहार की गति के ज्ञान से रहित हुआ संसार भ्रम को प्राप्त होता है । इस रूप को प्राप्त हुआ वह विद्या को छोड़—कर है महाबाहो, किस प्रकार मोह सागर में बार बार डूबता रहता है और संसारी लोगों के समान सुख दुःख मोह में गोते खाता है ॥ २०-२१-२२ ॥ यदि जानी भी इसी प्रकार वासाना से युक्त ही रहे तो दोनों में विशेष (भेद) क्या रहा संसार भावना दोनों की एक सी ही रही ॥ २३ ॥ इस प्रकार के जानने (ही) को यदि ज्ञान कहे तो अज्ञान और कैसा होता है ? (इसलिये) कोई ज्ञाननिष्ठ विरक्त धर्मज्ञ और विजितेन्द्रिय भी हो ॥ २४ ॥ देह के योग के बिना है ब्रह्मन् ! वह मोक्ष को प्राप्त नहीं होता ।

देही दो प्रकार के होते हैं; एक अपक्व और दूसरे परिपक्व ॥ २५ ॥ योग रहित देही अपक्व है और योग किये हुए पक्व है (क्योंकि) योगाग्नि ने उसका सर्व देह भ्रजड़ यानी चेतन और शोक रहित हो जाता है ॥ २६ ॥ पृथ्वी का भ्रंश जिसमें अधिक है उसको जड़ कहते हैं ऐसा देह अपक्व और दुःखदायी होता है । ध्यान में बंठा हुआ भी वह इन्द्रियों से व्याकुल होता है ॥ २७ ॥ उनको बहुत २ रोकने पर, शीत, उष्ण, मुख, दुःख आदि मानसिक-व्याधियों से व्याकुल होता है ॥ २८ ॥ और भी जब नाना प्रकार के जीव द्वारा, शस्त्र अग्नि जल या पवन द्वारा शरीर को पीड़ा पहुँचती है, तब मन भी उस समय क्षोभको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ वैसे ही प्राण निकलने के समय वायु का क्षोभ होता है और

इस करके सैकड़ों दुःख से युक्त होकर चित्त क्षोभ को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ देह टूटने के समय चित्त जो जो भावना करेगा उस उस गति को प्राप्त होगा—यही जन्म का कारण है ॥ ३१ ॥ देह का नाश होने पर कौनसा जन्म होगा यह मनुष्य नहीं जानते इसलिये जीव का ज्ञान और वैराग्य केवल भ्रम ही है ॥ ३२ ॥ जो चींटी भी काट जाय तो ध्यान से चलित हो जाता है, उसको मरण समय अनेक विच्छेद काटते हैं तब किस प्रकार सुखी रह सकता है ॥ ३३ ॥ इसलिये, मिथ्या तर्क से युक्त मूढ़ मनुष्य इस बात को नहीं जानते कि जिसका अहंकार नष्ट हुआ है उसका ॥ ३४ ॥ देह भी नष्ट होता है फिर उसको रोग, जल अग्नि, शस्त्र घात आदि की पीड़ा किस प्रकार होगी ॥ ३५ ॥ जब २ क्षीण हुआ अहंकार पुनः पुष्ट होजाता है, तब २ रोग आदि प्रवृत्त होकर इस द्वारा उसका नाश करते हैं ॥ ३६ ॥ कारण के बिना कार्य कभी भी विद्यमान नहीं होता वैसे ही बिना अहंकार के देह में दुःख कैसे हो ॥ ३७ ॥ शरीर ने सबको जीत लिया है और योगियों ने शरीर को जीत लिया है वह सुख दुःख आदि फल उनको किन प्रकार प्रदान कर सकते हैं ॥ ३८ ॥ जिसने इन्द्रिय, मन, बुद्धि और काम क्रोधादि जीत लिये उसने सब कुछ जीत लिया इसको किसी से भी बाधा नहीं पहुँचती ॥ ३९ ॥ जिसने महाभूत और तत्त्वों का क्रम से संहार किया है और सप्त धानु वाला देह योगाग्नि द्वारा धीरे २ जला दिया है ॥ ४० ॥ नाना शक्ति युक्त, भेद बंध से विमुक्त महाबल शाली ऐसे



श्रेष्ठ योगी के देहको देवता भी नहीं जान सकते ॥ ४१ ॥ उसका देह आकाश के समान है वा आकाश से भी निर्मल है। उसको सूक्ष्म से भी शक्ति सूक्ष्म स्थूल से स्थूल और बड़ से बड़ समझो ॥ ४२ ॥ क्योंकि योगीन्द्र अपने इच्छानुसार रूप धारण करके न्यतंत्र भ्रजर और भ्रमर होकर तीनों लोकों में जहाँ तहाँ लीला से क्रीड़ा करता है ॥ ४३ ॥ विजितेन्द्रिय और अचिन्त्य शक्ति वाला योगी नाता प्रकार के रूप धारण कर सकता है और पुनः अपनी इच्छा से उनका संहार भी कर सकता है ॥ ४४ ॥ योगबल के होने से योगी फिर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता; हठ (योग) से वह मरा हुआ ही है; मरे हुए का और मरण कहाँ से होगा ॥ ४५ ॥ जहाँ सब मरे हुए हैं वहाँ यह भली प्रकार जीता है और जहाँ सब जीते हैं वहाँ यह मरा हुआ है ॥ ४६ ॥ उसको कुछ भी कर्तव्य नहीं है और कुछ भ्रम करे तो उसको उसका लोभ भी नहीं होता। वह जीवन्मुक्त है सदा स्वच्छ है और सर्व दोषोंसे रहित है ॥ ४७ ॥ और जो ज्ञानी तथा विरक्त होते हुए देह से सदा जीते हुए हैं ऐसे वे मांस पिंड वाले कुदेही किस प्रकार योगी के समान हो सकते हैं ॥ ४८ ॥ देह छूटने पर ज्ञानियों को पुण्य पाप का फल मिलता है ऐसा हो तो उसका भोग होने पर ज्ञानी को पुनः जन्म मिलेगा ॥ ४९ ॥ पञ्चात् पुण्य से उसको सिद्ध की संगति होती है, फिर सिद्ध की कृपा से वह योगी होता है अन्यथा नहीं ॥ ५० ॥ तब ही संसार (संसरण) नष्ट होता है—शिवभाषित मिथ्या नहीं

होता—हे ब्रह्मा, योगरहित ज्ञान मोक्षदायी नहीं होता ॥ ५१ ॥ विना ज्ञान के योग की सिद्धि कभी नहीं होती, ज्ञान से अनेक जन्मों के पश्चात् योग की प्राप्ति होती है ॥ ५२ ॥ परन्तु योग से एक ही जन्म में ज्ञान हो जाता है इसलिये मोक्ष देने वाला योग को छोड़कर और कोई मार्ग नहीं है ॥ ५३ ॥ ज्ञान का बहुत काल तक विचार करके मैं मुक्त हूँ ऐसी भावना करता है। भावना करने में क्या वह तत्काल मुक्त हो जाता है ॥ ५४ ॥ अन्य सैकड़ों जन्मों के पश्चात् योग ही से वह मुक्त होता है। इस प्रकार योग से वास्त्वार जन्म मरण नहीं होता ॥ ५५ ॥ प्राण और अपान के योग से चन्द्र सूर्य की एकता होवे और सप्तधातु वाला देह उस अग्नि द्वारा परिपूर्ण होवे ॥ ५६ ॥ तब उसकी सब व्याधियां जल अग्नि, शस्त्र आदि की वाष्प नष्ट हो जाती हैं तब यह देही परम आकाशरूप रह जाता है ॥ ५७ ॥ अधिक क्या कहना, उसका मृत्यु ही नहीं होता; जले हुए कपूर के समान वह देही हो ऐसा नाक में प्रतीत होता है ॥ ५८ ॥ सब जीवों के चित्त, प्राण से बंधे हुए हैं। जैसे रस्सी से पक्षी बंधा हुआ होता है; मन भी वैसा ही बंधा हुआ है ॥ ५९ ॥ नाता प्रकार के विचारों से भी मन जीता नहीं जाता; इसलिये उसको जीतने का उपाय एक प्राण ही है अन्य कोई उपाय नहीं है ॥ ६० ॥

सिद्धि योग के विना तर्क से, वाद विवाद से, शास्त्रों से शक्तियों से, मंत्र और औषधियों से, हे ब्रह्म, प्राण क्या नहीं होता ॥ ६१ ॥ उस उपाय को (सिद्धि योग को) न जानकर जो



योग मार्ग में प्रवृत्त होता है उसको अल्प ज्ञान के कारण अधिक क्लेश ही होता है ॥ ६२ ॥ जो पवन को न जीतते हुए मोह से योगियों के योग की इच्छा करता है वह (मानो) कच्चे घड़े पर चढ़ कर समुद्र को पार करना चाहता है ॥ ६३ ॥ जिस साधक के जीवित रहते हुए प्राण भीतर विलीन हंगया हो और पिंड (शरीर) नहीं गिरे, उसका चित्त दोषों से रहित होजाता है ॥ ६४ ॥ चित्त शुद्ध होने पर उसका आत्मज्ञान प्रकाशित होता है, इस प्रकार हे ब्रह्मा योग से एक ही जन्म में ज्ञान होजाता है ॥ ६५ ॥ इसलिये प्रथम साधक उस योग का सदा अभ्यास करे । मुमुक्षुओं को भी मोक्ष के लिये प्राण का जय करना चाहिये ॥ ६६ ॥ क्योंकि योग से बढ़ कर पुण्य नहीं है, योग से बढ़ कर कल्याण नहीं है, योग से अधिक कुछ सूक्ष्म नहीं है योग से बढ़कर कुछ भी नहीं है ॥ ६७ ॥ प्राण और अपानकी एकता, अपने रज और वीर्य की एकता, सूर्य और चन्द्रमा का संयोग, जीवात्मा और परमात्मा का संयोग ॥ ६८ ॥ इस प्रकार के द्वन्द्वों का संयोग योग कहलाता है । अब मैं सब ज्ञानों में उत्तम योग शिखा का वर्णन करता हूँ ॥ ६९ ॥

जब मंत्र का ध्यान किया जाता है तब शरीर में कंप होता है, इसलिये पद्मासन अथवा अन्य आसन, जिसमें रुचि हो, बांध कर ॥ ७० ॥ नासा के अग्रभाग में दृष्टि लगा कर हाथ और पैरों को मिला कर, मन को सब तरफ से रोकते हुए वहाँ अकार का चिन्तन ( ध्यान ) करे ॥ ७१ ॥ प्राज्ञ हमेशा परमेश्वर को हृदय

में रख कर ध्यान करे, एक स्तम्भ वाले नौ द्वार वाले तीन कढ़ी वाले और पांच देवता वाले ॥ ७२ ॥ ऐसे शरीर में बुद्धिमान लक्ष्य न दें । आदित्य मंडल के आकार वाला किरणों की उजाला से युक्त ॥ ७३ ॥ उस ( अकार ) के मध्य में दीपशिखा (दीपक की वत्ती) के समान अग्नि को प्रज्वलित करे । जितना दीपशिखा का परिमाण है उतने परिमाण की ज्योति का परमेश्वरका ध्यान करे ॥ ७४ ॥ योगी लोग, पञ्चात् योगाभ्यास से सूर्य का भेदन करते हैं, सुषुम्ना के परमशुभ्र द्वितीय द्वार से ॥ ७५ ॥ कपाल संपुट का पान करके उससे उस परमपद को देखता है । परन्तु जीव आलस से या प्रमाद से ध्यान नहीं करता ॥ ७६ ॥ यदि तीनों काल कपाल संपुट का पान करे तो महान् पुण्य को प्राप्त करता है, इस पुण्य को प्राप्त करके मैंने संक्षेप से कहा है ॥ ७७ ॥ योग का लाभ होने पर प्रसन्न हुए परमेश्वर को जानता है, तब उनके सहस्र जन्मों का पाप क्षीण हो जाता है ॥ ७८ ॥ और योग से संसार के संयुग्म उच्छेद [ नाश ] को देखता है ।

अब मैं योगाभ्यास के लक्षण कहता हूँ ॥ ७९ ॥ जिमने प्राण जय कर लिया है ऐसे गुरु का सदा सेवन करे गुरु के वचन प्रनाद से बुद्धिमान प्राण का जय करे ॥ ८० ॥ एक वालिश्व लम्बा और चार अंगुल चौड़ा, शुभ्र और कोमल, लपेटने के वस्त्र के समान (कन्द होता है) ॥ ८१ ॥ (उसमें) प्राण को दृढ़ता पूर्वक रोक कर शक्ति चालन युक्ति से आठ बार कुण्डलाकार होकर रही हुई कुण्डली को सीधी करे ॥ ८२ ॥ गुदा का संकोच



करते हुए कुण्डली को चलावे, तब मृत्यु के चक्र में भी फंसे हुए योगी को भी मृत्यु का भय कहें ॥ ८३ ॥ यह परम गुह्य मैंने तुम्हें कहा है—(और) वज्रासन लगा कर नित्य ऊर्ध्व आकुंचन करने का अभ्यास करे ॥ ८४ ॥ वायु प्रज्वलित किये हुए अग्नि से रात दिन कुण्डली को तपावे। अग्नि से संतप्त हुई, तीनों लोकों को मोहने वाली वह जीव शक्ति ॥ ८५ ॥ मेरुदण्ड में सुषुम्ना के मूल से प्रवेश करती हुई अग्नि युक्त वायु से ब्रह्म-अस्थि का भेदन करती है ॥ ८६ ॥ पश्चात् विष्णुश्रिंखला का भेदन करके रूद्र अस्थि में स्थित रहती है, तब वारम्बार पूरक करते हुए दृढ़ कुम्भक युक्त ॥ ८७ ॥ सूर्य भेदन उज्जाई शीतली और भस्त्रा इन चार कुम्भकों का अभ्यास करें ॥ ८८ ॥ तीन बंधों से युक्त ये कुम्भक केवल कुम्भक को प्राप्त कराते हैं। अब इनके लक्षण संक्षेप ने भली प्रकार कहा है ॥ ८९ ॥ निर्जन देश में अकेला जाकर हलका भोजन करता हुआ, धर्म पूर्वक, संसार रोग को निवारण करने वाली अद्वितीय औषधि के समान जो परमार्थ तरव रूप और अमृतरूप है ऐसा प्राण जप करे ॥ ९० ॥ योगाभ्यासी नूर्य नाड़ी से वायु का आकर्षण कर, विधिवत् कुम्भक करके चन्द्रनाड़ी से रेचन करे ॥ ९१ ॥ यह उदर के रोगों को और कृमिदोष को दूरकरता है। ऊपर लिखा हुआ सूर्य भेदन वार २ करना चाहिए ॥ ९२ ॥ दोनों नाडियों से वायु आकर्षण करके बुद्धिमान उसको कुण्डली के वायु में ले जाकर उदर में धारण करे फिर बुद्धिमान इडा से रेचन करे ॥ ९३ ॥ कंठ के कफ

आदि दोषों को दूर करने वाला, शरीर की अग्नि बढ़ाने वाला, नाड़ी जल का नाश करने वाला और वातु गत दोषों को दूर करने वाला ॥ ९४ ॥ यह उज्जाई कुम्भक चलते बैठते हर हालत में करना चाहिये। मुख से वायु का ग्रहण करके नाक से रेचन करे ॥ ९५ ॥ यह शीतलोत्तराण पित्त और क्षुधातृषा को दूर करता है। छाती से जुहार को धौंकनी के समान वेगपूर्वक ॥ ९६ ॥ देह को श्रम मालूम होने तक बुद्धिमान वायु का रेचक पूरक करे। जब श्रम प्रतीत होने लगे तब सूर्य से पूरक करे ॥ ९७ ॥ कण्ठ का संकोच करके फिर चन्द्र से रेचन करे। वात, पित्त कफ का नाश करने वाला शरीर की अग्नि को बढ़ाने वाला ॥ ९८ ॥ कुंडली का बोधन कराने वाला मुख के दोषों को दूर करने वाला सुखकर और शुभ कर ब्रह्मनाड़ी के मुख में स्थित कफ आदि की रक्तावटें दूर करने वाला ॥ ९९ ॥ भली प्रकार से बंध सहित करने से तीनों अस्थियों का भेदन करने वाला यह भक्तिका कुम्भक विशेष करके करना चाहिये ॥ १०० ॥

अब यथा क्रम से तीनों बंधों को कहता हूं। उनके नित्य करनेसे वायुका जप होता है ॥ १०१ ॥ चारों प्रकारके कुम्भक करते समय तीनोबंध करना चाहिए (वह किसप्रकार करना) सो मैं कहता हूं ॥ १०२ ॥ पहिला मूलबंध दूसरा उड्डियानबंध और तीसरा जालंधर बंध है। उनके लक्षण कहता हूं ॥ १०३ ॥ एड़ी से गुदा को दबा कर उसका (गुदा का) बल से बारंबार आकुंचन करे, जिस करके वायु ऊपर चला जाय ॥ १०४ ॥ प्राण और अपान, तथा



नाद और विदु मूल बंध से एकता को प्राप्त होकर संसिद्धि को देता है इसमें कुछ भी संदेह नहीं ॥१०५॥ कुंभक के भ्रन्त में और रेचक के आदि में उड्डियान बंध करना चाहिये जिससे प्राण सुषुम्ना में उड़ता है (गमन करता है) ॥१०६॥ इसीलिये योगी इसको उड्डियान कहते हैं। गुरु का कथन है कि उड्डियान का सदा स्वभाविकता से ॥१०७॥ आत्मस रहित अभ्यास करने से वृद्ध भी तरुण होजाता है। नाभी के ऊपर और नीचे भी प्रयत्न से तान रखे यानी खिचाव रखे ॥१०८॥ जो इसका छःमास अभ्यास करे वह मृत्यु को भी जीत लेता है इसमें संशय नहीं है। पुरक के भ्रन्त में जालंधर नामक बंध करना चाहिये ॥१०९॥ इसमें कंठ का संकोच किया जाने से यह वायु के मार्ग को रोकने वाला है। कंठ का आकुंचन करके इच्छा से (प्रयत्न से) हड़ता पूर्वक हृदय में स्थापन करे ॥११०॥ यह जालन्धर बंध अपृत की प्राप्ति कराने वाला है। नीचे से जरा आकुंचन करते हुए कंठ के संकोचन करने से ॥१११॥ तथा परिचमत्तान से प्राण नाड़ी में जाने लगता है। वज्रासन लगाये हुए कुण्डली को चालन कर, योगी ॥११२॥ पश्चात् भस्मा को करे और कुण्डलनी को जगावे। जंम गरम लोहे की छड़ से बाँस की गाँठों का भेदन होता है ॥११३॥ इसी प्रकार मेरुदंड में प्राण से ग्रन्थियों का भेदन होता है। तब चींटी लगने के समान वहां खुजली होती है ॥११४॥ सदा अभ्यास करने से इस प्रकार वायु से खुजली मालूम होती है तब रुद्र ग्रन्थि का भेदन करके शिव रूप हो

जाता है ॥११५॥ चन्द्र सूर्य को समान करने से उन दोनों का योग होता है। तीनों ग्रन्थियों का भेदन करने से योगी तीनों गुणों से भ्रतीत हो जाता है ॥११६॥ शिव और शक्ति के संयोग में वह परम श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त होती है। जैसे हाथी सूँड़ से सदा पानी पिया करता है ॥११७॥ इसी प्रकार सुषुम्ना वज्रनाल से (ब्रह्म नाड़ी से) वायु को ग्रहण करता है। वज्र दण्ड से उत्पन्न इक्कीस मणि होते हैं ॥११८॥ वह सब सुषुम्ना में रहे हुए हैं जैसे मूत्र में मणि होते हैं। मोक्ष मार्ग में स्थित होने से सुषुम्ना विभ्रलपिणी है ॥११९॥

निश्चित काल तक चन्द्र सूर्य के निबंधन से पुरक करके कुम्भक किया हुआ वायु सावक के बाहर नहीं जाता ॥१२०॥ इसी तरह से परिचम द्वार के लक्षण वाला वायु बार बार पूर्ण किया हुआ उन द्वारों से किंचित् कुम्भकत्व को प्राप्त होता है ॥१२१॥ परिचम मार्ग से वायु सर्व गात्रों में प्रवेश करता है। रेचन करने से वह क्षीण होता है और पुरक करने से पोषित होता है ॥१२२॥ शरीर सहित मन जहांसे उत्पन्न होता है, वहीं उसे योग बल से जो लीन कर देता है, वहीं एक मुक्त है, अहंकार रहित और सुखी है। जो केवल खाने ही से गरज रखते हैं ऐसे मूर्ख इस बात को नहीं जानते ॥१२३॥ यदि चित्त का नाश प्रतीत होवे तो वहां प्राण का भी नाश होता है। ऐसा यदि न होवे तो उसके लिये न शास्त्र है, न अनुभव, न गुरु



है, न मोक्ष ॥ १२४ ॥ जिस प्रकार जौक स्वयं बल से सधिर को खींचती है इसी प्रकार योग के सतत अभ्यास से ब्रह्मनाड़ी वातुओं को खींचती है ॥ १२५ ॥ आसन वंश के नित्य अभ्यास योग से चित्त लीन हो जाता है और विदु नीचे को नहीं जाता ॥ १२६ ॥ तथा रेचक और पूरक को छोड़कर प्राण स्थिर होता है, तब नाना प्रकार के नाद प्रवृत्त होते हैं और चंद्रमण्डल (से भ्रमृत) टपकने लगता है ॥ १२७ ॥ तब भूषण्य आदि सर्व दोष नष्ट हो जाते हैं, केवल सच्चिदानन्द में उसकी स्थिति हो जाती है ॥ १२८ ॥ तेरी प्रीति के भर्ष यह अभ्यास का वर्णन किया है ।

मंत्र, लय, हठ और राजयोग यह क्रमशः अन्तर्भूमिकाएं हैं ॥ १२९ ॥ एक ही महायोग इस प्रकार के चार भेद से कहा जाता है । (प्राण हकार से बाहर जाता है, सकार से फिर भीतर चला जाता है ॥ १३० ॥ इस प्रकार 'हंस हंस' यह सब जीव जपते रहते हैं । गुरु वाक्य से सुशुब्धा में यह जप उलटा होने लगता है ॥ १३१ ॥ इसीको सोहं सोहं मंत्र कहते हैं, इसीको मंत्र योग कहते हैं । मंत्र योग से पश्चिम मार्ग में प्रतीत होने लगती है ॥ १३२ ॥ सूर्य को हकार कहते हैं, सकार चन्द्रमा कहलाता है । और सूर्य चन्द्र की एकता को हठ कहते हैं ॥ १३३ ॥ सर्व दोषों द्वारा उत्पन्न हुई जड़ता हठ से नाश हो जाती है । जब क्षेत्रज्ञ और परमात्मा इन दोनों की एकता होजाती है ॥ १३४ ॥ हे ब्रह्मन्, उनको एकता होने पर चित्त विलीन होजाता है और

लय योग का प्रारम्भ होते ही प्राण स्थिरता को प्राप्त होते हैं ॥ १३५ ॥ लय होने पर मुञ्जल्य और स्वरूपानन्दल्य परमपद प्राप्त होता है । महाक्षेत्रके योगि मध्य में तथा जपगुण्य या बंधुक पुण्य के समान (रक्तवर्ण) ॥ १३६ ॥ जीवों का रज रहता है यही डका हुआ देवी तत्त्व है । रजके और रेतके योगको राजयोग कहते हैं ॥ १३७ ॥ राजयोगसे योगी अणिमादि सिद्धियां प्राप्त करके विराजता है । प्राण और अपान का योग ही योग चतुष्टय जानो ॥ १३८ ॥ यह हे ब्रह्मन्, तुम्हको संशेषसे कहा है । शिवकथन मिथ्या नहीं होता । अभ्यास द्वारा क्रम से प्राप्य वस्तु पाई जाती है, अभ्यास नहीं ॥ १३९ ॥ योगी एक ही शरीरसे बीरे-बीरे दीर्घकाल तक के योगाभ्यास द्वारा मुक्ति को प्राप्त होता है; बंदर के समान ही यह बात है ( बंदर एक शाखा से दूसरी शाख के प्रति ऐसे क्रम से पेड़ की चोटी पर चढ़ जाता है ) ॥ १४० ॥ प्रमाद से यदि योग सिद्ध के पूर्व ही देह का नाश हो जाय, तो पूर्व वासना से युक्त होने के कारण उसको दुन्दरा शरीर प्राप्त होता है ॥ १४१ ॥ तब पुण्य बल से सिद्ध गुरु की संगति पाता है । पश्चिम द्वार मार्ग से फल तुरन्त प्राप्त होता है ॥ १४२ ॥ पूर्व जन्म में अभ्यास किया हुआ होने से उसको तुरन्त फलको प्राप्ति होती है । यही जगन्ने योग्य है इसको काकमत कहते हैं ॥ १४३ ॥ काकमत के अभ्यास योग से अन्य और कोई श्रेष्ठ योग नहीं है, इसीसे मुक्ति प्राप्त होती है । शिव भाषित मिथ्या नहीं होता ॥ १४४ ॥ हठ योग क्रम से उसकी पराकाष्ठा रूप जीव लयादि जिसने न किया हो, उसको मोक्ष



नहीं होता, क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि पश्चिम मार्ग के विना मोक्ष लाभ नहीं होता ॥१४५॥ ( इस योग में ) प्रथम रोग नष्ट हो जाते हैं पीछे शरीर की जड़ता दूर होती है, तब चन्द्र समरस होकर सदा बरसता रहता है ॥१४६॥ पवन से अग्नि चारों ओर से धातुओं को खींचता है तब शरीर में कोमलता आजाती है और नाना नाद प्रवृत्त होते हैं ॥१४७॥ बृष्टि आदि जनित जड़ता को जीत कर वह योगी खेचर यानो आकाश में चलने वाला हो जाता है, पवन के समान वेग वाला, सर्वज्ञ और सुन्दर रूप वाला हो जाता है ॥१४८॥ वह तीनों लोकों में क्रीड़ा करता है और उसमें सब सिद्धियाँ उत्पन्न होजाती हैं । कपूर के लीन हो जाने पर उसमें फिर कठिनता कहाँ ? ॥ १४९ ॥ वैसे ही अहंकार के नाश होने पर (योगी के देह में) कठिनता कहाँसे रहे? यह सर्वकर्ता, स्वतन्त्र और अनन्त रूप वाला ॥१५०॥ महायोगी जीता हुआ भी मुक्त ही है, इसमें कोई संदेह नहीं है ।

इस जगत् में सिद्धियाँ दो प्रकार की होती हैं, एक कल्पित और दूसरी अकल्पित ॥१५१॥ रस, श्रोत्रधि और नाना प्रकार की क्रियाओं के साथ मन्त्र अभ्यास के साधन से जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं वे कल्पित कही जाती हैं ॥१५२॥ वे साधन द्वारा उत्पन्न हुई सिद्धियाँ अतितय और अल्प शक्ति वाली होती हैं । ऐसे ही विना साधन के स्वभाव ही के उत्पन्न हुई सिद्धियाँ होती हैं ॥१५३॥ अपने आत्मा के योग में निष्ठा रखने वालों में स्वतन्त्रता से ईश्वर को प्रिय ऐसी सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं, वे

अकल्पित कही जाती है । ॥ १५४ ॥ वासना रहित ( योगियों ) में महा शक्ति वाली अपने योग से उत्पन्न हुई, इच्छा रूप सिद्धियाँ चिर काल के अभ्यास से उत्पन्न होती हैं ॥ १५५ ॥ परन्तु अभ्यय ऐसे परमात्म पद के योग के लिये उन सिद्धियों को सदा गुप्त रखना चाहिये । विना कार्य के सदा गुप्त रहना यही योग सिद्ध का लक्षण है ॥ १५६ ॥ आकाश मार्ग से जाने वाले पथिक को मार्ग में जैसे अनेक तीर्थ और नाना मार्ग नजर आते हैं वैसे ही नाना प्रकार की सिद्धियाँ हैं ॥ १५७ ॥ लाभ हानि से रहित निर्वासन योगी को योग मार्ग में चलते हुए नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥ १५८ ॥ परीक्षक सुवर्णकार जैसे सुवर्ण की परीक्षा करता है वैसे सिद्धियों से सिद्ध और जीवन्मुक्त को पहचानना चाहिये ॥ १५९ ॥ कभी उसके अलौकिक गुण अवश्य दिखाई देते हैं परन्तु जिसकी सिद्धियाँ चली गई हों ऐसे पुरुष को वद्ध ही समझो ॥ १६० ॥ जिसकी देह जरा रहित अमर है वह जीवन्मुक्त है और वे पशु पक्षी, कीटक ( के समान ) हैं जो मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ १६१ ॥ उनको, हे ब्रह्मन् ! क्या शरीर नष्ट होने के पश्चात् मुक्ति मिलती है ? उनके प्राण ही बाहर नहीं निकलते तो शरीर कहाँ से गिरेगा ? ॥ १६२ ॥ शरीर के पतन से जो मुक्ति हो वह मुक्ति नहीं मृत्यु है । देह को ब्रह्मत्व प्राप्त होने पर जैसे जल में नमक ॥ १६३ ॥ अनन्यता को प्राप्त होता है, ( वैसे ही देह और ब्रह्म अनन्यताको प्राप्त होने पर ) उसको मुक्त कहते हैं, शरीर और इन्द्रियाँ उससे वैसे ही अभिन्न



है ॥ १६४ ॥ अहं देहत्वं को वैसे ही प्राप्त होता है जैसे जल बबूले बन जाय । दस द्वार वाले नगर के समान दस नाड़ी रूप जिसमें मार्ग हैं ऐसे, ॥ १६५ ॥ दस वायुओं में युक्त, दस इन्द्रियों के परिवार वाले, छः आधाररूप निवास स्थान वाले, छः अन्तरूप महा वन वाले ॥ १६६ ॥ चार पीठों से युक्त, चार वेद रूप दीपक वाले, विन्दु नाद और महत लिंग वाले; शिव शक्ति के निवास स्थान रूप ॥ १६७ ॥ देह को शिवालय कहते हैं, यही सब देहधारियों को सिद्धि देने वाला है । गुदा और मेढू के बीच में त्रिकोणाकार मूलाधार चक्र है ॥ १६८ ॥ जीव रूप वह स्थान बोला जाता है, यहीं पर कुण्डलिनी नाम की परा शक्ति प्रतिष्ठित है ॥ १६९ ॥ यही स्थान है जिससे वायु उत्पन्न होता है, जिससे अग्नि उत्पन्न होता है, जिससे बिन्दु और नाद उत्पन्न होते हैं ॥ १७० ॥ और जिससे हंस और मन उत्पन्न होने हैं, ऐसा यह काम रूप नाम का पीठ सर्व कामनाओं को पूर्ण करने वाला है ॥ १७१ ॥ छः पञ्चरीवाला स्वाधिष्ठान नामक चक्र लिंग मूलमें है । दस पञ्चरीवाला मणिपूरक चक्र नाभी देश में स्थित है ॥ १७२ ॥ बारह पञ्चरीवाला अनाहत नाम का महान् चक्र हृदय में स्थित है । हे ब्रह्मा यही वह ब्रह्मागिरी नाम की पीठ है ॥ १७३ ॥ कंठ कूप में सोलह पञ्चरीवाला विग्रह नामक चक्र है जालंधर नाम की पीठ, हे सुरेश्वर यहां पर स्थित है ॥ १७४ ॥ अमध्य में दो दल वाला आज्ञा नाम का उत्तम चक्र है, इसके ऊपर उडुयान नामक महापीठ प्रतिष्ठित है ॥ १७५ ॥

चार पञ्चरीवाला पृथ्वी का मंडप है, उसका अधिदेवता अहं है । अर्ध चन्द्राकार जल का मंडल है यहां विष्णु अधिदेव हैं ॥ १७६ ॥ त्रिकोणाकार मंडल अग्नि का है, उसका अधिदेवता रुद्र हैं, वायु का विंश त्रिकोण वाला है ईश्वर उसका अधिदेवता है ॥ १७७ ॥ आकाश का मंडल वर्तुलाकार है इसका देवता सदाशिव है । नाद रूप मन का मंडल अमध्य में है, ऐसा जानते हैं ॥ १७८ ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

हे शंकर, मैं योगके महारम्य को फिर सुनना चाहता हूँ जिसके जानने ही से खेचरी समान अवस्था प्राप्त होती है ॥ १ ॥ (शंकरनेकहा) है ब्रह्मन्, प्रयत्न से गुप्त रखने के योग्य बात कहता हूँ सो श्रवण कर । जोबारह वर्ष तक प्रमादरहित सेवा करे ॥ २ ॥ उस दमनशील ब्रह्मचारी को यह यथार्थ रूप से बताना चाहिये । पांडित्य बताने के लिये, धन के लोभ से श्रयवा प्रमाद से किसी को नहीं देना चाहिये ॥ ३ ॥ उसने सब कुछ पढ़ लिया और सुन लिया और सबका अनुष्ठान कर लिया जो विद्वान् गुरु के बताए हुए मूल मंत्र को जानता है ॥ ४ ॥ मूलाधार से उत्पन्न हुआ शिव शक्तिमय मंत्र है । उस मंत्र के, हे ब्रह्मन्, ओता और वक्ता दोनों दुर्लभ हैं ॥ ५ ॥ इसको पीठ कहते हैं । यह चिदात्मक और नादलिंग रूप है इसके अनुभव मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त होजाता है ॥ ६ ॥ और अल्प काल में अणिमादि सिद्धियां उसको प्राप्त होती हैं । मेरे स्वरूप का मनन, ध्यान तथा मेरे स्वरूप का बोध करता है



इसलिये ॥ ७ ॥ इसको मंत्र कहते हैं। प्रथवा, हे ब्रह्मन्, मेरा अधिष्ठान होने से प्रथवा सर्व मन्त्रों का मूल होने से, मूलाधार से उत्पन्न होने से और ॥ ८ ॥ मूल स्वरूप का चिह्न होने से इसको मूल मंत्र कहते हैं। सूक्ष्म होने से, कारण होने से तथा उसमें सबका लय वा गमन होने से ॥ ९ ॥ तथा यह परमेश्वर का लक्षण होने से इसको लिंग कहते हैं। सब जन्तुओं के सदा समीप और व्यापक होने से ॥ १० ॥ तथा रूप का सूचन करने वाला होने से उसको सूत्र कहते हैं। महाभाषा, महालक्ष्मी, महा-देवी सरस्वती रूप ॥ ११ ॥ अव्यक्त आधार शक्ति जिससे विश्व चलता है, सूक्ष्म तेज युक्त बिंदुरूप से और पीठरूप से रहती है ॥ १२ ॥ बिंदुपीठ का भेदन करने से नादलिंग उत्पन्न होता है, हे ब्रह्मन्, जिसका षण्मुखी क्रिया द्वारा प्राण से उच्चारण किया जाता है ॥ १३ ॥ गुरु के उपदेश के अनुसार, ब्रह्म के स्थूल सूक्ष्म और कारण तीनों शरीर सहज में प्रकाशित होते हैं ॥ १४ ॥ पंच ब्रह्ममय स्थूल रूप को विराट् कहते हैं। नादमय और बीजत्रयात्मक सूक्ष्म को हिरण्यगर्भ कहते हैं ॥ १५ ॥ परब्रह्म, परम सत्य सच्चिदानन्द लक्षण वाला, अपरिमेय, जिसका निर्देश हो न सके ऐसा इन्द्रिय और मनका आविषय ॥ १६ ॥ शुद्ध सूक्ष्म निराकार निर्विकार निरंजन अनन्त, परिच्छेद रहित, उपमा रहित उग्रद्रव रहित ॥ १७ ॥ ऐसा परम तत्त्व आत्म मंत्र के सदा अभ्यास करने से प्रकाशित होता है। उसके प्रकट होने के चिह्न रूप सिद्धि द्वार मुझसे श्रवण कर ॥ १८ ॥ सदा युक्त योगी को प्रकाशमान

दोपज्वाला, चन्द्र, खद्योत (पटबीजना), विजली और नक्षत्र ये सूक्ष्म रूप से दिखाई देते हैं ॥ १९ ॥ शीघ्र ही उसको अणिमादि ऐश्वर्य प्राप्त होता है। नाद से श्रेष्ठ मंत्र नहीं है, आत्मा से श्रेष्ठ कोई देव नहीं है ॥ २० ॥ अनुसंधान से बढ़ कर कोई पूजा नहीं है, तृप्ति से श्रेष्ठ कोई सुख नहीं है। यह सिद्धि चाहने वाले को प्रयत्न में गुप्त रखना चाहिये। मेरा भक्त इसको जान कर कृत कृत्य और सुखी होजाता है ॥ २१ ॥ जिसको देव में परमभक्ति है और जैसी देव में है वैसी ही गुरु में है, उसी महात्मा को ऊपर कहे हुए अर्थ प्रकाशित होते हैं ॥ २२ ॥

॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

जो नमस्कार करने योग्य है, जो चित् रूप है, जो सिद्धियों का कारण है, जिसके जानने मात्र ही से जन्म के बन्धन से जीव छूट जाता है ॥ १ ॥ ऐसे अक्षर और परम नाद को शब्द ब्रह्म कहते हैं। मूलाधार चक्र में रही हुई बिंदुरूपिणी शक्ति अपने आधार में होती है ॥ २ ॥ सूक्ष्म बीज में से जिस प्रकार शंक्नु र उत्पन्न होता है इस प्रकार बिंदुरूपिणी शक्ति में से नाद उत्पन्न होता है उसको पर्यन्ति कहते हैं, क्योंकि योगी लोग इसी शक्ति से विश्व को देखते हैं ॥ ३ ॥ हृदय में मेघ की गर्जना के समान बड़ी ध्वनि होती है, वहां, हे ब्रह्मन् जो शक्ति होती है उसको मध्यमा कहते हैं ॥ ४ ॥ प्राण के योग से स्वर रूप से प्रकट होने वाली वैखरी शक्ति है तालु आदि स्थानों के स्पर्श से



शाखा पत्तों के समान वह नाता अक्षरों के रूप से प्रकट हेतोः है ॥ ५ ॥ इस प्रकार 'अ' से लेकर 'क्ष' तक के सब अक्षरों का उच्चारण होता है। अक्षरों से पद और पदों से वाक्य होते हैं ॥ ६ ॥ मंत्र वेद और शास्त्र सब पुराण तथा कल्प और नाना भाषाएँ सब वाक्यमय ही होते हैं ॥ ७ ॥ सात स्वर तथा गायार्ण यह सब नाद ही में उत्पन्न होते हैं ( इसनिये ) जब प्राणियों के हृदय में रही हुई यह सरस्वती देवी है ॥ ८ ॥ प्राण और अग्नि की प्रेरणा से धीरे धीरे विवर्त रूप होकर पद और वाक्य रूप से वर्तते हैं ॥ ९ ॥ जो योगी इस वैश्वरी शक्ति को अपने में देखता है, वह सरस्वती के प्रसाद से वाक्-सिद्धि को प्राप्त करता है ॥ १० ॥ वह स्वयं वेद, शास्त्र और पुराणों का कर्त्ता बनता है। जहाँ विदु, नाद, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु ॥ ११ ॥ और सब इन्द्रियां लय को प्राप्त होती हैं, हे सुब्रत, जहाँ प्राण लीन हो जाते हैं मन भी लीन हो जाता है ॥ १२ ॥ जिसको प्राप्त करने पर उसमें अधिक प्राप्त करने योग्य कुछ भी नहीं मानता, जिसमें स्थिति हुआ महात्मा महान् दुःख से भी विचलित नहीं होता ॥ १३ ॥ जहाँ योगाभ्यास द्वारा निरोध को प्राप्त हुआ चित्त उपराम को प्राप्त होता है और जहाँ आत्मा ही से आत्मा को देखकर योगी संतोष को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ जो इन्द्रियातीत और बुद्धि से हो ग्रहण करने योग्य ऐमा आत्यन्तिक सुखरूप है उसको क्षर और अक्षर से परे ऐमा ( परम ) अक्षर कहते हैं ॥ १५ ॥ सब भूत प्राणियों को क्षर और सूत्रात्मा को

अक्षर कहते हैं और निर्विशेष निरञ्जन परब्रह्म को परम अक्षर कहते हैं ॥ १६ ॥ वह लक्षण रहित, अलक्ष्य और अतर्क्य है, उपमा रहित है, उसका पारावार नहीं है, उसका छेदन नहीं हो सकता, तथा उसका चित्तवन नहीं हो सकता और वह परम निर्मल है ॥ १७ ॥ वह सब भूतों का आधार है, उसका कोई आधार नहीं है। वह निर्दोष और प्रमाण रहित है, उसको कोई वता नहीं सकता, उसका कोई माप नहीं है और वह इन्द्रियों से परे है ॥ १८ ॥ वह स्थूल नहीं है, सूक्ष्म भी नहीं है, ह्रस्व या दीर्घ नहीं है। वह अजन्मा और नाश रहित है। वह शब्द, स्पर्श, रूप या ग्राह्य, कान तथा नाम से रहित है ॥ १९ ॥ वह सबको जानने वाला है, सब स्थान पर उसकी गति है। वह शान्त है और सब प्राणियों के हृदय में रहा हुआ है। गुरु के वाक्य से वह सहज जाना जाता है और भाव हीन मनुष्य उसको बड़ी कठिनाई से जानने पाता है ॥ २० ॥ वह कला रहित और गुण रहित है शान्त और निर्विकार है, वह आश्रय रहित नित्य नाश रहित क्लृप्त्य अचल और ध्रुव है ॥ २१ ॥ वह अंधेरे के परे रहा हुआ है और ज्योति की भी ज्योति है। वह भाव और अभाव से रहित केवल भावना गोचर है ॥ २२ ॥ चित्त को अन्तरलीन करके भक्ति युक्त होकर उस परम तत्त्व को पाया जाता है। इसमें, हे ब्रह्मन्, भावना ही केवल कारण है ॥ २३ ॥ जैसे दूधरे देह की प्राप्ति में मनुष्य को भावना कारण होती है, जिस प्रकार विषय का ध्यान करने वाले का मन



विषय में रमता रहता है ॥ २४ ॥ वैसे ही भेदा अनुस्मरण करने वाले का चित्त मुझमें ही विलीन हो जाता है सर्वज्ञता परमेस्वरत्व तथा सब प्रकार की संपूर्ण शक्तियां ॥ २५ ॥ तथा अनंत शक्तियों मेरे अनुस्मरण से प्राप्त होती है ।

॥ इति तीमरा अध्याय ॥

चेतन्य के एक रूप होने के कारण कहीं भी भेद का मानना युक्त नहीं है । रज्जु में सर्प का भ्रम होता है, वैसा ही जीव भाव समझो ॥ १ ॥ रज्जु के भ्रमज्ञान में क्षण में ही जैसे रज्जु सर्पणी भासने लगती है वैसे ही भ्रमज्ञान से साक्षात् एक चिति ही विश्व रूप से भासती है ॥ २ ॥ प्रपंच के उपादान कारण ब्रह्म को छोड़ कर और कुछ भी नहीं है, इसलिये यह सब प्रपंच ब्रह्म ही है, और कुछ नहीं है ॥ ३ ॥ सब कुछ आत्मा ही है, इस उपदेश द्वारा व्याप्य व्यापक भाव मिथ्या होजाता है । इस प्रकार भ्रद्वैत परम तत्त्व को जानने पर भेद को स्थान ही कहाँ ? ॥ ४ ॥ परमात्मा परब्रह्म से सब उत्पन्न होते हैं, इसलिये यह सब ब्रह्म ही है ऐसा चिन्तन करो ॥ ५ ॥ सब नाम, नाना प्रकार के रूप तथा सब कर्म ब्रह्म ही धारण करता है ऐसा समझो ॥ ६ ॥ सुवर्ण से उत्पन्न हुई वस्तु सदा सुवर्ण ही होती है वैसे ही ब्रह्म से उत्पन्न हुआ विश्व सदा ब्रह्म स्वरूप ही है ॥ ७ ॥ जो जीवत्मा और परमात्मा में भ्रम भी भेद मानता है उस विमूढ़ आत्मा को भय की प्राप्ति होती है ऐसा (श्रुति का) कथन है ॥ ८ ॥ भ्रमज्ञान

से द्रव्य भासता है तब भ्रम्य को देखने लगता है । आराम दृष्टि से देखा जाय तो यह सब (जगत) आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है ॥ ९ ॥ इस लोक का अनुभव होता है, यहाँ व्यवहार भी होता है तो भी जानने के उत्तर क्षण में स्वप्न जैसा भ्रम होजाता है, वैसे यह सब भ्रमद्रूप ही है ॥ १० ॥ स्वप्न में जाग्रत नहीं होता, और जाग्रत में स्वप्न नहीं होता । यह दोनों लय में नहीं होते और इन दोनों में नय नहीं होता ॥ ११ ॥ तीनों गुणों से उत्पन्न हुई यह तीनों भ्रमस्थायि मिथ्या हैं, इनका द्रष्टा गुणातीत और नित्य ऐसा चेतन्य है ॥ १२ ॥ जिस प्रकार मिट्टी में घट की आन्ति होती है, सीपों में चांदी होती है वैसे ही ब्रह्म में जीव भाव है । उसको विचारपूर्वक देखने से वह नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥ जैसे मृत्कामें घट होता है, कनक में कुण्डल का कथन होता है, सीपी को रजत कहा जाता है, वैसा जीव भी कथन भाव है ॥ १४ ॥ जिस प्रकार आकाश में नीलता होती है मरुभूमि में जल होता है, श्यामु (दुर्ग) में पुरुष की आन्ति होती है, वैसा ही चेतन्य में यह विद्वत् है ॥ १५ ॥ जैसे शून्य में वेताल या गन्धर्व नगर मिथ्या होता है, जिस प्रकार आकाश में (नेत्र दोष से) दो चन्द्र भासते हैं वैसे ही सत्य (ब्रह्म) में जगत भासता है ॥ १६ ॥ जिस प्रकार तरंग और जहरों में जल ही जल स्फुरता है, घट नाम से जैसे मिट्टी ही वर्तती है या पट नाम से तन्तु ही रहते हैं ॥ १७ ॥ वैसे ही जगत के नाम से चिति ही प्रकाशती है । सब कुछ केवल ब्रह्म ही है । जिस प्रकार बन्धापुत्र कोई वस्तु



नहीं है या मरुमि में बल नहीं होता ॥ १८ ॥ जिस प्रकार  
आकाश में द्रव्य होता ही नहीं, वैसे ही जगत की स्थिति है ही  
नहीं। घट का द्रव्य करने पर जैसे बलात्कार से मिट्टी ही नजर  
आती है ॥ १८ ॥ प्रपंच को विस्तार पूर्वक देखा जाय तो प्रकाश  
स्वरूप ब्रह्म ही दीखता है। आत्मा सदा विभुद है तो नो बह  
अभुद नामदा है ॥ १९ ॥ जिस प्रकार रज्जु जानी को और  
अजानो को सदा दो प्रकार से भासती है। जिस प्रकार घड़ा  
मिट्टी ही है वैसे देह नो चेतन्य ही है ॥ २० ॥ विद्या नो  
आत्मा और अनात्मा का विवेक दृष्टा ही करते हैं। जैसे रस्सी  
को सर्प रूप से और सोनो को रत्न रूप से देखा जाय ॥ २० ॥  
वैसे ही सूक्ष्म मनुष्य आत्मा को देह रूप से देखता है, मिट्टी को  
घट रूप से, मरुमि को जल रूप से देखता है ॥ २१ ॥ काठ  
को घर रूप से और लोहे को तलवार रूप से देखा जाय वैसे ही  
सूक्ष्म जन आत्मा को देह रूप से देखते हैं ॥ २४ ॥

॥ इति चतुर्थे अध्याय ॥

फिर मैं तुम्हें ब्रह्मन्तरूप के गुहा योग को क्रमपूर्वक कहता  
हूँ, हे ब्रह्मा, स्थिर चित्त होकर मुनो ॥ १ ॥ दस द्वार वाले नगर  
के समान, दस नाड़ी रूप जिसमें महा मार्ग है, जो दस वायुओं  
से युक्त है ऐसे दस इन्द्रियों के परिचार वाले ॥ २ ॥ छः आघार  
रूप निवास स्थान वाले, छः अव्ययरूप महावन वाले, चार  
पीठों से युक्त, चार वेद रूप दीपक वाले ॥ ३ ॥ विन्दु नाद और

महालिंग वाले, त्रिषु तथा सद्यो के निवास स्थानरूप, देह को  
विष्णु का मन्दिर कहते हैं, यही सब देह वारियों को सिद्धि देने  
वाला है ॥ ४ ॥ गुदा और भेद के बीच में त्रिकोणाकार मूलाधार  
चक्र है। वह जोवरूप शिवका स्थान कहा जाता है ॥ ५ ॥ यहीं  
पर कुब्जलिनी नाम की पराशक्ति प्रतिष्ठित है। यहीं से वायु  
उत्पन्न होता है, यहीं से वह्नि उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥ जिससे  
विन्दु उत्पन्न होता है और जिससे नाद उत्पन्न होता है, जिससे  
हंस और मन उत्पन्न होते हैं ॥ ७ ॥ ऐसा यह कामरूप नाम का  
पीठ सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। छः पञ्चरीवाला  
त्राघिष्ठान नाम का चक्र लिंगमूल में है ॥ ८ ॥ दस पञ्चरीवाला  
मणि पुरक चक्र नाभि देश में स्थित है। बारह पञ्चरीवाला  
अनाहत नाम का महान चक्र हृदय में स्थित है ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मा,  
यही वह ब्रह्मगिरि नाम का पीठ है। कंठ रूप में सोलह पञ्चरी  
वाला विभुद नामक चक्र है ॥ १० ॥ जालंधर नाम का पीठ,  
हे ब्रह्मा, यहाँ पर स्थित है भ्रूमध्य में दो दल वाला आज्ञा नाम  
का उत्तम चक्र है ॥ ११ ॥ इसके ऊपर उड्डियान नामक महापीठ  
प्रतिष्ठित है, इस देहमें इतने स्थान शक्तिरूप से विराजते हैं ॥ १२ ॥  
चार पञ्चरीवाला पृथ्वी का मण्डल है, उसका अधिदेवता ब्रह्मा  
है। अथ चन्द्राकार जलका मंडल है यहाँ विष्णु अधिदेवता  
है ॥ १३ ॥ त्रिकोणाकार मंडल अग्नि का है, उसका अधिदेवता  
रुद्र है। वायु का विष षट्कोणाकार है, संकर्षण उसका अधि-  
देवता है ॥ १४ ॥ आकाश का मण्डल वर्तुलाकार है इसका देवता



नारायण है, नादरूप मनका मण्डल भ्रूमध्य में है ऐसा जानते हैं ॥१५॥ हे ब्रह्मा, यह शोभय. स्थान का तुम्हसे वर्णन किया। अब नाड़ी चक्रका निर्याय कहता हूँ ॥१६॥ मूलाधार चक्रके त्रिकोण में बारह शृंगुलकी सुषुम्ना होती है, यह मूलके अर्ध में से निकली हुई वांस के समान होती है और इसीको ब्रह्मनाड़ी कहते हैं ॥१७॥ इसके दोनों ओर इडा और पिंगला होती है, और यह तीनों त्रिविधियों में पिरैई हुई होती है जो नाकतक जाती है ॥१८॥ इडा में बाईं ओर से सुवर्णरूप वायु गमन करता है। दाहिने ओर से सूर्य रूप प्राण पिंगला में गमन करता है ॥१९॥ त्रिविधिनी नाड़ी नाभि स्थान में प्रकट होती है। नाभि स्थान में से नाडियां उत्पन्न होती हैं और उर्वी नीची ओर तिरछी जाती हैं ॥२०॥ इसको नाभि चक्र कहते हैं और यह मुर्गी के अण्डे के समान होता है; यहां से गन्धारी और हस्ति जिह्वा दो नाडियां दोनों नेत्रों को जाती हैं ॥२१॥ पूषा और अलंबुसा यह दो कानों के प्रति जाती हैं। शूरा नाम की बड़ी है, वह यहां से भ्रूमध्य को जाती है ॥२२॥ विश्वोदरी वह नाड़ी है जो चतुर्विध अन्न का भोजन करती है। सरस्वति नाड़ी जिह्वा के अन्त तक गई हुई है ॥२३॥ राका नाम की नाड़ी है, वह तुरन्त जल का पान करती है भूख को उत्पन्न करती है और नाक में श्लेष्मा का संचय करती है ॥२४॥ कण्ठ रूप में उत्पन्न हुई अशोषुख वाली शंखिनी नाम की नाड़ी है, वह अन्न के सार का ग्रहण करके उसका शिरोभाग में संचय करती

है ॥२५॥ नाभि से तीन अशोषुख वाली नाडियां नीचे को जाती हैं उनमें से कुछ नाड़ी मल का त्याग करती है, वायुणी मूत्र का त्याग करती है ॥२६॥ चित्रा नाम की नाड़ी सीवनी में है वह शुक्र भोजन करती है। इस प्रकार नाड़ी चक्र तुम्हें कहा अब विदु का रूप श्रवण कर ॥२७॥ स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन ब्रह्म के शरीर हैं; शुक्ररूप बिंदु स्थूल है, पंचानि रूप सूक्ष्म शरीर है ॥२८॥ और चन्द्ररूप कारण शरीर है वह सदा साक्षी रहता है और सर्वदा जेसा का वैसा ही रहता है। जो पातालियों के नीचे कालाग्नि रहता है ॥२९॥ वही शरीर में मूलानि है, जिसमें से नाद उत्पन्न होना है। वड़वानि शरीर में होता है। वह अस्थि में रहता है ॥३०॥ काष्ठ और पाषाण का अग्नि अस्थि में रहता है और काष्ठ और पाषाण से जनि पार्थिव अग्नि आतों में होता है ॥३१॥ वैद्युत अग्नि आकाश का है वह शरीर के भीतर है। आकाश में रहा हुआ सूर्यरूप अग्नि नाभि मण्डल में स्थित है ॥३२॥ सूर्य विष की वर्ण करता है (परन्तु) उसके ऊपर के मुख से अमृत भरता है; तानु मूल में रहा हुआ चन्द्र अशोषुख अमृत की वृष्टि करता है ॥३३॥ भ्रूमध्य में शुद्ध स्फटिक के समान बिन्दु रहा हुआ है, वह महा विष्णु का सूक्ष्म स्वरूप कहा जाता है ॥३४॥ जो बुद्धिमान पुरुष बताये हुए पञ्चानि को बुद्धि से भावना करता है वह जो कुछ खाता है या पीता है



सभी हवन ही करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ बड़े प्रेम के साथ उत्तम प्रकार से सेवा करके ध्यान करते हुए भली प्रकार पाचन हो सके ऐसा लघु भोजन करके प्रथम शरीर की शुद्धि करे । पश्चात् सुखासन में स्थित हो कर ॥ ३६ ॥ रेचक कुंभक द्वारा प्राण के मार्ग का शोधन करे । प्रयत्न पूर्वक गुदा का आकुंचन करके मूलाधार में रही हुई शक्ति की उयासना करे ॥ ३७ ॥ नाभि और लिंग के मध्य में उड्यान बन्धको करे, इस बन्ध द्वारा शक्ति उड़कर ऊपर पीठ में जाती है, इसलिये इसको उड्यान पीठ कहते हैं ॥ ३८ ॥ किंचित् कंठ का संकोच करे, यह जालंधर बंध है सावधानता पूर्वक दृढ़ चित्त से खेचरी मुद्रा को करे ॥ ३९ ॥ कपाल के छिद्र में जीभ को उलटा कर लगावे और दोनों श्रुतियों के बीच में दृष्टि रखे । इसको खेचरी मुद्रा कहते हैं ॥ ४० ॥ खेचरी मुद्रा द्वारा जिह्वा के अग्र भाग से जिसने कपाल विवर बन्द किया हो उसका अमृत अग्नि में नहीं गिरता और प्राण भी नहीं चलते ॥ ४१ ॥ उसको भूख, व्यास, निद्रा या आलस्य नहीं उत्पन्न होते । जो खेचरी मुद्रा जानता है, उसकी मृत्यु ही नहीं होती ॥ ४२ ॥ परचात् पूर्वपर आकाश में प्रच्युत रूप द्वादशान्त में, निरालम्ब और निरंजन द्रव्य रहित उड्यान पीठ में ॥ ४३ ॥ और पश्चात् चंद्र मंडल के अंतर्गत कमल के मध्य में, जिससे अमृत सदा स्रवता रहता है ऐसे नारायण का ध्यान करे ॥ ४४ ॥ जिसको परम ब्रह्म का साक्षात्कार होगा है उसकी हृदयग्रंथि विनष्ट हो जाती है सर्व

संशय नष्ट हो जाते हैं और उसके सर्व कर्मों का क्षय हो जाता है ॥ ४५ ॥ हे मुरेश्वर जो जितेन्द्रिय और धान्त है और जित्हीने मन और प्राण जीत लिये है उनको मुख्यपूर्वक प्राप्त होने वाली सिद्धियों को कहता है ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मा नाद में मनोलय करने से दूर श्रवण प्राप्त होता है, विंदु में मनोलय करने से दूर दर्शन प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ कालात्मा में मनको लीन करने से त्रिकाल ज्ञान प्राप्त होता है और परकाया प्रवेश करने वाला दूमरे के शरीर में अपने मन का लय करदे ॥ ४८ ॥ क्षुधा, तृषा या विष के निवारण के लिये मूर्धा में अमृत का चितवन करे । पृथ्वी में चित्त को धारण करने से पाताल गमन सिद्ध होता है ॥ ४९ ॥ जल में चित्त को धारण करने से जल से निर्भय हो जायगा । अग्नि में, चित्त को धारणा करने से वह आग से जलेगा नहीं ॥ ५० ॥ वायु में मन को लय कर देने से आकाश गमन सिद्ध होगा । आकाश में चित्त को धारण करने से अणिमादिक सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥ ५१ ॥ विराट् के रूप से मन का योग करने से महिमा को प्राप्त होगा । ब्रह्मा में मन का योग करने से वह जगत का सृष्टिकर्ता बनेगा ॥ ५२ ॥ मृत्यु लोक के भोगों की इच्छा रखने वाला इन्द्ररूप आत्मा की भावना करे और विष्णु रूप में यदि महायोगी धारणा करे तो वह अखिल जगत का पालन करेगा ॥ ५३ ॥ रुद्र रूप में मनको धारण करने से अपने तेज से जगत का संहार करेगा और नारायण में मनको लय करने से वह नारायण मय हो जायगा और वासुदेव में



मनको लय कर देने से सर्व सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥ ५४ ॥ योग मुक्त और जितेन्द्रिय योगी जो जो संकल्प करेगा वही सब उस को प्राप्त होगा, इसमें केवल एक भाव ही कारण है ॥ ५५ ॥ गुरु ब्रह्मा है, गुरु विष्णु है, गुरु ही देव और सदा प्रच्युत है। तीनों लोक में गुरु से अधिक कुछ भी नहीं है ॥ ५६ ॥ दिव्य ज्ञान का उपदेश करने वाले दीक्षिक (ब्रह्मनिष्ठ गुरु) भगवान् की परम भक्ति से जो पूजा करता है वह ज्ञान रूप फल को प्राप्त करता है ॥ ५७ ॥ जेना गुरु वैसा ही ईश्वर और जेना ईश्वर वैसा ही गुरु है इनको महानात्मिक से पूजा करनी चाहिए, इन दोनों में कुछ भी भेद नहीं है ॥ ५८ ॥ कभी गुरु के साथ भ्रष्ट की बात न करे। भक्ति से गुरुदेव और प्रारम्भ में भ्रष्टताकी करे ॥ ५९ ॥ जो बुद्धिमान श्रवण गुह्य योग सिद्धियों जानता है उसको तीनों लोक में प्रज्ञात कुछ भी नहीं है ॥ ६० ॥ उनको न पुण्य पाप है, न क्रयान्ति है, न दुःख और पराजय है, उनको इस संसार में पुनरावृत्ति भी नहीं है ॥ ६१ ॥ चित्त की चपलता के वश सिद्धियों में चित्त न लगावे और इस प्रकार तत्त्व को जानने वह मुक्त ही है इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ ६२ ॥

॥ इति पांचवां अध्याय ॥

हे परमेश्वर, आप मुझमें ऐसी उपासना का प्रकार कहें, जिसको भली प्रकार जानने मात्र से मनुष्य संसार से मुक्त हो

जाता है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मा, शक्ति का सारस्य और गुरु ऐसी उपासना का प्रकार मुझमें कहता है, उसको श्रवण करके ठीक उपासना कर ॥ २ ॥ मुमुक्षु ब्रह्मनिष्ठ, चन्द्रमण्डल से निर्गते शान्त भ्रमर, मन की उन्मत्त श्रवण इन सब रूप में विराटने वाली, हे चैतन्यनन्दन महाशक्ति, तुमको मेरा नमस्कार है ॥ ३ ॥ हृदय से एक ही एक नादियां निकलती हैं, उनमें से एक पितृ की ओर जाती है। इस नादीसे ऊर्ध्व गमन करने वाला भ्रमरलव को प्राप्त होता है। अन्य चारों ओर जाते वाली नादियों से मृग को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ एक ही एक नादियों में एक ही नादी श्रेष्ठ है, उसको मुमुक्षु कहते हैं। राजयोग यह, ब्रह्मनिष्ठों वह नादी ब्रह्म में विर्तमान रहती है ॥ ५ ॥ उसके कार्य और इस और दाहिनी ओर विपरीत रहती है, उसके बीच में परम स्थान है, उसको जो जानता है वही सच्चा विद्वान् है ॥ ६ ॥ नासिका में चलने वाले प्राण उसमें चारण करे। वहां प्राण स्थिर करके दोरे २ अन्त्यास करे ॥ ७ ॥ गुदा के छु भाग में वीणा दंड के समान मेरु दंड है, वह देह को चारण करता है, दोष अस्मि देह (मरुदण्ड में की नीचे की बड़ी हड्डी) तक ब्रह्मनाई कहें जाती है ॥ ८ ॥ उसमें एक सूक्ष्म विवर है उसको विद्वान् ब्रह्मनादी कहते हैं। इस और पिण्ड का के मध्यमें सूक्ष्मभिरा मुमुक्षु होती है ॥ ९ ॥ उसमें सब कुछ रहा हुआ है, वह सर्वव्यापी और सब देह वालों है सूर्य, चन्द्र, अग्नि और परमेश्वर उसमें रहे हुए हैं ॥ १० ॥ सूतलोक, दिशा, क्षेत्र, समुद्र, पर्वत, शिवा, ईश,



नदियां उसीमें है वेद, प्राण, विद्या कला अक्षर ॥११॥ मन्त्र, मन्त्र, पुराण और सब प्रकार के गुण, वीज और वीज के आत्मना-नम स्वेच्छा, प्राणवायु ॥१२॥ सब विषय सुषुम्ना के अन्तर्गत है सब उसीमें रहा हुआ है, वही सब स्रुतों के शरीरों में नाना नादियों उत्पन्न करती है ॥१३॥ उसका मूल अक्षर है और आत्मार्थ नीचे है वायुमार्ग से वह सर्वत्र गमन करती है। वहनर हजार नादियों में वायु चलती है ॥१४॥ कुण्डलिनो के तिरस्के, अक्षर और नीचे चारों ओर क्षेत्र हैं, इन सब द्वारा को रोक्ने में ॥१५॥ प्राण के साथ वीज ऊर्ध्वगामी होने से मोक्ष को प्राप्त होता है। सुषुम्ना को जानकर उसका भेद करके वायु को उसके बीच चला कर ॥१६॥ व्याणरंद्र के चन्द्रपीठ में उसका निनांव करे। शरीरमें वहनर हजार नादियोंके द्वारा है ॥१७॥ उत्तममें सुषुम्ना ही एक आत्मवी शक्ति है और सब निरर्थक है। वह परमानन्दरूप हृदय में और तालु मूल में स्थित है ॥१८॥ इसके ऊपर प्राण का निरोध मध्य में होने से मध्यम कहा जाता है। फिर ब्रह्मरंद्र में स्थित पराशक्ति चलाने, इस समय यदि अक्षर नृपि यानी मंत्रों की सी गुंज मुनाई दे तो चित्त को संसार में न अग्राने यानी उसीमें लगावे ॥१९॥

गमनागमन में रहा हुआ और गमनागमन से रहित, इन अन्धकार का नाश करने वाले चिद्रूप दीप के समान, सब लोगों के अन्तःकरण में रहे हुए परमात्मस्वरूप हंसको भेरा नमस्कार है ॥२०॥ अनाहत शब्द के भीतर जो ध्वनि होती है उसके

अन्दर ज्योति होती है और उस ज्योति के भीतर मन रहा हुआ होता है। वह मन जहां लय को प्राप्त होता है वह विष्णु का परम पद है ॥२१॥ उसको कोई आघार कहते हैं, और कोई सुषुम्ना या सरस्वति कहते हैं। आघार से विश्व उत्पन्न होता है और उसी में विश्व का लय होजाता है ॥२२॥ इसनिचे सर्व प्रयत्न से गुरु चरणों का सेवन करे ( क्योंकि ) आघार शक्ति की निद्रा में अविद्या से विश्व उत्पन्न हो जाता है ॥२३॥ उस शक्ति को जाग्रत करने से त्रैलोक्य जाग्रत हो जाता है। आघार को जो जानता है वह अन्धकार रूप माया से श्रेष्ठ ऐसे परमपद का सेवन करता है ॥२४॥ उसके अनुभव मात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥२५॥ आघार चक्र के बल से विद्यारुन्ध के समान प्रकाश प्राप्त हो और यदि उस पर स्वयं गुरुप्रसन्न है तब उसको मोक्षपद प्राप्त होता है इनमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥२६॥ आघार चक्र के बल ने पुण्य पाप का नाश करो, आघार चक्र में प्राण का अवरोध करने से वह आकाश में लीन होजाता है ॥२७॥ आघार चक्र में वायु का जब अवरोध होता है, योगी का शरीर कांपने लगता है। आघार चक्र में प्राण रोकने से योगी सर्वदा नृत्य करने लगता है ॥२८॥ आघार चक्र में वात का निरोध करने से वही संपूर्ण विश्व देखने लगता है। आघार ही सृष्टि है, आघार ही में सर्व देवता हैं, आघार में वेद है, इसलिये आघार ही का आश्रय ग्रहण करो ॥२९॥ आघार के पश्चिम



भाग में विवेकी का संगम होता है वहां स्नान करने से और उसका पान करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त होजाता है ॥ ३० ॥  
 आघार के पश्चिम में लिंग होता है, वहां एक द्वार होता है; उसको खोलने ही से मनुष्य जन्म बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ आघार के पश्चिम भाग में यदि चन्द्र, सूर्य मदा स्थिर हो जायें तो वहां स्वयं विदेवधर रहा हुआ है। उसका ध्यान करके ब्रह्ममय हो जाता है ॥ ३२ ॥ आघार के पश्चिम में ज्ञानमयी मूर्ति (जीव) रहती है वह छ-भों चक्रों का भेदन करके ब्रह्मरूप के बाहर जाती है ॥ ३३ ॥ बाएं और दाहिने प्राण को एक कर मुमुक्षा में प्रवेश करते हुए, ब्रह्मरूप में योगी प्रविष्ट हो धन्त में परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ मुमुक्षा में जब प्राण ऊँचे नीचे दीड़ता है और योगी मुमुक्षा में प्राण को निरन्तर चलाता रहता है ॥ ३५ ॥ जब बुद्धिमान योगी का प्राण मुमुक्षा में स्थिर होजाता है, तब मुमुक्षा में प्रवेश होने से चन्द्र सूर्य का लय हो जाता है ॥ ३६ ॥ उस समय के नगरस भावको जो जानता है वही योग का जानने वाला है। मुमुक्षा जब स्थिर होती है योगी के मन का चांचल्य दूर हो जाता है ॥ ३७ ॥ मुमुक्षा में योगी जब एक क्षण भी टिकता है या प्रार्थ क्षण भी रहता है ॥ ३८ ॥ या पानी में जैसा नमक मिल जाता है वैसे योगी जब मुमुक्षामें एकमेक होजाता है जैसे पानी दूधमें मिल जाता है वैसे योगी जब मुमुक्षा के साथ विलीन हो जाता है ॥ ३९ ॥ तब उसकी हृदय प्रविष्ट दृष्ट जाती है और सब संशय नष्ट हो

जाते हैं। वे परमाकाश में विलीन होकर परमगति को प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥ गंगा में और सागर में स्नान कर मणिकर्णिका को नमस्कार करे, वह मध्य नाड़ी में विचरण करने वाले के सोलहवें श्रंश के भी बराबर नहीं है ॥ ४१ ॥ श्रीचैल के दर्शन से मुक्ति होती है। वाराणसी में मृत्यु यानी लय होने से मुक्ति होती है, केदार का जब पान करने से और मध्य नाड़ी का दर्शन करने से मुक्ति होती है ॥ ४२ ॥ हजारों श्रृंगमेघ यज्ञ तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञ मुमुक्षा के ध्यान योग के एक सोलहवें श्रंश के भी बराबर नहीं है ॥ ४३ ॥ जो मुमुक्षा का सदा योग करता है वह पुरुष सब पापों से मुक्त होकर परम कल्याण को प्राप्त करता है ॥ ४४ ॥ मुमुक्षा ही परम तीर्थ है, मुमुक्षा ही परम जय है, मुमुक्षा ही श्रेष्ठ ध्यान है और मुमुक्षा ही परम गति है, ॥ ४५ ॥ नाना प्रकार के यज्ञ, दान, व्रत और नियम, मुमुक्षा के ध्यान योग के सोलहवें श्रंश की भी बराबरी नहीं करते ॥ ४६ ॥ ब्रह्मरन्ध्र के महारथान में हमेशा शिव रूपिणी शक्ति रहती है, परमदेवी चिच्छक्ति मध्यम में प्रतिष्ठित रहती है ॥ ४७ ॥ ललाट के श्रृंग भाग में स्थित आकाश कमल में माया शक्ति रहती है। ललाट के मध्य भाग में नादरूपा श्रेष्ठ शक्ति रहती है ॥ ४८ ॥ ललाट के श्रृंग भाग में बिंदुमयी शक्ति रहती है; बिंदु के मध्य में जीवात्म सूक्ष्म रूप से वास करता है ॥ ४९ ॥ हृदय में स्थूल रूप से श्री-शरीर के मध्य (मेरुदण्ड) में मध्यम रूप से रहता है ॥ ५० ॥



प्राण और अपान के वश हो जब नीचे और ऊपर जाएं और दाहिने मार्ग से दीड़ता रहता है परन्तु चंचलता के कारण दीखता नहीं ॥ ५१ ॥ हाथ के आघात से गेद जैसी उछलती रहती है जैसे ही प्राण अपान के आघात से जब को विश्रान्ति नहीं मिलती ॥ ५२ ॥ अपान प्राण को खींचता है और प्राण अपान को, हठकार से बाहर आता है और सकार से भीतर जाता है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार 'हंस हंस' यह मंत्र जब सर्वदा जपता रहता है । उसी को जो विद्वान् अक्षर और नित्य समझता है वहां सच्चा विद्वान् है ॥ ५४ ॥ बन्द के ऊर्ध्व भाग में कुण्डली शक्ति रही हुई है; योगियों को वह मुक्ति देती है और मूढ़ लोगों को बन्धन में रखती है । जो उसको जानता है वहां योग को जानता है ॥ ५५ ॥ सूर्योक्त, सुवर्लोक और स्वर्गलोक तथा चन्द्र, सूर्य, अग्नि आदि देवता यह त्रिमयी मात्रा में रहते हैं वह परमज्योतिः ॐ है ॥ ५६ ॥ तीन काल, तीन देवता, तीन लोक, तीन स्वर, तीन वेद त्रिमय स्थित हैं वह परं ज्योतिः ॐ है ॥ ५७ ॥ चित्त चंचल है तब संसार है, वह चिन्मय हो जाय उपाकों मोक्ष कहते हैं । इर्मात्रे, हे ब्रह्मा, इह बुद्धिपूर्वक चित्त को स्थिर करना चाहिये ॥ ५८ ॥ विषयों का कारण चित्त है, चित्त के होने ही से तीन लोक हैं; उसके शीर्ष होने से अपान का श्वास हो जाता है, इसका ठीक ठीक प्रिकार कर ॥ ५९ ॥ मन या अहंकार, आकाश के समान प्रिकार है मन या अहंकार सर्वतोमुख है मन या अहंकार ही सब का आत्मा है जहां मन नहीं है वहां केवल परमब्रह्म

है ॥ ६० ॥ कर्मों से मन उत्पन्न होता है और मन ही पातकों से लगायमान होता है ; मनही यदि उन्मन होजाय तो न पुण्य है न पाप ॥ ६१ ॥ मन से मन को देखकर जब श्रुति शून्य हो जाय तो परम दुर्लभ ऐसे परब्रह्म का दर्शन हो जाता है ॥ ६२ ॥ योगी मन से मनको देखकर मुक्त हो जाता है, मन से मनको देखकर उन्मनो के अन्त स्वल्प का सदा स्मरण करे ॥ ६३ ॥ मन से मनको देखकर सदा योगनिष्ठ रहना चाहिये । मनसे मन को देखने से दस अनुभव प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥ जब ये अनुभव प्राप्त हो तब वह योगीश्वर हो जाता है ॥ ६५ ॥ बिन्दु, नाद, आनाय तब वह योगीश्वर हो जाता है ॥ ६५ ॥ बिन्दु, नाद, कला, ज्योति, सूर्य, चन्द्र, द्रव, तारका, शाल और शान्तातीव यह शान्तातीव ही परब्रह्म है ॥ ६६ ॥ ( यह अनुभव प्राप्त होने के ) पश्चात् योगी हंसता है प्रसन्न होता है, प्रेम से क्रीड़ा करता है और मुखा होता है । अनुभव युक्त बुद्धि से जीवन व्यतीत करता है, सब ओरसे मय रखता है यानी विषयों से दूर रहता है ॥ ६७ ॥ शोक के समय वह निमग्न से तथा बुद्धिमानी से रहता है और संप्रदा प्राप्त होने से वह मोह में नहीं गिरता । शत्रुता के कार्य में कांपता है और काम की उपेक्षा करते हुए उसमें रमण नहीं करता ॥ ६८ ॥ चित्त काममें रत है ऐसा स्मरण रखकर उसके घाटी में जानता है क्योंकि जहां प्राण रहता है वही चित्त श्रवण रहता है ॥ ६९ ॥ मन चन्द्र है, रवि प्राण है और दृष्टि ( बुद्धि ) अग्नि है । हे ब्रह्मा, बिन्दु, नाद और कला ये, विष्णु, ब्रह्मा और शंकर ये तीन देवता हैं ॥ ७० ॥ सदा नाद का अनुसन्धान करने से



वासना क्षीण हो जाती है, तब है ब्रह्मा, प्राण निरंजन (तम रहित) मनमें लीन हो जाते हैं ॥ ७१ ॥ जो नार है वह ही बिन्दु है और जो बिन्दु है उसी का चित्त कहते हैं; नाद बिन्दु और चित्त दोनों से एकता प्राप्त कर ले ॥ ७२ ॥ मन ही बिन्दु है वही उत्पत्ति स्थिति का कारण है; जैसे दूध से घी उत्पन्न होता है, वैसे मनसे विदु उत्पन्न होता है ॥ ७३ ॥ दृ-श्रो-चक्रों को जानकर मुख रूप मण्डल में प्रवेश करे। प्राण को खींच कर प्रवेश करे और उसको ऊर्ध्व चढ़ावे ॥ ७४ ॥ प्राण, विदु, चक्र और चित्त इनका अभ्यास करे एक ही समाधि से योगी समता रूप अप्रमत्त को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ७५ ॥ काण्ड में रही हुई अग्नि जिस प्रकार विना मयन के निकलती नहीं, वैसे ही अभ्यास के विना ज्ञानदीप भी प्रज्वलित नहीं होता ॥ ७६ ॥ जैसे घड़े में रखा हुआ दीप घट के बाहर नहीं प्रकाशता और उससे भिन्न ऐसे घट में दीप की ज्वाला भासती है ॥ ७७ ॥ उसी प्रकार उसके शरीर को घट कहते हैं और जीव उसका स्थान है और गुरु के उपदेश के प्राप्त होने से ब्रह्मज्ञान प्रकाशने लगता है ॥ ७८ ॥ मल्लाह रूप गुरु को प्राप्त करके उसके वचन का नौका के समान दृढ़ आश्रय करके, अभ्यास और वासना शक्ति के बल से मनुष्य भवसागर को तैर जाते हैं ॥ ७९ ॥ इति छठा अध्याय ।

॥ इति योग सिद्धोपनिषत् समाप्त ॥



## पैङ्गलोपनिषत् ।

[४०]

पैङ्गल ऋषि याज्ञवल्क्य के यहाँ गये। बारह संवत्सर उनको सेवा सुश्रुषा कर्त्तने के पश्चात् पैङ्गल ऋषि बोले, 'परम गूढ़ कैवल्य का मुझे उपदेश दीजिये।' याज्ञवल्क्य बोले, हे सांम्य यह संसार पहले जन्म ही था। वही नित्यमुक्त अविचिक्य, सत्य, ज्ञान और आनन्द स्वरूप, परिपूर्ण, सनातन अद्वितीय केवल एक ऐमा ब्रह्म है। उसमें महर्न्मि में जल के समान अथवा सीपों में चाँदी के समान अथवा न्याणु में पुरुष के समान अथवा स्फटिक में रेखा के समान लाल स्वेत और काले गुण वाली परन्तु जिसमें यह तीनों गुण साम्य अवस्था में हैं ऐसी अतिवर्चनीय मूल प्रकृति हुई। उसमें प्रतिबिम्बित हुआ वह साक्षी चैतन्य हुआ। फिर वह (मूल प्रकृति) विकृति को प्राप्त होकर सत्त्व गुण वाली आवरण शक्ति हुई, इसीको अव्यक्त कहते हैं। उसीमें जो प्रतिबिम्ब पड़ा वह ईश्वर चैतन्य हुआ। वह सर्वज्ञ है, भाषा उसके अधीन है वह सृष्टि स्थिति और प्रलय का आदि कर्त्ता है, वही जगत का अंकुर है। अपने में छिपा हुआ सकल जगत वह उत्पन्न करता है। प्राणियों के कर्मानुसार जिस प्रकार वह विश्व पट फँलाता है, उन प्राणियों के कर्मों का क्षय हो जाने से वह उसको उसी प्रकार समेट लेता है। तब उसीमें अखिल विश्व लपेटे हुए वल के



समान रहता है। ईश्वर में अधिष्ठित श्रावण शक्ति में रजोगुण मयी विक्षेप शक्ति होती है उसको महत् कहते हैं। उसमें प्रति-विधित चैतन्य हिरण्यगर्भ चैतन्य कहा जाता है। वह महत्तत्त्व का अभिमानो है और उसका शरीर कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट होता है। हिरण्यगर्भ में रही हुई विक्षेप शक्ति से तमोगुण श्रद्धि वाली श्रद्धाकार नामक स्थूल शक्ति होती है। उसमें प्रतिविधित जो चैतन्य है वह विराट् चैतन्य हुआ। उसका अभिमानो स्पष्ट शरीर वाला सर्व स्थूल जगत का पालन कर्ता प्रधान पुरुष विष्णु होता है। उस श्रावण से श्राकाश उत्पन्न हुआ; श्राकाश में वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी उत्पन्न हुई। यह पंचतन्मात्र तीनों गुणों वाले होते हैं। जगत्कर्ता को सृष्टि करने की इच्छा हुई तब उसने तमोगुण का श्रमीकार करके सूक्ष्मतन्मात्राओं को स्थूल भूतों में परिणत करने की इच्छा की। उत्पन्न किये हुए परिमित भूतों में से हर एक को श्राधा करके हर आधे के पुनः चार भाग किये। प्रति अर्ध भाग के साथ अन्य भूतोंके आधेके चौथे भाग विनाके भूतोंका पंचा-करण किया और इन पंचोक्त भूतों से अनंत कोटि ब्रह्माण्ड, उन उन ब्रह्माण्डों के उचित चौदह भुवन और उन उन भुवनों के उचित इन्द्रिय वाले स्थूल शरीर उसने उत्पन्न किये। पंच भूतों के रजोगुण के श्रंश के उसने चार विभाग किये इनके तं न भागों से पाँच प्रकार के प्राण उत्पन्न किये और चौथे भाग में कर्मेन्द्रियों को उत्पन्न किया। भूतों के सत्त्वांश के चार भाग कर

के उनमें से तीन भागों से पाँच दृति वाला समष्टि श्रंतःकरण उत्पन्न किया और चौथे सत्त्वगुण के श्रंश से ज्ञानेन्द्रियां उत्पन्न कीं। सत्त्वगुण के समष्टि से इन्द्रियों के देवता उत्पन्न किये। उनको उत्पन्न करके उसने ब्रह्माण्डों में स्थापित कर दिये और उसको आज्ञा से श्रद्धाकार से युक्त विराट् स्थूलों को रक्षा करने लगा। हिरण्यगर्भ उसकी आज्ञा से सूक्ष्म सृष्टियों की पालना करने लगा। ब्रह्माण्ड में स्थित वे सब उसके विना चल न सके। न कुछ चेष्टा कर सके। उसको सचेतन करने की उसने इच्छा की और समस्त व्यष्टि का मस्तक विदीरण करके उसने ब्रह्माण्डों में और ब्रह्माण्डों में प्रवेश किया, तब वे सब जड़ होते हुए भी चेतन के समान सब प्रकार के काम करने लगे। सर्वज्ञ ईश्वर माया के श्रंश से युक्त होकर व्यष्टि शरीर में प्रवेश करके माया से मोहित होकर जीव भाव को प्राप्त हुआ। तीनों शरीरों से तादान्त्र्य को प्राप्त करके वह कर्ता भोक्ता बन गया। जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति, सुर्क्षा और मरण इन धर्मों से युक्त होकर बहुल दुख को प्राप्त करता है, घटियंत्र के समान अथवा कुम्हार के चक्र के समान जन्म मरण के फेरे में फिरा करता है।

॥ इति प्रथम अध्याय ॥

पञ्चल ऋषि ने पुनः याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया कि 'सब लोकों की सृष्टि स्थिति और संहार करने वाला उसका प्रभु ऐसा



ईश्वर जीव भाव को किस प्रकार प्राप्त हुआ ?' याज्ञवल्क्य ने कहा, स्थूल, सूक्ष्म और कारण देहों की उत्पत्ति सहित जीव के और ईश्वर के स्वरूप का विवेचन करके तुझसे कहता हूँ, मात्र-धानता पूर्वक एकाग्रता से श्रवण कर। पंचीकृत महाभूतों के अंश को ग्रहण करके व्याप्ति और समष्टि के स्थूल शरीरों को ईश्वर ने क्रमशः उत्पन्न किया। कपाल, चर्म, आँतें, हड्डि, मांस और नख ये पाँच पृथिवी के अंश हैं। खीर, मूत्र, लार, पर्माना आदि जल के अंश हैं। मूत्र, प्यास, उष्णता, मोह, मैथुन आदि अग्नि के अंश हैं। चलना, उठना, साँस लेना आदि वायु के अंश हैं। काम, क्रोध आदि आकाश के अंश हैं। इन सबका संघात रूप, कर्म से बना हुआ, त्वचा आदि इन्द्रियों से युक्त दाल्य आदि अन्नस्थानों के अभिमान का आधार भूत और नाना प्रकार के दोषों से युक्त ऐसा यह स्थूल शरीर है।

पदचान् अपंचीकृत महाभूतों के समष्टि रजोगुण के तीन अंश से प्राण उत्पन्न किये। प्राण, अग्नान, व्यान, उदान और समान यह पाँच प्रकार के प्राण हैं। नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और वनजय ये उग्र प्राण हैं। हृदय, मुख, नाभि, कंठ और सब शरीर यह उनके स्थान हैं। आकाशादि के रजोगुण के चतुर्थ अंशसे उत्पन्न कर्मेन्द्रिय उत्पन्न किये। वाक्, पाणि, पाद पायु और उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रिय हैं। बोलना, ग्रहण करना, चन्ना, मल निक्षर्जन करना और आनन्द यह उनके विषय हैं। इस प्रकार पंच महाभूतों के सत्त्व गुणी तीन अंश से समष्टि से उत्पन्न अन्तःकरण

उत्पन्न किया। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और अन्तःकरण उसको धृतिपाँ हैं। संकल्प, निश्चय, स्मरण, अभिमान और अनुसंधान उसके विषय हैं। गला, मुख, नाभि, हृदय और भ्रूमध्य उनके स्थान हैं। भूतों के सत्त्वगुणी चतुर्थ अंश से ज्ञानेन्द्रियां उत्पन्न कीं। श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जीभ और नाक यह पाँच ज्ञानेन्द्रियां हैं। शब्द, स्पर्श रूप, रस और गंध उनके विषय हैं। दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी, अग्नि, इन्द्र, उषेन्द्र, यम, चन्द्र, विष्णु, चतुर्मुखी ब्रह्मा और शंकर-यह इन्द्रियों और अंतःकरण के अधिपति हैं।

अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय यह पाँच कोश हैं। अन्न के रस से उत्पन्न हुआ, अन्न रस से ही बहने वाला और अन्नरस मय पृथ्वी में जो लय को प्राप्त होता है वह अन्नमय कोश है। यही स्थूल शरीर है। कर्मेन्द्रियों के सहित पाँच प्राण का प्राणमय कोश होता है। ज्ञानेन्द्रियों के सहित मन जेन से मनोमय कोश और ज्ञानेन्द्रियों के साथ बुद्धि जेन से विज्ञानमय कोश होता है। यह तीन कोश वाला त्रिग शरीर है। स्वरूप का जिसमें अज्ञान होता है वह आनन्दमय कोश है। यही कारण शरीर है। ज्ञानेन्द्रिय पंचक, कर्मेन्द्रियपंचक, प्राणादि पंचक, पंच महाभूत, अन्तःकरण चतुष्टय, काम, कर्म और अविद्या इनको पुर्याङ्का कहते हैं। ईश्वर को आज्ञा से विघट ने व्यष्टि गेह में प्रवेश किया और बुद्धि से रह कर विस्व संज्ञा को प्राप्त



हृद्मा । विज्ञानात्मा, चिदाभास, विद्वत्, व्यवहारिक, जाग्रत अवस्था के स्थूल देह का अभिमानो और कर्मों यह विद्वत् के नाम हैं । ईश्वर की आज्ञा से सूत्रात्मा मन के अधिष्ठान में व्यष्टि सूक्ष्म शरीर को प्राप्त होकर ऐजस् हृद्मा । नेत्रम्, प्राणिभौमिक, स्वप्न कल्पित-यह तैजस् के नाम हैं । ईश्वर की आज्ञा से माया की उपाधि वाला अव्यक्त से युक्त हृद्मा व्यष्टि के कारण शरीर में प्रवेश करके 'प्राज्ञ' संज्ञा को प्राप्त हृद्मा । प्राज्ञ अविविच्छन्न, पारमार्थिक, सुषुप्ति का अभिमानो-यह प्राज्ञ के नाम हैं । अव्यक्त के शंख रूप अज्ञान से आच्छादित हुए परमार्थिक जीव की 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य ब्रह्म से एकता बताते हैं न कि व्यवहारिक या प्रतिभासक की ब्रह्म से । अंत करण में जो प्रतिविविक्त चेतन्य है वही अवस्थात्रय को प्राप्त होता है । वह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्था को प्राप्त होता है । यह जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होकर घटी यंत्र के समान दुर्बो होता है और मृत के समान हो रहता है । जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति, सूक्ष्म और मरण यह पांच अवस्था हैं ।

अपने अपने देवताओं के श्रद्धा से युक्त होकर श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियां शब्दादि विषयों का ग्रहण जिस अवस्था में करती हैं वह जाग्रत अवस्था है । उस अवस्था में जीव अमृत में रहकर मन्त्र के नेत्र चरण तक व्याप्त करके नेत्री और श्रवणादि यानी कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रियों के समस्त कर्म करता है; और उन उन कर्मों के फल का भोगने वाला होता है । वही परलोक

में जाकर अपने कर्मों के फल भोगता है । वह सार्वभौम राजा के समान व्यवहार से श्रमित होकर अंतर्गृह में प्रवेश करने की इच्छा से मार्ग में ठहरता है । इन्द्रियों की क्रिया बन्द होने पर जाग्रत अवस्था के संस्कारों से उपस्थित हुई प्रबोध अवस्था में विषय विषयी रूप जो स्फुरणा होती है वह स्वप्नावस्था है । उस अवस्था में जागृति के व्यवहार का लोप कर विश्व नामा जीव नाही मध्य में विचरण करता हृद्मा तैजस के भावको प्राप्त होता है और अपनी वासना के अनुसृत विचित्र सृष्टि अपने आभास से भासित करता है और स्वयं ही अपनी इच्छानुसार भोग भोगता है ।

जिसमें चित्त ही एक कारण होता है उस अवस्था को सुषुप्ति कहते हैं । अमरण करके थका हृद्मा पक्षी जिस प्रकार पंख समेट कर घोंसले की ओर जाता है वैसे ही जाग्रत स्वप्न के प्रपंच के व्यवहार से थका हृद्मा जीव भी अज्ञान में प्रवेश करके स्वानंद का भोग करता है ।

अकस्मात् दण्ड या मुद्गर से ताड़न किये हुए मनुष्य के समान मय और अज्ञान से जिसमें सब इन्द्रियां कांप रही हो ऐसी मृत तुल्य अवस्था सूक्ष्म है । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और सूक्ष्म इन अवस्थाओं से भिन्न कीट से लेकर ब्रह्मा तक सब जीवों को मय देने वाली स्थूल देह का नाश करने वाली मरण अवस्था है । कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, उनके विषय (तन्मात्राएँ) और प्राण इन



सबको संकलित करके काम और कर्म से युक्त हुआ और अविद्या से वेष्टित हुआ जीव अल्प देह को प्राप्त करके परलोक को जाता है। पूर्व कर्मों के फल के विपाक से भँवर में फँस हुए कीट के समान शान्ति को प्राप्त नहीं होता। सत्कर्मों के परिपाक से बहुत जन्मों के पश्चात् मनुष्य को मोक्ष की इच्छा होती है तब सद्गुरु का आश्रय कर और उनकी चिरकाल सेवा करके वह बंध से मोक्ष पाता है। अविचार से बंध है। विचार से मोक्ष होता है इसलिये सदा विचार करे। अध्यारोप और अपवाद से स्वरूप का निश्चय किया जा सकता है इन्द्रिय जगत, जीव और ईश्वर के जीव भाव और (जगत के) भाव का वाच करने से अपने प्रत्यगात्मा में अभिन्न ऐसा ब्रह्म ही शेष रहता है इस प्रकार सदा विचार करते रहना चाहिये।

॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

अत्रात्र पैङ्गल ऋषि ने याज्ञवल्क्य ऋषि से कहा, 'मुझे महावाक्यों का विवरण सुनाइये'। याज्ञवल्क्य बोले, 'तत्त्वमसि' (वह तू है) त्वं तदसि (तू वह है) त्वं ब्रह्मासि (तू ब्रह्म है), अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूँ), इस प्रकार महावाक्य का अनुबोध करना चाहिये। 'तत्त्वमसि' महावाक्य में सर्वज्ञता आदि लक्षणों से युक्त माया की उपाधि वाला, सत्, चित् और आनन्द स्वरूप, जगत का कारण ऐसा अव्यक्त ईश्वर 'तत्' पद का वाच्य है। वही अन्तःकरण की उपाधि के कारण भिन्नता से बोध करता हुआ 'मैं' शब्द का प्रयोग करने वाला

जीव 'तत्' पद का वाच्य है। ईश्वर और जीव की उपाधियाँ जो माया और अविद्या है, उनको छोड़ कर जो 'तत्' और 'तत्त्वम्' पद का लक्ष्य होता है वह अपने प्रत्यगात्मा से अभिन्न ऐसा ब्रह्म है। 'तत्त्वमसि' (वह तू है) और 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) इन महावाक्यों का विचार करना अवलम्ब है। एकान्त में बैठ कर श्रवण किये हुए वाक्यों का जो लक्ष्यार्थ है उसका अनुसंधान करना मनन है। श्रवण और मनन द्वारा सुनिर्णीत अर्थ स्वरूप जो वस्तु है, उसमें एकाग्रता पूर्वक चित्त की स्थापना करना निदिध्यासन है। ध्याता ध्यान के भाव को छोड़कर बात रहित स्थान में रहे हुए दीप की ज्योति के समान, केवल ध्येय के आकार वाली चित्त की अवस्था को समाधि कहते हैं। उस अवस्था में वृत्तियाँ केवल आरमाकार ही होती हैं परन्तु जानी नहीं जाती, पश्चात् उनका स्मृति से अनुमान किया जाता है। इस अवस्था में आरमाकार वृत्ति द्वारा अनादि संसार में संचय किये हुए अनंत कर्म नष्ट हो जाते हैं पश्चात् अभ्यास में प्रवीणता प्राप्त होने पर सदा अमृत की सहस्रों धारा बरसती है इसलिये योगी लोग इसको धर्म मेघ समाधि कहते हैं। इस धर्म मेघ समाधि द्वारा नमस्त वासनाओं का जाल कट जाता है, पुण्य पाप रूप संचित कर्म समूल नष्ट हो जाते हैं और 'तत्त्वमसि' महावाक्य का बोध जो पहिले परोक्ष होता था सो अब हृदयेली में रहे हुए आँवले के समान यह वाक्य स्पष्टतया



विना किसी श्रवण के, ब्रह्म के अपरोक्ष अनुभव को कराना है तब योगी जीवन्मुक्त होता है।

ईश्वर ने पञ्चोक्त भूतों को अप्रयोज्य करने की इच्छा की। ब्रह्माण्ड तथा उसमें रहे हुए कार्य रग लोक उसने उनके कारण भाव को प्राप्त कर दिये। पञ्चात् सूक्ष्म कर्मेन्द्रिय, प्राण, ज्ञानेन्द्रिय और श्रान्तःकरण चतुष्टय, इन सबको एकत्रित करके मव भौतिक पदार्थों को उनके कारण भूत पञ्चक में मिलाकर भूमि जल में, जल श्रानि में, श्रानि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहंकार में, अहंकार महत् में, महत् शब्दयुक्त में और शब्दयुक्त पुरुष में इस क्रम से लय किया। विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर की उपाधियां नष्ट हो जाने से वे परमात्मा में विलीन होजाते हैं। पञ्चोक्त महाभूतों से बना हुआ कर्मों द्वारा प्राप्त होने वाला स्थूल शरीर कर्मों के (श्रमन् कर्मों के) क्षय से और सत्कर्मों के परिष्कार से अपञ्चीकृत होकर सूक्ष्म में संमिलित होता है और कारण रूप को प्राप्त होकर कारण के कारण रूप कूटस्थ प्रत्यगात्मा में विलीन हो जाता है। विश्व तैजस् और प्राज्ञ अपानी २ उपाधियों के लय होने से प्रत्यगात्मा में लीन हो जाते हैं। ज्ञान रूपी श्रानि से द्रव्य होनेके कारण ब्रह्माण्ड उसके कारणरूप श्रविद्या के साथ परमात्मामें लीन होजाता है इनलिये ब्रह्मरत पुरुष (ब्राह्मण) समाहित होकर हमेशा 'तत्' और 'त्वम्' पदका ऐक्य किया करे। ऐसा करने से मेघ के दूर होने से जैसे सूर्य प्रकाशता है वैसे आत्मा का साक्षात्कार होता है।

घड़े में रहे हुए दीपक के समान शरीर में रहने वाले निर्द्वैत ज्योतिष्मद् श्रमणुमात्र आत्मा का ध्यान करे ॥ १ ॥ भीतर रहे हुए प्रकाशमान कूटस्थ शब्दयुक्त आत्मा का जो भुक्ति नीद प्राये तब तक तथा मृत्यु को प्राप्त हो तब तक ध्यान करता रहता है ॥ २ ॥ उसको जीवन्मुक्त समझना चाहिए। वह शून्य है, कृतकृत्य है। जीवन्मुक्त पद का त्याग कर अपने देह को काल के वश करने के पदचान यह विदेह भुक्ति को प्राप्त होता है जैसे पवन का बहना बंद हो जाय ॥ ३ ॥ पदचान् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध से रहित, शब्दयुक्त नित्य, श्रानादि, श्रान्त, महत् से पर और शान्तत ऐसा वही निर्विकार शुद्ध ब्रह्म रह जाता है ॥ ४ ॥

॥ इति तृतीय अध्याय ॥

पुनः पञ्जल ऋषि ने याज्ञवल्क्य से पूछा, 'ज्ञानियों के कर्म कैसे होते हैं और उनको स्थिति कैसे होती है'। याज्ञवल्क्य बोले श्रमानित्वादि साधन संपन्न मुमुक्षु इक्कीस कुल को तारता है। ब्रह्म को जानने मात्र ही से एक सौ एक कुल को तारता है। आत्मा को रथो जान और शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी और मन को लगाम जान ॥ १ ॥ इन्द्रियों को श्रम्य कहते हैं, विषय उनके मार्ग हैं और विद्वान् पुरुष के हृदय मानो उड़ने वाले विमान हैं ॥ २ ॥ इन्द्रिय और मन से युक्त आत्मा ही भोक्ता है ऐसा महान ऋषि लोग कहते हैं, इमनिये हृदय में साक्षात्



नारायण ही निवास करता है ॥ ३ ॥ सांप को केंचुली के समान प्रारब्ध कर्म क्षय होने तक व्यवहार करता है । जो देही चन्द्र के समान चलता रहता है वह मुक्त है, अनिकेतन (त्यागी) है ॥ ४ ॥ वह तीर्थ स्थान में या चाण्डाल के घर देह छोड़े, कैवल्य ही को प्राप्त होता है, प्राणों को त्याग कर वह कैवल्य को प्राप्त होता है । उसके देह को चाहे जंगल में फेंक दिया जाय या गाड़ दिया जाय । संन्यास पुरुष के लिये कहा है अन्य के लिये नहीं ॥ ५ ॥ ब्रह्मी भूत संन्यासी के लिये न भूतक रखना चाहिये, न उसको दाह देना चाहिये, न पिण्ड तर्पण करना चाहिये, न श्राद्ध ॥ ६ ॥ जैसे पके हुए को फिर से नहीं पकाया जाता, जले हुए को जलाया नहीं जाता, वैसे ही जिम्मा देह ज्ञाननि से जला हुआ है उसका न श्राद्ध होता है न क्रिया ॥ ७ ॥ जब तक उपाधि नाश न हो तब तक गुरु की सेवा करनी चाहिये और गुरु के समान उनकी खी तथा पुत्रों के साथ वर्ताव करना चाहिए ॥ ८ ॥ जब "शुद्ध मन वाला, शुद्ध चैतन्यरूप सहिष्णु मैं है, मैं ही सहिष्णु हूँ," इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त होने पर, ज्ञान से अनुभव स्वरूप ज्ञेयरूप परमात्मा हृदय में भली प्रकार आरुह होजाय और देह शान्तिपद को प्राप्त होजाय, तब वह मन और बुद्धि से रहित चैतन्य रूप होजाता है । अमृत से तुम हुए पुरुष को जल से क्या प्रयोजन ? उसी प्रकार अपने आत्मा को जानने के पश्चात् वेदों से क्या प्रयोजन हो सकता है ? ज्ञानामृत से तुम हुए योगी को कुछ भी कर्तव्य नहीं रहता और यदि कर्तव्य है तो वह ज्ञानी

भी नहीं है । दूर स्थित होने पर भी वह दूर नहीं है और पिण्ड में स्थित हुए भी वह पिण्ड से भिन्न ऐसा प्रत्यागात्मा सर्वव्यापी है । हृदय को निर्मल करके और निरंजन का चित्रवत्न करके 'सर्व रूप ब्रह्म मैं हूँ परम सुख रूप ब्रह्म मैं हूँ' ऐसा जाने ॥ ९ ॥ जिस प्रकार जलमें जल, दूधमें दूध और घी में घी डालने से एक रूप होजाता है वैसे ही जीवात्मा और परमात्मा एक रूप हो जाते हैं ॥ १० ॥ ज्ञानसे देह दण्ड होने के परम्पत् जब बुद्धि अलंकार रूप होजाती है तब बुद्धिमान् पुरुष ज्ञानानि से कर्म बन्ध को दण्ड करता है । परन्तु शुद्ध वस्त्र के समान, पवित्र, अद्वैत रूप परमात्मा में प्राप्त होकर, जैसे जल में जल मिल कर एक रूप होजाता है, वैसेही वह उपाधिरहित अपने स्वरूपमें स्थित होजाता है ॥ ११ ॥ आत्मा आकाश के समान सूक्ष्म है तथा वायु के समान अदृश्य है । आत्मा वाह्य और आर्यन्तरमें निश्चल है और वह ज्ञान दोग से दीक्षता है ॥ १२ ॥ ज्ञानी कहीं भी और कैसे भी मरे जैसे आकाश सब स्थान पर है वैसे ब्रह्म सर्व व्यापक होनेसे ज्ञानी उनी स्थान पर ब्रह्म में विलीन हो जाता है ॥ १३ ॥ आकाश में घटाकाश के समान जो अपना तत्त्व से लय जान लेता है वह सब और से निरालंब और ज्ञान स्वरूप ब्रह्म का प्रकाश पाता है ॥ १४ ॥ यदि मनुष्य एक पाद पर स्थित होकर सहस्र वर्ष तक तपस्या करे तो भी वह ध्यान योग की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है ॥ १५ ॥ जितना ज्ञान है और जितना ज्ञेय है उस सबको यदि कोई जानना चाहे तो सहस्र वर्षों में भी शास्त्रों का भ्रन्त नहीं



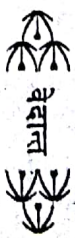
पात्रेणा॥१६॥ जानने योग्य एक केवल भक्षर परब्रह्म है और दूसरे यह जानने योग्य बात है कि मनुष्य का जीवन चंचल है, इसलिये बाह्यों के आडंबर को छोड़कर, जो सत्य है उसकी उपासना करो ॥१७॥ नाना प्रकार के कर्म, शौच, जप, यज्ञ, तीर्थ यात्रा, सब कुछ वहीं तक हैं जहां तक तत्व को प्राप्ति न हुई हो ॥१८॥ "मैं ब्रह्म हूं" यह भाव हो महारमाओं के मोक्ष का हेतु है। वन्ध और मोक्ष के लिये दो ही शब्द हैं, एक 'मेरा नहीं' और दूसरा 'मेरा' ॥१९॥ मेरा कहने ही से बन्धन होता है और 'मेरा' को त्यागने ही से मोक्ष होता है। मन जब उन्मनी भाव का प्राप्त होता है तब द्वैतभाव नहीं रहता ॥२०॥ उन्मनी भाव को प्राप्त होना ही परमपद है उन्मनी अवस्था में जहां मन जाय वहीं पर परमपद है ॥२१॥ सर्वत्र अवस्थित परब्रह्म ही है। जैसे आकाश में कोई घूसा मारे या मूख लगने पर धान के बदले मूनी कटे (उसके ये व्यवसाय जैसे निरर्थक होते हैं) ॥२२॥ उसी प्रकार जो 'मैं ब्रह्म' है, इस बात को नहीं जानता उनका मोक्ष नहीं होता।

जो इस उपनिषत् को नित्य पढ़ता है वह अग्नि, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, और शंकर के समान पवित्र हो जाता है उसको सब तीर्थों में स्नान करने का फल मिलता है, उसको सब वेदों के अध्ययन का फल मिलता है और सब वेद विहित व्रत आचरण करने का फल प्राप्त होता है। उसको इतिहास पुराण आदि पढ़ने का तथा खद का लाखों जप करने का और

दस हजार प्रणव के जप का फल मिलता है उसकी आत्मा की और पीछे की दस दस पीढ़ियां पवित्र हो जाती हैं, और वह अपने साथ बैठने वालों को पावन करता है। वह महान होता है ब्रह्महत्या, सुरापान, मूर्खों की चोरी, गुरु स्त्री गमन तथा ऐसे पाप करने वाले से संगति रखने के पाप से वह मुक्त हो जाता है।

आख जैसे समस्त आकाश को देखती है वैसे ही विद्वान् ब्राह्मण विष्णु पद को स्पष्ट देखता है, वे सदा खुली आंख से उसे देखते हुए उस विष्णु पद की स्तुति कर उसको प्रकाश करते हैं। ॐ सत्य है, यह उपनिषत् है।

॥ इति पञ्चलोपनिषत् समाप्त ॥



वेदान्त



## शाण्डिल्योपनिषत् ।

[४१]

शाण्डिल्य ने अथर्वा से कहा, 'आत्म प्राप्ति के लिये मायन रूप जैसे अष्टांग योगका मुझे उपदेश दीजिये' अथर्वा ने उत्तर दिया, हे शाण्डिल्य यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योग के आठ अंग हैं। योग में यम दस हैं, और उतने ही नियम हैं। आसन आठ हैं। प्राणायाम तीन हैं। प्रत्याहार पांच हैं और उतनी ही धारणाएँ हैं। ध्यान दो प्रकार का है और समाधि एक ही है। इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, तप, क्षमा, धृति, मिताहार और शौच—यह दस यम हैं। मन वचन और कर्म से किन्नी भूत प्राणी को किसी समय क्लेश पहुँचाना हिंसा है ( इससे विपरीत अहिंसा है ) मन, वचन और कर्म से सब भूत प्राणियों के हिंसा के अर्थ यथार्थ भाषण करना सत्य कहलाता है। मन, वचन और कर्म से दूसरे के मन के लिये निम्न रहना अस्तेय है। मन, वचन और कर्म द्वारा सर्वदा सर्वत्र मैथुन का त्याग ब्रह्मचर्य कहा जाता है। सर्व भूत प्राणियों में सदा अनुग्रह ( प्रेम ) रखना दया है। कोई विहित आचरण करे या कोई अविहित आचरण करे उनके प्रवृत्ति निवृत्ति में सदा समान रहना, इसको आर्जव कहते हैं। कोई प्रिय हो या अप्रिय हो उन सबके सत्कार या तिरस्कार

को महन करना क्षमा कहो जाती है। अर्थ की ह्राप्ति होने पर अथवा द्रष्टृ मित्र का वियोग होने पर अथवा इनकी प्राप्ति होने पर मन को स्थिर रखना, इसको धृति कहते हैं। चाँचाई फट खाली रखकर स्निग्ध ( चिकना ) और मधुर आहार करना मिताहार कहा जाता है। बाह्य और आन्तरिक मिलकर दो प्रकार का शौच होता है। भुत्तिका और जल से बाह्य शौच होता है और मन को शुद्ध करना आंतर शौच है, वह आध्यात्म ज्ञान से प्राप्त होता है ॥३॥

तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वरपूजा, सिद्धान्त श्रवण, लज्जा, मति, जप और व्रत—ये दस नियम हैं। विधि के अनुसार कृच्छ्र चांद्रायणादि द्वारा शरीर को धोए करना तप है। जो कुछ महज प्राप्त हो उसी में आनन्द मानना संतोष है। वेद में कहे हुए धर्म और अधर्म के निर्णय में विचारास रखना यह आस्तिक्य है। न्याय से उपार्जित धन और धान्य, जिसको आश्रयकता हो उसको, अद्धा पूर्वक देने का नाम दान है। प्रसन्नता पूर्वक और यथा शक्ति विष्णु शिव आदि देवताओं का पूजन करना वह ईश्वर पूजन कहा है। वेदांत वाक्यों के अर्थ का विचार करना यह श्रवण है। वेद वचन के अनुसार अथवा लौकिक रीति के अनुसार जो कर्म दुरे माने गये हैं, उनके करनेमें लज्जा रखने को लज्जा कहते हैं। वेद विहित मार्ग में अद्धा रखने का नाम मति है। वेद से विरुद्ध न हो ऐसे मंत्र का गुह से उपदेश लेकर उसका वारंवार उच्चारण करने को जप कहते हैं। जप दो



प्रकार का होता है; वाचिक और मानस । मन से ध्यान पूर्वक जप करते हैं, उसको मानस जप कहते हैं । वाचिक जप दो प्रकार से होता है; उच्च ध्वनि से और धीरे स्वर से । मंत्र का उच्च ध्वनि से उच्चारण करने से यथोक्त फल होता है, धीरे स्वर से मंत्र जपने से महत्तम गुणा और मन हो मन जप करने से कोटि गुणा फल होता है । वेदोक्त विधि निषेध का निःश्रय श्रुतिगुण करना व्रत है ॥ २ ॥

स्वस्तिकासन, गोमुखासन, पद्मासन, वीरासन, विहसल, भद्रासन, मुक्तासन, और मयूरासन—ये आठ आसन हैं । घोंटू और जंघ के बीच में पैर के तलुए रखकर सीधे बैठना उसको स्वस्तिकासन कहते हैं ॥ १ ॥ पीठ के पीछे बाईं और दाहिने पैर की एड़ी और दाहिनी और बाएं पैर की एड़ी लगाकर दोनों हाथों से परस्पर श्रृंगे पकड़ कर गोमुखाकार बनाकर बैठने से गोमुखासन होता है ॥ २ ॥ बाईं जंघ पर दाहिने पैर का तलुआ और दाहिनी जंघ पर बाएं पैर का तलुआ रखकर बैठने से, हे शाण्डिल्य, सबको पूजनीय ऐसा पद्मासन हो जाता है ॥ ३ ॥ बाईं जंघ पर दाहिना पैर और दाहिनी जंघ पर बायां पैर रखने से वीरासन होता है ॥ ४ ॥ दाहिनी जंघ में बाईं एड़ी और बाईं जंघ में दाहिनी एड़ी लगाकर हाथ घोंटू पर रखते हुए हाथ की उंगलियां पसार रखे ॥ ५ ॥ और मुख फाड़कर दृष्टि नासिकाग्र रखे—इस प्रकार सावधान बैठने से योगियों को पूजनीय ऐसा विहसल हो जाता है ॥ ६ ॥ बायां पैर गुदा और

लिंग के बीच में लगाकर दाहिना पैर लिंग के ऊपर लगावे और मूत्रमय में ध्यान लगावे, इसको सिद्धासन कहते हैं ॥ ७ ॥ एड़ियों को श्रृणु के नीचे सीवनी के बाजू में लगाकर और दोनों हाथों से उनको दृढ़ जमाने से सब रोगों को और विष को दूर करने वाला भद्रासन होता है ॥ ८ ॥ सीवनी के बाईं और दाहिने पैर की एड़ी से दाहिनी और बाएं पैर की एड़ी से सीवनी को दबाकर बैठना उसको मुक्तासन कहते हैं ॥ ९ ॥ दोनों हाथों की हथेलियां जमीन पर टेककर हाथ की कोनिर्धा नाभि के पास रखे ॥ १० ॥ और सिर तथा पैर श्वर ऊंचे उठाकर दंडाकार हो जाय—सर्व दोषों को दूर करने वाला ऐसा यह मयूरासन हो जाता है ॥ ११ ॥ आसन से शरीरगत सब रोग नष्ट हो जाते हैं, तथा विष भी पच जाता है । जो भ्रष्ट हो वह जिस किसी आसन को सुखपूर्वक कर सके उसी को करे । जिमने आसन साध लिया उसने तीनों जगत जीत लिये यम नियम से संयुक्त पुरुष प्राणायाम का आचरण करे, इससे नाड़ियां शुद्ध होती हैं ॥ ३ ॥ पद्मचातु शाण्डिल्य ने श्रवर्वा से पूछा, 'किस उपाय से नाड़ियां शुद्ध होती हैं ? नाड़ियां कितनी हैं और उनकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है ? उनमें कितने वायु होते हैं और उनके स्थान कौन से हैं ? उनके कर्म क्या होते हैं—यह तथा शरीर में और जो कुछ जानने योग्य हो सब मुझे बता दीजिये' ।

श्रवर्वा बोले, यह शरीर छिदानवे शृंगुल बंधा होता है और शरीर से प्राण द्वादश शृंगुल अधिक विस्तार वाला होता



है। जो योगाभ्यास से शरीर में अवस्थित प्राण को और अग्नि को समान प्रथवा न्यूनता रहित करता है वह उत्तम प्रकार का योगी है। मनुष्यों के देह में तम सुषुप्त के समान कान्ति वाला त्रिकोणाकार अग्नि स्थान होता है। पशुओं में चार कोने वाला और पक्षियों में अग्नि स्थान गोल होता है। अग्नि स्थान में छोटी सी और शोभायमान अग्नि की ज्वाला होती है। देह का मध्य गुदा के दो अंगुल ऊपर और लिंग के दो अंगुल नीचे मनुष्यों में होता है। पशुओं में उनके हृदय स्थान में और पक्षियों में पेट में होता है। मनुष्यों का देह मध्य नो अंगुल लम्बा चार अंगुल चौड़ा और थोड़े की आकृति का होता है। उसके मध्य में नाभि होती है। नाभि स्थान में बारह पशुरियों का एक चक्र होता है; पुण्य पाप से प्रेरित होकर जीव उसमें धूमा करता है तथा प्राण भी उसी में चला करता है। तन्मूर्तों के जाल में जैसे मकड़ी धूमा करती है वैसे ही यह प्राण उसमें धूमाता रहता है। इस देह में जीव प्राण पर आरुढ़ रहता है। नाभि से ऊपर नीचे चारों ओर कुण्डलिनी का स्थान है (इसको स्कंध या कंद कहते हैं) अष्ट प्रकृतिरूप आठ आवर्त वाली कुण्डलिनी शक्ति होती है। प्राण का ठीक २ संचारण करने से श्रवण जल आदि स्कंध के चारों ओर नियन्त्रित होते हैं और कुण्डलिनी शक्ति जो अपने मुखसे ब्रह्मरंध्र को ढांप कर रहती है। योगाभ्यास के समय अज्ञान और अग्नि द्वारा चालित होती है। वह जब हृदयाकाश में पहुँचती है तब परम उज्ज्वल ऐसे ज्ञानस्वरूप को

प्राप्त होती है। मध्यम्य कुण्डलिनी के आगरे चौदह प्रमान नाड़ियाँ होती हैं—इडा, पिंगला, सुषुम्ना, सरस्वती, वारुणी, पूषा, हस्तिजिह्वा, यशस्विनी, विश्वोदरी, कुहू, शिखिनी, पर्यस्विनी अलम्बुजा और गान्धारी—यह चौदह नाड़ियाँ हैं। उनमें सुषुम्ना सर्वको धारण करने वाली और मोक्ष के मार्गस्थ कहती जाती है। यह गुदा के पृष्ठ भाग से गिर के ब्रह्मरंध्र तक व्यक्त रहती है और मध्यम रूप में यह महाशक्ति है। सुषुम्ना की चारों ओर इडा और दाहिनी ओर पिंगला होती है। इडा में चन्द्र नामा प्राण चलता है और पिंगला में सूर्यनामा प्राण चलता है। चन्द्र तमोऽन्ध और सूर्य रजोऽन्ध होता है; सूर्य विषवाला और चन्द्र शम्युत वाला होता है। वे दोनों काल को धारण करते हैं और सुषुम्ना काल का भोग करती है। सुषुम्ना के पीछे समीप ही सरस्वति और कुहू होती है। यशस्विनी और कुहू के बीच में वारुणी रहती है। पूषा और सरस्वति के बीच में पर्यस्विनी व्यवस्थित है। गान्धारी और सरस्वति के बीच में यशस्विनी रहती है। कन्द में अलम्बुजा रहती है। सुषुम्ना के पूर्व भाग में लिंग तक कुहू पहुँचती है; कुण्डलिनी के ऊपर और नीचे वारुणी होती है, वह चारों ओर जाती है। यशस्विनी और सोम्या पर के अंगुठों तक पहुँचती है। पिंगला ऊपर की ओर दाहिनी नासिका तक जाती है। पिंगला के पीछे से दाहिने नेत्र तक पूषा होती है। दाहिने कान तक यशस्विनी जाती है। जीभ के अग्रभाग तक सरस्वति रहती है।



ऊपर की ओर बाएँ कान तक शींखनी जाती है। इडा के पीछे से बाएँ नेत्र के भ्रूज तक गांधारी होती है। गुदा के मूल भाग से नीचे अग्निसूत्र जाती है, इन चौदह नाडियों में से अग्न्य नाडियाँ निकलती हैं और उनसे भी फिर ओर और नाडियाँ निकलती हैं।

जैसे पीपल के पत्र में रेखाएँ होती हैं वैसे ही यह शरीर नाडियों से व्याप्त रहता है। प्राण, अपान, ममान, उदान, और व्यान तथा नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय—यह दश वायु सब नाडियों में चलते रहते हैं। मुख, नासिका, कण्ठ, नाभि दोनों चरण के अंगुष्ठ और कुण्डलिनी के ऊपर नीचे प्राण चलता है। कान, आँख, कमर, एडियाँ, नासिका, गला और चून्नी में व्यान का संचार रहता है। गुदा, लिग, जाँघें, घोंटू, पेट, वृषण, कमर, चूल्हा, नाभि, गुदा और अग्नि स्थान में अपान संचार करता है। सब सन्धियों में उदान संचार करता है, सब अंगों में द्वाय पुर में भी—समान संचार करता है।

स्रोत्रे हृष्ट, श्रवण के रस आदि को अग्नि के साथ समस्त शरीर में पहुँचा कर बहत्तर हजार नाडियों में चलता हुआ समान वायु अग्नि सहित सर्गोपांग शरीर को व्याप्त कर रहता है। नाग आदि वायु त्वचा, अस्थि आदि पाँच स्थानों में उत्पन्न होते हैं। पेट में रहते हुए श्रवण जल आदि को रसादि में परिणत करने के लिये पेट में रहता हुआ वायु उनको अलग अलग करता है। अग्नि के ऊपर जल और जल के ऊपर श्रवण आदि करता है।

रख कर और स्वयं अपान वनकर, अपान के साथ प्राण देह में रहता हुआ ज्वलन उत्पन्न करता है। वायु से पालन किया हुआ अग्नि देह में शरीर जलता रहता है। प्राणि से अग्नि को ज्वाला पेट में अवस्थित जल को अग्नि उष्ण कर देती है और इस जल में डाला हुआ व्यंजनों के सहित अन्न अग्नि युक्त जल से पक्व होजाता है। उसीसे पसीना, मूत्र, जल, रक्त और वीर्य इन रसों को पुरीष ( पाखाना ) आदि से प्राण अलग करता है। समान वायु से साथ सब नाडियों में रस पहुँचा कर श्वास रूप से वायु देह में संचार करता है। शरीर के वायु नव द्वारों से मूल मूत्र आदिका विसर्जन करते हैं। श्वास, उच्छ्वास और श्वासनायह प्राण के कर्म हैं। भारता, ग्रहण करना वेष्टा करना आदि कर्म व्यान करता है। देह को उठाना आदिक कर्म उदान से होते हैं। शरीर का पोषण समान का काम है। उद्धार आदि नाग के कर्म हैं, तन्मा आँख मूदना कूर्म का काम है, छींकना कृकल का काम है, तन्मा देवदत्त का और नाक छिनकना धनंजय का काम है। इस प्रकार नाडियों के स्थान और प्राणों के स्थान तथा उनके कर्म ठीक र जानकर नाड़ी शोधन करना चाहिये ॥ ४ ॥

अध्ययन समाप्त करके, सत्यधर्म से चलने वाला क्रोध को जीतने वाला गुरु शुश्रूषा में तत्पर, माता पिता की आज्ञा पालन करने वाला अपने आश्रम के योग्य आचार जिसने गुरुओं से जान लिये हों ऐसा पुरुष सब संग का त्याग करके यम नियम से युक्त होकर फल मूल और उदक से समृद्ध तपो-



वन में चला जाय । वह तपोवन भी रमणीय देश में हो, उसके चारों ओर वेदपाठ होता हो और स्वधर्म निरत ब्राह्मण समाज निवास करता हो । वह फल मूल पुष्प तथा जल से समृद्ध हो । ऐसे देवश्रमि समान तपोवन में नदी के किनारे, गाँव में ग्रथवा नगर में बहुत सुन्दर ऐसा मठ बनावे । मठ बहुत ऊँचा न होना चाहिये न बहुत नीचा और उसका द्वार छोटा होना चाहिये । उसको गोबर से खूब लीप कर और भली प्रकार सुरक्षित कर वहाँ वेदान्त का श्रवण करते हुए योगका अभ्यास करना चाहिये ।

प्रथम गणेशजी का पूजन करके आपने इष्ट देवता को नमस्कार करे और पूर्वोक्त आसनों में से जो सिद्ध हो उस आसन से मृदु आसन पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके बैठे । फिर विद्वान् साधक शिर और ग्रीवा समान रख, श्रूमध्य में चंद्र मंडल का ध्यान करते हुए चन्द्र के श्रमृत को नेत्र से पान करे । बारह मात्रासे दृढ़ासे पूरक करके उदर में स्थित ज्वाला युक्त श्रमि मंडल का 'र' बीज के सहित ध्यान करे और पिगला से रेचन करे ।

पञ्चात् पिगला से पूरक करके कुंभक करे और इडा से रेचक करे । तीन, चार, सात वा बारह मास पर्यंत तीनों संव्या काल में तथा बीच में मिलकर छः बार अभ्यास करने से नाडियां शुद्ध होती हैं । तब शरीर लघु और दीप्तिमान होता है; जठरानिष्ठता है तथा नाद सुनाई देने लगता है ॥५॥

प्राण और अपान के योग के प्राणायाम कहते हैं, रेचक, पूरक और कुंभक भेद से प्राणायाम तीन प्रकार के होते हैं । वे वयस्मिक है, इसलिये प्राण ही प्राणायाम है । पञ्च प्रादि किसी आसन से बैठ कर साधक नासिका के श्रमभाग में चन्द्रमा की प्रभा से सविष्टित, 'श्र' कार स्वरूप रक्त वर्ण देह वाली, हाथ में दण्ड धारण करते वाली और हंस पर भारूढ़ हुई ऐमी बाल रूपा गायत्री का ध्यान करे । 'उ' कार स्वरूप शुभ्र देह वाली हाथ में चक्र धारण करने वाली गरुड़ पर भारूढ़ हुई युवती रूपा सावित्री होती है । 'म' कार स्वरूप कृष्ण देह वाली देल पर भारूढ़ हुई त्रिशूलधारिणी वृद्धारूपा सरस्वति होती है । 'श्र' कार प्रादि तीनों के सम्पूर्ण कारणरूप और पर जोति स्वरूप प्राण है इस प्रकार ध्यान करे । सोलह मात्रा से दाहर् के वायु को 'श्र' कार का ध्यान करते हुए पूरक करे, चौसठ मात्रा से 'उ' कार का ध्यान करते हुए कुम्भक करे और 'म' कार का ध्यान करते हुए पिगला द्वारा बत्तीस मात्रा से रेचन करे; इसी क्रम से बारंबार करना चाहिये ॥ ६ ॥

आसन दृढ़ होने पर योगी श्रन्द्रियों का निग्रह करके परिरिप्त और हितकर आहार ग्रहण करते हुए सुषुम्ना नाडी में स्थित मन को दूर करने के लिये पचामन से बैठकर चन्द्र से पूरक करके पञ्चाशक्ति कुम्भक करे और सूर्य से रेचक करे; पुनः सूर्य से पूरक करके कुम्भक करे और चन्द्र से रेचन करे, जिससे



रेचक करे उसीसे पुरक करके कुम्भक करे । इस विषयक वे श्लोक हैं—

प्रथम इहा से प्राण आकर्षण करके कुम्भक करके प्रियता से रेचक करे, फिर प्रियता से वायु को प्राप्ति करके कुम्भक करे और बाँड़े नासिका से रेचक कर दे । इस प्रकार नियमपूर्वक सूर्य चन्द्र का अभ्यास नवातार करने रहने से तीन मास के पश्चात् नाडियां शुद्ध हो जाती हैं ॥ १ ॥

प्रतिफल, दुपहर में सायंकाल और मध्य रात्रि में मिलकर चार बार शनैः शनैः भ्रमसी बार तक कुम्भक का अभ्यास किया करे ॥ २ ॥ साधारण प्राणायाम में पनीना आता है, मध्यम में कम्प होता है और उत्तम कुम्भक में पद्मासन ऊपर उठ जाता है ॥ ३ ॥ भ्रम से निकले हुये पसीने से शरीर का मर्दन करे इससे शरीर लघु और दृढ़ होजाता है ॥ ४ ॥ प्रथम अभ्यास काल में धी दृढ़ का आहार रखना चाहिये परन्तु अभ्यास स्थिर होने के पश्चात् इसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है ॥ ५ ॥ त्रिस प्रकार मिष्ट, हाथी या व्याघ्र घीरे वीरे वक्ष में किये जाते हैं उसी प्रकार वायु का सेवन करना चाहिये नहीं तो वह साधक को नष्ट कर देता है ॥ ६ ॥ नावधानतापूर्वक वायु को बाहर निकाले, सावधानतापूर्वक पुरक करे और सावधानतापूर्वक कुम्भक करे—इस प्रकार करने ही से सिद्धि प्राप्त होगी ॥ ७ ॥ प्राण को यथेष्ट धारण करने से श्रानि प्रदीप्त होता है, (शनाहृत)

नाद सुनाई देता है और नाड़ी का शोषन होने से भारीभ्य प्राप्त होती है ॥ ८ ॥ विधिवत् प्राणायाम करने से सब नाडि शुद्ध हो जाती हैं और उनमें से प्राण निकल कर सुषुम्ना मुख में मुखपूर्वक प्रवेश करता है ॥ ९ ॥ मध्य में प्राण संचार होने से मन स्थिर हो जाता है और मन का जो सुरिभाव है वहो उत्पत्ती अवस्था है ॥ १० ॥ पुरक के अनन्त जालंधर बंध करना चाहिए और कुम्भक के अनन्त में और रेके आदि में उड्डियान बंध करना चाहिये ॥ ११ ॥ नीचे (शुदासे) संकोचन करके त्वरित कण्ठका संकोचन करे और बीच पश्चिमतान करने से प्राण ब्रह्मनाडी में गमन करता है ॥ १२ ॥ अपान को ऊर्ध्व उठाकर प्राण को कण्ठ से नीचे से जानें योगी जरा मरण से रहित होकर सोलह वर्ष का युवा जाता है ॥ १३ ॥

मुखान्न से बैठ कर दाहिनी नासिका से बाहर रहा हु पवन भीतर खींचे, केस और नखों तक वायु को पूरण करे रोकर खे और बाई नासिका से रेचक कर दे । ऐसा करने कपाल को शुद्ध होती है और प्राण संचार की नाडियों के रोग नष्ट हो जाते हैं । हृदय से नेकर कंठ तक क्षब्ध आवाज के हुए नासिका से घीरे २ पवन को खींचे और यथा शक्ति कुम्भक करके इडा से रेचक करे-ऐसा चलते बैठते हर समय किया क इससे कफ दोष दूर होते हैं तथा जठराग्नि बढ़ती है । मुख सीत्कार करते हुए वायु को खींचकर, यथा शक्ति कुम्भक क



नासिका से रेचक करे। इससे मूत्र, प्यास आलस और निद्रा नहीं उत्पन्न होते। जीभ से वायु ग्रहण करके यथा शक्ति कुम्भक करने पर नासिका से रेचन करे; ऐसा करने से गुल्म, प्लीहा, ज्वर, पित्त और क्षुधा आदि निवृत्त हो जाते हैं।

अन्न कुम्भक कहते हैं। कुम्भक दो प्रकार के होते हैं; सहित और केवल। रेचक पूरक के सहित करते हैं उसको सहित कुम्भक और रेचक पूरक न करते हुए करते हैं उसको केवल कुम्भक कहते हैं। केवल कुम्भक सिद्ध न हो वहां तक सहित कुम्भक करना चाहिये। केवल कुम्भक मिद्ध हो जाने पर उसके लिये तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। केवल कुम्भक से कुण्डलिनी जागृत हो जाती है, तब शरीर कृश (हलका) हो जाता है, मुख प्रसन्न रहता है और दृष्टि निर्मल हो जाती है। उसको अनाहत ध्वनि मुनाई देता है; वह समस्त रोगों से मुक्त रहता है; उसका ब्रह्मचर्य अखंड रहता है और उसको जठराग्नि तीव्र हो जाता है।

अंतर में ध्यान रखना और बाहर बिना पलक गिराये एकमी दृष्टि रखना,—यही मन्त्र शास्त्रों में बताया हुआ वैष्णवी मुद्रा है ॥ १४ ॥ अन्तर के ध्यान में जिसका मन और प्राण विलीन हो गया हो उसकी बहिर्दृष्टि नीची और निश्चल होती है, आंख का तारा तक नहीं हिलता। वह देखता कुछ नहीं परन्तु देखता सा प्रतीत होता है। जब यह कल्याण-कारिणी खेचरी मुद्रा एक हो लक्ष्य वाली होती है, तब शून्य

और शून्य से रहित ऐसे पद की प्राप्ति होती है वही वैष्णवी पद है ॥ १५ ॥

प्राची आखें मूंद कर मनको स्थिर करते हुए दृष्टि नासिकाग्र रखे और चंद्र और सूर्य को विलीन करके प्राण निषंद भावको प्राप्त करे। इसके पश्चात् बाह्य जगत से रहित देदीप्यमान परम-ज्योति स्वरूप, सबका आधार; ऐसा तत्त्व रह जाता है, हे शाण्डिल्य, उसको तू यहां जान ले ॥ १६ ॥ तारका को किंचित् ऊंचो चढ़ा के भ्रुकुटी में लाकर ज्योति में मिलावे; यह त्वरित उन्मनी भाव को प्राप्त करने वाले मार्ग का प्रथम अभ्यास है ॥ १७ ॥ इसलिये खेचरी मुद्रा का अभ्यास करे, उससे उन्मनी अभ्यास प्राप्त होती है और उन्मनी से योग निद्रा प्राप्त होती है। योग निद्रा जिसको प्राप्त होती है उस योगी के लिये काल नहीं है। शक्ति में मन प्रविष्ट करार मनमें शक्ति प्रविष्ट कर और मनने मनको देखकर हे शाण्डिल्य, सुखी हो जा ! ॥ १८ ॥ मन को आकाश में धार कर मनमें आकाश करदे इस प्रकार सब आकाश मय कर किसे की भी चिन्ता मत कर यानी भिन्न दृष्टि उठने मत दे ॥ १९ ॥ ग्राह्य विषय का चिन्तन न कर देसे ही अंतर का चिन्तन छोड़ दे, इस प्रकार सब चिन्तन छोड़ कर केवल चैतन्य स्वरूप हो जा ॥ २० ॥ जिस प्रकार अग्नि में कपूर अथवा जल में नमक लीन हो जाता है इसी प्रकार मनका लय हो जाने से वह तत्त्व में विलीन हो जाता है ॥ २१ ॥ जितना जानने में आता है वह ज्ञेय है और उसका ज्ञान ही मन है; जब ज्ञान



और ज्ञेय दोनों नष्ट हो जाय तब और दूसरा मार्ग ही नहीं है ॥ २२ ॥ ज्ञेय वस्तुओं का रक्षण करने में मन का लय हो जाना है और मन का लय हो जाने से कैवल्य ही शेष रहता है ॥ २३ ॥ हे मुनीश्वर चित्त के नाश के लिये ज्ञान और योग दो मार्ग हैं; योग वृत्ति निरोध को कहते हैं और यथार्थ देखने का ज्ञान कहते हैं ॥ २४ ॥ उस निरोध में मन बहुत उपशान्त हो जाता है और मनका स्फुरण बंद हो जाने में संसार का भी लय हो जाता है ॥ २५ ॥ सूर्य प्रकाश चला जाने पर ( रात में ) जेन सब व्यवहार बन्द हो जाता है, वैसे ही शास्त्र का विचार और सज्जनों की संगति तथा वैराग्य और श्रम्यास के ( संसार नष्ट हो जाता है ) ॥ २६ ॥ संसार के पदार्थों में पहिले जो श्रम्यक्ति थी उसका नाश होने से, इच्छानुसार ध्यान करने से श्रम्यवा श्रद्धेत का मनन करने से ॥ २७ ॥ या दृढ़ता से एक तत्त्व का श्रम्यास करने से प्राण का मन्दन बन्द हो जाता है श्रम्यवा सुखकर ऐसा प्रकादि प्राणायाम का दृढ़ श्रम्यास करने से प्राण की गति रुक जाती है ॥ २८ ॥ एकान्त में रहकर ध्यान योग करने से स्फुरणा बंद हो जाती है । ओङ्कार के उच्चारण के पश्चात् ( श्रम्यास रूप ) जो शब्द तत्त्व रहता है उसका श्रनुभव करने से श्रम्यवा सुषुप्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान करने से प्राण की गति रुक जाती है ॥ २९ ॥ तालु के मूल में जो उपजिह्वा होती है उसके पीछे जीभ को प्रयत्नपूर्वक डालने पर प्राण जब ऊर्ध्व रंध्य में जाती है, तब प्राण की गति रुक जाती

श्रम्यवा श्रद्धेत  
श्रम्यवा श्रद्धेत

है ॥ ३० ॥ प्राण में जाने का ( मनका ) शब्द होकर श्रम्यास बंध तालु के ऊपर प्राण दादशान्त में जाने से ऊर्ध्व रंध्य द्वारा प्राण का मन्दन नहीं होता ॥ ३१ ॥ नासिका के श्रम्य श्रम्य में बारह श्रगुल तक निर्मल <sup>श्रम्य</sup> श्रम्य श्रम्य मन स्थिर हो जाने से प्राण की गति रुक जाती है ॥ ३२ ॥ श्रुंटी के मध्य में तारका और ज्योति के शान्त होने पर प्राण जब दादशान्त में जाते हैं और मन के संकल्प बंद होते हैं तब प्राण का निरोध हो जाता है ॥ ३३ ॥ त्रितना ज्ञान उत्पन्न हो वह संकल्प विकल्पों से पर ऐसा ज्ञेयरूप कल्याणकारक <sup>श्रम्य</sup> श्रम्य है ऐसा श्रनुभव करने से प्राण का शेष हो जाता है ॥ ३४ ॥ हे मुने हृदय में रहें हुए आकाश का चिरकान तक ध्यान करने से और वासना रहित मनका ध्यान करने से प्राण निःस्पन्द हो जाता है ॥ ३५ ॥ इन मार्गों से श्रम्यवा श्रम्य प्रकार से, जो नाना योग के आचार्यों ने रचे हैं और कहे हैं, प्राण का निरोध होता है ॥ ६ ॥

( श्रपान द्वार का ) श्राकुंचन करके मोक्ष के द्वार रूप कुण्डलिनी का द्वार खोले । जिस द्वार से जाना है उस द्वार को मुख से ढांप कर सर्पिणी के समान नपेटे लगाये हुए कुण्डलिनी सोती है । उस शक्ति का जिनने चालन किया है वह मुक्त ही है । वह कुण्डलिनी यदि कण्ठ के उपर जाकर सोवे तो वह योगियों को मुक्ति देने वाली होती है और नीचे सो जाय तो वह भूढ़ों के वंचन का हेतु बनती है । वह इहा पिता के दो मार्ग छोड़कर यदि सुषुम्ना के मार्ग से जाय तो बही विष्णु का



परमपद है। प्राणायाम के चितने अभ्यास है सब में मन का योग देना अवश्य है। बुद्धिमानों को प्राणायाम के अभ्यास के समय मन को इधर उधर नहीं जाने देना चाहिये ॥ ३७ ॥ दिन में बिष्णु (प्राण) की पूजा नहीं करनी चाहिये न केवल रात्र में, केवल दिन या रात्रि में ही नहीं, हमेशा बिष्णु की पूजा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

ज्ञान देने वाले विवर में पांच नोट हैं, वहाँ केबरी मुद्रा होती है हे शाब्दिक्य उसका अभ्यास कर ॥ ३९ ॥ दाहिनी ओर कोई नाड़ी में प्राण चला करता है। वह यदि बीच में स्थिर हो जाय तो वहाँ केबरी है, उसमें कोई धंका नहीं है ॥ ४० ॥ इडा और पिंगला के बीच में प्राण प्रवृत्ति है ॥ ४१ ॥ चन्द्र वहाँ केबरी मुद्रा है और वहाँ मध्य प्रतिष्ठित है ॥ ४२ ॥ और मूर्ध के बीच निराधार स्थान में आकाश चक्र (बह्वाक्षर) में केबरी मुद्रा होती है ॥ ४३ ॥ श्वेत चालन और दोहन द्वारा अभ्यास कर तीन लम्बी बढ़ाकर दसि श्रुष्टी के मध्य में स्थापन करके बह लम्बी बीच उलटी करके कपाल विवर में जब प्रविष्ट हो जाती है तब केबरी मुद्रा होती है। इसमें बिज्ञा और चित की अभ्यास में रहते हैं इसलिये बिज्ञा ऊर्ध्व है वह पुरुष आकाश में रहते हैं इसलिये बिज्ञा ऊर्ध्व है वह पुरुष आकाश में रहते हैं। प्राण चरण निग मूल में दबावे और दाहिना चरण लम्बा पदानं लम्बे पैर को दोनों हाथ में एक-एक कर नाभिका से बाधु पुरुष करे पञ्चान बलपर बंध करके बाधु को ऊर्ध्व धारण कर रहे। ऐसा करने से सब केवल दूर हो

जाते हैं। तब विष भी अमृत के समान पच जाता है तथा क्षय; शुभ गुदावर्त, जीर्णत्वक् आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यह प्राण त्रय का उपाय सब प्रकार के मृत्यु को दूर करने वाला है। वामपाद के पड़ी को लिंग के नीचे लगाकर दाहिना पाद बाई बाँध पर न्ये, फिर पूरक करके हृदय में ठोड़ी लगावे और योनि (गुदा के ऊपर जिग के नीचे का स्थान) आकुंचन करके मन में उततना समय आराम का ध्यान करे; इससे अपरोक्ष ज्ञान सिद्ध होता है। बाहर से बाधु को खींच कर उदर में धारण करे फिर नाभि में, नाभिका के अग्र भाग में तथा चरण के श्रृंगुटे में युक्ति पूर्वक ॥ ४३ ॥ मन से प्राण को धारण करे इस प्रकार हमेशा सायंकाल अभ्यास करने से योगी सब रोगों से तथा परिश्रम से मुक्त हो जाता है ॥ ४४ ॥ नाभिका के अग्र भाग में प्राण धारण करने से प्राण उच्च होता है, नाभि में करने से मध रोग नष्ट हो जाते हैं। चरणांगुष्ठ में प्राण धारण करने से शरीर लघु हो जाता है। बीच में बाधु को आकर्षण करने के उपाय जो पान करता है, उसको परिश्रम तथा उष्णता नहीं सतता और उसको कोई रोग भी नहीं होता ॥ ४५ ॥ संस्था समय ब्राह्म मुहूर्त पर जो पुरुष यह प्राणायाम करता है, तीन महर्षि के अन्तर कल्याणकरिणी सरस्वति उसकी वाणी में उपस्थित होती है ॥ ४६ ॥ और इस प्रकार छः महर्षि अभ्यास करने से सब रोग दूर हो जाते हैं। बिज्ञा में बाधु को खींचकर बिज्ञा मन में धारण करे। जो विद्वान् पुरुष इस प्रकार अमृत का



धाम करता है उसको सर्व संयम प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ इस से पुरक करके अमृतों के भण्ड में मन से आत्मा को चारखा कर अमृत का धाम करता है, वह रोमी हो तो मो रोग से मुक्त हो जाता है ॥ ४८ ॥ फट के पाजर्व को दोनों नादियों से ग्राह्य चारख करके नागि में तन्मा एक पड़ी घर जो कहन करता है वह सब व्यासियों से मुक्त हो जाता है ॥ ४९ ॥ एक मात्र तक तीनों संयमकन में जो विज्ञा में वाहु लीकता है और अमृत को मिश्रकर फट में चारख करता है ॥ ५० ॥ उसके सब प्रकार के उग्र तथा विष तृ हो जाते हैं। जो एक अमृत नर भी नित्य र्क नानिका के अन्न भाग में मन नहिज प्राणों को निभर करता है ॥ ५१ ॥ उससे तैकहों कर्मों के पाप दूर हो जाते हैं।

तानें में संयम करने से सब विषयों का ज्ञान होता है। नानिका के अन्न भाग में चित का संयम करने से इन्द्रलोक का ज्ञान होता है। उनके नीचे संयम करने से अग्नि लोक का ज्ञान होता है। अग्नि में चित का संयम करने से सब लोकों का ज्ञान होता है। कान में चित का संयम करने से यमलोक का ज्ञान होता है। उसके पार्श्व में संयम करने से मिश्र हि लोक का ज्ञान होता है। इस ज्ञान में संयम करने से वरुण लोक का ज्ञान होता है। अग्नि कान में संयम करने से वायु लोक का, कण्ठ में संयम करने से अन्तरलोक का, दाईं अग्नि में संयम करने से अन्तरलोक का और शिर में संयम करने से इन्द्रलोक का ज्ञान होता है। पाद के नीचे के भाग में संयम करने में ज्ञान लोक का,

पाद में संयम करने से चित्त लोक का, पैर के बीच कर्ण भूरा में संयम करने से चित्त लोक का, पिङ्गली में संयम करने में युक्त लोक का, धातु में संयम करने से महिष लोक का, योग में चित का संयम करने में रसातल लोक का, कण्ठ में चित का संयम करने से तलातल लोक का, नाभि में चित का संयम करने में सूतलोक का, कुक्षि (कुक्ष) में संयम करने से युवतलोक का, हृदय में चित का संयम करने से स्वर्गलोक का, हृदय के ऊर्ध्व भाग में चित का संयम करने से महर्गलोक का, कण्ठ में चित का संयम करने में वनलोक का, श्रूण्व में चित का संयम करने से नाललोक का और शिर में चित का संयम करने से सत्यलोक का ज्ञान होता है। धर्म और धर्म में संयम करने से भूत और नविष्णु का ज्ञान होता है। जोनों को ध्वनि में संयम करने से सब वस्तुओं को भाषा का ज्ञान होता है। अग्नि में संयम करने में चित का संयम करने से पूर्व कर्म का ज्ञान होता है। दूसरे के चित पर संयम करने से उसके चित का ज्ञान हो जाता है। अरोर के रूप पर चित का संयम करने से अनाता गरीर दूसरे किसी को दिखाई नहीं देता। वन में संयम करने में हनुमान आदि का सा कल प्राप्त होता है। पूर्व में चित का संयम करने से भुक्तों का ज्ञान होता है। चन्द्र में संयम करने में तारागणों को रचना का ज्ञान होता है और ध्रुव में संयम करने में उनको बलि का ज्ञान होता है। अपने में संयम करने से पुरुष का ज्ञान होता है। नाभि चक्र में संयम करने से चरीर को



रचना का ज्ञान होता है। कष्ट रूप में संयम करने से धृष्टा तृष्णा निवृत्त होजाती है। कर्म नाही में संयम करने से स्थिरता प्राप्त होती है। तारे में संयम करने से निद्रों का दर्शन होता है। शरीर गत आकाश में संयम करने से आकाश में गमन करने की शक्ति आती है और उन २ स्थानों में संयम करने से उन २ सम्बन्धी विद्वियां प्राप्त होती हैं ॥ ७ ॥

अब प्रत्याहार का वर्णन करते हैं। प्रत्याहार पांच प्रकार का होता है विषयों में भटकने वाली इन्द्रियों को बलपूर्वक स्वीच लेने को प्रत्याहार कहते हैं। जो कुछ दीखता है वह सब आत्मा है, यह प्रत्याहार है नित्य और विहित कर्मों के फल का त्याग करना प्रत्याहार है। सब विषयों से मुंह मोड़ना प्रत्याहार है। अठारह मर्म स्थानों पर क्रम से वारण करना प्रत्याहार है। पैर के अंगूठे, एड़ियां पिडलियां, घोंटू, जाँघें, गुदा, भेदू, नाभि, हृदय, कंठ रूप, तालु, नासिका, श्रोत्र, श्रूमध्य, ललाट और शिर,—ये स्थान हैं, इन स्थानों में नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे, इस प्रकार क्रम क्रम से प्रत्याहार करें ॥ ८ ॥

अब धारणा कहते हैं। धारणा तीन प्रकार की होती है, आत्मा में मन को धारणा करना, अंतराकाश में बाहर के आकाश को धारण करना और पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश में पांच भूतियों की धारणा करना ॥ ९ ॥

अब ध्यान कहते हैं। ध्यान दो प्रकार का होता है; समुण और निर्गुण। समुण ध्यान भूर्ति का होता है और निर्गुण ध्यान आत्मा के यथार्थ स्वरूप का होता है ॥ १० ॥

अब समाधि कहते हैं—जीवात्मा और परमात्मा को त्रिगुटी रहित परमानन्द स्वरूप और शुद्ध चैतन्य स्वरूप एकता की अवस्था समाधि है ॥ ११ ॥

॥ इति प्रथम अध्याय ॥

ब्रह्मर्षि शाब्दित्य को चारों वेदों में जब ब्रह्मज्ञान नहीं प्राप्त हुआ तब वह भगवान् अथर्वा के पास ब्रह्मज्ञान के निये आये और उनसे कहा, 'हे भगवन्, मुझे ब्रह्मज्ञान का उपदेश दीजिये, जिससे मैं कल्याणको प्राप्त होऊँ।' अथर्वा ऋषि बोले, 'शाब्दित्य, ब्रह्म सत्य, विज्ञानमय और अनन्त है जिसमें यह दृश्य ओत प्रोत है, जिसमें यह ताने बाने की तरह भरा हुआ है और जिसके जानने से यह सब जाना हुआ होजाता है। यह हाथ, पैर से रहित है, उसको आँख, कान वा जीभ नहीं हैं; न उसको शरीर है, न उसका ग्रहण वा निर्देश हो सकता है। जहाँ से मन सहित वाणी ( यानी इन्द्रिय ) विना उसको प्राप्त किये हो लीट जाती है और जो केवल ज्ञानगम्य है; जहाँ से प्रज्ञा और वेद की उत्पत्ति है, जो अद्वितीय और



एक है, आकाश के समान जो सर्व व्यापक है, सूक्ष्म है, निरञ्जन निष्क्रिय, और सत्स्वरूप है, जो चिदानन्दस्वरूप, कल्याणस्वरूप ज्ञान और अमृत है, वही परब्रह्म है वह तू है। जो एक मात्र देव है, आत्मशक्ति में प्रधान है, जो सर्वज्ञ, सब भूतों का प्रणरत्ना, सब भूतों का निवास स्थान है, जो सब भूतों में द्रुप्रा हुआ है, जहां से सब भूत उत्पन्न हुये हैं और जो केवल योग द्वारा ही पाया जाता है; जो विश्व को उत्पन्न करता है, धारण करना है और नष्ट करता है वही आत्मा है, उसको ज्ञान से ही जानते हैं। आत्मा में उन उन लोकों का ज्ञान कर। शेष मत कर आत्म विज्ञानी के शोक का भ्रन्त होजाता है।”

॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

अब शाण्डिल्य ने अध्यायों में पूछा. ‘तब परब्रह्म एक अश्विन, निष्क्रिय शिव और केवल सत्स्वरूप है, तब यह विषय किन प्रकार उत्पन्न होता है, किस प्रकार नष्टता है और किन प्रकार लय होता है ? मेरा यह संशय आप दूर करें।’ अध्यायी बोले, ‘हे शाण्डिल्य परब्रह्म सत्य ही निष्क्रिय और अश्वर है। तथार्थि इस अल्प ब्रह्म के तीन रूप हैं, सकल, निष्कल और सकल निष्कल। जो मन्य विज्ञान स्वरूप, आनन्द स्वरूप, निष्क्रिय, निरञ्जन, सर्व व्यापक, अर्थात्सूक्ष्म, जिज्ञा नर्वाय मुख है, जिसका निर्देश नहीं होता और जो अमृत है वही इसका निष्कल रूप है। इसकी जो स्वाभाविक अविद्या. मूलप्रकृति अथवा मन्त्र

रज और तमोगुण रूप माया है, उसकी सहायता से कृष्णार्णव स्वरूप महेश्वर विश्व का नियन्त्रण करते हैं, यह ब्रह्म का सकल निष्कल रूप है। जब वह ज्ञानमय तपसे बुद्धि को प्राप्त हुआ तब उसने इच्छा की कि ‘मैं एकसे बहुत हो जाऊँ’। तब उस मन्य काम ईश्वर के तप से तीन अक्षर उत्पन्न हुए। इसीसे तीन व्याह-नियां, तीन पद बाली गायत्री, तीन वेद, तीन देव तीन वर्ण और तीन अग्नि उत्पन्न हुए। यही वह सर्व ऐश्वर्य में सम्पन्न, सर्व व्यापक. सर्व वृत्तों के हृदय में अधिष्ठित, मायावी और अप्रणी माया से क्रीडा करने वाला देव है। वही ब्रह्मा है, वही विष्णु वही रुद्र है, वही इन्द्र है, वही सब देवता हैं, वही सब भूत हैं, वही आत्मा हैं, पीछे हैं, दाहिनी ओर और बाईं ओर वही हैं, नीचे वही हैं, ऊपर वही हैं और वही सब कुछ है। अपने ही से क्रीडा करने वाले उस ऐश्वर्य शाली देवता की शक्ति का भक्तों पर द्रुप्रा करने वाला. लाल कमल के समान मुन्दर रूप वाला, बाल और निष्पाप रूप में प्रकटाने वाला; चार भुजा वाला श्रोतन्त्राय का रूप है; यह ब्रह्म का सकल रूप है ॥ १ ॥

पुनः शाण्डिल्य ऋषि ने अध्यायी से पूछा, ‘हे भगवन्, केवल सत्स्वरूप चैतन्य और आनन्द स्वरूप ऐसे इस देवता को ब्रह्म क्यों कहते हैं ?’ अध्यायी बोले, ‘इस परब्रह्म इसलिये कहते हैं कि वह स्वयं वदता है और सबको वही वदता है।’ ‘इसको आत्मा किम लिये कहते हैं ? वही सबको प्राप्तकरता है, सबको ग्रहण करता है, सबको खाजाता है. इसी लिये उसको आत्मा कहते हैं।’



‘उसको महेश्वर क्यों कहते हैं ?’ ‘वह महान् का भी ईश्वर है अपने शब्दध्वनि से ( आज्ञा से ) और अपनी शक्ति से वह बड़ों से बड़ों का भी नियन्त्रण करता है, इसलिये उसको महेश्वर कहते हैं ।’ ‘उसको दत्तात्रेय क्यों कहते हैं ?’ पुत्र के लिये अति कठिन तपस्या करने वाले अत्रि ऋषि पर बहुत प्रसन्न होने के कारण भगवान् ने स्वयं उद्योतिर्मय ऐंसे अपने ही को उसको दे दिया, और अनसूया और अत्रि का वह पुत्र हुआ, इसलिये उसको दत्तात्रेय कहते हैं । जो इसके निरुक्त को जानता है, वह सब कुछ जानता है । जो ज्ञान से उभ श्रेष्ठ देवता को ‘मैं वही हूँ’ इस प्रकार से उपासना करता है वह ब्रह्मज्ञानी होजाता है । इस विषय के ये श्लोक हैं :—नीलमणि के समान कान्ति वाले, शान्त, अपनी माया में रत, देव, प्रभु, दिगम्बर, ॥ १ ॥ भस्म से जिसका सर्व श्रंग लेपायमान है, जो जटा मुकुट धारण करता है, प्रभु है, जिसके चार हाथ हैं और जिसका देह विशाल है और नेत्र प्रफुल्ल कमल के समान हैं ॥ २ ॥ जो ज्ञान और योग का खजाना है, जो विश्व का गुरु है और योगियों को जो अत्यन्त प्रिय है, जो मन्त्रका माक्षी, सिद्धों द्वारा सेवित और भक्तों पर कृपा करने वाला है ॥ ३ ॥ ऐसे सनानन देवों के देव दत्तात्रेय का सदा ध्यान करता है वह सब पापों ने मुक्त होकर परम कल्याण को प्राप्त करता है । इस प्रकार ३० मन्त्र है यह उपनिषत् है । इति तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ इति शाण्डिल्योपनिषत् समाप्त ॥

## कठरुद्रोपनिषत् ।

[ ४२ ]

देवगण भगवान् ब्रह्माजी से बोले, ‘भगवान्, हमको ब्रह्मविद्या का उद्देश दीजिये ।’ ब्रह्माजी बोले, ‘( मुमुक्षु पुरुष ) शिखा महिल मन्त्र केश उत्तार कर यज्ञोपवीत का त्याग कर, पुत्र की और ईश्वर कर ‘तू ब्रह्मा है, तू यज्ञ है, वषट्कार और अँकार है, तू न्वाहा और स्वधा है, तू धाता और विधाता है, तूही जगत की प्रतिष्ठा है’ ऐसा उससे कहे । फिर पुत्र बोले ‘मैं ब्रह्मा हूँ, मैं यज्ञ हूँ, मैं वषट्कार और अँकार हूँ, मैं न्वाहा और स्वधा हूँ, मैं ही जाता, विधाता और विश्वकर्मा हूँ और मैं ही जगत की प्रतिष्ठा हूँ ।’ पुत्रादि के साथ चलते हुए ( उनको छोड़ने के स्थान से ) धांसू न वहावे । यदि आंसू बहे तो उसकी प्रजा का नाश होगा । मन्त्रोंको प्रदक्षिणा करके किसी की ओर ध्यान न देते हुए जो वन देता है वह स्वयं के योग्य होता है ।

द्रव्यार्च्य अवस्था में वेदों का अध्ययन करके वेदोक्त रीति से ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें । पुत्र उत्पन्न करके और उनको सब प्रकार के उपाधि ( भूमि ) से सहित करके यथाशक्ति यज्ञ करें, फिर गुरु और बंधुवर्ग की आज्ञा से नन्यान् ग्रहण करें । परन्तु अरण्य में जा बारह रत्न तक द्रव्य



से अग्नि होत्र करे और बारह रात्रि तक दूध ही का भोजन करे। द्वादश रात्रि के अन्त में वैश्वानर और प्राजापत्य अग्नि, प्राजापत्य का चम और राख के उठाने के वर्तन तथा पूर्व के रखे हुए काट के वर्तन सब अग्नि में हवन कर दे। मिट्टी के वर्तन हो वे पानी में बहा दे और धातु के वर्तन गुरु को दे दे, ऐसा कहकर कि "मुझे छोड़ कर तुम ( मेरे पास ) लौटना मत और मैं भी तुमको छोड़ कर (संसार में) लौटूँगा नहीं!" कोई ऐसा कहने है कि गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और ग्राहवनीय अग्नि में से अग्निगियों के स्थान में मुट्ठी भर भस्म निकाल कर पी लेना चाहिये।

शिक्षा सहित केय वपन यानी मुड़ा करके "भूः स्वाह" कह कर यज्ञोपवीत जल में त्याग दे। इसके पश्चात् अन्न त्याग दे, जल में या अग्नि में प्रवेश करे अथवा वीर मार्ग का ग्रहण करे। इस प्रकार देह बिसर्जन करे अथवा संन्यासी बन कर विचरण करे। संन्यासी जलपान करे वही उसका सायंकाल का होम है, प्रातःकाल जलपान करे वह प्रातःकाल का होम है, जल को देवे वही उसकी दर्श यज्ञ है। पूर्णमासी के दिन जलपान करे वही उसका पूर्णमास्य हवन है। वसंत ऋतु में केश ध्मश्रु ( डाढ़ी ) लोम और नख उतरवा ले वही उसका अग्निष्टोम यज्ञ है। संन्यास लेने पर फिर अग्नि न जलावे, "मृत्युर्त्रयिमावहम्" इत्यादि अथात्म मंत्रों का ही पाठ किया करे। "सब जीवों का बलयाण हो" ऐसा कह कर आत्मा का अनन्यता से ध्यान करे और खाली हाथ में स्वच्छन्द विचरण करने को निकल जाय। संन्यासी घर या

आश्रम में न रहे और भिक्षा छोड़कर और कुछ भी न खावे। छोटे जीवों को कष्ट न पहुँचे इस ख्याल से संन्यासी क्षण मात्र भी दौड़े नहीं और वर्षा काल में विचरण भी न करे। इस अर्थ के श्लोक हैं—

कटोरा, चमस् ( चमचा ) छीका, तीन कटोरियाँ, जूता, शीत निवारण करे ऐसी कंथा, लंगोटी, ओढ़ने का बख् ॥ १ ॥ पानी छानने का बख्, स्नान के लिये एक थोती और एक ओढ़ने के लिये धोती, यज्ञोपवीत और वेद—सबको यति त्याग दे ॥ २ ॥ स्नान, पान तथा शौच विधि पवित्र जल से करे और नदी तालाब के किनारे अथवा देव मन्दिर में शयन करे ॥ ३ ॥ अधिक मुख या दुःख के लिये शरीर को कष्ट न दे, कोई स्तुति करे तो प्रसन्न न हो और कोई निन्दा करे तो उसको शाप भी न दे ॥ ४ ॥ संन्यासी ब्रह्मचर्य में रहे, प्रमाद में बचे, दर्शन, स्पर्शन, क्रीडा, कीर्तन, गुह्य भाषण, ॥ ५ ॥ संकल्प, चिन्तन और आनन्द यह आठ प्रकार का मथुन होता है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ६ ॥ मुमुक्षुओं को इसके विपरीत आचार रखना ही ब्रह्मचर्य है।

जिस चैतन्य में जगत भासित होता है और जो नित्य अपने प्रकाश ही से भासता है ॥ ७ ॥ वही शुद्ध स्वरूप चैतन्य जगत का नाक्षी और सबका आत्मा है। वही प्रज्ञानघन है और सब भूतों का अधिष्ठान है ॥ ८ ॥ मनुष्य ब्रह्मज्ञान ही से ब्रह्म को प्राप्त



होता है, कर्म से प्रजा से श्रवण आन्य किसी से भी ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती ॥ ९ ॥ वह सत्य, ज्ञान और आनन्द स्वरूप ब्रह्म तब केवल ज्ञान का विषय है संसार में माया, अज्ञान आदि नाम से भ्रान्तकरण की गुहा— ॥ १० ॥ जिसे परम आकाश भी कहते हैं— उसमें छुपा हुआ ब्रह्म को जानता है, उस ब्राह्मण की कर्म से नव कामनायें पूर्ण होती हैं ॥ ११ ॥ 'अज्ञान और मायाशक्ति का साथी प्रत्यगात्म स्वरूप अद्वितीय ब्रह्म मैं हूँ,' इस प्रकार जो जानता है, वह स्वयं ब्रह्म ही होता है ॥ १२ ॥

इस ब्रह्मभूत आत्मा में, शक्ति के योग से, रस्सी में जैसे नर्प की उत्पत्ति होती है, वैसे ही अपंचीकृत आकाश उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ इस आकाश से वायु नामक अपंचीकृत स्पर्श उत्पन्न हुआ, फिर वायु में अग्नि, अग्नि में जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई ॥ १४ ॥ उन सूक्ष्म भूतों को पंचीकृत करके ईश्वर ने ब्रह्माण्ड आदि को उत्पत्ति की ॥ १५ ॥ और ब्रह्माण्ड के भीतर देव, दानव, यक्ष, किन्नर, मनुष्य पशु, पक्षी आदि की उनके कर्मनुसार उत्पत्ति की ॥ १६ ॥ हाड़ मांस का जो यह प्राणियों का शरीर दीखता, है वही यह नर्व शरीरधारियों का अन्नमय आत्मा है ॥ १७ ॥ उससे भिन्न और उसके भीतर एक प्राणमय आत्मा होता है, उसके भीतर विज्ञान मय ॥ १८ ॥ और उसके भीतर आनन्दमय आत्मा रहा हुआ है। जो अन्नमय है वह प्राणमय से परिपूर्ण है ॥ १९ ॥ प्राणमय आत्मा मनोमय

आत्मा से पूर्ण होता है और मनोमय विज्ञानमय से पूर्ण है ॥ २० ॥ और विज्ञानमय सुषुम्नरूप आनन्दमय आत्मासे पूर्ण है। वैसे ही आनन्दमय आत्मा ब्रह्म से भिन्न ऐसे सर्वात्म्यार्थी साक्षी से पूर्ण है ॥ २१ ॥ परन्तु ब्रह्म और किसी से पूर्ण नहीं है; इसी लिये इसको ब्रह्म त, सत्य ज्ञान आनन्द रूप ब्रह्मपुच्छ यानी परम आचार कहते हैं ॥ २२ ॥

माधात् साररूप आनन्दरूप ब्रह्म का लाभ करके ही देही सुखको प्राप्त होता है अन्यथा सुख कहां ? ॥ २३ ॥ सब भूतों के आत्मभूत इस परमानन्द के अभाव में कौन प्राणी जी सकता है वा नित्य वेष्टा कर सकता है ? ॥ २४ ॥ इसलिये चित्त में भासमान होने वाला यह पुरुष ही सर्वात्मरूप से दुःखी जीवात्मा को आनन्द की प्राप्ति कराता है ॥ २५ ॥ जब यह जीव इस दृश्यत्व आदि लक्षण वाले द्वैत में परम ब्रह्म तता को लाभ करता है वही महायति है ॥ २६ ॥ वही परम अभय स्थान है, अत्यन्त कल्याण है और वही परम अमृत है; वही देश काल अवस्था के परिच्छेद से रहित सद्रूप परब्रह्म है ॥ २७ ॥ जब पुरुष, जीव ब्रह्म को तत्त्व से क्षण भर के लिये भी जान लेगा तब वह अभय को प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ २८ ॥ निर्जोष स्वप्ने से लेकर विष्णु पर्यन्त अल्प अधिक प्रमाण से इस आनन्दमय कोष ही से सुखको लाभ करते हैं ॥ २९ ॥ परन्तु उन उन पदों से विरक्त ऐसे विद्वान् और प्रसन्न पुरुष को अपने स्वरूप का आनन्द स्वयं वैसा ही प्रकट होता है वैसा कि परब्रह्म



में है ॥ ३० ॥ किमो निमित्त को ग्रहण करत हुए ही शब्द की प्रवृत्ति होती है; निमित्त के प्रभाव से जहां में बाणी लौट जाती है ॥ ३१ ॥ ऐसे निर्विशेष परमानन्द में शब्द की प्रवृत्ति किस प्रकार हो ? सबको विषय करने वाला मन भी वहां से लौट जाता है ॥ ३२ ॥ ओम्, त्वक्, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रिय और मुख आदि कर्मेन्द्रिय भी जिसको प्राप्त करने के लिये समर्थ नहीं होते और लौट जाते हैं ॥ ३३ ॥ उम द्रं द्रं रहित आनन्द रूप, निर्गुण, सत्य और चिद्ब्रह्म ब्रह्म को आत्मरूप ज्ञान कर फिर वह किमी से भी डरता नहीं ॥ ३४ ॥ अपने गुरु के उद्देश द्वारा इस प्रकार जानता है वह अच्छे या बुरे कर्मों से दुःख नहीं पाता ॥ ३५ ॥ जो संपूर्ण जगत तात्पतापक रूप से भासता था वहीं अब वेदान्त वाक्य जनित ज्ञान से प्रत्यगात्म रूप से भासता है ॥ ३६ ॥ शुद्ध चैतन्य, ईश्वर चैतन्य, जीव चैतन्य, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय और फल ॥ ३७ ॥ व्यवहार दृष्टि से यह सात मित्र २ हैं; उनमें मायाके उपाधि से रहित चैतन्य को शुद्ध चैतन्य कहते हैं ॥ ३८ ॥ मायाके संबंध से वही ईश्वर कहा जाता है और अविद्या के सम्बन्ध से जीव । अन्तःकरण के सम्बन्ध से वही प्रमाता कहा जाता है ॥ ३९ ॥ वैसे ही वृत्ति के सम्बन्ध से वह प्रमाण कहा जाता है और अज्ञान चैतन्यको प्रमेय (जगत्) कहते हैं ॥ ४० ॥ वैसे ही ज्ञान चैतन्य को फल कहते हैं । बुद्धिमान अपने को इन सब उपाधियों से मुक्त समझे ॥ ४१ ॥

इस प्रकार जो तत्त्व से जानता है वह ब्रह्म को प्राप्त होने के योग्य है—यह सर्व उपनिषदों के सिद्धान्त का यथार्थ रूप से सार कहा जाता है ॥ ४० ॥ स्वयं मर कर स्वयं होजाय तो स्वयं ही शेष रह जाता है, यह उपनिषत् है ।

॥ इति कठोपनिषत् समाप्त ॥



## भवभूतोपनिषत् ।

[ ४३ ]

एक समय सांस्कृति ऋषि भगवान् दत्तात्रय को प्रदक्षिणा करके पूछने लगे, 'हे भगवान् भवभूत की स्थिति कैसी होती है ? उनका क्या लक्ष्य है तथा उनका संसार कैसा होता है ?'

परम कल्याणमय भगवान् दत्तात्रय ने उत्तर दिया—अधर होने के कारण, सबको इष्ट होने के कारण संसार वंघन में निवृत्त होने के कारण, तथा 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों का लक्ष्य होने के कारण उसको भवभूत कहते हैं ॥ १ ॥ त्रार्णश्रम का उल्लंघन करके जो आत्मा ही में अवस्थित है, ऐसा त्रार्णश्रम से पर हुआ योगी भवभूत कहा जाता है ॥ २ ॥ प्रिय उसका शिर करके मोद दक्षिण पक्ष करके प्रमोद उत्तर पक्ष करके गौ के पैर के समान भानन्द आत्मा है ॥ ३ ॥ वह शिर में मध्य में और नीचे नहीं है ब्रह्म ही पुच्छ रूप प्रतिष्ठा है ऐसी भावना करे ॥ ४ ॥ इस प्रकार चार मार्ग करने वाले परमपद को प्राप्त होते हैं । कर्म से, प्रजा से, धन से या त्याग से कोई परमपद को प्राप्त नहीं होता ॥ ५ ॥

स्वेच्छाचार से विहार करना यही उसका आचरण है । व वस्त्र रखते हैं या नहीं भी रखते । उनके लिये न धर्म अधर्म है न पवित्र वा अपवित्र है । वे सदा साग्रहण्या इष्टि तथा अश्वमेध

अपने अन्तर ही में करते हैं । यह महायज्ञ करना महायोग है । इनके सब कर्म विचित्र होते हैं । स्वेच्छाचारी भवभूत की निंदा नहीं करनी चाहिये यह महाव्रत है । क्योंकि मूढ़ मनुष्य के समान वे लेपायमान नहीं होते । जैसे सूर्य सब प्रकार के जल को खींचता है, जैसे, अग्नि सब का भक्षण करता है; इसी प्रकार योगी विषयों को भोगता है परन्तु वह शुद्ध रहता है, पुण्य पाप से लेपायमान नहीं होता ॥ ६ ॥ पूर्ण भरे हुए और सदा एक समान रहने वाले समुद्र में जिस प्रकार जल प्रवेश करता है, उसी प्रकार जिसमें सब काम प्रवेश करते हैं उसीको शांति प्राप्त होती है; कामनाओं को चाहने वाले को नहीं ॥ ७ ॥ न निरोध है, न उत्पत्ति है, न बद्ध है न साधक है, न मुमुक्षु है और न मुक्त है; यहीं परमार्थ है ॥ ८ ॥ इहलोक और परलोक के सुख साधन के लिये तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये पहिले बहुत कुछ किया, वह सब अब पूर्ण हो गया ॥ ९ ॥ इसी कृत कृत्यता का पूर्व के कर्म की अशांति के साथ मिलान करके वह सदा तुल्य रहता है ॥ १० ॥ अज्ञानी और दुखी जीव पुत्रादि की इच्छा से भले कर्म करें, पूर्णानन्द से पूर्ण हुआ मैं किस निमित्त कर्म करूं ? ॥ ११ ॥ परलोक प्राप्ति की इच्छा वाले भले कर्मों का अनुष्ठान करें, मैं सर्वलोक स्वरूप हूँ मैं कौनसा कर्म करूं और कैसे करूं ? ॥ १२ ॥ जिनका अधिकार है, वे भले शास्त्रों का व्याख्यान करें और वेदों का अध्ययन करावें, मैं अधिक्य होने से भेरा तो अधिकार ही नहीं है ॥ १३ ॥ निद्रा, भिक्षा, स्नान या शौच किसी की मुझे इच्छा नहीं है, न मैं कुछ करता हूँ । देखने वाले यदि मुझमें



कल्पना करें तो उनकी कल्पना से मुझे कुछ हानि भी नहीं है ॥ १४ ॥ अन्य कोई गुंजा (गोंगची) के ढेर में अग्नि की कल्पना करें, तो उससे वह जलता नहीं, वैसे ही, आरों से आरोपित किये हुए संसार धर्मों का मेरे साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ॥ १५ ॥ जिनको तत्त्व का ज्ञान नहीं है वे भले श्रवण करें, मैं तत्त्वको जानता हूँ मैं किस लिये श्रवण करूँ ? वैसे ही, जिनको संशय है वे मनन या विचार करें मुझे संदेह है न मैं विचार करता हूँ ॥ १६ ॥ जिसको विपरीत भाव हो वे निदिध्यासन करें, मुझे विपरीत भाव ही नहीं है तो मैं क्या ध्यान करूँ ? देह में आत्म भाव रूप विपरीत भावना मैं कभी पास नहीं फटकने देता ॥ १७ ॥ मैं मनुष्य हूँ इत्यादि का व्यवहार, इस विपरीत भाव के बिना ही, केवल चिरकाल के अभ्यास से हुआ करता है ॥ १८ ॥ यह व्यवहार प्रारब्ध का क्षय होते ही निवृत्त होजाता है; कर्मों का क्षय न हो तो सहजों ध्यान से वह निवृत्त नहीं होता ॥ १९ ॥ व्यवहार का क्षय होना यदि इष्ट हो तो तू ध्यान कर, मैं कर्मों के बाध के साथ व्यवहार देखता हूँ, फिर मैं क्यों ध्यान करूँ ? ॥ २० ॥ मुझमें विक्षेप नहीं है, इसलिये मेरी कोई समाधि नहीं है। विक्षेप वा समाधि ये विकारी मन की अवस्थाएँ हैं। मैं नित्य अनुभव स्वरूप हूँ, मेरे लिये यहां पृथक् अनुभव ही कहाँ है ? ॥ २१ ॥ करने का या सो कर लिया, पाने का या सो पा लिया, इसलिये अब लौकिक अभ्यास शास्त्रानुसार अन्य किसी प्रकार का व्यवहार मेरे अर्हता और अलिप्त रहते हुए जैसे नित्य से चलते आये हैं भले चला करें ॥ २२ ॥ अथवा,

यद्यपि मैं स्वयं कृत कृत्य हूँ, तो भी लोगों के कल्याण की इच्छा से शास्त्रों के अनुकूल मार्ग ही से वर्तव्य रखूँ तो भी मेरी हानि क्या है ? ॥ २३ ॥ देव पूजा, स्नान, शौच, भिक्षा आदि कर्म शरीर भले किया करे तथा वाणी भले प्रणव का जाप किया करे अथवा वेदान्त का पठन किया करे ॥ २४ ॥ बुद्धि भले विष्णु का ध्यान करे अथवा ब्रह्मानन्द में विलीन होजाय। मैं तो साक्षी हूँ इसमें मैं तो न कुछ करता हूँ, न करता हूँ ॥ २५ ॥ करने का कर चुकने से तथा पाने का पा चुकने से तुम हुआ वह अपने मन से उस तृप्ति की भावना नहीं करता रहता ॥ २६ ॥

मैं धन्य हूँ, धन्य हूँ क्योंकि मैं निसिद्धे आत्मा को जानता हूँ। मैं धन्य हूँ, धन्य हूँ, ब्रह्मानन्द का मुझको स्पष्ट अनुभव होता है ॥ २७ ॥ मैं धन्य हूँ, धन्य हूँ संसार के दुःख मुझे यहां दीखते ही नहीं ! मैं धन्य हूँ धन्य हूँ, मेरा अज्ञान न मालूम कहाँ भाग गया ॥ २८ ॥ मैं धन्य हूँ, धन्य हूँ, मुझे अब कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा। मैं धन्य हूँ, धन्य हूँ, क्योंकि पाने के योग्य या सो सब यहीं पर मिल गया ॥ २९ ॥ मैं धन्य हूँ धन्य हूँ। मेरी तृप्ति के लिये विश्व में उपमा ही क्या है ? इसलिये मैं धन्य हूँ धन्य हूँ बार बार कहता हूँ कि मैं धन्य हूँ धन्य हूँ धन्य हूँ ॥ ३० ॥ अहो पुण्य ! पुण्य फल मिला और मिला भी कैसा ? इस पुण्य की संगति से हम भी धन्य है ॥ ३१ ॥ अहो ज्ञान ! अहो ज्ञान ! अहो सुख ! अहो सुख ! अहो शास्त्र ! अहो शास्त्र ! अहो गुरु ! अहो गुरु ॥ ३२ ॥



३८८ ]

अवधूतोपनिषत्

जो इसको पढ़ता है वह भी डूब डूब हो जाता है । उसका सूरपापन का पाप निवृत्त होजाता है । सुवर्ण की चोरी का दोष निवृत्त हो जाता है ब्रह्म हत्या का पाप दूर होजाता है अथवा और जो कुछ किया हो उसका पाप दूर हो जाता है । ऐसा जानकर स्वेच्छाचार परायण हो जाय । ॐ सत् यह उपनिषत् है ॥

॥ इति अवधूतोपनिषत् समाप्त ॥

अथर्वशिरोपनिषत्

[ ३८९ ]

अथर्वशिरोपनिषत् ।

[ ४४ ]

एक समय देव धूमते २ रुद्र लोक में गये और वहाँ जाकर रुद्र से पूछने लगे "आप कौन हैं" ? रुद्र भगवान् ने कहा "मैं एक हूँ, मैं क्षुल, भविष्य और वर्तमान काल में हूँ ऐसा कोई नहीं है जो मुझसे रहित हो । जो अत्यन्त शुभ है, जो सर्व दिशाओं में रहता है वह मैं हूँ । मैं नित्यानित्यरूप, व्यक्तरूप, अव्यक्तरूप, स्वरूप अब्रह्मरूप, पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशारूप, ऊर्ध्व और अधो रूप, दिशा, प्रतिदिशा पुमान्, अपुमान्, स्त्री, गायत्री, सावित्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप् छन्द, गार्हपत्य, दक्षिणार्घि, आहवनीय, सत्य, गौ, गौरी, ऋग्, यजु, साम, अथर्व, अंगिरस, ज्येष्ठ, अंष्टु, वरिष्ठ, जल, तेल गुह्य, अरण्य, अक्षर, क्षर, पुष्कर, पवित्र, उग्र, मध्य, बाह्य, पुरस्तात्, इस प्रकार ज्योतिरूप मैं हूँ । मुझको सब में रमा हुआ जानो । जो मुझको जानता है, वह सब देवों को जानता है और अंगों सहित सब वेदों को भी जानता है । मैं अपने तेज से ब्रह्म को बाह्यण से गौ को गौ से, बाह्यण को बाह्यण से, हविष्य को हविष्य से, आयुष्य को आयुष्य से, सत्य को सत्य से और धर्म से धर्म की तृप्ति करता हूँ ।" वे देव अर्थात् के सम्बन्ध से रुद्र से पूछने लगे, रुद्र को देखने लगे और उनका



ध्यान करने लगे पीछे उन देवों ने ऊँचे हाथ कर के इस प्रकार स्तुति की ॥ १ ॥

हे रुद्र भगवान् ! आप ब्रह्मरूप; विष्णुरूप, रुद्ररूप, स्कंदरूप इन्द्ररूप, वायुरूप, अग्निरूप; सूर्यरूप, सोमरूप, आठग्रहरूप, प्रतिग्रहरूप, भूरूप, भुवरूप, स्वरूप, मंहरूप, पृथिवीरूप, अंतरिक्षरूप द्यौरूप जलरूप, तेजरूप, कालरूप, यमरूप, मृत्युरूप, अमृतरूप, आकाशरूप, विश्वरूप; स्थूलरूप सूक्ष्मरूप, दृष्ट्यरूप, श्रुक्तरूप, स्पर्शरूप सर्वरूप हो आपको नमस्कारुंही ॥ २ ॥

पृथ्वी आपका आदिरूप, भुवर्लोक, मध्य प्रदेश रूप और स्वर्गलोक आपका शिररूप है। आप विश्वरूप केवल ब्रह्म रूप हो दो प्रकार के या तीन प्रकार से ( भासते हो आप दृष्टिरूप, शान्तिरूप, पुष्टिरूप, हुतरूप, अहुतरूप, दत्तरूप, अदत्तरूप, सर्वरूप, असर्वरूप, विश्व, अविश्व, कृत, अकृत, पर; अपर और परापररूप हो आपने हमको अमृत पिला के अमृतरूप किया हम ज्योतिभाव को प्राप्त हुए और हमको ज्ञान प्राप्त हुआ अब शत्रु हमारा क्या कर सकेंगे ? हमको वे पीड़ा नहीं दे सकेंगे आप मनुष्य को अमृतरूप हो, चन्द्र सूर्य से प्रथम और सूक्ष्म पुरुष हो। जो वह अक्षर और अमृतरूप प्रजापति का सूक्ष्म रूप है वही जगत का कल्याण करने वाला पुरुष है। वही आपने तेज द्वारा ग्राह्यवस्तु को अग्राह्य वस्तु से, भाव को भाव से सौम्य को सौम्य से, सूक्ष्म को सूक्ष्म से वायु को वायु से ग्रास करता है।

एसे उपसंहार और महाग्रास करने वाले आपको नमस्कार है। सबके हृदय में देवताओं का, प्राणों का तथा आपका वास है। ये तीन मात्राएं हैं और उनके पर हो। उत्तर में उसका मस्तक है, दक्षिण में पाद है, जो उत्तर में है, सो ही अँकाररूप है, जो अँकार है सो ही प्रणवरूप है, जो प्रणव हैं सो सर्व व्यापीरूप है। जो सर्व व्यापी है सो ही अनन्त रूप, जो अनन्त रूप है सो ही ताररूप जो तार रूप है वही सूक्ष्म रूप है, जो सूक्ष्मरूप है वह श्रुक्तरूप और श्रुक्तरूप है वही विद्युत् रूप, जो विद्युत् रूप है वही परब्रह्म रूप, जो परब्रह्मरूप है वही एक रूप, जो एक रूप है वही इन्द्र रूप जो इन्द्र रूप है वही ईशान रूप, जो ईशान रूप है वही भगवान् महेश्वर है ॥ ३ ॥

अँकार इस कारण है कि अँकार का उच्चारण करने के समय प्राण ऊपर खेंचने पड़ते हैं इसलिये आप अँकार कहे जाते हो। प्रणव कहने का कारण यह है कि इस प्रणव के उच्चारण करते समय ऋग्, यजु, साम, अथर्व, अंगिरस और ब्रह्मा ब्राह्मण को नमस्कार करने आते हैं इसलिये प्रणव नाम है। सर्व व्यापी कहने का कारण यह है कि इसके उच्चारण करने के समय जैसे तिलों में तेल व्यापक होकर रहता है, तैसे आप सब लोकों में व्यापक हो रहे हो अर्थात् ज्ञात रूप से आप सब में ओत प्रोत हो इसलिये आप सर्व व्यापी कहलाते हो। अनन्त कहने का कारण यह है कि उच्चारण करते समय, उच्च, नीच और तिर्यक कहीं भी आपका अन्त देखने में नहीं आता इसलिये आप



अनन्त कहलाते हो । तारक कहने का कारण यह है कि उच्चारण के समय पर गर्भ जन्म व्याधि जरा और मरण वाले संसार के महा भय से तारने वाले हैं इसलिये इसको तारक कहते हैं । शुक्ल कहने का कारण यह है कि उच्चार करने में क्लेश होता है अर्थात् श्रम पहुँचता है । सूक्ष्म कहने का कारण यह है कि उच्चारण करने में सूक्ष्म रूप वाले होकर स्थावरादि सब शरीर को आधीन करता है । सूक्ष्म बँधुत कहने का कारण यह है कि उच्चारण के साथ में स्थूल महान् अन्वकार में सब शरीर प्रकाश को प्राप्त होता है इसलिये बँधुत रूप कहा है । ब्रह्म कहने का कारण यह है कि पर, अपर और परमणु का बड़ी बीणा से ज्ञान कराते हो इसलिये आपको परब्रह्म कहते हैं । एक कहने का कारण यह है कि सब प्राणों का भक्षण करके अन्न रूप होकर उत्पत्ति और संहार करते हैं । कोई पुण्य तीर्थ में जाते हैं । कितने हो दाक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्व दिशा में तीर्थार्जन करते हैं, उन सबको सद्गति यही है । सब प्राणियों के साथ में एक रूप से रहते हो इसलिये आपको एक कहते हैं । आपको रुद्र क्या कहते हैं ? ऋषियों को आपका रूप प्राप्त होसकता है, सामान्य भक्तों को आपका रूप प्राप्त नहीं होसकता इसलिये आपको रुद्र कहते हैं । ईशान कहने का कारण यह है कि सब देवताओं का ईशानो और जननी नाम की परम शक्तियों से आप निम्नमत कराने हो । हे नृर, जैने दूध के लिये गाय को रिझाते हैं, वैसे ही आपको हम स्तुति करते हैं, हे इन्द्र, आप

ही इस वर्तमान जगत के ईश और दिव्य दृष्टि वाले हो इसलिये आपको ईशान कहते हैं । आपको भगवान परमेश्वर कहते हैं इसका कारण यह है कि भक्त जो ज्ञान के लिये भजते हैं उनके ऊपर आप अनुग्रह करते हो और उनके लिये वाणी का प्रादुर्भाव करते हो तथा सब भावों को त्याग कर आत्मज्ञान से तथा योग के ऐश्वर्य से अपने महिमा में विराजते हो इसलिये आपको भगवान महेश्वर कहते हैं । ऐसा यह रुद्र चरित्र है ॥ ४ ॥

एक ही देव सब दिशाओं में रहता है । प्रथम जन्म उसी का है मध्य में तथा अन्त में वह ही है, वह ही उत्पन्न होता है और होगा । प्रत्येक व्यक्ति भाव में वह ही व्याप्त हो रहा है । एक रुद्र ही किसी अन्य की श्रेयक्षा न रखते हुए, अपनी महाशक्ति से इस लोक को नियम में रखता है । सब उसमें रहते हैं और अन्त में सबका संकोच उसीमें होता है । विश्व का प्रकट करने वाला और रक्षण करने वाला वही है । जो सब योगियों में व्याप्त रहा है और जिससे यह सर्व व्याप्त हो रहा है, उस पूज्य ईशान और देव रूप पुरुष का चित्तवन करने से मनुष्य परम शान्ति को प्राप्त करते हैं । सब हेतु समूह के मूल रूप अज्ञान का त्याग करके संचित कर्मों को बुद्धि से रुद्र में स्थापित करने से एकता को प्राप्त होता है । जो शाश्वत, पुराण और अपने बल से प्राणियों को अन्न तथा पशु देकर उनके मृत्यु पाश को नाश करने वाला है उसके साथ आरमभानप्रद अर्ध चतुर्थ मात्रा से वह कर्म के बंध को तोड़ता हुआ परम शान्ति प्रदान



करता है। आपकी प्रथम ब्रह्मयुक्त मात्रा रक्त वर्ण वाली है, जो उसका नित्य ध्यान करते हैं वे ब्रह्मा के पद को प्राप्त होते हैं। विष्णु देव युक्त आपकी दूसरी मात्रा कृष्ण वर्ण वाली है, जो उसका नित्य ध्यान करते हैं वे वैष्णव पद को प्राप्त होते हैं। आपकी खर देव युक्त जो तीसरी मात्रा है वह पीले वर्ण वाली है उसका जो नित्य ध्यान करते हैं वे ईशान यानी खर लोक को प्राप्त होते हैं। अथर्व चतुर्थ मात्रा को अव्यक्त रूप में रहकर आकाश में विचरती है उसका वर्ण शुद्ध स्फटिक के समान है, जो उसका ध्यान करते हैं उनको मोक्ष पद को प्राप्ति होती है। मुनि कहते हैं कि इस चौथी मात्रा की ही उपासना करनी चाहिए। जो इसकी उपासना करते हैं उसको कर्म बन्ध नहीं रहता। यह ही वह मार्ग है जिस उत्तर मार्ग से देव जाते हैं, जिससे पितृ जाते हैं और जिस उत्तर मार्ग से ऋषि जाते हैं वह ही पर, अपर और परायण मार्ग है। जो बाल के अग्र भाग समान सूक्ष्म रूप से हृदय में रहता है, जो विश्वरूप, देवरूप, सुन्दर और श्रेष्ठ है, जो विवेकी पुरुष हृदय में रहने वाले इस परमात्मा को देखते हैं उनको ही शक्ति भाव प्राप्त होता है दूसरे को नहीं।

क्रोध, तुष्ट्या, लोभा और हेतु समूह का मूल रूप अज्ञान का त्याग करके सर्वित कर्मों को बुद्धि से खर में अर्पण कर देने से खर में एकता को प्राप्त होते हैं कि खर शायत और पुराण रूप होने से अपने तप और बल से अन्न का यानी प्राणियों का नियन्ता है। अग्नि, वायु, जल, स्थल और आकाश

ये सब भस्म रूप हैं। पशुपति की भस्म का जिसके अंग में स्पर्श नहीं होता, उसका मन और इन्द्रियां भस्म रूप यानी निरर्थक हैं, इसलिये पशुपति की ब्रह्म रूप भस्म पशु के बंधन को नाश करने वाली है ॥ ५ ॥

जो खर अग्नि में है, जो खर जलके भीतर है, उसी खर ने औषधियों और वनस्पतियों में प्रवेश किया है। जिस खर ने इस मव विश्व को उत्पन्न किया है, उस अग्नि रूप खर को नमस्कार है। जो खर अग्नि में, जल में, अंतरिक्ष में औषधियों और वनस्पतियों में रहता है और जिस खर ने विश्व को और भुवनों को उत्पन्न किया है, उस खर को नमस्कार है। जो खर जल में, औषधियों में और वनस्पतियों में स्थिति कर रहा है, जिस खर ने जगत को धारण कर रक्खा है, जो खर शिवशक्ति रूप में और तीन गुणों से जगत को धारण करता है, जिसने अंतरिक्ष में नागों को धारण किया है, उस खर को नमस्कार है। इस (खर भगवान्) के प्रणव रूप मस्तक की उपासना करने से अथर्व ऋषि को उच्च स्थिति प्राप्त होती है। जो इस प्रकार उपासना न की जाय तो नीच गति प्राप्त होती है। खर भगवान् का मस्तक देवों का समूह रूप व्यक्त है, उसका प्राण और मन मस्तक का रक्षण करता है। देव समूह, स्वर्ग, आकाश अथवा पृथ्वी हिंसो का भी रक्षण नहीं कर सकते। इस खर भगवान् में सब श्रोत प्रोत है। इससे पर कोई अन्य नहीं है, उससे पूर्व कुछ नहीं है ऐसे ही उससे पर कुछ नहीं है, हो गया और होने



वाला भी कुछ नहीं है। उसके हजार पाद हैं, एक भस्त्रक है और सब जगत् में व्याप्त हो रहा है। अक्षर से काल उत्पन्न होता है, काल रूप होने से उसको व्यापक कहते हैं। व्यापक अथवा भोगायमान् रूद्र जब शयन करता है तब प्रजा का संहार होता है। जब वह श्वास सहित होता है तब तम होता है, तम से जल होता है जलमें अपनी अंगुली से मंथन करने से वह जल शिशिर ऋतु के द्रव (ओस) रूप होता है, उसका मंथन करने से उसमें फेन होता है, फेन से भ्रंटा होता है, अण्डे से ब्रह्मा होता है, ब्रह्मा से वायु होता है, वायु से ऐंकार होता है। ऐंकार से सावित्री होती है, सावित्री से गायत्री होते हैं और गायत्री में से सब लोक होते हैं। फिर लोक तप की उपासना करते हैं, जिससे सत्य होता है और पीछे शाश्वत अमृत वहता है। यह ही परम तप है। यह ही तप, जल, ज्योति, रस अमृत, ब्रह्म भूलोक मुवलोक और स्वर्लोक है ॥ ६ ॥

जो कोई ब्राह्मण इस अथर्वशिरोमनिषत् का अध्ययन करना है, वह अथर्वशिरोमनिषत् हो तो श्रोत्रिय होजाता है, उषनयन संस्कार से रहित हो तो उपनयन संस्कार वाला होजाता है। वह अग्नि से पवित्र, वायुपूत, सूर्यपूत, सत्यपूत और सोमपूत होता है। वह सब देवों से जाना हुआ और ध्यान किया हुआ होता है। वह सब तीर्थों में स्नान किया हुआ होता है, उसको सब यज्ञों का फल मिलता है। साठ हजार गायत्री के जप का तथा इतिहास और पुराण में एवं रूद्र के एक लाख जप का उसको फल होता है, दश सहस्र

प्रणव के जप का फल उसको मिलता है। उसके दर्शन से मनुष्य पवित्र होता है। वह पूर्व में हुए सात पीढ़ी के पुरुषों को तारता है। भगवान् ने कहा है कि अथर्वशिरोमनिषत् का एक बार जप करने ही से पवित्र होता है और कर्म का अधिकारी होता है। दूसरी बार जपने से गणों में अविपत्तिपन प्राप्त करता है और तीसरी बार जप करने से सत्य स्वरूप ऐंकार में उसका प्रवेश होता है ॥ ७ ॥

॥ इति अथर्वशिरोमनिषत् समाप्त ॥



## वज्रसूत्रिका उपनिषत् ।

[ ४५ ]

चित्सदानन्द रूप वाला, सबको बुद्धि का साक्षी रूप, वेदान्त से जानने योग्य और अनंत रूप वाले ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ । अज्ञान को नाश करने वाले वज्रसूत्रि नामका शास्त्र मैं कहता हूँ । यह ज्ञान रहित को दूषण रूप है और ज्ञान चक्षु वाले को ब्राह्मण रूप है ॥ १ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ऐसे चार वर्ण हैं उनमें ब्राह्मण मुख्य है ऐसा वेद और स्मृति में कहा है । जहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि ब्राह्मण कौन है ? क्या वह जीव है ? क्या वह देह है, क्या जाति है ? क्या वह ज्ञान कर्म या कोई धार्मिक व्यक्ति है ?

उत्तमं प्रथम जीव को जो ब्राह्मण कहा सो नहीं हो सकता; क्योंकि हुए और होने वाले अनेक देहों में जीव का एकपना है । जीव एक है और कर्म के कारण से अनेक देहों में उसकी उत्पत्ति होती है । सब शरीरों के जीव को एकता है इसलिये भी जीव ब्राह्मण रूप नहीं है । तब क्या देह ब्राह्मण है ? नहीं ! इस प्रकार भी नहीं है, चांचाल से लेकर सब मनुष्यों का पंच महाभूतों से बना हुआ देह एक रूप है इसलिये बुढ़ापा, मरण, धर्म और अधर्मदि सबको एक ही प्रकार होते हैं, ब्राह्मण स्वतः वर्ण वाला,

क्षत्रिय रक्त वर्ण वाला, वैश्य पीतवर्ण वाला और शूद्र कृष्णवर्ण वाला ही हो, ऐसा नियम नहीं है और पिता आदिक के शरीरका दहन करने में पुत्रादिक को ब्रह्महत्यादिक दोषका संभव होता है । इसलिये देह ब्राह्मण है ऐसा कभी भी सिद्ध नहीं होता । तब क्या जाति ब्राह्मण है ? नहीं ! ऐसा भी नहीं है । भिन्न जाति वाले जन्तुओं से अनेक जाति वाले बहुत महर्षि उत्पन्न हुए हैं । जैसे:— ऋष्यशृङ्ग मुगली से, कौशिक कुशसे जेबुक श्याल से, वाल्मीकि बांबो ( राफड़ा ) में से, व्यास मल्ताह की कन्या से, गीतम खरगोश की पीठ में से, वशिष्ठ उर्वशी से और अगस्त्य कलश से उत्पन्न हुए हैं ऐसा सुना है । इन ऋषियों में से अनेक, जाति को प्राप्ति बिना भी पूर्ण ज्ञानवान् थे इसलिये ब्राह्मण जाति रूप नहीं है । तब क्या ज्ञान ब्राह्मण है ? नहीं ! ऐसा भी नहीं है । परमार्थ को जानने वाले और ज्ञानवान् बहुत क्षत्रिय भी हैं इसलिये ज्ञान ब्राह्मण रूप नहीं है । तब क्या कर्म ब्राह्मण रूप है ? नहीं ! ऐसा भी नहीं है । सब प्राणियों के प्रारब्ध संचित और आगामी कर्मों का साधर्म्य दोषता है और कर्म से प्रेरित हुए जीव क्रिया करते हैं इसलिये कर्म भी ब्राह्मण नहीं है । तब क्या धार्मिक व्यक्ति ब्राह्मण है ? नहीं, ऐसा भी नहीं है । बहुत क्षत्रिय सुवर्ण का दान करने वाले होते हैं इसलिये धार्मिक व्यक्ति ब्राह्मण नहीं है । तब ब्राह्मण कितको कहें ? जो आत्मा के द्वैत भाव से रहित, जाति, गुण और क्रिया से रहित, छः ऊर्मी और छः प्रकार के भाव आदिक



दोषों से रहित सत्य ज्ञान आनंद अनंत स्वरूप स्वयं निर्विकल्प रूप से रहने वाले, अशेष कर्त्यों का आधार रूप अशेष भूतों में अंतर्गामी रूप से रहने वाले, भीतर और बाहर आकाश की समान प्रोथे हुए अखंड आनन्द स्वभाव वाले, प्रमेय से रहित अनुभव से ही जानने योग्य, अपरोक्ष भासने वाले आत्मा की हाथ में रहने वाले आमले की समान अपरोक्ष साक्षात्कार करता है और कृतार्थ होकर कामरागादि दोषों से रहित, शम दमादि में युक्त भाव, मात्सर्य, तुष्णा, आशा मोहादिक से रहित और दंभ अहंकारादि की जिसका चित्त कभी झूठा न हो ऐसे लक्षण वाले आभिप्राय है। ऐसा श्रुति, स्मृति, पुराण और इतिहास का सिद्धि ही नहीं होती। आत्मा सच्चिदानन्द रूप और अद्वितीय है ऐसे ब्रह्म रूपसे मनुष्यों को मानना चाहिये। यह उपनिषत् है।

॥ इति वज्रसूचिका उपनिषत् समाप्त ॥

## कौषीतिक ब्राह्मणोपनिषत् ।

[ ४६ ]

प्रथम अध्याय ।

गार्ग्य का पुत्र चित्र यज्ञ करने वाला था। उसने यज्ञ कराने के लिये आरुणि को पसन्द किया। आरुणि ने आप न जाकर अपने वदले में अपने पुत्र श्वेतकेतु को भेजा। जब वह चित्र के पास आया तब चित्रने पूछा “तू गौतम का पुत्र है, क्या इस लोक में कोई ऐसा गुप्त स्थान है कि जहाँ तू यज्ञ करके मुझे स्थापित कर सकेगा ? अथवा अर्चिरादि मार्गसे जिस लोक में जाया जाता है उस लोक में क्या तू मुझे स्थापित करेगा ?” श्वेतकेतुने कहा ‘यह मैं कुछ नहीं जानता, इसके विषय में आचार्य से पूछ देवूँगा ।’

यह ( श्वेत केतु ) अपने पिता के पास लौट गया और बोला “चित्र ने मुझसे इस प्रकार पूछा है, मैं इसका क्या उत्तर दूँ ?” उसके पिता ने कहा “मैं भी यह नहीं जानता, चल हम उसके घर पर चलें और वहाँ वेदाध्ययन करके उससे ज्ञान प्राप्त करें, क्योंकि जब अन्य अपने को देता है तो प्राप्ति के लिये दोनों चलें। ( उसको ना न करनी चाहिये । )” अनन्तर हाथ में समिध लेकर वह गार्ग्य के पुत्र चित्र के पास गया और कहा मैं आप से ज्ञान प्राप्त करने आया हूँ तब चित्र ने कहा “गौतम ! तू



ब्रह्मविद्या प्राप्त करने योग्य है ( क्योंकि तुझमें अहंकार नहीं है )  
तु मेरे पास आ, मैं तुझे ब्रह्म विद्या का उपदेश कहूँगा ॥ १ ॥

चित्र बोला:—“जो कोई इस लोक में से जाते हैं वे सब चन्द्रलोक में जाते हैं। शुक्ल पक्ष में चन्द्र उन लोगों के प्राणों से पुष्ट होता है परन्तु कृष्ण पक्ष में उनको फिर उत्पन्न नहीं करता सचमुच चन्द्र स्वर्ग का द्वार है, जिसको इस चन्द्रलोक की इच्छा नहीं होती उसको वह ऊर्ध्व लोक में भेजता है, परन्तु जिसको चन्द्रलाक की इच्छा होती है उसको वह द्रष्टृ रूप से इस लोक में भेजता है। वहाँ वह कोट, पतंग, पक्षी, बाघ, सिंह, मत्स्य, रोछ, मनुष्य श्रवणा कोई अन्य इतने स्थानों में प्राणी न्य से अपने कर्म और विद्या के अनुसार धारण करता है। जब वह जन्म लेता है तब गुरु उसको पूछता है “तू कौन है ?” तब इनका उत्तर नीचे के समान देना चाहिये “विचक्षण और ऋतु के अधिष्ठाता ऐसे चन्द्र में तेरे एकत्र हुआ था यह चन्द्र शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष को उत्पन्न करता है, वह पितरों का स्थान रूप है। उस चन्द्र की उत्पत्ति नित्य के हवि में से होती है। तेरे न्य मुझको देवताओं ने मनुष्य में रखा। मनुष्य का निर्मित करके देवताओं ने मुझे स्वर्ग में रखा, उस में से मैं बारह श्रवणा तेरे भास रूप से श्रवणा जीवित रूप से मनुष्य जन्म को प्राप्त हुआ था। नरय श्रवण का ज्ञान जानने के निर्मित बारह श्रवणा तेरे भास रूप पितृ के साथ जुड़ा था, हे देवताओ ! मेरा जीवित योग्य समय तक रहने दो कि जिससे

श्रुतता को प्राप्त होऊँ। अपने सत्य से—महान्त और महान् बोलतासे मैं काल रूप हूँ, मैं कालके आधीन हूँ, तू कौन हो ?” तब वह कहता है “मैं भी तेरे समान हूँ।” पश्चात् वह उसको आगे जाने देता है ॥ २ ॥

देवयान मार्ग को प्राप्त होकर वह अनित्यलोक की तरफ जाता है, उस स्थान से वायु लोक में जाता है। वहाँ से वरुण लोक में, वहाँ से आदित्य लोक में, वहाँ से इन्द्र लोक में, वहाँ से प्रजापतिलोक में और वहाँ से ब्रह्मलोक में जाता है। ब्रह्म लोक में और नामका सरोवर, इष्टि नाम का समय, विरजा नामकी नदी इत्य नामका वृक्ष, सालज्य नामका नगर, अपराजित नामका प्रासाद इन्द्र (वायु) और प्रजापति (आकाश) द्वारापाल रूप से हैं। ब्रह्म का विष्णु नामक सुसज्जित कमरा है, विचक्षण (बुद्धि) उसको गड़ी है। उत्कृष्ट तेज वाला उसका पतंग है, मानसी नाम की प्रिया, चाक्षुषी नाम का प्रतिविम्ब है जो पुष्पों के समान जगत को बुनता है सबकी माता श्रुति) रूप और अक्षर (श्रुति ज्ञान) रूप अपरायण और ब्रह्मज्ञान में वहन करने वाली नदियाँ होती हैं। ब्रह्म को जानने वाला आगे बढ़ता है, उस समय ब्रह्मा अपने सेवकों से कहता है:—मेरे प्रश से तू दीर्घ जाकर उभसे मिलो, वह विरजा नाम की नदी को फलांग चुका है, आ ! वह कभी भी जरा रुक नहीं हागा। ३ ॥



पांच सौ अप्सरायें उसे मिलने को मामने जाती है। उनमें से सौ अप्सराओं के हाथों में मालाएं होती हैं, एक सौ अप्सराओं के हाथों में भजन होता है, एक सौ अप्सराओं के हाथों में त्रुण होता है, एक सौ अप्सराओं के हाथों में वस्त्र होते हैं और एक सौ अप्सराओं के हाथों में जवाहरात होते हैं। वे उसको ब्रह्म के अलंकार से सुशोभित बनाती हैं। ब्रह्म के अलंकारों से अलंकृत और ब्रह्म को जानने वाला ऐसा वह ब्रह्म के समीप जान लगाता है। प्रथम वह अर नाम के सरोवर के पास आता है, मन से इस सरोवर का श्रुतिक्रमण करता है। जो वर्तमान समय को जानते हैं वे इस सरोवर के पास आते ही उसमें डूब जाते हैं। परन्तु वह यज्ञ की दृष्टि के नाश करने वाले मुहूर्तों के पास आता है। वे उसे देखते ही भाग जाते हैं, पीछे वह विराजा नाम की नदी के पास आता है, इस नदी का मन से श्रुतिक्रमण करता है। इस स्थान पर वह अपने मुकुट और दुष्कृतका त्याग करता है। उसके प्रिय कुटुम्बी—उपासना करने वाले उसके मुकुट को प्राप्त करते हैं और उसका श्रुति करने वाले, उसके दुष्कृत को लेते हैं। जैसे रथ में बैठकर जल्दी से गमन करने वाला पुरुष रथ के चक्र की तरफ दृष्टि करता है वैसे ही वह दिन और रात्रि को देखता है। इसी प्रकार मुकुट और दुष्कृत तथा सर्व इन्द्र भावों को देखता है। इस प्रकार मुकुट और दुष्कृत से रहित होकर ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म के प्रति जाता है ॥ ४ ॥

वह इत्य नाम से शुक्ष के पास आता है, उसको ब्रह्म की गंध आती है। पीछे सालज्य नाम के शहर के पास आता है, उसमें ब्रह्म तेज का प्रवेश होता है, पीछे वह अपराजित महत्स के पास आता है उसमें ब्रह्म तेज प्रवेश करता है पीछे जिस स्थान पर इन्द्र और प्रजापति द्वारापाल हैं वहां आता है। वे उसे देख कर भग जाते हैं। वह विष्णु नाम के कमरे में आता है तब उसमें ब्रह्म का यश प्रवेश करता है। वह विलक्षण नाम की गद्दी के पास आता है। इस गद्दी के पूर्व की तरफ के दो पाद बृहत् और रथंतर नाम के साम हैं। श्वेत और नील उसकी पश्चिम तरफ के पाद हैं। विरूप और वैराज साम उसके उत्तर और दक्षिण के कोण हैं और शाकुनर और रैवत साम पूर्व पश्चिम की तरफ के कोण हैं। यह वेदी ज्ञान रूप है। प्रजा से वह सबको देखता है। पीछे वह उत्कृष्ट तेज वाले पलंग के पास आता है। यह पलंग प्राण रूप है, श्वेत और भविष्य उसके पूर्व पाद हैं, श्री और पृथ्वी उसके पश्चिम पाद हैं, बृहत् और रथंतर नाम के साम उत्तर और दक्षिण तरफ की पाटी हैं, भद्र और यज्ञायज्ञीय पूर्व और पश्चिम की तरफ की पाटी है। ऋक् तथा यजुस् पूर्व, पश्चिम तरफ की निवार है यजुस् उत्तर दक्षिण तरफ की निवार है। चन्द्र की किरणें गेंदुआ (कान के नीचे रखने का तर्किया) हैं, उद्गीथ चद्र है, अमृदय तर्किया है, इस पलंग पर ब्रह्म विराजता है। जब एक पैर को ऊपर रख कर ब्रह्म का ज्ञाता ऊपर चढ़ने को



जाता है, तब ब्रह्म उससे पूछता है "तू कौन है ?" तब उसे नीचे के समान कहना चाहिये ॥ ५ ॥

"मैं काल रूप हूँ, ऋतुओं में जो होता है, सो रूप मैं हूँ। मेरी उत्पत्ति आकाश में से है, संवत्सर का रेत रूप, भूत और कारण का तेज रूप, जड़, चैतन्य सबका आत्मा रूप और ज्ञेय भूतात्मक सबल ब्रह्म के तेज में से मेरा उद्भव है। तू यह आत्मा रूप है, जैसा तू है वैसा ही मैं हूँ।" ब्रह्म उससे पूछता है "मैं कौन हूँ ?" तब कहना चाहिये "तू सत्य रूप है" मत्य ज्ञया है ?" "जो सब ( इन्द्रियों ) के अधिष्ठाता, देवों और प्राणों से भिन्न है। तत् यह ही सत्य रूप से है। जो देव और प्राण है सो सत्य रूप है। यह 'सत्य' इस शब्द से सबसे पहिचाना जाता है। इस प्रकार का मव विश्व है। तू भी सर्व रूप है, इस प्रकार के वेद के मंत्र से कहा जाता है ॥ ६ ॥"

यजुष उदर रूप है। साम मस्तक रूप है। ऋक् उनकी मूर्ति रूप है इस प्रकार अक्षर ब्रह्म है, उसको ऋदि ब्रह्ममय अथवा महान् रूप से जाने। ब्रह्म उससे पूछता है "मेरे पुलिन नाम तूने किस प्रकार प्राप्त किये ?" वह उत्तर देता है "प्राण से।" "मेरे स्त्री लिंग के नाम किस प्रकार प्राप्त किये ?" तब कहता है "वाणी से" "मेरे नपुंसक नाम किस प्रकार प्राप्त किये" तब कहता है "मन से" गंध किससे ? "घ्राणोन्द्रिय से" "रूप किससे ?" चक्षु "आब्द किससे ?" "श्रोत्रोन्द्रिय से" "अन्न का रस किससे ?"

"ब्रह्मा से" "कर्म किससे" "हाथों से" "सुख दुःख किससे ?" "शरीर से" "आनन्द रति और प्रजा किससे ?" "उपस्थेन्द्रिय में" गति किससे ?" "पग से" "बुद्धि किससे पहिचानती है ?" "प्रजा से" इस प्रकार उससे कहना चाहिये। पीछे ब्रह्म उससे कहता है "यह जल मेरा है, उस जल से बना हुआ यह लोक तेरा है।" जिसको इस प्रकार ब्रह्म ज्ञान, होता है वह ब्रह्म में जो सम्पत्ति है, उसको जीतता है और ब्रह्म में जो कुछ शक्ति है वह उसको प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

### दूसरा अध्याय ।

कौषीतिक कहने लगे :- प्राण ब्रह्म रूप है, प्राण जो ब्रह्म रूप है उसका दूत रूप मन है, वाणी परोसने वाली है। चक्षु शरीर का रक्षक रूप है और श्रोत्र द्वारपाल है। प्राण रूप ब्रह्म का मन दूत है, ऐसे जो जानता है वह दूत वाला होता है। चक्षु को रक्षक जानने वाला रक्षक वाला होता है। जो श्रोत्र को द्वारपाल जानता है वह द्वारपाल से युक्त होता है। जो वाणी को परोसने वाला जानता है वह परोसने वाले से युक्त होता है। इस प्राण रूप ब्रह्म के लिये सब देवता अर्थात् इन्द्रियों न मांगने पर भी बलि लाते हैं इसी प्रकार उसको उपासना करने वाला नहीं मांगे तो भी सब प्राणी बलि लाते हैं। जो इस प्रकार जानता है, उसका परम रहस्य बात यह है कि वह किसीसे कुछ न मांगे। जैसे एक मनुष्य ग्राम में भिक्षा मांगने जाता है, जब उसको कुछ



नहीं मिलता तब वह ऐसा कह कर बैठता है कि भव में भिक्षा में भिक्षा हुआ भक्षण न करूँगा; तब जो लोग भिक्षा देने की नाहीं करते थे वेही उसको बुला कर देने लगते हैं। जो याचना नहीं करता उसका इस प्रकार का धर्म है; परन्तु धन देने वाला हम तुमको दोगे ऐसा कह कर बुलाते हैं ॥ १ ॥

कौं बोलो-प्राण वह ही ब्रह्म है। प्राण रूप ब्रह्मको वाणी के पीछे चक्षु प्रावरण करने है। चक्षु के पीछे श्रोत आवरण करते हैं। श्रोत्र के पीछे मन आवरण करता है और मन के पीछे प्राण आवरण करते हैं। देवता-इन्द्रियों न मानने पर इस प्राण रूप ब्रह्म को बलि नाकर देते हैं। इनो प्रकार प्राण की ब्रह्म रूप से उपासना करने वालों को नहीं मानने पर भी प्राणी बलि लाकर देते हैं। ऊपर के समान नहीं मानने वालों को भव देते हैं ॥ २ ॥

अब उनम वनको प्रायिक उपाय कहते हैं। उम उत्तम वनकी इच्छा करने वाला मनुष्य दीर्घमा या अमावस्या की अवधि मुक्त पक्ष में किन्हीं शुभ नक्षत्र पर अग्नि भिद्य करे। अग्नि के चारों ओर की भूमिको साढ़ कर उसको चारों ओर दर्भ विछावे, वन के ऊँचे वनोंमें शीर दाहिना दाँद मुका कर लूँचा से अवज्ञा वनमन में अवज्ञा कर्त्तव्य के किन्हीं पात्र में अग्नि लिखे के अनुमान आहुति दे। “वाणी नान का देवता अवरोधी (प्राप्त कराने वाला) है, वह मुम्हको उससे मिलाने, उसके निन्दे न्यारा।” “प्राण नाम का देवता अवरोधी है, वह मुम्हको

उससे यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा।” नेत्र नाम का देवता अवरोधी है, वह मुम्हको उससे यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा।” श्रोत्र नामका देवता अवरोधी है, वह मुम्हको उससे यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा।” “मन नामका देवता अवरोधी है, वह मुम्हको उससे यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा।” प्रज्ञा नामका देवता अवरोधी है, वह मुम्हको उससे यह प्राप्त करादे, उसके लिये स्वाहा। (यह आहुतियाँ देने के बाद) वह नाक से धुँये को नूँद शीर सर्वांग में धृत का लेपन करे, मौन धारण करते हुये (वह पदार्थ जिसके पास हो उसके पास) चला जाय और अपनी इच्छा प्रकट करे अवधि किसी दूत को भेज कर ऐसा करे। उसको अर्थ की प्राप्ति हो जायगी ॥ ३ ॥

अब देवस्मर (देवताओं से पूर्ण होने वालों कामना) कहते हैं। जिस किसी एक पुरुष को वा छो को भयवा अनेक पुरुषों को वा द्वियों को हम प्रिय हों ऐसी किसी को इच्छा हो तो वह ऊपर लिखे हुए मूर्त्त पर बराबर उसी रीति के अनुसार अग्नि में नीचे लिखे मन्त्रों में आहुतियाँ दे-तेरे वाणी का यह मैं अपने में हवन करता है, स्वाहा। तेरे श्रोत्र का मैं अपने में हवन करता है, स्वाहा। तेरे मनका यह मैं अपने में हवन करता है, स्वाहा। तेरे प्रज्ञा का यह मैं अपने में हवन करता है, स्वाहा। (ये आहुतियाँ देने के पश्चात्) वह नाक से धुँये को नूँद शीर नव अंगों में धृत का लेपन करे, मौन धारण करते हुये उससे स्पर्श हो इस प्रकार उसके पास जाने की इच्छा करे भयवा दूर से



बेसा कहता हुआ खड़ा रहे। निश्चय वह प्रिय हो जायेगा और वह उसको याद करेगे ॥ ४ ॥

अब प्रतर्दन का अनुष्ठान किया हुआ संयमन ( निरोधन ) कहते हैं—इसी को आनन्द अग्निहोत्र कहते हैं। मनुष्य जब तक बोलता रहता है, तब तक वह आसोआस नहीं ले सकता। इस समय वह अपने वाणी में प्राण का हवन करता है और जब तक वह आसोआस करता रहता है तब तक वह अपने प्राण का वाणी में हवन करता है—वह जागता हो या निद्रित। यह कभी न समाप्त होने वाली अखण्ड आहुतियाँ बराबर हुआ करती हैं। सामान्य आहुतियाँ अन्त वाली होती हैं क्योंकि वे कर्म रूप हैं। प्राचीन काल के विद्वान् लोग इस अग्निहोत्र को करते थे ॥ ५ ॥

उक्त ब्रह्म है, ऐसा शुक्ल भुङ्गार ने कहा है। यह उक्त और ऋक् एक ही है ऐसा समझ कर उसका मनन करे। सब प्राणी उसी को श्रेष्ठ मानकर उसकी ही आर्चा करते हैं। वह और यजुर्वेद एक ही है ऐसा समझ कर उसका मनन करे। सर्व प्राणी उसी को श्रेष्ठ मान के उसका योग करते हैं ( ध्यान करते हैं ) वह और साम एक ही है ऐसा समझ कर उसका मनन करे। समस्त प्राणी उसको श्रेष्ठ मानकर उसको नमस्कार करते हैं। यह और ऐश्वर्य एक ही है, ऐसा ध्यान करे, यह और यज्ञ एक ही है ऐसा ध्यान करे। यह और तेज एक ही है ऐसा ध्यान

करे। जिस प्रकार धनुष सब शस्त्रों में अत्यन्त श्री युक्त और अत्यन्त तेजस्वी होता है उसी प्रकार यह जानने वाला मनुष्य समस्त प्राणियों में अत्यन्त श्री युक्त, अत्यन्त यशस्वी और अत्यन्त तेजस्वी होता है। कर्म का साधन रूप इष्ट का ( लक्ष्मियों ) से प्रज्वलित अग्नि ही वह स्वयं है ऐसा श्रद्धापूर्व मानता है और वह यज्ञ का यजुर्भाग उसमें प्रवेश करता है। होता यजुर्भाग में ऋग् भाग का प्रवेश कराता है। उद्गाता ऋग् भाग में साम भाग का प्रवेश कराता है, वही त्रयी विद्या का आत्मा है, सचमुच वही उसका आत्मा है—यह जो जानता है वह वही हो जाता है ॥ ६ ॥

अब सर्वाजित कौर्षातकी ( नामक प्रयोग ) कहते हैं। इसके तीन प्रकार होते हैं। यज्ञोपवीत पहन कर और आचमन करके जल के पात्र का तीन बार सिंचन करके उदय होने वाले आदित्य की प्रार्थना करे—“तू वर्ग ( दुखों से मुक्त करने वाला ) है, मुझे पातकों से मुक्त कर।” इसी प्रकार सूर्य मध्याह्न होने पर वह प्रार्थना करे—“तू दुखों से मुक्त करने वाले में श्रेष्ठ है, मुझे पातकों से मुक्त कर।” इसी प्रकार अस्त समय में सूर्य की प्रार्थना करे—“तू संपूर्ण रीति से पातकों से मुक्त करने वाला है, मुझे समस्त पातकों से मुक्त कर। इस प्रकार दिन में और रात में किये हुए, समस्त पापों का वह नाश करता है। इसी प्रकार यह जानने वाला मनुष्य भी सूर्य की उपासना करता है और उससे वह दिन और रात में किये हुए सब पातकों का नाश करता है ॥ ७ ॥



अब प्रति भास अभावस्या के पश्चात् पश्चिम में स्थित चन्द्र की उपासना करे अथवा चन्द्र की ओर दो द्वर्वाकुर फेंक कर कहे—  
“हे मरण रहित आनन्दमय देव चन्द्र में रहे हुए तेरे कोमल हृदय से ऐसा करो कि मुझे मेरे पुत्र के आपत्ति सम्बन्धी शोक करने का प्रसंग कभी न आवे ।” उसकी सन्तति उसके आगे कभी नहीं मरेगी जिसके पहिले में पुत्र है उसके सम्बन्ध में यह सम्भन्ना, जिसके अभो पुत्र नहीं है उसके सम्बन्ध में कहते हैं—ऐसा मनुष्य आगे निखी हुई ऋग्वेद की तीन ऋचायें पठन करे—“आप्या यस्व ममेतु ते” [ ऋ० १-६१-१६ ] ( हे भोग तेरी समृद्धि हो और तेरे अंगों में सामर्थ्य प्राप्त हो ); “मन्तेपर्यामि समुपन्तु वाजा” [ ऋ० ६-३१-४ ] ( इधर और अन्न तुम्हें प्राप्त हो ); “यमादित्या अंशुमाप्या ययन्ति” [ ऋ० १-६१-१८ ] ( जिस किरण को मूर्ध आनन्दमय बनाता है ) । इन तीन ऋचाओं का जप करके वह प्रार्थना करे—“हमारे प्राण, हमारी सन्तति और हमारे पशु इनमें (हमारे शत्रुओं को) समृद्ध न कर । जो हमारा द्वेष करते हैं और जिनका हम द्वेष करते हैं उनका प्राण, उनकी मन्तति, उनके पशु इनसे हमारी समृद्धि कर । इस प्रकार मैं देवी आदिति करता हूँ । मैं आदित्य का मंचार घुमाता हूँ ।” ऐसा कहकर चन्द्र को तरफ दाहिना हाथ ऊंचा करके पुनः द्वर्वाकुर प्रदान करे ॥ ८ ॥

पौर्यामासों के दिन चन्द्र पूर्व की ओर दिखाई देता है । उसकी इसी प्रकार पूजा करते समय यह प्रार्थना करे—“तू सोम

है, राजा है, ज्ञानी है, पाँच मुख वाला है, प्रजापति है, ब्राह्मण तेरा एक मुख है उस एक मुख से तू राजाओं को खाता है । उसी मुख से मुझे अन्न खाने वाला कर । क्षत्रिय तेरा एक मुख है, उस मुख से तू वैश्यों को खाता है । उसी मुख से मुझे अन्न खाने वाला कर । श्येन पक्षी तेरा एक मुख है, उस मुख से तू पक्षियों को खाता है । उसी मुख से तू मुझे अन्न खाने वाला कर । अग्नि तेरा एक मुख है, उस मुखसे तू इस लोकको खाता है । उस मुख से तू मुझे अन्न खाने वाला कर । तुझमें पाँचवाँ मुख है उससे तू सब श्रुतों को खाता है, उससे तू मुझे अन्न खाने वाला कर । हमारे प्राण, हमारी सन्तति, हमारे पशु इनसे तेरा क्षय न हो । जो हमारा द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं उसका प्राण, उसकी सन्तति, उसके पशु इनसे तू क्षीण हो” । इस प्रकार मैं देवी का संचार करता हूँ, मैं आदित्य का संचार अनुसरता हूँ । ऐसा कह कर दाहिना हाथ ऊंचा करके द्वर्वाकुर प्रदान करे ॥ ९ ॥

अब अपनी स्त्री को पास बुलाकर, उसके हृदय को स्पर्श करके कहें जो तुझमें तेरे कोमल हृदय में प्रजापति के अर्थ प्रविष्ट हुआ है, उससे कभी नाश न होने वाले आनन्द को प्राप्त हुई, हे सुन्दरी, तुझे पुत्र सम्बन्धी शोक करने का प्रसंग कभी न प्राप्त हो उसकी सन्तति उसके पहिले कभी नहीं मरेगी ॥ १० ॥



प्रवास करके वापस आने पर पुत्र का मस्तक सूँघे कहे तू मेरे प्रत्यक अवयव से उत्पन्न हुआ है, तू हृदय से उत्पन्न हुआ है, हे पुत्र सचमुच तू मेरा आत्मा है, सो तू सो वर्ष पर्यन्त जो ।" वह उसका नामलेकर कहे "तू परत्पर हो, तू पर्यु हो, सोने का डेला हों । हे पुत्र, तू सचमुच तेज है सो तू सो वर्ष तक जो ।" उसका नामलेकर आर्त्तिगन करते हुए वह कहता है, प्रजापति ने प्राणो मात्र का कल्याण के लिये आर्त्तिगन किया, वैसे हों मैं तेरा आर्त्तिगन करता हूँ । परचात् पुत्रके दाहिने कान म यह मन्त्र कहे—'अग्ने प्रयन्धि मधवनृजीषिन् [ ऋ० ३-२६-१० ] ( हे चपल इन्द्र तू इसको दे ) और बाँए कान में कहे—'इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि । ऋ० २-२१-६ ] ( हे इन्द्र तू श्रेष्ठ द्रव्य दे ) परचात् तीन बार मस्तक सूँघते हुए कहे, तू हमारा वंश छेद न कर, दुखों न होते हुए सो वर्ष तक जो । हे पुत्र यह मैं तेरा नाम लेकर तेरा मस्तक सूँघता हूँ ।" पश्चात् मैं गाय के हुँकार के समान तुझ पर हुँकारता हूँ, ऐसा कह कर वह पुत्रके मस्तक पर तीन बार हुँकार करे ॥ ११ ॥

अथ देवपरिमर ( सब देवताओं का ब्रह्म में लीन होना ) कहते हैं—आग्नि जलते हुए ब्रह्म ही प्रकाशता है, वह नहीं जलता है, तब मरता है । उसका तेज सूर्य में जाता है और प्राणवायु में जाता है, सूर्य प्रकाशता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है । वह नहीं दीखता तब मर जाता है । उनका तेज चन्द्रमा ही प्रकाशता है, प्राणवायु में जाता है चन्द्र दीखता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता

है—वह नहीं दीखता तब मर जाता है । उसका तेज बिजली में जाता है और प्राण वायु में जाता है बिजली चमकती है । तब ब्रह्म ही प्रकाशता है, वह नहीं चमकती तब मरता है । उसका तेज वायु में जाता है, और प्राण वायु में जाता है । इस प्रकार यह सब देवता वायु में प्रवेश करके वायु में रहते हैं, नष्ट नहीं होते । उसी वायु से वे सदा बाहर निकलते हैं—यह देवता सम्बन्धी कथन हुआ; अथ शरीर सम्बन्धी कहते हैं ॥ १२ ॥

मनुष्य वाणीसे बोलता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है, जब नहीं बोलता तब मर जाता है । उसका तेज नेत्र ही में जाता है, प्राण प्राणों जाता है, मनुष्य आँखों से देखता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है और नहीं देखता तब मरता है । उसका तेज कान ही में जाता है और प्राण प्राण में जाता है । अथ मनुष्य कान से सुनता है, तब ब्रह्म ही प्रकाशता है और नहीं सुनता तब मर जाता है । उसका तेज मन ही में जाता है, प्राण प्राण में जाता है । मनुष्य मन से विचार करता है तब ब्रह्म ही प्रकाशता है जब नहीं विचार करता तब मर जाता है । उसका तेज मनमें जाता है और प्राण प्राण में जाता है । इस प्रकार ये सब देवता, इन्द्रियाँ प्राण ही में प्रवेश करके प्राण ही में लीन रहते हैं और नष्ट नहीं होते । उसी प्राणसे वे फिर बाहर निकलते हैं । यह दक्षिण और उत्तर के दोनों पर्वत ऐसा जानने वाले को पीस डालने के लिये आगे बढ़ते पर भी नहीं पीस सकेंगे । परन्तु जो उससे द्वेष करते हैं और वे सब जिमसे वह द्वेष करता है उसके पास आकर मर जाते हैं ॥ १३ ॥



अब निःशेषसाधान (प्राणोंका श्रेष्ठत्व ग्रहण) कहते हैं; देवता अपनी श्रेष्ठता के लिये बाह्य करने लगे और शरीर के बाहर निकल गये और शरीर लकड़ी के समान पड़ा रहा। पश्चात् वाणी ने उसमें प्रवेश किया परन्तु वाणी से बोलता हुआ भी वह पड़ा ही रहा। पश्चात् नेत्र ने प्रवेश किया परन्तु वाणी में बोलता हुआ और नेत्र से देखता हुआ भी वह पड़ा रहा। पश्चात् कर्णोन्मिष ने प्रवेश किया परन्तु वाणी से बोलता, नेत्रों से देखता और कर्णों से सुनता हुआ भी वह पड़ा ही रहा पश्चात् मन ने उसमें प्रवेश किया परन्तु वाणी से बोलता हुआ, नेत्रों से देखता हुआ, कानों से सुनता हुआ और मन से विचार करता हुआ भी वह पड़ा ही रहा। पश्चात् प्राण ने उसमें प्रवेश किया—तत्काल ही वह उठ खड़ा हुआ। तब प्राण का श्रेष्ठत्व स्वीकार करके प्राण ही एक जानने वाला आत्मा है ऐसा जानकर सब देवता प्राणों के साथ उस शरीर से बाहर निकले और वायु में स्थिर होकर और आकाश में लीन होकर स्वर्गलोक में गये। ज्ञाना जानने वाले मनुष्यको प्राणोंका श्रेष्ठत्व विदित होता है और प्राण ही प्रजात्मा है ऐसा वह जानता है और इसी प्रकार वह शरीर से बाहर निकलता है और वायु में स्थिर होकर और आकाश में लय होकर स्वर्गलोक में जाता है—जिस स्थान में वे देवता होते हैं उस स्थान में वह जाता है इस अवस्था को पहुँचने पर यह जानने वाला मनुष्य उन देवताओं को प्राप्त हुए अमरत्व से अमर होजाता है ॥ १४ ॥

अब आगे पिता पुत्रीय सम्प्रदान (पिता का पुत्र को देने का उपदेश), कहते हैं—(पिता मरते समय अपने पुत्र का बुलाता है) उसके पहले घर में नयी घास बिछाकर, अग्नि सिद्ध करके, उसके पास पानों के साथ पानी का घड़ा रखकर श्वेत वस्त्र पहन करके और कोरा कपड़ा ओढ़कर आ वंछता है और पुत्र के ऊपर भुक्तता है और अपने इन्द्रियों से उसकी इन्द्रियों को स्पर्श करता है अथवा वह उसके आगे बैठकर यह उपदेश करे—“मेरी वाणी तुममें स्थित हो।” पुत्र कहे “तुम्हारी वाणी में ग्रहण करता हूँ।” पिता कहे, “मेरा प्राण तुम्हमें प्रविष्ट हो।” पुत्र कहे, तुम्हारा प्राण में ग्रहण करता हूँ।” पिता कहे, “मेरे नेत्र तुम्हमें स्थित हों।” पुत्र कहे, “तुम्हारे नेत्र में ग्रहण करता हूँ।” पिता कहे, “मेरा कर्ण तुम्हमें प्रविष्ट हो।” पुत्र कहे “तुम्हारे कर्ण अपने में ग्रहण करता हूँ।” पिता कहे, “मेरा अक्ष रस में तुम्हमें स्थित हो।” पुत्र कहे, “तुम्हारे अक्ष रस को अपने में ग्रहण करता हूँ।” पिता कहे, “मैं अपने कर्म तुम्हको देता हूँ। पुत्र कहे, “मैं तुम्हारे कर्म अपने में ग्रहण करता हूँ।” पिता कहे, “मैं अपने मुख दुःख, तन्ममें प्रविष्ट करता हूँ।” पुत्र कहे, “तुम्हारे मुख दुःख मैं ग्रहण करता हूँ।” पिता कहे, “मेरा आनन्द, सन्तोष और सन्तति तुम्हको प्राप्त हो।” पुत्र कहे, “तुम्हारा आनन्द, सन्तोष और सन्तति अपने में ग्रहण करता हूँ।” पिता कहे, “मेरा गमन तुम्हमें होने दे।” पुत्र कहे, “तुम्हारा गमन मैं अपने में करता हूँ।” पिता कहे “मेरा मन तुम्हमें रहने दे।” पुत्र कहे, “तुम्हारा मन



मैं मुझमें प्रविष्ट कराता हूँ ।" पिता कहे, 'मेरी प्रज्ञा तुझमें रहने दे ।' पुत्र कहे, "तुम्हारी प्रज्ञा को मैं ग्रहण करता हूँ ।" यदि वह बहुत बीमार हो तो "मेरे प्राण तुझमें रहने दे" इतना कहे और पुत्र तुम्हारे प्राण में अपने में ग्रहण करता हूँ, ऐसा उत्तर दे । पश्चात् दाहिने नेत्र से पिता को देखते हुए पुत्र पिता को प्रदक्षिणा करते हुए चला जाता है । पिता उसको बुलाकर कहता है "मेरा यश, ब्रह्मवर्चस और सम्मान तुझे हमेशा प्राप्त हो ।" इसके पश्चात् कोई अपने हाथ से अथवा वस्त्र से अपने को ढककर बांये स्कन्ध से पीछे देखे और कहे, स्वर्गलोक तथा सम्पूर्ण इच्छित पदार्थ तुझको प्राप्त हो । इसके पश्चात् यदि पिता अच्छा होजाय तो वह पुत्र के अधिकार में रहे । अथवा संन्यास ग्रहण करे । परन्तु यदि मर जाय तो उसकी अंत क्रिया योग्यता अनुसार कर दे । उसकी क्रिया योग्यता के अनुसार कर दे ॥ १५ ॥

### तीसरा अध्याय ।

दिवोदास का पुत्र प्रतर्दन युद्ध और पराक्रम से इन्द्र के परम धाम को पहुँचा, उससे इन्द्र ने कहा, "हे प्रतर्दन ! मैं तुझे क्या वरदान दूँ ?" प्रतर्दन ने कहा "आपको जो पसन्द हो जिसको आप मनुष्य के लिये हितकारी समझते हों वह वरदान मुझे दीजिये ।" इन्द्र बोला "कोई दूसरे के लिए वरदान पसन्द नहीं करता, तू अपने लिये आप ही वरदान माँग ?" प्रतर्दन बोला "मुझे पसन्द करने के लिये कुछ है ही नहीं ।" इन्द्र ने कभी

सत्य का त्याग नहीं किया क्योंकि इन्द्र सत्य रूप है । इन्द्र बोला "तू मुझही को जान, मनुष्य के लिये मैं यही उत्तम हित मानता हूँ कि यह मुझे पहिचाने । तबष्टा के तीन मस्तक वाले पुत्र को मैंने मार डाला था, वेद से रहित संन्यासियों को मैंने भेड़ियों को दे दिया । अनेक संघियों का अतिक्रमण करके आकाश में प्रह्लाद के वंशजों को मैंने मारा था इस करके मेरे भी शिर का एक बाल भी टूटने न पाया । जो मुझको जानता है, ( जीवात्मा और परमात्मा के बीच में जिसको अद्वैत भाव होता है ) उसका लोक (सुख) किसी कर्म मातृ वध से, पितृ वध से, चोरी से और अंग हत्या से कभी नष्ट नहीं होता । कभी वह पाप कर्म करने की इच्छा करता है तो भी उसके मुख की कान्ति फीकी नहीं पड़ती" ॥१॥

इन्द्र बोला:—"मैं प्राण रूप हूँ । प्रज्ञा रूप, आधुष्य और अमृत रूप से मेरी उपासना कर । आधुष्य प्राण रूप है, प्राण आधुष्य रूप है और प्राण को अमृत से कहा है । जब तक इस शरीर में प्राण रहता है तब तक आधुष्य रहता है मनुष्य प्राण करके इस लोक में अमृतत्व को प्राप्त करते हैं और प्रज्ञा से सत्य संकल्प को प्राप्त करते हैं । जो आधुष्य रूप और अमृत रूप से मेरी उपासना करता है वह इस लोक में पूर्ण आधुष्य को प्राप्त होता है और स्वर्गमें अमृत भावको प्राप्त करता है और प्रक्षयरूप होता है ।" तब प्रतर्दन बोला "कितनेक कहते हैं कि जब कर्मान्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय प्राण एकत्र होकर गमन करते हैं तब



वाणी से नाम जानने की कोई समर्थ नहीं होता। तैसे ही चक्षु रूप को, श्रोत्र शब्द को और मन ध्यान को नहीं जान सकता। जब प्राण एक रूप होजाता है तब वह भिन्न २ जानने की शक्ति देता है। इस प्रकार जब वाणी बोलती है तब सब प्राण उसके पीछे बोलते हैं। जब चक्षु देखता है तब उसके पीछे सब प्राण देखते हैं। जब श्रोत्र सुनता है तब उसके पीछे सब प्राण सुनते हैं और जब मन विचारता है तब उसके पीछे सब प्राण विचारते हैं। जब प्राण श्वास लेता है तब सब प्राण उसके पीछे श्वास लेते हैं।" इन्द्र बोला:—"इस प्रकार है तो सही, परन्तु उत्कृष्ट मुझ तो प्राण को ही होता है ॥२॥

हम भोगे को देखते हैं उससे जान सकते हैं कि वाणों रहित मनुष्य जीता है, श्रवे को देखकर जान सकते हैं कि चक्षु रहित मनुष्य जीता है। वहरे को देखकर जान सकते हैं कि श्रोत्र रहित जीता है, हाथ से रहित जीता है, तैसे ही उरु कटा हुआ जीता है। इस प्रकार देखते हैं कि प्राण ही प्रज्ञात्मा रूप है, इस शरीर को धारण करके वह इसको उठाता है, इसलिये उसकी उक्त्य रूप से उपासना करनी चाहिये। जो प्राण है वह ही प्रज्ञा रूप है, जो प्रज्ञा है सां प्राण रूप है। इस प्राण का स्वरूप इस प्रकार है:—प्राण और प्रज्ञा इस शरीर में साथ रहते हैं, उनमें से दोनों साथ ही उत्क्रमण करते हैं, यह उसकी दृष्टि विज्ञान रूप है। जब पुरुष सुषुप्ति अवस्था में होता है, जब वह कुछ भी स्वप्न नहीं देखता, उस समय प्राण के विषे एक ही

प्रकार का होता है। पीछे वाणी सब नामों सहित उसमें प्रवेश करती है, चक्षु सर्व रूपां सहित उसमें प्रवेश करते हैं, श्रोत्र सब शब्दों सहित उसमें प्रवेश करते हैं और मन सर्व संकल्पों सहित उसमें प्रवेश करता है। जब मनुष्य जाग्रतावस्था में आता है तब जेमें जलते हुए अग्नि में से सब दिशाओं में चिनगारियां उड़ती हैं वैसे ही इस आनन्द रूप आत्मा में से सब प्राण अपने अपने ध्यान प्रति जा जाकर बैठते हैं। प्राणों में देव और देवों में लोक होते हैं इस रीति का उनका प्रमाण और विज्ञान है। कोई एक पुरुष रोगग्रस्त होता है और मरण के समीप होता है, तब से रहित होता है, भान रहित अवस्था में पड़ता है, तब उसके पास बैठने वाले कहते हैं कि उसका चित्त जाता रहा है, वह सुनता नहीं है, वह देखता नहीं है, वह वाणी से बोलता नहीं है, वह इस प्राण में एक रूप हुंगया है। पीछे सब नामों सहित वाणी उनमें प्रवेश करती है, तब रूप सहित चक्षु उसमें प्रवेश करते हैं, तब शब्दों सहित श्रोत्र उनमें प्रवेश करते हैं और सब संकल्पों सहित मन उनमें प्रवेश करता है। जब वह जाग्रत होता है तब जेमें जलते हुए अग्नि का चिनगारियां सब दिशाओं में उड़ती हैं इसी प्रकार आनन्द रूप आत्मा में से प्राण अपने अपने स्थान पर चले जाते हैं। प्राणों में से देवताओं का और देवताओं में से लोकों का उद्भव होता है ॥ ३ ॥



जब इस शरीर में से प्राण का उत्क्रमण होता है तब शरीर से वाणी सब नामों का त्याग करती है, वाणी की सहायता से सब नामों की प्राप्ति होती है। प्राण सर्व गंधों का त्याग करता है। प्राण की सहायता से सब गंध शरीर को प्राप्त होता है। चक्षु शरीर में से सब रूपों का त्याग करता है, शरीर को चक्षु से सर्व रूपों की प्राप्ति होती है। मन शरीर में से सर्व संकल्पों का त्याग करता है, मनसे उसको सर्व संकल्पों की प्राप्ति होती है। प्राण की विद्यमानता से शरीर को इन सब की प्राप्ति होती है। प्राण प्रज्ञा रूप है और जो प्रज्ञा रूप है सो प्राण है। प्रब जिस प्रकार प्रज्ञा में सब भूत एक भाव को प्राप्त होते हैं, उनका वर्णन करते हैं ॥४॥

वाक् देवता ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय शब्द भूत मात्रा रूप से बाहर जाता रहा। जिह्वा ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय रस भूत मात्रा रूप से बाहर जाता रहा। हाथ ने एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय सुख और दुःख मात्रा रूप से बाहर जाता रहा। उपस्थेन्द्रिय ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय भ्रान्त रति और प्रजोत्पत्ति भूत मात्रा रूप से बाहर जाता रहा। पादों ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उनका विषय गति भूत मात्रा रूप से बाहर जाती रही। प्रज्ञा ने अपना एक अंश निकाल लिया इससे उसका विषय बुद्धि, ज्ञान और काम भूत तन्मात्रा रूप से बाहर जाता रहा ॥ ५ ॥

प्रज्ञा वाणी से आरब्ध होने से—उसी रूप बनने से वाणी से सब नामों को प्राप्त करती है। प्रज्ञा से प्राण में आरोहण होने से प्रज्ञा प्राणों से सब गंधों को प्राप्त करती है। प्रज्ञासे चक्षु में आरोहण होने से प्रज्ञा चक्षु से सब रूपों को प्राप्त करती है श्रोत्र में आरोहण होने से प्रज्ञा श्रोत्र से सब शब्दों को प्राप्त करती है। प्रज्ञा से जिह्वा में आरोहण होने से प्रज्ञा जीभ से सब रसों को प्राप्त करती है। प्रज्ञा से हृत्को में आरोहण होने से प्रज्ञा दंतों हाथों से सब कर्मों को प्राप्त करती है। प्रज्ञा से उपस्थेन्द्रिय से आरोहण होने से प्रज्ञा उपस्थ से भ्रान्त, रति और प्रजोत्पत्ति की शक्ति प्राप्त करती है। प्रज्ञा से दोनों पैरों में समारोहण होने से प्रज्ञा पैरों से सर्व गति को प्राप्त करती है। प्रज्ञा से मनमें आरोहण होने से प्रज्ञा मनमें विज्ञान और काम को प्राप्त करती है ॥ ६ ॥

प्रज्ञा से रहित वाणी किसी नाम को भी नहीं बना सकती। उस समय ऐसा कहा जाता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था मैंने उस नाम को नहीं जाना। सब है कि प्रज्ञा से रहित द्राण किसी गंध को भी नहीं बना सकता। ऐसा कहा जाता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था, इसलिये मैंने गंध को नहीं जाना। प्रज्ञा से रहित चक्षु किसी रूप को भी नहीं बना सकता, वह कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये मैंने रूप को नहीं देखा। प्रज्ञा से रहित श्रोत्र किसी भी शब्द को सुन नहीं सकता, वह ऐसा कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये



मैंने शब्द नहीं सुना । प्रज्ञा से रहित जीम रस के स्वाद को नहीं जना सकती, वह कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये मैंने रस को नहीं जाना । प्रज्ञा से रहित हाथ किसी कर्म को नहीं जना सकता, वह कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये मैंने कर्म को नहीं जाना । प्रज्ञा से रहित शरीर किसी भी सुख दुःख को नहीं जानता । पुंसे कहता है कि मेरा मन दूसरे ठिकाने था इसलिये मैं इस सुख दुःख को जान न सका । प्रज्ञा से रहित उपस्थ रति, आनन्द और प्रजोत्पत्ति को नहीं जना सकता । वह कहता है कि मेरा मन शब्द या विसंसे में आनन्द, रति और प्रजोत्पत्ति को जान न सका । प्रज्ञा से रहित पाद किसी गति को नहीं जना सके, वह कहता है कि मेरा मन शून्य ठिकाने था इसलिये मैं गति को जान न सका । प्रज्ञा से रहित बुद्धि किसी को नहीं जना सकती और जानने योग्य ज्ञाना नहीं जा सकता ॥३॥

मनुष्य ज्ञानी को जानने को इच्छा न करे, वक्ता को जानना चाहिये । मनुष्य नंद जानने को इच्छा न करे, नंद के ज्ञाता को जानना चाहिये । मनुष्य रूप देखने को इच्छा न करे, रूप के ज्ञाता को जानना चाहिये । शब्द जानने को इच्छा न करे, शब्द के ज्ञाता को जानना चाहिये । रस जानने को इच्छा न करे, रस के ज्ञाता को जानना चाहिये । मनुष्य कर्म जानने को इच्छा न करे, उसके कर्ता को जानना चाहिये । मनुष्य सुख दुःख जानने को इच्छा न करे, सुख दुःख के ज्ञाता को जानना चाहिये । मनुष्य को आनन्द, रति और प्रजोत्पत्ति के ज्ञाता को जानना चाहिये ।

मनुष्य गति को जानने की इच्छा न करे, गमन करने वाले को जानना चाहिये । मनुष्य को मन को न जानना चाहिये, मनन करने वाले को जानना चाहिये । सब ही ये दश भूत मात्राये प्रज्ञा को अधिष्ठित हैं और प्रज्ञा को दश मात्राये भूतों के अधिष्ठित है । जो भूत मात्राये न हों वो प्रज्ञा मात्राये न हैं, जो चाहिये और जहाँ प्रज्ञा तन्मात्राये न हों वहाँ भूत मात्राये भी न चाहिये ॥ ८ ॥

इन दोनों में से एक करके किसी रूप को भी सिद्ध नहीं होती । इस एकता का कर्मो विभाज नहीं होता । जैसे रस के चक्र के आरे में नेमि रहती है और नेमि में आरे रहते हैं इसी प्रकार भूत मात्राये प्रज्ञा मात्राओं में रहती हैं और प्रज्ञा मात्रा प्राण में रहती है । वह प्राण ठीक प्रज्ञा रूप है, वह आनन्द रूप है, वह अन्नर और अमृत रूप है । वह शुभ कर्मों से महान नहीं होता और अशुभ कर्मों से छोटा नहीं होता । यह प्रज्ञा ठीक २ जिस मनुष्य को इस लोक में से उच्च से उच्च गति को पहुँचाने की इच्छा करती है उससे शुभ कर्म कराती है और इस लोक में से जिस मनुष्य को नीच गति में पहुँचाने की इच्छा करती है उससे अशुभ कर्म कराती है वह लोकों का प्रति रूप है वह लोकों का अधिपति रूप है । यह प्रज्ञा सर्वेश्वर रूप है । वह मेरा आत्मरूप है ऐसा जाने, मेरा आत्म रूप है ऐसा जाने ॥ ९ ॥



## जीया अध्याय ।

गार्ग्य गोत्र में बालाकि नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् हुआ । वह उशीनर में, मत्स देश में, कुलुचात् तथा काशी विदेह देश में रहा हुआ था । वह काशी के राजा भजात शत्रु के पास जाकर उससे बोला, “मैं तुझे ब्रह्म का वर्णन करता हूँ ।” भजात शत्रु उससे बोला “इस बात के लिये मैं तुझे एक सहस्र ( गार्ग्य ) देता हूँ, क्योंकि लोग जनक ही को ब्रह्मविद्या का श्रोता समझते हैं इसलिये उसीके पास लोग ( ब्रह्मविद्या के वक्ता ) जाया करते हैं, ॥ १ ॥ बालाकि बोला, “आदित्य में जो पुरुष है, उसीकी मैं ( ब्रह्मरूप से ) उपासना करता हूँ ।” भजात् शत्रु ने कहा, “इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर । जो बड़ा है, शुभ्र वस्त्र परिधान करता है, तथा जो सब भूतों में श्रेष्ठ और उसका राजा है, उसकी मैं उपासना करता हूँ । जो इस प्रकार उपासना करता है वह सब भूतों का राजा होता है” ॥ २ ॥ बालाकि बोला, “चन्द्र में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ ।” भजात शत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर । वह सोम राजा है तथा भजन का आत्मा ( जीवन ) है ऐसा मान कर मैं उसकी उपासना करता हूँ इस प्रकार उपासना करने वाला मनुष्य भजन का आत्मा होता है, यानी उसे भजन की कमी नहीं होती ॥ ३ ॥ “बालाकि बोला, जो विद्युत् में पुरुष है उसी की मैं ब्रह्मरूप से उपासना करता हूँ ।” तब भजात शत्रु ने कहा,

## कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषत्

[ ४२७

“इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर । वह तेज का आत्मा है ऐसा मानकर मैं उसकी उपासना करता हूँ । जो इस प्रकार उपासना करता है वह तेज का आत्मा होता है” ॥ ४ ॥ बालाकि बोला, “मेघ गर्जना में जो पुरुष उसकी मैं ब्रह्मरूप से उपासना करता हूँ ।” उससे भजात शत्रु ने कहा, “इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर । वह शब्द का आत्मा है ऐसा जान कर मैं उसकी उपासना करता हूँ । जो इस प्रकार इसकी उपासना करता है वह शब्द का आत्मा होता है” ॥ ५ ॥ बालिका बोला, “आकाश में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ ।” भजात शत्रु ने कहा, “इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर । वह पूर्ण और प्रशुति रहित ब्रह्म है ऐसा जानकर मैं उसकी उपासना करता हूँ” इस प्रकार जो उसकी उपासना करता है वह प्रजा और पशुओं से पूर्ण ( संपन्न ) होता है । वह स्वयं अथवा उसकी प्रजा योग्य काल के पूर्व मरण को प्राप्त नहीं होती ॥ ६ ॥ बालाकि ने कहा, “वायु में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ ।” उससे भजात शत्रु ने कहा, “इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर । वह वैकुण्ठ ( महा पराक्रमी ) इन्द्र है तथा पराजय न होने वाली सेना है ऐसा समझ कर मैं उसकी उपासना करता हूँ । इस प्रकार इसकी उपासना करने वाला विजयी दुर्जय तथा शत्रुओं को जीतने वाला होता है” ॥ ७ ॥ बालाकि बोला, “अग्नि में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ ।” भजात शत्रु ने कहा, “इस संबंध में तू मुझसे संवाद मत कर । वह प्रबल है ऐसा समझ



कर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है वह प्रबल होता है ॥ ८ ॥ बालाकि बोला, “जल में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ।” अजात शत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर यह नाम स्वरूप ( अथवा तेज स्वरूप ) है ऐसा समझ कर मैं इसकी उपासना करता हूँ। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है वह नाम स्वरूप ( अथवा तेज स्वरूप ) होता है। इतना देवता नम्रवर्धा हुआ अथ शरीर सम्बन्धी कहते हैं ॥ ९ ॥

बालाकि बोला, “आदर्श ( आर्हता ) में दीखने वाला जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ।” अजात शत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। इसको प्रतिरूप समझ कर मैं इसकी उपासना करता हूँ, इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है उसके घर में उसीके समान रूपवाला पुत्र उत्पन्न होता है उसके नमान रूप न हो ऐसा पुत्र नहीं उत्पन्न होता ॥ १० ॥ बालाकि बोला, “प्रतिवृत्ति में जो पुरुष होता है उसकी मैं उपासना करता हूँ।” अजात शत्रु बोला, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। मैं इसको द्वितीय तथा कभी अलग न होने वाला ऐसा जानकर इसकी उपासना करता हूँ। जो इस प्रकार इसकी उपासना करता है उसको द्वितीय से ( पत्नी से ) द्वितीय पुत्र प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ बालाकि बोला, मनुष्य के चलने में जो शब्द होता है, उसकी मैं उपासना करता हूँ। अजात शत्रु ने कहा इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। मैं उसका प्राण समझ कर उपासना

करता हूँ—जो इस प्रकार इसकी उपासना करता है वह अथवा उसको प्रजा योग्य समय के पहिले नहीं मरती ॥ १२ ॥ बालाकि बोला, छाया में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ। अजात शत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। उसको मृत्यु समझकर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है वह अथवा उसकी प्रजा योग्य समय से पहले मृत्यु को प्राप्त नहीं होती ॥ १३ ॥ बालाकि बोला, शरीर में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ अजात शत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद न कर। उसकी प्रजापति समझकर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो उसकी उपासना करता है उसकी प्रजा और पशु वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ बालाकि बोला, जो प्राज्ञ आत्मा है और जिससे सोया हुआ पुरुष स्वप्न में भ्रमण करता है उस आत्मा की मैं उपासना करता हूँ। अजात शत्रु ने कहा, इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। वह राजा यम है ऐसा समझकर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो उसको उपासना करता है उसकी श्रेष्ठता को सब कोई स्वीकार करते हैं ॥ १५ ॥ बालाकि बोला—दाहिने नेत्र में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ। अजात शत्रु ने कहा—इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। यह पुरुष नाम का आत्मा, अग्नि का आत्मा तथा तेज का आत्मा है ऐसा समझ कर मैं इसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है वह इन सबका आत्मा होता है ॥ १६ ॥



बालार्क बोलो—बाँए नेत्र में जो पुरुष है उसकी मैं उपासना करता हूँ। भ्रजात शत्रु ने कहा—इस विषय में तू मुझसे संवाद मत कर। यह पुरुष सत्य का आत्मा, विद्युत् का आत्मा तथा तेज का आत्मा है, ऐसा समझ कर मैं उसकी उपासना करता हूँ। इस प्रकार इसकी उपासना करने वाला पुरुष इन सबका आत्मा होता है ॥ १७ ॥

इन पर भ्रजात शत्रु चुप हो गया। तब भ्रजात शत्रु ने कहा—क्या इतना ही तू जानता है? गार्ग्य ने कहा—इतना ही जाना है। भ्रजात शत्रु बोलो—मैं तुझसे ब्रह्म का वर्णन करता हूँ, ऐसा कह कर वृथा ही तू मुझसे संवाद करने को आया है। हे बालार्क, इन सब पुरुषों का जो कर्त्ता है, उसी ने यह विश्व उत्पन्न किया है और वही एक जानने के योग्य है।

तदन्तर हाथ में समिधा ग्रहण करके बालार्क उसके पास जाकर बोला—मैं तेरे पास (शिष्य भाव से) आया हूँ। भ्रजात शत्रु ने कहा—शत्रिय ब्राह्मण को उपदेश दे यह अयोग्य होगा। बल मैं तुझे समझाता हूँ। पश्चात् उसका हाथ पकड़ कर वह चलने लगा। वे दोनों एक सोये हुए पुरुष के पास गये। भ्रजात शत्रु ने पुकारा—हे ब्रह्मन्, शुद्ध बल बाले। हे सोम राजन्। परन्तु वह चुप रहा। पश्चात् उसने उसको हिला के जगाया—तब वह उठ कर खड़ा हुआ। तब भ्रजात शत्रु बोला—यह पुरुष कहाँ सोया था, वह कहाँ था और इस प्रकार से वह कहाँ से आया। बालार्क यह नहीं जानता था ॥ १८ ॥ इस पर भ्रजात

शत्रु बोला—वह पुरुष कहाँ था और कहाँ से इस प्रकार आया—इसका उत्तर यह है—हृदय में हिला नाम की नाडियाँ उस पुरुष के हृदय से पुरीतता तक फैली हुई हैं। एक बाल के सहस्र भाग के समान ये नाडियाँ सूक्ष्म हैं। इनमें शुभ्र, काला, पीला और लाल इस प्रकार के अनेक रंग का रस भरा रहता है। मनुष्य सोने पर स्वप्न नहीं देखता तब वह इन नाडियों में होता है। इस समय वह प्राण के साथ एक रूप होता है। वायुी सब नामों को लेकर इस समय उसको प्राप्त होती है। फिर चक्षु सम्पूर्ण आकार लेकर उसको प्राप्त होता है। कर्ण सब शब्द लेकर उसको प्राप्त होता है। मन सम्पूर्ण विचार लेकर उसको प्राप्त होता है। जब यह जाग उठता है तब जैसे जलते हुए अग्नि से चारों तरफ चिनगारियाँ उठती हैं वैसे ही उस आत्मा से प्राप्त (वायुी इत्यादि) बाहर निकल कर अपने अपने स्थान पर जाते हैं। प्राण से देवता और देवताओं से लोक बाहर निकलते हैं और जिस प्रकार छुरी के धर में छुरी रहती है अथवा अग्नि कुण्ड में अग्नि रहता है इसी प्रकार यह प्राज्ञ आत्मा चोटी से धर के नख तक शरीर में प्रवेश करता है ॥ १९ ॥ जैसे किसी सेठजी के पीछे उसके सेवक जाते हैं वैसे ही (बाणी आदिक) सब आत्मा इस आत्मा के पीछे जाते हैं। जिस प्रकार प्रधान पुरुष अपने स्वजनो के साथ भोजन करता है वैसे ही यह प्राज्ञ आत्मा इन आत्माओं के साथ भोजन करता है। तथा लोक धनी का अनुसरण करते हैं वैसे ही यह इतर आत्मा इस आत्मा का



श्रुत्करण करते हैं। जब तक इन्द्र को इस आत्मा का ज्ञान नहीं था तब तक वह श्रुतुरों से जीता गया—परन्तु जब उसको इसका ज्ञान हुआ तब उसने श्रुतुरों को जीत लिया तथा उसको समस्त देवताओं में श्रेष्ठता, स्वाराज्य और अधिपत्य की प्राप्ति हुई। वह सम्पूर्ण प्राणियों में श्रेष्ठता, स्वाराज्य और अधिपत्य को प्राप्त होता है—जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार जानता है ॥ २० ॥

॥ इति कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषत् समाप्त ॥

## अथर्वशिखोपनिषत् ।

[ ४७ ]

अंगारिस कुल में उत्पन्न हुए, ऋषि वैष्णवादि और सन्तकुमार ने अथर्व मुनि से पूछा “हे भगवन् ! प्रथम ध्यान करने योग्य क्या है ? वह ध्यान क्या है, ध्याता कौन है और ध्येय क्या है ?” इसके उत्तर में अथर्व मुनि ने कहा “ऌकार यह अक्षर प्रथम ध्यान करने योग्य है और वह परब्रह्म है। उसके चार पाद और चार वेद हैं इसलिये वह चार पाद वाला कहा जाता है। वह ऌकार अक्षर और परब्रह्म है। उसकी प्रथम मात्रा अकार पृथ्वी रूप है तथा वह ऋचा वाले ऋग्वेद रूप है उसका अधिष्ठान ब्रह्मा है, वसुदेव है, गायत्री छंद है और गार्हपत्य अग्नि है। उसको दूसरी मात्रा उकार अन्तरिक्ष रूप है, वह यजुप् से यजुर्वेद रूप है, उसका अधिष्ठान विष्णु, देव इन्द्र, त्रिष्टुप् छंद और दक्षिणग्नि है। तीसरी मात्रा मकार स्वर्ग रूप और साम के मंत्रों से सामवेद रूप है, उसका अधिष्ठान रुद्र देव, आदित्य जगती छंद और आह्वनीय अग्नि है। अन्त की अर्ध मात्रा सोम लोक रूप है, वह अथर्वण के मंत्र से अथर्व वेद रूप, संवर्तक, अग्नि, मरुद्, विशाट और एकांश और भास्वतो रूप है। प्रथम मात्रा रक्त पीत है और ब्रह्मा देवता वाली है। दूसरी मात्रा इवेत कृष्ण है और विष्णु देवता वाली है। तीसरी मात्रा शुभ अशुभ



वाली शुक्ल है और वह रुद्र देवता वाली है। अन्तिम चौथी अर्ध मात्रा विद्युत् वाली और सर्व वर्ण वाली है और वह पुष्प देवता वाली है। यह ऐंकार चार अक्षर वाला, चार पाद वाला, चार मस्तक वाला और चतुर्थ मात्रा रूप है। ये स्थूल, सूक्ष्म, दीर्घ और प्लुत हैं। ॐ तीन बार उच्चार करने के पीछे चौथी बार ऐंकार कहने से शान्तिप्राप्ति प्रणव युक्त होता है। मय ऐंकार रूप है ऐसा कहा है। एक बार ऐंकार उच्चार करने में एक बार आत्म प्रकाश होता है। वह प्राणोंको ऊर्ध्व गति में ले जाता है इसलिये ऐंकार कहलाता है। ऐंकार को प्रलय रूप कहने में आता है, कारण वह सब प्राणों का प्रलय करता है। वह सब प्राणों को परमात्मा में नमाता है इसलिये प्रणव कहते हैं। उसने चतुर्थार्धस्था में स्थिति की है इसलिये वह सब वेदों और देवों का कारण रूप, सब वाच्य वस्तु और प्रणव रूप है ॥ १ ॥ उसको देव रूप कहते हैं क्योंकि वह सबका रक्षण करता है। सब दुःखों में मनुष्य का तारण करता है इसलिये उसको तारक कहते हैं। सब देवताओं का प्रवेश स्थान होने से उसको विष्णु कहते हैं। सबका वर्धन करता है इसलिये ब्रह्मा है। मन्त्रके अन्तर में रहे हुए व्यर्थों को दीप के समान प्रकाश करता है इसलिये प्रकाश है। शरीर के हृदयाकाश में विद्युत् के समान है इसलिये प्रकाश होने से उसको सत् ॐ कहते हैं। विद्युत् के प्रकाश करने वाला होने से उसको सत् ॐ कहते हैं। विद्युत् के समान बारम्बार गति करके मय दिशाओं को भेदन करता है और सब लोकों को व्याप्त करके रहता है इसलिये इसको व्यापक

और महादेव कहते हैं ॥ २ ॥ इसको प्रथम मात्रा जाग्रत अवस्था है, दूसरी मात्रा स्वप्नावस्था है, तीसरी मात्रा सुषुप्ति है और चौथी मात्रा तुरीया है। हर एक मात्रा अन्य मात्रा में मिलने से सब पापों का लय होता है और वह स्वयं प्रकाश और स्वयं ब्रह्म हो जाता है। इसलिये उसको सिद्धिकर कहते हैं और ध्यानादि में इसको योजना की जाती है। सब इन्द्रियों का उपसंहरण कर्ता और सबका धारण कर्ता होने से ब्रह्म तुरीय है। सब इन्द्रियों की स्थापना मनमें करके ध्यान विष्णुरूप है। प्राण सह इन्द्रियोंकी मनमें स्थापना करने से ध्याता रुद्र है। इन्द्रिय प्राण और मनकी नाद के अंतर्गत परमात्मामें स्थिति होने से व्योम ईशान है ऐसे महादेव का ध्यान करना। ये सब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र और भूतोंके साथ सब इन्द्रियों की उत्पत्ति उसमें से होती हैं। कारण का कारण नहीं होता। ध्याता कारण रूप है और सब ऐश्वर्ययुक्त सर्वेश्वर व्योम रूप है। ऐसे शिवकाक्षण भरसे अधिक आकाशमें स्थिर ध्यान करने से चोहत्तर (७४) बार सो सो यज्ञ करने का जो फल होता है, वह सब फल प्राप्त होता है। उसकी ॐ में गति होती है। सर्व ध्यान, योग और ज्ञान का जो फल है वह ऐंकार है। वह वेद रूप, पर रूप, ईश रूप, शिव रूप, एक रूप, व्योम रूप और कल्याण कर्ता रूप है। सब वस्तु का त्याग करके इस संपूर्ण अथर्व शिखा का जो अभ्ययन करता है सो द्विज गर्भवास के भय से निवृत्त होता है। सबभुव गर्भवासा से मुक्त होता है ॥ १ ॥

॥ इति अथर्वशिखोपनिषत् समाप्त ॥



## शरभोपनिषत् ।

[ ४८ ]

भगवान् पृथलाद ऋषि एकवार ब्रह्मावी ने बोले 'हे भगवान्, ब्रह्मा विष्णु और रुद्र इनमें से अधिकतर ध्यान करने योग्य कौन है सो आपही हमसे कह दीजिये' । पितामह ब्रह्मा ने उनको उत्तर दिया है पृथलाद वाक्य को सुनो । जिसने बहुत ही पुण्य किये हों उसी को यह परमेश्वर प्राप्त होता है, जिसके भ्रम में मैं उत्पन्न हुआ है और जिसको मुख्य विष्णु रुद्र तथा मुख्य सुरेन्द्र मांह के कारण जान नहीं सकता ॥ १ ॥ जो मन्त्रका प्रभु है, श्रेष्ठ है पिता और महेश्वर है जो ब्रह्मा को धारण करता है जो मन्त्र वेदोंका निर्णय करता है और जो श्रेष्ठ और देवताओंका पिता और प्रभु है ॥ २ ॥ मेरा तथा विष्णु का भी पिता है [ उसको नमस्कार है ] जो अन्त काल में सब लोकों का संहार करता है ॥ ३ ॥ वही एक सबसे श्रेष्ठ और वरिष्ठ है जिस महा बलवान् महेश्वर ने सारभ का घोर रूप धारण करके लोकों का नाश करने वाले नृसिंह को भार दिया ॥ ४ ॥ रुद्र जब विष्णु को दोनों पैर पकड़ कर लेजाते थे तब पीछे २ सब देव आने लगे और कहने लगे, 'कृपा करके पुरुषोत्तम विष्णु का वध न कीजिये आप महान् है और आपही की वध है ।' तब भगवान् रुद्र ने विष्णु को तीक्ष्ण नखों से विदारित किया । सबसे चर्म को धारण करने वाला

रुद्र महावीर तथा वीरभद्र नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ ५ ॥  
ऐसा एक रुद्र ही सबके लिये सब सिद्धियों के साधनार्थ पूजन करने योग्य है ।

'जिसने ब्रह्मा का पांचवां मुख नष्ट कर दिया उस रुद्र को नमस्कार है ॥ ७ ॥ जो ललाट से निकले हुए अग्नि से सब अन्न का भस्म कर देता है और पुनः उत्पन्न करके पालन भी करता है और इस प्रकार अपना सामर्थ्य प्रकट करता है, उस रुद्र को नमस्कार है ॥ ८ ॥ जिसने बाण पैर से काल को भार ढाला और ध्वजता हुआ त्रिषु उमने पीलिया था, उस रुद्र को नमस्कार है ॥ ९ ॥ जिसके बाण चरण पर विष्णु ने अपनी आंख निकाल कर चढ़ा दी और इस पूजन से संतुष्ट होकर जिसने विष्णु को चक्र दे दिया, उस रुद्र को नमस्कार है ॥ १० ॥ दक्ष यज्ञ में सब देवोंका पराजय करके जिस वीरने विष्णुको नाग पाशसे बांधवाला था, उस रुद्रको नमस्कार है ॥ ११ ॥ जिसके चन्द्र सूर्य और अग्नि ऐसे तीन नेत्र हैं, जिसने लीला मात्र से त्रिपुर को जलाया था और जिसमें सब देव भण पशुता ही (दीनता) को प्राप्त हुए, और आप पशुपति बन गये, उस रुद्र को नमस्कार है ॥ १२ ॥ मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वायन आदि विष्णुको भी अक्षित करके पाद पर्वचाता है, कामदेव और यम को जिसने भस्म किया, उस रुद्र को नमस्कार है ॥ १३ ॥ इस प्रकार नाना विध स्तुति करके देव लोगोंने नीलकण्ठ महेश्वर से क्षमा मांगी । फिर परमेश्वर ने



ताप त्रय तथा जन्म मृत्यु जरा और व्याधि, इनसे उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के दुःखों का संहार किया ॥ १४ ॥

इस प्रकार के मन्त्रों से प्रार्थित होने पर उस आद्य भगवान् नव के आत्म रूप शङ्कर ने सबकी रक्षा की ॥ १५ ॥ मन वाणी से भगोच्चर और स्तुति करने के योग्य ऐसे महेश्वर की स्तुति करके श्रीविष्णु जिसके चरण कमलों की प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं ॥ १६ ॥ भक्ति से नमस्कार करने वाले ऐसे विष्णु पर खूब प्रसन्न हुए ।

जिसको न प्राप्त करके वाणी मन के साथ लौट जाती है ऐसे ब्रह्मानन्द को जानने वाला कभी भी भय को प्राप्त नहीं होता ॥ १७ ॥ आत्मा भ्रष्ट से भी भ्रष्ट है और महान् में भी महान् है और वह सब प्राणियों के हृदय रूप गुफा में छुपा रहता है । उस द्रष्टा रूप महान् ईश्वर को शोक रहित पुत्र्य ईश्वरानुग्रह से देखता है ॥ १८ ॥ वशिष्ठ, शुक और वामदेव तथा ब्रह्मा आदि देवता जिसका हृदय में ध्यान करते हैं और मन्त्र मुजान तथा मनातन आदि जिसकी स्तुति करते हैं वह भगवान् आदि देव महेश्वर हैं ॥ १९ ॥ महेश्वर सत्य नित्य और सर्वमाशु हैं । वह नित्य श्रानन्द रूप निर्विकल्प और कथन करने योग्य नहीं है । भगवान् गिरीश की शक्तिकी किसीको कल्पना नहीं हो सकती भ्रष्टने श्रान्त ही से हमने उसके स्थान आदि की कल्पना की है ॥ २० ॥ हे आचार शील, उसकी माया मेरे लिये तथा

विष्णु के लिये भी श्रत्यन्त मोह उत्पन्न करने वाली है । वह श्रत्यन्त दुस्तर है तो भी उसके चरण कमलों के ध्यान से वह सहज प्रार की जा सकती है ॥ २१ ॥

सब जगत् का कारण विष्णु है वह अपने श्रंश रूप जीनों के साथ मेरे ही श्रंश में उत्पन्न होकर समस्त विश्व की रक्षा करना है ॥ २२ ॥ काल पाकर श्रान्त सब नष्ट होजाता है इसलिये नव मिथ्या है सबका प्राप्त करने वाले उन जलधारी, महादेव, महेश्वर और कृपा करने वाले ऐसे खूबको नमस्कार है ॥ २३ ॥ नाना विष सृष्टि में सबसे पृथक् ऐसा विष्णु सबसे महान् है वह तीनों लोकों को व्याप्त कर भूतोंके आत्म रूप से सब भोग भोगते हुए भी श्रवण रहता है ॥ २४ ॥ चार आहुतियोंसे फिर चार आहुतियोंसे फिर पांचसे और फिर दो आहुतियों से जिसके लिये हवन किया जाता है वह विष्णु मुक्त पर प्रसन्न हो ॥ २५ ॥ अर्पण ब्रह्म है, हवि ब्रह्म है ब्रह्म रूप अग्निमें ब्रह्म रूप कर्तृक द्वारा जो हवन किया गया है वह भी ब्रह्म ही है इसलिये ब्रह्म रूप कर्म में समाधिस्थ पुरुष द्वारा ब्रह्म ही प्राप्त होने योग्य है ॥ २६ ॥ शर जीव है जिसके श्रंगोंमें स्वयम् हरि नित्य प्रकाशते हैं वह शरभ है महामुने, मोक्ष देने वाला साक्षात् ब्रह्म ही है ॥ २७ ॥

जिसकी माया से ममतादि के कारण देवता गण मोहको प्राप्त हुए हैं उसके महिमा का श्रान्त श्रंश भी कहने के लिये कोई



भी समर्थ नहीं है ॥ २८ ॥ परसे पर ब्रह्म है उसके परसे पर विष्णु है और उसके परसे भी पर ईश है इसलिये उसके बराबर अथवा अधिक कोई भी नहीं है ॥ २९ ॥ शिव ही एक और नियम है और गाय मिथ्या है इसलिये ध्येय रूप विष्णु आदि सब देवताओं को त्याग कर ॥ ३० ॥ सब संसार में छुड़ाने वाले केवल एक ही का ध्यान करना चाहिये । सदाका संहार करने वाले उस महेश्वर को नमस्कार है ॥ ३१ ॥

यह पैपलाद ऋषिको प्राप्त हुआ महा शास्त्र रूप उपनिषत् हर किसी को नहीं देना चाहिये, अथवा जो नास्तिक, कृतघ्न, दुर्व्यवसायी, दुराचारी ॥ ३२ ॥ दाम्भिक, निर्दय, शठ अथवा भूढ़ बोलने वाला हो उसको न देना चाहिये । जो अच्छा काम करने वाला, भक्त सदाचारी, सुशील ॥ ३३ ॥ गुरु भक्त, शम दम युक्त और सीधा हो, शिव भक्त हो, देवान्ना के अनुसार बुद्धि रखने वाला हो ॥ ३४ ॥ जो है सुव्रत, अपनेमें भक्ति रखता हो और कृतघ्न न हो उसी को यह देना चाहिये । अन्यथा किसी को न देकर हे द्विज श्रेष्ठ ! इसकी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३५ ॥ पैपलाद ऋषि को प्राप्त हुआ यह महा शास्त्र जो पढ़ता है और ब्राह्मणोंको मुनाता है, वह जन्म मरणसे मुक्त होजाता है । जो जानता है वह अमृतत्व को प्राप्त होता है । वह पुनः गर्भ में आने से मुक्त होजाता है । उसके मुरा पान के दोष की निवृत्ति हो जाती है । सुवर्ण चोरीके दोष से वह निवृत्त होजाता है । ब्रह्म हत्या का पातक उसमें हो तो वह नष्ट होजाता है । गुरुकी स्त्री से

गमन किया हो तो उस दोष से भी उसकी निवृत्ति हो जाती है । सर्व वेदों के अध्ययन का उसे फल मिलता है । सब देवों के ध्यान का उसे फल मिलता है । वह सब महापातक और उप पातकों से रहित हो जाता है । इसलिये वह शिवजी के आश्रय को प्राप्त होता है । और शिवको प्रिय होने से शिवसायुज्यको प्राप्त होता है । उनका पुनरागमन नहीं होता, उसका पुनरागमन नहीं होता, वह ब्रह्म ही होजाता है । इस प्रकार भगवान् ब्रह्मा बोले ऐमा यह उपनिषत् है ।

॥ इति शारभोपनिषत् समाप्त ॥



## पाशुपत ब्रह्मोपनिषत् ।

[ ४६ ]

एक द्वार स्वयंभु ब्रह्मा को 'मैं प्रजा उत्पन्न करूँ' इस प्रकार की इच्छा हुई और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले रुद्र और कुबेर उत्पन्न हुए । ब्रह्मा का पुत्र कुबेर और वाल्खिल्य स्वयंभु में पूछने लगे, 'जगत की विद्या कौन सी है ? ज्ञायात और तुरांय के देवता कौन है ? जगत किसके वश में है ? काल का क्या प्रमाण है ? सूर्य चन्द्र तथा ग्रहादि किसकी आज्ञा से प्रकाशित हैं ? और किसकी महिमा आकाश के सदृश ( विशाल ) है ? मो में सुनना चाहता हूँ । आपके सिवाय और कोई इन बातों को नहीं जानता इसलिए हे ब्रह्मन्, आपही कहिये ।'

स्वयंभु बोले, 'इस जगत की मात्रका वर्णमाला रूप माना विद्या है । वह दो वर्णवाली ( 'हंम' रूप ) और तीन वर्ण वाली ( प्रणवात्मक ) है; द्विवर्ण वाली ( हंसात्मक ) विद्या तीन वर्ण युक्त ( प्रणवस्वरूप ही ) है । चार मात्रा वाला अकार मेरा प्राणरूप देवता है । मैंही तीनों जगत का एक मात्र पति हूँ और मेरे ही वश सब युग हैं । रात्रि और दिन आदि ये नव भुमन्ही से कालरूप से उत्पन्न हुए हैं । सूर्य का तेज और चन्द्र नक्षत्र और ग्रह आदि की ज्योति यह मेरा ही रूप है । मेरी तीन शक्तिवाली माया रूप ही यह आकाश है भुमन्से अन्य कुछ भी

नहीं है । तमोगुणी मायारूप रुद्र है, सत्त्वगुणी मायारूप विष्णु और रजोगुणी मायारूप ब्रह्मा है । इन्द्रादि रजोगुण और तमोगुण दोनों से युक्त है, इनमें कोई भी मात्त्विक नहीं है, एक अधोर (शिव) सर्व साधारण स्वरूप है ।

ममस्त यज्ञों का कर्ता पशुपति रुद्र है । यज्ञदेव रुद्र है, विष्णु अध्वर्यु और इंद्रा इन्द्र है, महेश्वर का मानस ब्रह्मही यज्ञ का भोक्तारूप देवता है । 'हंमः सोहं हंसः' यही वह मानस ब्रह्म है ; इसमें तन्मय होने के लिये करने का यज्ञ ही नादानुसंधान है ; तन्मयत्व का विकार ही जीव भाव है । हंस परमान्मों स्वरूप है । हंस ही भीतर बाहर चलता है । जब भीतर जाता है अवकाश रहित स्थान में रहने वाला वही सुपरि पक्षी ( ईश्वर ) स्वरूप हंस है ।

द्विषान्नवे तत्त्वों के तंतुओं से व्यक्त, चित् के तीन सूत्रों से चिन्मय, नव तत्त्वों की तीन गुणा किया हुआ; ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्वरूप तीन अग्निधियों से युक्त और चिद्ग्रन्थि से वंधा हुआ, अर्द्ध त की गांठ वाला, यज्ञ का साधारण ग्रंगरूप बाहर भीतर प्रकाशने वाला और यज्ञ के ग्रंगरूप ( यज्ञोपवीत स्वरूप ) ब्रह्म स्वरूप हंस ही है । उपवीत के लक्षण रूप सूत्र ब्रह्म के प्रति यज्ञ ले जाते हैं और ब्रह्म के ग्रंग रूप लक्षणों से युक्त यज्ञसूत्र होता है, वही ब्रह्मसूत्र है । यज्ञसूत्र के साथ सम्बन्ध रखने वाला ब्रह्मयज्ञ उसका स्वरूप है । मात्रा उसके ग्रंग है । इस मानसिक यज्ञ का हंस यज्ञसूत्र है । ब्रह्मयज्ञ



मय प्रणव ब्रह्मसूत्र है। प्रणव के भीतर रहने वाला हंस ही यह ब्रह्मसूत्र है। वही ब्रह्मयज्ञ मय मोक्ष का साधन रूप है।

ब्रह्मसंख्या की क्रिया मानसिक याग है। संख्या करना यानी मिन्नाना यही इन मानसिक याग का लक्षण है। यज्ञसूत्र प्रणव है। जो ब्रह्मयज्ञ क्रिया में युक्त है वह ब्राह्मण है। ब्रह्मचर्य से देव रहते हैं और यज्ञों में सूत्र रूप हंस के साथ अनुसंवात रहता है। हंस और प्रणव का अभेद है।

हंस की तीनों काल में प्रार्थना होती है। तीन काल तीन वर्ण्य है। तीन अग्नि से करने का यह याग है। तीन अग्नि रूप आत्मा की आकृति और वर्ण्य वाले अकार रूप हंस का अनुसंवात करना अन्तर्यामि है। चित् के स्वरूप के ममान तन्मय होना दुरीय का स्वरूप है। आन्तर आदित्य में ज्योति स्वरूप हंस है। यज्ञांग ( हंस ) ही ब्रह्मप्राप्ति का उत्तम साधन है। इसलिये ब्रह्मप्राप्ति की साधना में उस प्रणव रूप हंस का अनुसंवात रूप ही ध्यान किया करते हैं।'

ब्रह्मा के पुत्र वालखिल्य ऋषि फिर स्वयंभू ब्रह्मर्षी से बोले, भगवान् आप सब जानते हैं; कहिये, हंससूत्र किन्तने होते हैं और उनका प्रमाण किन्तना है। भगवान् बोले, "हृदय रूप सूर्यके किरणों की संख्या बृहत्तर है। चित्सूत्र रूप ध्राण से स्वर के नाद्य निकलने वाली प्रणव धारा बृहत्तर अंगुल की होती है: वाय्वी बांह और कमर की दाहिनी ओर, इनके बीच में परमात्मा

हंस रहता है। यह अत्यन्त गुह्य बात अन्यत्र कहीं भी विदित नहीं है। अमृत रूप फल को पाये हुए उस प्रकाशक हंस की सर्वकाल जानते हैं। प्रणव रूप हंस का सदा ध्यान किये बिना मुक्ति नहीं होती।

रंगे हुए नौ सूत्र ( स्थूल यक्षोपवीत ) को जो धारण करते हैं वे भी वह ब्रह्म है यही मानकर उपासना करते हैं। परन्तु इन मनुष्यों को अन्तरादि रूप ब्रह्म का पता नहीं है। सूर्य जगत का प्रकाश करता है ऐसा जानकर वे बुद्धिमान मनुष्य अपनी बुद्धि के निमित्त या ज्ञान के निमित्त प्रार्थना करते हुए उसकी उपासना करते हैं। वाजपेय यज्ञ ही पशुपति है, इन्द्र देवता इसमें अश्वयु है अहिंसा धर्मयाग है। इसमें परमहंस अश्वयु और परमात्मा पशुपति देवता है। वेद और उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म ही की ये स्वाध्यायशील ब्राह्मण उपासना करते हैं।

( पशुपति रूप ) महायज्ञ का ज्ञान ही अश्वमेध है। उसके बल हंस से वे ब्रह्म की उपासना करते हैं। पहिले कह आये वह ब्रह्मयज्ञ की साधना ही सबके लिये मोक्ष मार्ग है।

इन पर ब्रह्मा के पुत्र वालखिल्य ऋषि बोले, हंस ऋषि का उदय हुआ। यानी ब्रह्माजी के उपदेशसे उनको आत्मज्ञान हो गया। तब स्वयंभू तिरोधान होगये। वालखिल्य ने जाना कि वेद और उपनिषदों में प्रतिपादित हंस ज्योति ही खूब है, संसार से तारने वाला प्रणव ही पशुपति है ॥ इति पूर्वोक्ताष्ट ॥



सहज रूप से 'हंस हंस' इस प्रकार अखंड जाप हो यही बर्ण ब्रह्म है और ब्रह्म के प्रति पटुत्वाने वाला है। यही परमात्मा है और पुण्य यही है ॥ १ ॥ स्वयं ब्रह्म तुल्य होजाय उसका स्वरूप भी क्या और उसकी क्या भी क्या ? ब्रह्म ज्ञान रूप संख्या ही में ज्ञानियों का काल जाता है। हंस और आत्मा की एकता होजाती है ऐसी अवस्था में उसके अवस्थादि रूप प्रजा किस प्रकार हो सकती है ॥ २ ॥ भीतर होने वाले प्रणव नाद से विदित होने वाला हंस ही सब ज्ञान को करने वाला है। ( बाहर होने वाले ज्ञान के हेतु रूप ) अन्तरानुभव स्वरूप होने से गूढ़ ऐसा वही ज्ञान नाल में विराजता है ॥ ३ ॥ वही शिव शक्ति रूप है और चैतन्य मय है और आनन्द से जाना जाता है। वह नाद बिंदु और कला तीन नेत्रों से समस्त जगत ( चैतन ) विवेष्टित है ॥ ४ ॥ उसके तीन ग्रंथ ( अरीर ) है तीन शिखाएं ( अवस्थाएं ) है, दो अथवा तीन मात्राओं के साथ उसकी आकृति देखने में आती है। इस प्रकार भीतर ज्ञान स्वरूप होने से गूढ़ ऐसा यह आत्मा इन्द्रियों से बाहर निकलता है ॥ ५ ॥ समस्त विश्व के सूत्र रूप ऐसे ब्रह्म को जानना चाहिये और उसको जानने के नित्य विध के अनुसार हंस रूपी सूर्य का प्रणव के साथ ज्ञान भी जानना चाहिये ऐसा ज्ञानसागर में कहा है ॥ ६ ॥ इसको जानने ही से उस ज्ञानसागर को जाना जाता है।

स्वयं जित या पशुपति ही सबका सर्व काल साक्षा है ॥ ७ ॥ और सबके मन का वही नियमन और प्रेरणा करता है। उसकी

प्रेरणा ही से मन विषय में जाता है, प्राण वेष्टा करते हैं और वाणी बोलती है ॥ ८ ॥ चक्षु रूप देखा है, कान सब सुनते हैं और अन्य सब इन्द्रियां भी उसीकी प्रेरणा से ॥ ९ ॥ अपने अपने विषय को ग्रहण कर उसमें प्रवृत्त होती हैं। इसका प्रवर्तन भी माया ही से है अपने स्वभाव से नहीं है ॥ १० ॥ श्रोत्र आत्मा में अध्यस्त है और स्वयं पशुपति ही श्रोत्र में अनुप्रवेश करके श्रोत्र को श्रोत्रत्व प्राप्त कराता है ॥ ११ ॥ आत्मा में अध्यस्त मन में परमेस्वर प्रवेश करके उसीमें रह कर उसका नियमन करने हुए, उसको मनस्त्र प्रदान करते हैं ॥ १२ ॥ वही जाने हुए में और न जाने हुए से भिन्न है और अन्य कल्पित इन्द्रियों का भी वही ईश्वर ॥ १३ ॥ उनका नियमन करके उन उनके रूप देता है। इसीलिये चक्षु, वाचा, मन तथा अन्य इन्द्रियां ॥ १४ ॥ उस स्वयं प्रकाश रूप परमात्मा को नहीं प्राप्त होती। जो ब्रह्मको अंतःकरण के विषय रूप से नहीं परन्तु प्रत्यक् प्रकाश रूप अपने आत्मा ही से जानता है ॥ १५ ॥ तर्क प्रमाण के बिना ही अनुभव में जानता है, वही यथार्थ रूप से ब्रह्म को जानता है।

प्रत्यगात्मा परम प्रकाश रूप है और माया महान् अन्वकार रूप है ॥ १६ ॥ ऐसा होने पर प्रत्यगात्मा में माया किस प्रकार संभव है। इसलिये तर्क और ( श्रुति ) प्रमाणोंसे तथा अनुभवसे निश्चय होता है कि चैतन्यघन ॥ १७ ॥ एक और अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होने वाले, ऐसे परमात्मा में माया है ही नहीं। यह बिना और यह अविद्या, यह दृष्टि व्यावहारिक है,



पारमार्थिक नहीं है ॥ १८ ॥ तत्त्व दृष्टि में ये कुछ नहीं हैं, केवल एक तत्त्व ही है। व्यावहारिक दृष्टि उसी के प्रकाश में होने से ॥ १९ ॥ एक सतत यानी अक्षण्ड प्रकाश ही रहता, इसलिये भी अर्द्धत ही है। अर्द्धत है यह कहना भी उस प्रकाश के अभेद ही से है ॥ २० ॥ इस प्रकार सब उसका प्रकाशही प्रकाश है, इसलिये (बोलना भी व्यर्थ है) मौन ही शोभा देता है।

जिसको यह परमार्थ स्वयं ही प्रकाशित हुआ है ॥ २१ ॥ वह न जीव है न ब्रह्म न और कुछ है। उसको न वर्ण है न आश्रम ॥ २२ ॥ उसको न धर्म है न अधर्म, न विविध है न निषेध। जब सब कुछ उसे स्वयं ही ब्रह्म रूप से प्रकाशता है ॥ २३ ॥ तब दुःखादि भेद वाला यह आभास भी उसको नहीं देखता। परमात्मा को जानने वाला जीवादि रूप जगत को देखते हुए भी ॥ २४ ॥ नहीं देखता, चिद्रूप ब्रह्म बन्तु ही देखता है। धर्म और धर्म की बात भेद के रहते हुए ही पृथक् है ॥ २५ ॥ भेद, अभेद तथा भेदाभेद ये साक्षात् रूप में परमात्मा में अपने में मिश्र रूप से नहीं हैं, वह ही स्वयं सर्वदा वर्तमान है ॥ २६ ॥ वस्तु रूप से श्रयवा श्रयन्तु रूप में साक्षात् ब्रह्म ही विराजमान है। ऐसा होने से, ब्रह्म को जानने वाला ज्ञानी किमका ग्रहण वा त्याग करे ॥ २७ ॥ सबका श्रिधृष्टान्, उपमा रहित, वाणी और मनका श्रिविषय दृष्टि का श्रिविषय, श्रयाह्य, श्रय, रूप रहित ॥ २८ ॥ श्रांश कान से रहित, तथा उनके अर्थ से पर, हाथ पैर रहित तथा नित्य विभु, सर्वत्र उपस्थित और श्रयन्त सूर्य श्रययन ॥ २९ ॥

ऐसा यह मृग्य रहित ब्रह्म ही है। उसके आने और पीछे श्रेष्ठ प्रकार का ब्रह्मानन्द ही है, बाएँ दाएँ भी वही श्रेष्ठ ब्रह्मानन्द वर्तमान है ॥ ३० ॥ वह अपने में ही सबको अपने रूप से निर्भयता पूर्वक देखता है। ऐसा देखने वाला मुक्त (ज्ञानी) ही मुक्त नहीं होता परन्तु बद्ध (अज्ञानी) भी मुक्त हो जाता है ॥ ३१ ॥

इन प्रकार की यह पर विद्या मरत्य से, तप से तथा ब्रह्मचर्यादि धर्माचरण से वेदान्त के साधना द्वारा प्राप्त हो सकती है ॥ ३२ ॥ अपने दरीर में स्वयं प्रकाश रूप परब्रह्म को शुद्ध भक्त्यकरण वाले देख सकते हैं, माया से मलिन भक्त्यकरण वाने नहीं देख सकते ॥ ३३ ॥ जिस किसी योगी को अपने स्वरूप का इस प्रकार का अनुभव है, उस परिपूर्ण रूप वाले का कहीं भी गमन नहीं होता ॥ ३४ ॥ जैसे सर्वत्र भरा हुआ एक अखंड आकाश कहीं भी नहीं जाता, वैसे ही ब्रह्म को आत्म भाव से जानने वाला कहीं भी नहीं जाता ॥ ३५ ॥

अध्वय आहार छोड़ देने से चित्त विशुद्ध हो जाता है, आहार की शुद्धि से चित्त की शुद्धि आप ही आप हो जाती है ॥ ३६ ॥ चित्त शुद्ध होने पर क्रम में ज्ञान होता है और (अज्ञान) ग्रन्थियाँ स्पष्टतया दृढ़ जाती हैं। अध्वय का विचार ब्रह्म ज्ञान में रहित हो ऐसे ही जीव के लिये (जहरो) है ॥ ३७ ॥ क्योंकि यह बात प्रसिद्ध है कि जो सम्पत्क ज्ञानी है उनका स्वरूप अज्ञानी के समान कला बाला (भेद ज्ञान २९



युक्त) नहीं होता। ज्ञानी यही जानता है कि खाने वाला मैं हूँ। और भ्रत भी मैं ही हूँ ॥ ३८ ॥ ब्रह्म ज्ञानी अपने ज्ञान से सबको आत्म रूप ही देखता है, इसलिये ब्राह्मण और क्षत्रिय यह भाव ही उसका भ्रत हो जाता है ॥ ३९ ॥ मृत्यु जिसका भ्रत है उसको जानने वाला भी वैसा ही होजाता है, इसलिये ब्रह्म के स्वरूप को जानने से यह सब जगत जानने वाले का भोजन बन जाता है ॥ ४० ॥ जगत सब आत्म रूप से भासता है, तब वह भोजन बन जाता है और आत्म रूपसे ब्रह्म उसका नित्य भक्षण करता है ॥ ४१ ॥ जिसके आभास रूप से भोज्य जगत बनता है वह प्रमाण रूप आत्म रूप में भासता है तब वह उससे भ्रवश्य भक्षित ही होगया ॥ ४२ ॥ अपने स्वरूप को आप ही खाता है, भोजन का पदार्थ अपने से पृथक् नहीं है, और यदि है तो वह अस्तित्व रूप है, अस्तित्व लक्षण एक ब्रह्म ही का है ॥ ४३ ॥ सत्ता का लक्षण अस्तित्व है इमलिये सत्ता ब्रह्म से भिन्न नहीं है। ब्रह्म को छोड़कर सत्ता नहीं है इसलिये माया वस्तु रूप नहीं है ॥ ४४ ॥ आत्मनिष्ठ योगियों के लिये माया अपनी आत्मानं कल्पित है वह ब्रह्म ज्ञानसे बाधित होकर उनको साक्षी रूप से भासती है ॥ ४५ ॥ ब्रह्म का अनुभव जिसको प्राप्त हुआ है उसको प्रतीत होने वाले जगत को देखते हुए भी वह उसको अपने से पृथक् नहीं देखता ॥ ४६ ॥

॥ इति पाशुपत् ब्रह्मोपनिषत् समाप्त ॥

## योग कुण्डल्युपनिषत् ।

[ ५० ]

मन की चंचलता के दो कारण हैं; वासना और प्राण। इनमें से एक का नाश हो जाय तो दोनों ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥ इनमें से मनुष्य प्रथम प्राण ही जय करें। ( इसके लिये तीन साधन हैं ) परिमित आहार, आसन और शक्ति चालन ॥ २ ॥ हे गौतम, इन सबके लक्षण कहता हूँ, उनको आदर के साथ सुन। पेट का चतुर्धा खाली रखते हुए, घी तथा दूध से युक्त ( मुस्तिग्व ) और मधुर ऐसा आहार ॥ ३ ॥ शिव के प्रीत्यर्थ किया जाय, उसको मिताहार कहते हैं। आसन दो प्रकार के होते हैं पद्मासन और वज्रासन ॥ ४ ॥ दोनों जागों के ऊपर ( दूसरे ) पैर के तलुवे ( सीधे ) रखने से सर्व पापों को दूर करने वाला पद्मासन होता है ॥ ५ ॥ वाम चरण की एड़ी लिंग और गुदा के बीच में लगा कर दक्षिण चरण की एड़ी उसके ऊपर रखे और गर्दन सिर तथा शरीर समान रखे; इसको वज्रासन कहते हैं ॥ ६ ॥ कुण्डली ही शक्ति है बुद्धिमान नाथक चालन करके उसको उसके स्थान से, श्रुङ्गी मध्य तक ले जाय, इसको शक्ति चालन कहते हैं ॥ ७ ॥ इसके मुख्य दो साधन हैं, सरस्वती का चालन और प्राण निरोध। भ्रम्यास से कुण्डलिनी सीधी हो जाती है ॥ ८ ॥



इतने से प्रथम मैं तुम्हको सरस्वती का चालन कहता हूँ। प्राचीन कथा जानने वाले सरस्वती को श्रद्धावती कहते हैं ॥ ९ ॥ जिसका संचालन करने से कुण्डलिनी आप ही आप चलने लगती है। जब इडा से प्राण बहता हो तब बुद्धिमान योगी भली प्रकार पद्मासन लगा कर बैठे ॥ १० ॥ फिर बारह अंगुल लम्बा और चार अंगुल चौड़ा, ऐसे आकाश से कुण्डलिनी का वेधन करे ॥ ११ ॥ (पश्चात्) हाथ के अंगूठे से और तर्जनी ने दाहिनी और बाईं नासिका दृढ़तापूर्वक ग्रहण करके प्रथम दाहिनी और पश्चात् बाईं नासिका द्वारा बार बार रेचक पूरक करते हुए उसको भावना द्वारा दाहिनी और बाईं ओर चालन करे ॥ १२ ॥ बुद्धिमान योगी दो मुहूर्त पर्यन्त इस प्रकार सरस्वती का चालन करे। इससे कुण्डलिनी के समीप अवस्थित सुषुम्ना को फिर किञ्चित् ऊपर की तरफ खींचें ॥ १३ ॥ इससे कुण्डलिनी सुषुम्ना के मुख में प्रवेश करती है और प्राण उस स्थान को छोड़कर अपने आप सुषुम्ना में प्रवेश करता है ॥ १४ ॥ इस समय पेट की ऊपर खींच कर कण्ठ का संकोच करते हुए सरस्वती का चालन करनेसे वायु हृदय कमल से ऊपर चला जाता है ॥ १५ ॥ सरस्वती का चालन करते समय कण्ठ का संकोचन करके सूर्य से रेचन करे; इससे प्राण हृदय कमल से ऊपर चला जाता है ॥ १६ ॥ इसलिये शब्दमयी सरस्वती का नित्य संचालन करना चाहिये जिसके संचालन ही से योगी सर्व रोगों से मुक्त हो जाता है ॥ १७ ॥

गुलम, जलोदर, प्लीहा तथा पेट के अन्य रोग शक्ति चालन से निरन्तर पूर्वक नष्ट हो जाते हैं ॥ १८ ॥

अब आगे संक्षेप से प्राण निरोध का वर्णन करता हूँ। देह में गमन करने वाले वायु को प्राण कहते हैं और वह स्थिर होता है तब उसको कुम्भक कहते हैं ॥ १९ ॥ कुम्भक दो प्रकारका होता है, सहित और केवल। जब तक केवल कुम्भक सिद्ध न हो तब तक सहित कुम्भक का अभ्यास करना चाहिये ॥ २० ॥ सूर्य भेदन, उज्ज्या, शीतली और भस्त्रिका इन चार प्राणायामों के साथ कुम्भक किया जाय उसको सहित कुम्भक कहते हैं ॥ २१ ॥

जहाँ कंकड़ पत्थर न हो और जिसके आस पास धनुष प्रमाण यानी कुछ दूरी तक घास अग्नि या जल न हो, ऐसे निर्जन और पवित्र स्थान में ॥ २२ ॥ न अत्यन्त ऊँचा हो न नीचा, ऐसे मुञ्जप्रद आसन पर पद्मासन से बैठ कर सरस्वती का चालन किया जाता है ॥ २३ ॥ दाहिनी नासिका से बाहर का पवन धीरे २ खींचकर जितना आसानी से बन सके पूरक करे और पश्चात् बाईं नासिका से रेचक करे ॥ २४ ॥ कपाल शोषन क्रिया में भी वायु धीरे २ बाहर छोड़ना चाहिये। इससे चार प्रकार के वात दोष और कुम्भ दोष नष्ट हो जाते हैं ॥ २५ ॥ इस प्रकार बार बार किया जाय, उसको सूर्य भेदन कहते हैं। मुख बंद करके दोनों नासिका द्वारा ॥ २६ ॥ किन्तु लेकर हृदय पर्यन्त



रपार्थ करते हुए, तथा प्रायोज करते हुए, वायु को ग्रहण करके पश्चिमे के समान मुग्धक करके दृष्टा । चार्द नासिका । से रेचक करवे ॥ २७ ॥ इससे भस्मक की गरभी गले का कफ तथा श्मन्य बहुत से रोग दूर होते हैं । इस पवित्र क्रिया में देह को श्मिन् भी बहती है ॥ २८ ॥ इसमें नाड़ी जलोदर तथा धातु संबंधी रोग नष्ट हो जाते हैं । यह उज्जाई कुंभक चलते फिरते, उठते बैठते यानो हंमिया करना चाहिये ॥ २९ ॥ जीभ से वायु को खींच कर पूर्ववत् कुंभक करके पश्चात् दोनों नासिकाओं द्वारा विद्वान् योगी धीरे धीरे रेचक करे ॥ ३० ॥ इस दीप्तली कुंभक से गुल्म, प्लीहा, पित्त, ज्वर तथा प्यास नष्ट हो जाती है और विष भी पच जाता है ॥ ३१ ॥ परचात् पश्चासन बांध कर गर्दन तथा सिर समान रख कर बैठे और मुख बन्द करते हुए प्राण को नासिका से रेचन करे ॥ ३२ ॥ वायु प्रायोज के साथ इस प्रकार खींचे कि मस्तक में तथा कण्ठ से लेकर हृदय कमल तक स्पर्श प्रतीत हो ॥ ३३ ॥ फिर रेचक करे, और इस प्रकार बार बार पूरक तथा रेचक करे, जैसे कि लुहार की धोंकनी जल्दी जल्दी चलाई जाती है ॥ ३४ ॥ वैसे ही शरीर में रहे हुए प्राण को धीरे धीरे चलावे और जब श्म प्रतीत होने लगे सूर्य से पूरक करने लगे ॥ ३५ ॥ जितना सुलभतापूर्वक वन सके उतना, वायु से उदर पूर्ण करके नासिका को मध्य भाग में तर्जनी छोड़ कर श्मन्य चार उंगलियों से दृढ़ता पूर्वक ग्रहण करे ॥ ३६ ॥ और पूर्ववत् कुंभक करे, फिर दृष्टा से रेचक करे । कण्ठ की जलन

को यह दूर करता है तथा शरीर की श्मिन् को बढ़ाता है ॥ ३७ ॥ पुण्य को बढ़ाने वाला, पाप का नाश करने वाला, परम कल्याणप्रद और मुखदायी ऐसा यह कुंभक मुमुक्षु के मुख में रहे हुए कफादि की रकावटें दूर करता है ॥ ३८ ॥ तीनों गुणों में उत्पन्न हुई तीनों श्रेयियों का भेदन करता है, इसलिये इस नञा कुंभक को सास करके करना चाहिये ॥ ३९ ॥

चारों प्रकार के कुंभक करते समय निम्नाप योगो इन तीनों वंशों को भी करें ॥ ४० ॥ प्रथम मूल वंश, द्वितीय उड्डियान और तृतीय जालंधर वंश कहलता है । इन सबके लक्षण आगे कहते हैं ॥ ४१ ॥ नीचे गति रखने वाले श्मपान को श्मपान द्वार का श्मकुंचन करके जो बलपूर्वक ऊर्ध्व चढ़ाता है उसको मूल वंश कहते हैं ॥ ४२ ॥ जब श्मपान ऊपर चढ़ कर वहि मण्डल को प्राप्त होता है तब वहां की श्मिन् की ज्वाला बहुत बढ़ जाती है ॥ ४३ ॥ वहां की उज्जाला में से निकलने के कारण प्राण उत्पन्न होता है, वही श्मन्त प्रदोष हो जाता है तब देह में ज्वलन यानी गरमी उत्पन्न होती है ॥ ४४ ॥ उससे सोई हुई कुण्डलिनी मंत्त हो जाने से जागृत हो जाती है और लकड़ी की चोट खाई हुई जुजों के समान फुस्कार करती हुई कुण्डलिनी सीधी हो जाती है ॥ ४५ ॥ और चित्त में प्रवेश करते हुए वह ब्रह्म नाडी में यानो मुमुक्षु के भीतर प्रवेश करती है, इसलिये योगियों को मूल वंश सर्वदा करना चाहिये ॥ ४६ ॥ कुंभक के श्मन्त में और रेचक के श्मादि में उड्डियान वंश करना चाहिए । इसके करने से



प्राण सुषुम्ना में ऊपर उड़ते हैं ॥ ४७ ॥ इसलिये इसको योगी लोग उड्डियान यानी उड़ने वाला कहते हैं । वज्रासन (सिद्धासन) लगा कर हाथ जानुओं पर जमा कर रखे ॥ ४८ ॥ (सिद्धासन में) पैर के टखने के पास कन्द होता है उसको भीतर दबाते हुए पेट को ऊपर की तरफ खींचे; यह खिंचाव हृदय तथा गले में भी रहे ॥ ४९ ॥ धीरे धीरे प्राण जब पेट के संघों में प्रवेश करता है तब वह पेट के सब दोष निवृत्त करता है, इसलिये इसको हमेशा करना चाहिये ॥ ५० ॥ पूरक के भ्रन्त में जालंधर नामक बंध किया जाता है । इस बंध में कण्ठ का संकोचन किया जाता है जिससे कि वायु का मार्ग रुकता है ॥ ५१ ॥ नीचे से मूल बन्ध द्वारा आकुंचन करे, ऊपर जालंधर बन्ध द्वारा कण्ठ का संकोच कर और बीच में उड्डियान द्वारा प्राण को ऊपर खींचे, इस प्रकार करने से प्राण सुषुम्ना में प्रवेश करता है ॥ ५२ ॥

पूर्वोक्त क्रम से भली प्रकार आसन लगा कर सरस्वती का चालन करके पश्चात् प्राण का निरोध करना चाहिये ॥ ५३ ॥ प्रथम दिवस चारों कुंभक, प्रत्येक दश बार करना चाहिये । दूसरे दिन पन्द्रह बार ॥ ५४ ॥ तीसरे दिन बीस बीस बार; इस प्रकार प्रति दिन पांच पांच बढ़ते हुए, तीनों वर्षों सहित कुंभकोंका अभ्यास नित्य करना चाहिए ॥ ५५ ॥ दिन में सोना, रात में जागना, अति मैथुन करना, अधिक चलना, नित्य मलमूत्र को रोकना ॥ ५६ ॥ यदि प्राणायाम करने वाला पुरुष आसन को

विषमता अथवा दुराग्रह पूर्वक प्राण का चित्तवन (अभ्यास) करे तो इन दोषों से शीघ्र ही रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ योगाभ्यास से मुझे रोग हुआ है ऐसा कोई कहे तब योगाभ्यासका त्याग करना यह प्रथम विघ्न है ॥ ५८ ॥ संशय नामक दूसरा विघ्न है, तीसरा दोष प्रमाद है, चौथा आलस दोष, निद्रा पांचवां ॥ ५९ ॥ प्रेम न रहना छठा, आन्ति सातवां, विषमता आठवां, अनाख्य नवां कहा गया है ॥ ६० ॥ और योग तत्त्व की अप्रति दशवाँ विघ्न विद्वान् कहते हैं; बुद्धिमान योगी इन दस विघ्नों को विचार से त्याग दे ॥ ६१ ॥

उसके पश्चात् सदा सतोषुणी बुद्धि रखते हुए प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये इससे चित्त सुषुम्ना में लीन होता है और प्राण स्थिर होता है ॥ ६२ ॥ जब योगी का मल शुष्क होजाय और प्राण चलिता हो तब नीचे चलने वाले अपान को बलपूर्वक ऊपर चढ़ावे ॥ ६३ ॥ इसमें आकुंचन होने से इसको मूलबन्ध कहते हैं; अपान अग्नि के साथ ऊपर जाता है ॥ ६४ ॥ तब अग्नि प्राण स्थान को प्राप्त होता है और सत्वर प्राणायाम के साथ मिलकर कुंडलाकृति सोती हुई कुण्डलिनी को प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥ उस अग्निसे तपायमान होकर तथा अपान वायुसे श्रित होकर यह कुण्डलिनी अपने शरीर को सुषुम्ना के मुख में फंलाती है ॥ ६६ ॥ फिर रजोगुण से उत्पन्न ब्रह्म अस्थि को भेदन करके सुषुम्ना के मुख में से वह विजली की लकीर की तरह ऊपर चढ़ती है ॥ ६७ ॥ तैजो के साथ ऊपर चढ़ कर हृदय में स्थित



विष्णु ग्रंथ को प्राप्त होती है। परचात् ऊपर जाकर तमोगुण से उत्पन्न हुई रुद्र ग्रंथ को प्राप्त होती है ॥ ६८ ॥ फिर अकुटी मध्य में होकर चन्द्र मण्डल को प्राप्त होती है। इस स्थान पर सोलह पञ्चुरियों का अनाहत चक्र होता है ॥ ६९ ॥ उसमें वह चंद्रामृतका पान करती है। प्राण के वेग के कारण प्रेरित होकर सूर्य रक्त पित्त का शोषण कर लेता है ॥ ७० ॥ जहां शुद्ध श्लेष्मा के द्रव रूप चन्द्र मण्डल होता है, वहां प्राप्त होने पर उसको उष्णता वहाँके द्रव को ग्रस जाती है और फिर वह ठंडा किस प्रकार रहे ? ॥ ७१ ॥ बड़े जोर से जाकर शुभ्र चन्द्र के रूप को भी गरम करती है, क्षुब्ध होकर ऊपर चढ़ती है ॥ ७२ ॥ इसलिये जो चित्त पहिले बाह्य विषयों में रमता था अब परम पद का अनुभव प्राप्त करके अपने ही में रह कर आनन्द भोगता है ॥ ७३ ॥ अष्टधा प्रकृति को कुण्डलिनी प्राप्त करती है, वह शिव से मिली हुई रहती है और शिव से मिली हुई तय हो जाती है ॥ ७४ ॥ इस प्रकार नीचे का रज और ऊपर का शुक्ल दोनों शिव में लीन होते हैं और उनके पीछे प्राण अपान भी समान होकर लीन हो जाते हैं क्योंकि वे समान ही उत्पन्न होते हैं ॥ ७५ ॥ देह छोटा हो या बड़ा हो जब अग्नि बहुत बड़ जाता है तब सब प्राण आग में रखे हुए भूषा में सुवर्ण के समान (शरीर में) फैल जाते हैं ॥ ७६ ॥ तब अधिभौतिक देह अधिदैविक अवतार शरीर बन जाता है, स्थूल देह आतिवाहिक सूक्ष्म देह के समान निर्मल हो जाता है ॥ ७७ ॥ उसका मुख्य

देह जड़ताके भावसे रहित शुद्ध चित्स्वरूप होता है। अन्य जीवों के आतिवाहक देह जड़ ही होते हैं ॥ ७८ ॥ उसका श्रो से उत्पन्न होना छूट जाता है जैसे ही कालकों भी वह वर्चित करता है। इस प्रकार उसको अपने स्वरूप का ज्ञान उत्पन्न होता है। रज्जु में जैसे सर्प की प्रतीति होती है ॥ ७९ ॥ उसी प्रकार सब मिथ्या ही उत्पन्न होते और मिथ्या ही तय को प्राप्त होते हैं, अथवा जैसे सीप में चांदी की बुद्धि अथवा स्त्री में पुरुष का भ्रम होता है उसी प्रकार की उसको अपनी देह में मिथ्या बुद्धि होती है ॥ ८० ॥ पिण्ड और ब्रह्मांड की एकता होती है लिंग और सूत्रात्मा की और अपने आत्मा की चैतन्य स्वप्रकाश स्वरूप से एकता होती है ॥ ८१ ॥ कुण्डलिनी शक्ति कमल के डंडी के समान होती है और कमल कंद के समान मूलकंदको फणाय से देखकर ॥ ८२ ॥ अपने मुख में पुच्छ पकड़ते हुए ब्रह्मरंध्र को बन्द करती है। नाथक पद्मासन लगाकर शान्तिपूर्वक गुदा का आकुंचन करे ॥ ८३ ॥ फिर मनोयोग पूर्वक कुंभक करके प्राण को ऊपर चढ़ावे। वायु के आघात से स्पर्धाख्यान का अग्नि प्रदीप्त करे ॥ ८४ ॥ अग्नि और पवन के आघात से कुण्डलिनी जागृत होती है। वह ब्रह्म ग्रंथ को भेदन करके विष्णु ग्रंथ का भेदन करती है ॥ ८५ ॥ फिर रुद्र ग्रंथ का भेदन करती है और छः श्रो कमलों का भेदन करके सहस्र दल में यह शक्ति शिव से मिलकर आनन्द का भोग करती है ॥ ८६ ॥ यही श्रेष्ठ अवस्था है और यही मोक्ष देने वाली है।

॥ इति प्रथम अध्याय ॥



अब मैं खेचरी नाम की विद्या को कहता हूँ। इसको जानने वाला इस लोक में जरा मृत्यु को नहीं प्राप्त होता ॥ १ ॥ इसलिये हे मुने, जो जरा मृत्यु से ग्रस्त हैं वे इस विद्या को जानकर, बुद्धि दृढ़ करके इसका अभ्यास करे ॥ २ ॥ जरा, मृत्यु और रोगों के नाश करने वाली इस खेचरी विद्या को इस लोक में जो ग्रंथसे, भाव से और अभ्यास द्वारा जानता है ॥ ३ ॥ ऐसे पुरुष को हे मुने, सर्व भाव से गुरु मान कर उमीका आश्रय लेना चाहिये। खेचरी विद्या दुर्लभ है और उसका अभ्यास उससे भी दुर्लभ है ॥ ४ ॥ अभ्यास और मेलन (योग) दोनों एक साथ करने से सिद्धि नहीं होती और केवल अभ्यास में लगे रहने वालों को मेलन (योग) की प्राप्ति नहीं होती ॥ ५ ॥ हे ब्रह्मन्, अभ्यास तो कभी जन्मान्तर में भी मिल सकता है परन्तु मेलन (योग) नौ जन्मों में भी नहीं मिलता ॥ ६ ॥ बहुत जन्मों तक अभ्यास करके कोई योगी अनेक जन्मों के पश्चात् मेलन को प्राप्त करता है ॥ ७ ॥ जब योगी गुरु मुख से मेलन मंत्र को प्राप्त करता है तब वह शास्त्र में कही हुई सिद्धि को प्राप्त करता है ॥ ८ ॥ ग्रंथ से और उसके अर्थ से जब मेलन प्राप्त करता है तब संसार से निर्मुक्त होकर वह शिव रूप बन जाता है ॥ ९ ॥ शास्त्र के बिना गुरु भी इसका बोध नहीं करा सकता, इसलिये इस शास्त्र का मिलना भी, हे मुने, अत्यन्त कठिन है ॥ १० ॥ जब तक इस शास्त्र की प्राप्ति न हो वहाँ तक यदि पृथ्वी पर पर्यटन किया करे और जब इस शास्त्र की प्राप्ति होजाय तब सिद्धि हाथ में हो

है ॥ ११ ॥ शास्त्र के बिना तीनों लोकों में सिद्धि देखने में नहीं आती इसलिये मेलन देने वाला शास्त्र देने वाला ॥ १२ ॥ और अभ्यास देने वाला ऐसा गुरु अभ्युक्त रूप शिव ही है ऐसा मान कर उसका आश्रय करना चाहिये। इस शास्त्र को प्राप्त करके और किसी को प्रकट नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ इसलिए जो कोई इन जानता है वह यत्न से इसको गुप्त रखे। हे ब्रह्मा, जहाँ इस दिव्य योग का देने वाला गुरु रहता हो ॥ १४ ॥ वहाँ जाकर उसके मुख से इस खेचरी विद्या का ग्रहण करके उसके कथन के अनुसार सावधान पूर्वक अभ्यास करने में लग जाय ॥ १५ ॥ इस विद्या से योगीको खेचरी की सिद्धि होती है, खेचरी में खेचरी का खेचरी के वीज सहित योग करने से ॥ १६ ॥ देवताओं का अधिपति बनकर देवताओं में ही सदा रहता है। नेचर शब्द का द्योतक 'हृ' कार है, आवसथ यानी वारणा शक्ति का दीर्घ 'ई' कार, अग्नि का वीज 'र' कार और जल का 'म' कार है (इन सबको मिलाने में 'हो' होजाता है) ॥ १७ ॥ यही खेचरी वीज है और इसीसे खेचरी सिद्ध होती है। सोमांश 'सकार' है, उसका प्रतिलोम से नवां अक्षर 'भू' को लिखे ॥ १८ ॥ पश्चात् तीसरा अक्षर चन्द्र का वीज अर्थात् 'सु' है, फिर हे मुने, प्रतिलोम से आठवां अक्षर यानी 'मू' का ग्रहण करना चाहिये, ॥ १९ ॥ पश्चात् 'म' कार से उलटी गिनती से पांचवां वर्ण 'पू' चन्द्र वीज 'सु' और अनेक वर्णों वाला 'क्षु' अन्तिम अक्षर है (वीज मन्त्र के प्रत्येक वर्ण में अनुस्वार सम्मिलित करना पड़ता है इसलिये

ही अंसं सं वं स् ३१



इन सबमें अनुच्चार का योग देकर "ही भं सं मं पं सं क्षं" यह सेचरी मन्त्र दिये हुए पहले के अनुसार सिद्ध होता है ॥ २० ॥ यह सब सिद्धियाँ देने वाला मन्त्र गुरु के उपदेश ही से प्राप्त होता है । जो इसका वारह बार नित्य जाप करता है उसे स्वप्न में भी श्रुतःकरणमें रहने वाली देह सम्बन्धी मायाकी प्राप्ति नहीं होती । जो इसका ध्यान देकर पांच लाख जाप करेगा ॥ २१-२२ ॥ उसको सेचरी आप ही सिद्ध हो जाती है, उसके सब विघ्न दूर होते हैं और सब देवता उस पर प्रसन्न रहते हैं ॥ २३ ॥ उसके शरीर पर भूरियाँ पड़ी हुई दूर होती हैं, इसमें संदेह नहीं है । इस प्रकार यह महा विद्या प्राप्त करने के पश्चात् इसको अन्य से अभ्यास करावे ॥ २४ ॥ अन्यथा, हे ब्रह्म सेचरी के साधन में कष्ट ही होते हैं, सिद्धि नहीं प्राप्त होती । जब विधि पूर्वक अभ्यास करने पर भी इस अमृतमयी विद्या का लाभ न हो ॥ २५ ॥

तब संमेलक आदि से इस विद्या को प्राप्त करके इसका सदा जाप करे । हे ब्रह्म, बिना संमेलक गुरु के इसका जाप न करे क्योंकि ऐसा करने से क्लिप्त भी सिद्ध नहीं होगी, ॥ २६ ॥ जब इस शास्त्र की प्राप्ति हो जाय तभी इस विद्या का सेवन करना चाहिए । इस प्रकार करने से शास्त्र में लिखे अनुसार फल की योगी को त्वरित प्राप्ति होगी ॥ २७ ॥ योगी सात दिन तक अपने गुरु के आदेशानुसार तालु मूल का वर्णन आदि करके वहाँ के सब मूल को दूर करे ॥ २८ ॥ पश्चात् स्नुही (शुहर) पत्र के समान अच्छा तीक्ष्ण शुद्ध और स्निग्ध ऐसा

शास्त्र ग्रहण करके उससे एक रोम के बराबर छेदन करे ॥ २९ ॥ फिर सेंधव और हर्क का जूयाँ वहाँ लगावे, फिर सातवें दिन एक रोम के समान छेदन करे ॥ ३० ॥ इस क्रम से नित्य उद्योग करके छः मास तक छेदन करे तो छः मास से पश्चात् जीम के मूल की शिरा का बन्धन नष्ट हो जायगा ॥ ३१ ॥ पश्चात् जीम के अग्रभाग को वस्त्र से बांधकर नियमित रूप से उसको धीरे धीरे खींचता रहे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार से छः मास तक नित्य दोहन करने से जीम भ्रूमध्य तक जाती है और पार्श्व में कर्ण विवर तक पहुँचती है ॥ ३३ ॥ वैसे ही नीचे की ठोड़ी के मूल तक पहुँचती है । क्रम पूर्वक अभ्यास करने से तीसरे वर्ष में ॥ ३४ ॥ जीम ऊपर केश के अन्त तक जाती है और बाजू के कंधों तक पहुँचती है नीचे की कण्ठ रूप तक जाती है । फिर तीन वर्ष के बाद ॥ ३५ ॥ जीम ब्रह्मरंध्र को ढांप कर रहोगे इसमें तनिक भी संशय नहीं है, और पार्श्व में जीम गर्दन के पीछे तक जायगी और नीचे कंठ के अन्त तक पहुँच जायगी ॥ ३६ ॥ इस प्रकार क्रमपूर्वक अनुष्ठान करने से जीम मस्तक में ब्रह्मरंध्र को भेद कर जाती है ।

जिस श्रुति दुर्लभ विद्या का पहिले बीज के साथ कथन किया है ॥ ३७ ॥ उसका उसके छात्रों भिन्न २ अक्षरों से षट् गन्यास करने चाहिये तथा संपूर्ण सिद्धि लाभ करने के लिये उससे करन्यास भी करने चाहिये ॥ ३८ ॥ इस प्रकार धीरे धीरे अभ्यास करना चाहिये, शीघ्रता नहीं करनी चाहिये ।



गोष्ठ्या करने से दूरी की शक्ति होगी ॥ ३६ ॥ इसलिये, हे पुत्र श्रेष्ठ, अभ्यास की ओर ही करना चाहिये । जब बाहर के मार्ग से जीव ब्रह्म विवर के भीतर जायगी ॥ ४० ॥ तब देवताओं को दुर्मेघ ऐसे ब्रह्मार्णव ( पद जीव ) को डूँगी से उठाकर जीव को ब्रह्म विवर में प्रविष्ट करावे ॥ ४१ ॥ इस प्रकार तीन वर्ष तक अभ्यास करने से जीव ब्रह्म द्वार में प्रवेश करती है । जीव ब्रह्म द्वार में प्रवेश करे तब ठीक ठीक मयन का प्रारम्भ करना चाहिये ॥ ४२ ॥ कोई विद्वान् मयन न करते हुए ही क्षेत्री मायने है । जिनका क्षेत्री मय सिद्ध हुआ है वे जिन मयन ही क्षेत्री कर लेते हैं ॥ ४३ ॥ जब और मयन दोनों का प्रयोग करने से फल अधिक दीप्त मिलता है । सोने की ल्पे को ध्वजा लोहे की एक ल्पे में दुग्ध घुल तनु लगाकर ॥ ४४ ॥ उसको नाभिका में प्रविष्ट करे फिर सुखासन में बैठकर अपने हृदय में प्राण का निरोध करके ॥ ४५ ॥ और आँखें ब्र मध्य में लगाकर धीरे धीरे मयन किया करे । छः मास में मयनात्म्या नाभ में गोचर होगी है ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार बालकों की मुष्टि अकम्पा होगी है, वैसे उसका नाभ होता है वैसे ही इसका नाभ होगा है ।

मयन हेमया नहीं करना चाहिये मास में एक बार करना चाहिये ॥ ४७ ॥ योगी बार बार विज्ञा को ब्रह्मरूप में प्रवेश न करावे । इस प्रकार अभ्यास करने से बारह वर्ष में अवश्य सिद्ध होगी ॥ ४८ ॥ तब योगी अपने दूरी में समस्त विश्व की

देखता है; क्योंकि जीव को ब्रह्मरूप से ऊपर जाने के मार्ग में ही समस्त ब्रह्माण्ड अवस्थित है ॥ ४९ ॥

॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

मयन मन्त्र यह है :—ह्रीं भं मं पं सं ह्रम् ।

ब्रह्मा बोले, हे शंकर, अभ्यासार्थ प्रतिपदा तथा पीरुमासी का वार्षिक मासार्थ क्या है सो कहिये ॥ १ ॥ प्रतिपदा का अर्थ मूर्ध है अभ्यासार्थ का अर्थ मूर्ध चन्द्र का अभाव और पीरुमासी का अर्थ चन्द्र मण्डल है अर्थात् इस क्रमसे चन्द्र मण्डलमें स्थिर रहना चाहिये, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है ॥ २ ॥ कामना के कारण विषय की इच्छा मनुष्य करता है और विषयों द्वारा कामना में फँस जाता है; इसलिये कामना और विषय दोनों का त्याग करके निरञ्जन आत्मा ही का आश्रय करना चाहिये ॥ ३ ॥ यदि मनुष्य अपना हित चाहता हो तो आत्मा से निज सब पदार्थों का त्याग करना चाहिये तथा मनको शक्ति में प्रविष्ट कर शक्ति में हो उसको रखना चाहिये ॥ ४ ॥ मन से मन को देखकर उसका त्याग करना ही परम पद है । मन ही उत्पत्ति स्थिति का कारण रूप विन्दु है ॥ ५ ॥ जैसे दूध से घी निकलता है; वैसे ही मनसे विन्दु उत्पन्न होता है । उसमें वंचन नहीं है वंचन का कारण तो मन ही है ॥ ६ ॥ चन्द्र और सूर्य के बीच में शक्ति का रहना ही वंचन रूप है, इसलिये सुषुम्ना को जानकर उसका भेद करके उसमें प्राण को चलाना



चाहिये ॥ ७ ॥ प्राण को बिन्दु में स्थिर करके घ्राणरंध्रों का निरोध करना चाहिये । इस प्रकार प्राण बिन्दु सत्त्व ( मन ) और प्रकृति ( शक्ति ) का वर्णन हुआ ॥ ८ ॥ इनको तथा षट् चक्रों को जानकर सुखस्वरूप स्थानमें प्रवेश करना चाहिये मूला धार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर तीसरा ॥ ९ ॥ अनाहत, विजृद्ध और आन्ना ये छः चक्र हैं । मूलाधार गुदा के स्थान में, स्वाधिष्ठान लिङ्ग के स्थान में ॥ १० ॥ मणिपूर नाभि के क्षेत्रमें, हृदय स्थान में अनाहत, कण्ठ मूल में विजृद्धि चक्र और मस्तक में आन्ना चक्र होता है ॥ ११ ॥ छत्रों चक्रों का ज्ञान करके मुख रूप सहज्यार में प्रवेश करे । प्राण को ऊपर खींचकर कुण्डलिनी के साथ उसको ऊपर स्थिर रखे ॥ १२ ॥ इस प्रकार प्राण का अभ्यास करता है वह ब्रह्माण्डमय होजाता है । प्राण, बिन्दु, चक्र और मन का अभ्यास करके ॥ १३ ॥ एक रूप का समाधि प्राप्त करके योगी लोग अमृत रूप परमपद को प्राप्त होते हैं ।

जिस प्रकार काण्ड में रहा हुआ अग्नि बिना मधन प्रकट नहीं होता ॥ १४ ॥ इसी प्रकार बिना अभ्यास योग के ज्ञान दीप प्रकट नहीं होता । जिस प्रकार घट में स्थित दीप बाहर प्रकाश नहीं देता ॥ १५ ॥ परन्तु घट का भेदन करने ने दीप की ज्वाला प्रकाशती है । उसी प्रकार अभ्यास शरीर ही घट है और परमाद ही दीप है ॥ १६ ॥ और गुरु के वचन से उसका भेद हो जाने से ब्रह्म ज्ञान प्रकट हो जाता है । साधक लोग गुरु को कर्णधार

करके आसानी से भवसागर को तैर जाते हैं ॥ १७ ॥ अभ्यास और वासना के बल से वे भवसागर को तैर जाते हैं । वाणी परा में अंकुरित होती है पर्याप्त में द्वितीया भूत होती है यानी अधिक स्फुट होती है ॥ १८ ॥ मध्यमा में उसको कली आती है और वैखरी में वह स्फुट रूप में प्रकट होती है । वाणी पहिले जिस रूप से उदय होती है उसी के उलटे क्रम से वह विलीन होजाती है ॥ १९ ॥ इस वाणी का परमदेव वाणी का बोध करता वाला कूटस्थ है, वही मैं हूँ, ऐसा निश्चय करके जो पुरुष वर्तता है २० ॥ उसको अच्छा बुरा शब्द कैसे भी कोई कहे वह लेपायमान नहीं होता । त्रिष, तंजस और प्राज्ञ ये तीन पिण्ड के ॥ २१ ॥ तथा विराट् हिरण्यगर्भ और ईश्वर ये तीन ब्रह्मांड के हैं ये तथा भू आदि लोक क्रम से ॥ २२ ॥ अपनी अपनी उपाधि के लय द्वारा प्रत्यगात्मा में लीन हो जाते हैं । ज्ञानान्नि से तम होने के कारण ब्रह्मांड अपने कारणों के साथ विलीन होजाता है ॥ २३ ॥ वह परमात्मा में लीन होकर परब्रह्म रूप ही होजाता है । उसके बाद एक अगाध, गंभीर और जो न प्रकाश है न अंधकार ऐसा ॥ २४ ॥ जिसका वर्णन नहीं हो सके ऐसा, अव्यक्त एक सत् स्वरूप शेष रहता है । जैसे घड़े के भीतर दीपक हो ऐसे अपने अंतर में ॥ २५ ॥ अंगुठ के समान निर्गम ज्योति रूप से वह अपने अन्तःकरण को प्रकाश करता है इस प्रकार उस अव्यय कूटस्थ का ध्यान करना चाहिये ॥ २६ ॥ विज्ञान स्वरूप आत्मा देह में जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति द्वारा माया से विमोहित होजाता है वह अनेक



बन्धों के परस्पर फिर ॥ २० ॥ भुज कर्मा का उदय होता है  
तब अपने बिकारों को जानने को इच्छा करता है कि मैं कौन  
हूँ यह भंगार रूप दोष कहीं से आया ॥ २१ ॥ अपने मिथ्या  
स्वल्प से सोचना है कि जाग्रत और स्वप्न में तो मैं व्यवहार  
करता हूँ परन्तु सुषुप्ति में मेरी क्या गति होती है ॥ २२ ॥ जैसे  
रुई का पिछड़ा अग्नि से जल जाता है वैसे चिदाभास अज्ञान के  
कारण अमृत के ताप से दम्य होता है ॥ ३० ॥

इस प्रकार ज्ञान के नष्ट होने पर हृदय में रहा हुआ प्रत्य-  
यात्मा विस्तार को प्राप्त होकर विज्ञान का भी क्षण मात्र में नाश  
करता है ॥ ३१ ॥ क्रमशः मनोमय और विज्ञानमय दोनों को  
अग्नी प्रकार दम्य कर आश्रित के लिये, घट में दीप जलता रहता  
है वैसे ही अंतर में ही प्रकाशता रहता है ॥ ३२ ॥ इस आत्माका  
जो भुक्ति मृत्यु के समय पर्यन्त, प्रतिदिन सोने तक ध्यान करता  
है उसको जीवन्मुक्त ही समझना चाहिये; ऐसा पुण्य धन्य है  
और कुतकृत्य हुआ है ॥ ३३ ॥ जब इसका देह काल के  
वश होजाता है तब यह जीवन्मुक्त का पद छोड़ कर जिस प्रकार  
हवा का चलना बन्द होजाता है उसी प्रकार वह विदेहत्व को  
प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध रहित  
नित्य और अव्यय है; जिसको आदि अन्त नहीं है, जो महान्  
परम और ध्रुव है वही अन्त में शुद्ध और विकार रहित ब्रह्म  
शेष रहता है ॥ ३५ ॥

॥ इति योग पुण्डर्युपनिषद् समाप्त ॥

## नारद परिव्राजकोपनिषद्

[ ५९ ]

एक ममय परिव्राजक के बख बारण किये हुए नारद जी  
तीनों लोकों में विचर रहे थे । अपूर्व पुण्य स्वतः तथा पुण्य  
तीर्थों का दर्शन करते हुए वे और तीर्थों को पावन करते जा  
रहे थे । तीर्थों के दर्शन से उनको चित्त शुद्धि लाभ हुई और वे  
निर्वैर और शान्त हुए । इन्द्रियों को बख में करके उन्होंने सब  
प्रकार से वैराग्य धारण किया और वे स्वल्प के अनुसंधान में  
रहने लगे । ( चलते चलते ) वे नियम से रहने ही में विशेष  
ज्ञानन्द भानने वाले मुनियों से भरे हुए नैमिषारण्य में आ पहुँचे ।  
चल और अचल भगवद्भक्ति से युक्त, प्रपंच से विमुख करके  
वैराग्य का बोध कराने वाली हरि कथाओं का **स रि ग म**  
**प ध नि स** इन स्वरों के सहित मधुर गायन करके, अनुष्य,  
पशु, किंपुण्य, देव, किन्नर और अप्सरा गण को मोहित करते  
हुए ब्रह्माग्नी के पुत्र भगवद्भक्त नारदजी को आते हुए देखकर,  
नैमिषारण्य के शौनकादि ऋषियों ने—जो सत्र याग में बारह  
संवत्सर उपस्थित थे, वेदाध्ययन संपन्न, सर्वज्ञ, तपोनिष्ठ और  
ज्ञान वैराग्य से युक्त थे—नारदजी को उत्थान दिया, नमस्कार  
किया और यथोचित आतिथ्य करके उनको आसन देने के पश्चात्  
सब ऋषि उनके आस पास बैठ गये ।



ऋषि बोले, 'भगवान् हमको मोक्ष के लिये किस प्रकार साधन करना चाहिये, कृपा करके उसका उपदेश दीजिये ।'

नारदजी बोले, 'उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ द्विज शास्त्रोक्त विधि से उपनयन होने के पश्चात्, चवालीस संस्कारों से युक्त होकर किसी योग्य गुरु के पास जावे और अपनी दाखा के आभ्यासन सहित सब विद्याओं का अभ्यास करके बारह वर्ष गुरु शुश्रूषा पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करे और पचीस वर्ष गृहस्थ धर्म और वानप्रस्थ धर्म का विधि सहित पालन करे । चार प्रकार का ब्रह्मचर्य, छः प्रकार गृहस्थ धर्म और चार प्रकार का वान-प्रस्थ धर्म भली प्रकार समझ ले और उनके अनुसार सब कर्म यथा विधि करने के पश्चात्, साधन चतुष्टय संपन्न होकर, मन, वचन कर्म से जिम प्रकार सब संसार की भाशा वह छोड़ देता है; इसी प्रकार उसकी वासना तथा तीनों ईषणाओं का भी त्याग करके, निर्द्वैर शान्त और इन्द्रियों को वश में किये हुए परमहंस संन्यास आश्रम का ग्रहण करके अस्खलित आरमस्वरूप के ध्यान में रहते हुए, जो पुरुष देह त्याग करता है वह मुक्त हो जाता है; निःसंदेह वह मुक्त हो जाता है' ॥ इति प्रथम उपदेश ॥

श्रीनकादिक ऋषियों ने भगवान् नारदजी से कहा, "भगवान् संन्यास की विधि हमको सुनाइये ।" उनकी ओर देखते हुए नारदजी बोले, "संन्यास का स्वरूप ब्रह्माजी से जानना ही उचित है ।" इतना कहकर, सब याग पूर्ण होने के पश्चात् सब ऋषियों

ममेल नारदजी सत्यलोक को चले गये । ब्रह्म ध्यान में निमग्न ऐसे ब्रह्माजी को नमस्कार करके तथा उनका स्तवन करके नारदादि सब ऋषि उनकी आज्ञा से ग्रथोचित स्थान पर बैठ गये । पश्चात् नारदजी पितामह से बोले, "हे पितामह आप गुरु हो, पिता हो, नव विद्याओं का रहस्य आप ही जानते हैं, आप ही सर्वज्ञ हो, इसलिए मेरी ओर से मेरी इच्छा के अनुसार एक गुह्य बात आपके कहनी होगी । आपके बिना मेरे अभिमत रहस्य की ओर कौन बता सकता है ? यदि आप गृष्टिये कि वह क्या है तो निवेदन है कि परिब्राजक धर्म का स्वरूप हमको बता दीजिये ।"

ब्रह्माजी ने चारों ओर बैठे हुए सब ऋषियोंको एक बार देखा और एक सुहृत् पर्यंत समाधि में स्थित रह कर संसार दुःख को नष्ट करने का उपाय ऋषि चाहते हैं ऐसा निश्चय होने पर नारद की ओर देखकर ब्रह्माजी बोले, "हे पुत्र, यह रहस्य पहिले विद्यालङ्कित विराट् पुरुष ने पुरुष सूक्त उपनिषत् द्वारा बताया था; वही आज तुम्हें विस्तार से सुनाता है । वह बहुत ही गूढ़ है इसलिए, हे नारद ध्यान देकर सुनो । अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ, पुरुष माता पिता की आज्ञा में रह कर विधि पूर्वक उपनयन संस्कार होने के पश्चात् पिता से आज्ञा लेकर उत्तम संप्रदाय वाले किसी सद्गुरु के पास चला जाय । गुरु अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ, ब्रह्मवान् श्रोत्रिय, शास्त्र में प्रेम रखने वाला, गुणवान् और नीचा होना चाहिये । ऐसे गुरु के यहाँ जाकर, नमस्कार करके,



यथायोग्य शुश्रूषा करनेके परत्वात् उनसे भगनी इच्छा प्रकट करे। बारह वर्ष पर्यंत उनकी सेवा करते हुये मग विद्या पढ़े। परत्वात् उनकी आज्ञा लेकर अपने कुल के योग्य और अपने को प्रिय हो, ऐसी कन्या के साथ विवाह करके पञ्चीस वर्ष का गुरुकुलवास समाप्त करके गुरु को आज्ञा से यथोचित गृहस्थ के कर्म करने लग जाय। ब्राह्मणत्व को प्राप्त करके अपने वंश की वृद्धि के निमित्त एक पुत्र को उत्पन्न करे और इस प्रकार गृहस्थाश्रम के पञ्चीस वर्ष पूरे करे। पञ्चात् पञ्चीस वर्ष पर्यंत वन में रहकर तीन बार केवल स्नान करके चतुर्थ बार माहार ग्रहण करे और पूर्व के अनुसार ग्राम और नगर में न जाते हुए वन में भकेला जा रहे। फल की इच्छा का परित्याग करके उस आश्रम के उचित ऐसे कर्मों को कर चुकने पर दृष्ट और आनुश्रविक (परलोक में प्राप्त होने वाले) विषयों से उत्पन्न को प्राप्त हो, च्वात्सीस संस्कारों से युक्त दृष्टा सर्व प्रकार से विरक्त होजाय इस प्रकार चित्त की शुद्धि लाभ करके आशा, असूया, ईर्ष्या और अहंकार इनको दम्य करके और साधन चतुष्टय संपन्न होकर संन्यास ग्रहण करे, यह उपनिषत् है ॥ इति द्वितीयोपदेशः ॥

नारदजी ने पितामह से कहा, 'भगवन्, किस लक्षण से संन्यास का अधिकारी पहिचानना चाहिये ?' ब्रह्माजी बोले, प्रथम संन्यास के अधिकारों के लक्षण कहता हूँ परत्वात् संन्यास की विधि ब्रह्मणा। ध्यान देकर सुनो।

नपुंसक, पतित, भगहीन, रत्रेण, ( स्त्रीत्व से प्रीति रखने वाला ) वधिर, बालक, मूक, पाखण्डी, चक्र ( का चिह्न ) धारण करने वाला, लिंग धारण करने वाला, शैव चिह्न धारण करने वाला, वेतन लेकर पढ़ाने वाला, गंजा और भग्न होत्र न किया हो ऐसा पुरुष—ये सब वैराग्य युक्त होते पर भी संन्यास के अधिकारी नहीं हैं। यद्यपि इन्होंने संन्यास ग्रहण भी किया हो, तो ये महावाक्य के उपदेश के अधिकारी नहीं हैं। पूर्वोक्त संन्यासी ही परमहंस का अधिकारी होता है। ( स्मृति में कहा है कि )—

अपने से दूसरे को और दूसरे से अपने को भयकी संभावना नहीं रखता वही परिब्राजक कहा जाता है ॥ १ ॥ नपुंसक, भगहीन, भ्रंषा, बालक, पापी, पतित, परद्वारी, वैशानस ( जङ्गली ), शिव चिह्न धारण करने वाला ॥ २ ॥ चक्र या लिंग धारण करने वाला, पाखण्डी, गंजा, भग्न होत्र न किया हो ऐसा या दो तीन बार संन्यास ले चुका हो वह और वेतन लेकर पढ़ाने वाला, ये सब—क्रम संन्यास नहीं ले सकते; आतुर संन्यास ले सकते हैं ॥ ३ ॥

आतुर काल आपकी कौनसा संभव है ?

प्राण निकलने के समीप का समय हो आतुर काल कहा जाता है, अन्य नहीं। आतुर काल मुक्ति मार्ग में प्रवृत्त कराता है ॥ ४ ॥ आतुर संन्यासमें भी यथा विधि मंत्र पठन तथा भग्न-



श्रुति ( जप ) करके, बुद्धिमान पुरुष को चाहिये, कि वह विविधयुक्त संन्यास धारण करे ॥ ५ ॥ भ्रातुर संन्यास में क्या और क्रम संन्यास में क्या, प्रेष भेद नहीं होता; क्योंकि मंत्र रहित कर्म नहीं होता । कर्म मंत्र की अपेक्षा रखते हैं ॥ ६ ॥ मन्त्र रहित कर्म व्यर्थ हो जाता है, इसलिये मन्त्र का त्याग नहीं करना चाहिये । मन्त्र रहित कर्म वैसा ही है जैसा भस्म में आहुति देना ॥ ७ ॥ विविध युक्त कर्मों का संक्षेप होने से इसको भ्रातुर संन्यास कहते हैं, इसलिये हे मुने भ्रातुर संन्यास में मन्त्रों का उपयोग अवश्य करना चाहिये ॥ ८ ॥ यदि कोई प्रथम अग्नि होत्र करता हो, परन्तु परचात् विरक्त होकर देश छोड़कर चला गया हो, तो उसको जल में प्राजापत्य इष्टि करके संन्यास धारण करना चाहिये ॥ ९ ॥ यह कर्म चाहे मानसिक किया जाय या विधि अनुसार जल में किया जाय या वेद में जिस प्रकार इस कर्म का अनुष्ठान बताया है उसके अनुसार किया जाय ॥ १० ॥ इसको समाप्त करके ही विद्वान् संन्यास धारण करे, ऐसा न करे तो उसका पतन हो जायगा ॥ ११ ॥ जब मन में सब वस्तुओं के लिये वैराग्य उत्पन्न होजाय तब ही संन्यास की इच्छा करना योग्य है, अन्यथा संन्यास की इच्छा करने से वह पतित हो जायगा ॥ १२ ॥ इसलिये बुद्धिमान विरक्त ही को संन्यास में प्रवृत्त होना चाहिये और जो राग बाला हो उसके लिये धर ही अच्छा है जो अथम द्विज राग के होते हुए संन्यास धारण करता है, वह नरक को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जिसको

जीम, उपस्थ, पेट और हाथ अपने वक्ष में हों ब्रह्मचर्यावान् वह ब्राह्मण विवाह करने के पूर्व ही संन्यास धारण करे ॥ १४ ॥ संसार की विवेक दृष्टि से निःसार देखता है तब वह उत्तम श्रेणों के वैराग्य से युक्त पुरुष विवाह न करते हुए ही संन्यास ग्रहण करता है ॥ १५ ॥ कर्म का लक्षण प्रवृत्ति है यानी कर्म से प्रवृत्ति बढ़ती है और ज्ञान में उसका लक्षण संन्यास है इस- लिए ज्ञान ( विवेक ) होने के परचात् ही बुद्धिमान संन्यास ग्रहण करे ॥ १६ ॥

जब सनातन ब्रह्मरूप परम तत्त्व का ज्ञान होजाय, तब एक दण्ड धारण करके यज्ञोपवीत और शिखा का त्याग करना चाहिये ॥ १७ ॥ वही भिक्षा का श्राव भोजन कर सकता है जो परमात्मा में प्रेम रखता हो, संसार के पदार्थों में वैराग्य रखता हो और सब प्रकार की कामनाओं से रहित हो ॥ १८ ॥ नमस्कार करने से अथवा पूजा करने से जैसी प्रसन्नता होती है यदि मार पड़ने पर भी जिसको वैसी ही प्रसन्नता होती हो, तभी वह सच्चा भिक्षात्र का भागी होता है ॥ १९ ॥ वासुदेव नामक अद्वय और अक्षर ब्रह्म में ही है, यह भाव जिसका दृढ़ हो जाता है वही सच्चा भिक्षात्र का भागी है ॥ २० ॥ जिस पुरुष में शान्ति, क्षम, शौच, सत्य, संतोष और आर्जव ( सोधापन ) हो, जो अपने पास कुछ भी न रखता हो और जिसमें दम्भ ( नक्रोशी ) भी न हो, वही पुरुष केवल्यश्रम में अर्थात् संन्यास आश्रम में रहे ॥ २१ ॥ जो मन, वचन या कर्म द्वारा किसी भूत



प्राणी के प्रति पाप की भावना नहीं करता वही सच्चा भिक्षात्र भोगी होता है ॥२२॥ सावधानता पूर्वक दस लक्षण वाले, धर्म का अनुष्ठान करता हुआ और यथा विधि वेदान्त का श्रवण करता हुआ द्विज सब ऋणों से मुक्त होने के पश्चात् संन्यास ग्रहण करे ॥ २३ ॥ धृति, क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, इन्द्रिय वश में रखना, (विवेक) से काम करना, विद्या, सत्य और क्रोध न करना—यह दस धर्म के लक्षण हैं ॥ २४ ॥ प्रथम भोगे हुए भोगों का तथा प्राप्त होने वाले भोगों का जो स्मरण न करे और प्राप्त भोगों में जो सुख न माने, वही पुरुष संन्यास आश्रम में रहे ॥ २५ ॥ जो भीतर की इन्द्रियां भीतर और बाहर के विषय बाहर सदा रख सके, वही संन्यास आश्रम में रहे ॥ २६ ॥ प्राण निकल जाने पर प्रकार देह को सुख दुःख नहीं होते वैसे ही प्राण के होते हुए जिसको सुख दुःख न हो वही संन्यास के योग्य है ॥ २७ ॥ दो तंगोटियां, एक गुदड़ी और एक दण्ड इतना ही सामान परमहंस संन्यासी को अपने पास रखना चाहिये अधिक नहीं ॥ २८ ॥ राग के कारण यदि परमहंस संन्यासी अधिक परिग्रह करे, तो वह रौरव नरक को प्राप्त होकर, पशु आदि की तिर्यक योनि में जन्म लेता है ॥ २९ ॥ संन्यासी पुराने फटे हुए निर्मल वस्त्रों को जोड़ कर कथा बनावे और उसका बाहरी परत गेरुआ करले ॥ ३० ॥ वह या तो एक ही वस्त्र धारण करे या एक भी वस्त्र न रखे और नीचे दृष्टि रखते हुए वासना रहित होकर नित्य अकेला ही विचरणा

करे और वर्षाकाल में भान्न एक स्थान पर निवास करे ॥ ३१ ॥ पुत्र दारदि परिवार तथा वेदांग, यज्ञ और यज्ञोपवीत इन सबका त्याग करके, यदि एकांत में अकेला विचरण करे ॥ ३२ ॥ काम, क्रोध, धमंड, लोभ इत्यादि दोषों का परित्याग करके परित्वाजक ममता रहित हो जाय ॥ ३३ ॥ राग द्वेष को छोड़कर मुनि मिट्टी का डेला, पत्थर तथा सुवर्ण को समान देखे और किसी प्राणी की हिंसा न करते हुए नित्यगृह हो रहे ॥ ३४ ॥ दम्भ [मक्कारी] अहंकार, हिंसा और पैशुन्य [दुराचार] को छोड़ कर और आत्म ज्ञान से युक्त होकर यदि मोक्ष का लाभ करे ॥ ३५ ॥ इन्द्रियों को साय देने से अवरुध दोष की ही प्राप्ति होती है, परन्तु यदि उनको वश में रखा जाय तो उससे अवश्य सिद्धि का लाभ होता है ॥ ३६ ॥ भोग की इच्छा भोगों के भोगने से कभी क्षान्त नहीं होती; परन्तु धौ डालने से जैसी आग भभकती जाती है वैसे वह भी बढ़ती ही जाती है ॥ ३७ ॥

विषयों को सुनकर, स्पर्शकर, चख कर, देखकर या सूंघ कर जो पुरुष उनमें हर्ष या भ्लानि नहीं करता उसी को जितेन्द्रिय जानना चाहिये ॥ ३८ ॥ जिसका मन और वाणी सदा शुद्ध और अपने वश में है; वह वेदान्त का अन्तिम फल मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) अपने सन्मान से सदा विष प्राप्ति के समान अप्रसन्न रहे और अमृत प्राप्ति होने के समान अपमान की प्राप्ति को समझे ॥ ४० ॥ अप्रमत्तचित्त होने पर भी ब्राह्मण सुख से सोता है, सुख से ही जागता है और सुख से



प्राणी के प्रति पाप की भावना नहीं करता वही सच्चा भिक्षात्र भोगी होता है ॥२२॥ सावधानता पूर्वक दस लक्षण वाले, धर्म करता हुआ द्विज सब ऋणों से मुक्त होने के पश्चात् संन्यास शीघ्र. इन्द्रिय वश में रखना, (विवेक) से काम करना, विद्या, सत्य और क्रोध न करना—यह दस धर्म के लक्षण हैं ॥ २४ ॥ प्रथम भोगे हुए भोगों का तथा प्राप्त होने वाले भोगों का जो स्मरण न करे और प्राप्त भोगों में जो सुख न माने, वही पुरुष संन्यास आश्रम में रहे ॥ २५ ॥ जो भीतर की इन्द्रियां भीतर और बाहर के विषय बाहर सदा रख सके, वही संन्यास आश्रम में रहे ॥ २६ ॥ प्राण निकल जाने पर प्रकार देह को सुख दुःख नहीं होते वैसे ही प्राण के होते हुए जिसको सुख दुःख न हो वही संन्यास के योग्य है ॥ २७ ॥ दो लंगोटियां, एक मुदड़ी और एक दण्ड इतना ही सामान परमहंस संन्यासी को अपने पास रखना चाहिये अधिक नहीं ॥ २८ ॥ राग के कारण यदि परमहंस संन्यासी अधिक परिग्रह करे, तो वह रौरव नरक को प्राप्त होकर, पशु आदि की तिर्यक योनि में जन्म लेता है ॥ २९ ॥ संन्यासी पुराने फटे हुए निर्मल वस्त्रों को जोड़ कर कन्या बनावे और उसका बाहरी परत गेरुआ करले ॥ ३० ॥ वह या तो एक ही वस्त्र धारण करे या एक भी वस्त्र न रखे और नीचे दृष्टि रखते हुए वासना रहित होकर नित्य भ्रमेला ही विचरण

करे और वर्षाकाल में मात्र एक स्थान पर निवास करे ॥ ३१ ॥ पुन दारादि परिवार तथा वेदांग, यज्ञ और यज्ञोपवीत इन सबका त्याग करके, यदि एकान्त में भ्रमेला विचरण करे ॥ ३२ ॥ काम, क्रोध, धर्मद्वंद्व, लोभ इत्यादि दोषों का परित्याग करके परब्राह्मण भगता रहित हो जाय ॥ ३३ ॥ राग द्वेष को छोड़कर मुनि मिट्टी का डेला, परस्पर तथा सुवर्ण को समान देखे और किसी प्राणी की हिसा न करते हुए निस्पृह हो रहे ॥ ३४ ॥ दम्भ [मङ्कुरी] झहंकार, हिसा और पशुन्य [दुराचार] को छोड़ कर और आत्म ज्ञान से मुक्त होकर यदि मोक्ष का लाभ करे ॥ ३५ ॥ इन्द्रियों को साध देने से आवश्यक दोष की ही प्राप्ति होती है, परन्तु यदि उनको वश में रखा जाय तो उससे आवश्यक सिद्धि का लाभ होता है ॥ ३६ ॥ भोग की इच्छा भोगों के भोगने से कभी क्षान्त नहीं होती; परन्तु धौं ढालने से जैसी भ्रात भयंकरती जाती है वैसे वह भी बढ़ती ही जाती है ॥ ३७ ॥

विषयों को सुनकर, स्पर्शकर, चख कर, देखकर या सूंघ कर जो पुरुष उनमें हर्ष या भ्रान्ति नहीं करता उसी को जितेन्द्रिय जानना चाहिये ॥ ३८ ॥ जिसका मन और वाणी सदा शुद्ध और अपने वश में है; वह वेदान्त का सन्तिय फल मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण (बहुज्जाली) अपने सन्मान से सदा विष प्राप्ति के समान अप्रसन्न रहे और अमृत प्राप्ति होने के समान अपमान की प्राप्ति को समझे ॥ ४० ॥ अपमानित होने पर भी ब्राह्मण सुख से सोता है, सुख से ही जामता है और सुख से



विवरण करता है; परन्तु उसका अपमान करने वाला नष्ट होता जाता है ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण बहुत बोलने से बचता रहे और अपमान तो किसी का भी न करे। वैसे ही, अपने देह का आश्रय करके और किसी से भी घेरे न बांधे ॥ ४२ ॥ कोई क्रोध न करे तो उसके ऊपर वह क्रोध न करे कोई बुरा बात कहे तो भी उसको मीठे वचन ही कहे और न बड़बर्धन वाले वचन कहे, न असत्य भाषण करे ॥ ४३ ॥ अपने धारमा हो में प्रेम रखे और किसी से कुछ पाने की भी इच्छा न रखे, न किसी को धापीवादि दे। अपने ही पुरुषार्थ से सुख प्राप्त करने के लिये इस जगत में विचरना करे ॥ ४४ ॥ इन्द्रियों को निरोध करने से राग द्वेष का क्षय करने से और प्राणियों की हिसान करने से मनुष्य अमृतत्व के योग्य होता है ॥ ४५ ॥ हृदियों के निरोध होने हुए हैं, जो स्नायु से बंधा हुआ और रक्त मांस से लिपा हुआ है, जो चपड़े से मढ़ा हुआ और दुर्गंध युक्त मलमूत्र से भरा हुआ है ॥ ४६ ॥ जो वृद्धावस्था के दुःख से युक्त है और रोगों का घर है और सदा रोगों से पीड़ित है, जो स्त्री के रज से उत्पन्न होता, अतिसय है और भूतों का निवास स्थान है, ऐसा यह मनुष्य शरीर त्यागने योग्य ही है ॥ ४७ ॥ मांस, रक्त, पीब, मल, मूत्र, स्नायु, मज्जा और हृदियाँ—इनके संघात रूप देह में यदि कोई मूढ़ मनुष्य प्रीति करे, तो वह नरक में भी प्रीति करेगा। ॥ ४८ ॥ देह में अहंकार रखना ही काल का दास होना है, वही महावीचि नामक नरक में खींच ले जाने वाला जाल है या महाद कष्टप्रद ऐसी

असिपन्न वन श्रेणी (एक प्रकार का नरक जहाँ पेड़ों के पत्तों तलवार की धार के समान होते हैं) बही है ॥ ४९ ॥ सब कुछ भस्म हो नष्ट होजाय तो भी हर प्रयत्न से देहाहंकार का त्याग प्रवर्धन ही करना चाहिये। देहाहंकार को भस्म मनुष्य को छूना तक नहीं चाहिये; जैसे कि भ्रान का मांस जिसके पास है ऐसे चांडालिनी को उत्तम पुरुष नहीं छूते ॥ ५० ॥ अपने प्रियजन हो उनका प्रच्छा करना या जो अप्रिय हों उनका बुरा करना, दोनों से अलग रह कर, ध्यान योग से वह सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ इस विधि से धीरे २ सब प्रकार के संग को छोड़कर और सब वस्तुओं से मुक्त होकर वह ब्रह्म में टिक जाता है ॥ ५२ ॥ किसी के सहाय की अपेक्षा न रखकर परमार्थ की सिद्धि के लिये अकेला ही विचरण करे; जो जानता है कि अकेले रहने ही से परमार्थ की सिद्धि होती है; वह उसको त्यागता नहीं और सिद्धि को प्राप्त कर ही छोड़ता है ॥ ५३ ॥

पात्र के लिये कपाल (खरपर), खानेके लिये कन्दमूल, पहिने के लिये पुराने फटे वस्त्र, किसीकी सहायता अपेक्षा न रखना. सबमें समान बुद्धि रखना—ये ही मुक्ति के लक्षण हैं ॥ ५४ ॥ सब भूत प्राणियोंका हित चाहने वाला, शान्त, तीन दंड और एक कमंडलु रखने वाला और अकेला ही भ्रान्तमें रहने वाला, ऐसा संन्यासी भिक्षा के लिये ग्राम में प्रवेश करे ॥ ५५ ॥ अकेला ही भिक्षु कहा जाता है, दो जुड़ जाय तो भिक्षुन कहा जाता है तीन मिल जाने से ग्राम और तीन से अधिक भिक्षु मिलने पर उनको नगर



कहते हैं ॥ ५६ ॥ इसलिये भिक्षुकों को तीन से अधिक तीन या दो की संख्या में नहीं रहना चाहिये यदि वेसे रहें तो वे अपने धर्म से च्युत हो जाते हैं ॥ ५७ ॥ ( क्योंकि दो या अधिक यति मिलने से ) उसमें आपस में राजा संबंधी या भिक्षा संबंधी अवश्य बात चीत होगी अथवा अधिक परिचय से आपस में स्नेह, दुराचार या मत्सर आदि भी उत्पन्न होंगे, इसमें संदेह नहीं है ॥ ५८ ॥

भिक्षु किसी की भाषा न करते हुए अकेला ही रहे, किसी के साथ बात भी न करे और यति सबको 'नारायण' यहो उत्तर दे ॥ ५९ ॥ अकेला ही मन वचन कर्म से ब्रह्म का चिन्तन करे। जीवन में या मृत्यु में हर्ष न माने ॥ ६० ॥ जहां तक प्राण की समाप्ति न हो काल की प्रतीक्षा किया करे जीवन या मरण का हर्ष न माने। जैसा सेवक आशा की प्रतीक्षा करता रहता है वैसे काल ही की प्रतीक्षा करता रहे ॥ ६१ ॥ अजिह्व, मौन, नपुं-धक, पंगु, अन्धा, बधिर और मुख इन छत्रों का आचरण करे इससे भिक्षु अवश्य मुक्त हो जायगा, इसमें संदेह नहीं है ॥ ६२ ॥ भोजन करते समय यह अच्छा है और यह दुरा है इस प्रकार मानकर जो जिह्वा के विषयोंमें आसक्ति नहीं करता और हितकर, परिमित और सत्य भाषण करता है, उसको अजिह्व कहते हैं ॥ ६३ ॥ हाल की उत्पन्न हुई बालिका, सोलह वर्ष की तरुणी और सो वर्ष की वृद्धा स्त्री, तीनों को जो वित में विकार उत्पन्न हुए बिना ही देखता है उसको बंडक ( नपुंषक ) कहते हैं ॥ ६४ ॥ जो केवल

भिक्षा के लिये अथवा मल मूत्र त्याग के लिये ही चलता है और एक योजन से अधिक चलता ही नहीं उस यति को पंगु कहना चाहिये ॥ ६५ ॥ बैठा हो या गमन करता हो जिसकी दृष्टि चार हाथ धरती से अधिक दूर नहीं जाती उस यति को अन्ध कहते हैं ॥ ६६ ॥ हितकारक या अहितकारक भ्रान्त देने वाला या दुःख देने वाला, ऐसा वचन सुनकर भी न सुनने के समान स्थिर बुद्धि रहता है, उसको बहिरा कहते हैं ॥ ६७ ॥ विषय संमुख उपरिगत होने पर भी जिस समर्थ यति को इन्द्रियां चलायमान नहीं होतीं, जो सदा सोये हुए के समान वर्तित्व करता है, उस भिक्षु को मुख कहते हैं ॥ ६८ ॥ नाटक आदि जुग्रा, युवतियां, खाने पीने के पदार्थ और रजस्वला स्त्री, इन छत्रों को यति कभी न देखे ॥ ६९ ॥ अन्य पदार्थ में राग, द्वेष, मद, माया, मोह और मोह इन छत्रों को यति मन में कभी न लावे ॥ ७० ॥ मंचक ( पत्तंग ), सफेद कपड़ा, स्त्रियों की कथा, लोलुपता, दिन में सोना और किसी यान ( सवारी ) में बैठना यह छत्र संन्यासी के लिये पाप है ॥ ७१ ॥ आराम चिन्ता करने वाला प्रयत्न से दूर यात्रा न करे और मोक्ष देने वाले उपनिषदादि सत् शास्त्रों का अभ्यास किया करे ॥ ७२ ॥ यति तीर्थ स्थान में अधिक न रहे, न उसवास ही करे, वैसे ही यति न पढ़ने नगा रहे न व्याख्यान ( पढ़ाने ) में ॥ ७३ ॥ यति हमेशा पाप रहित, शठता विहीन और सरल ऐसा आचरण रखे और कछुआ जैसे अपने अङ्गों को समेट लेता है वैसे



इन्द्रियों को समेट ले यानी उनको अपने बल में रखे ॥ ७४ ॥ इन्द्रिय और मन की वृत्ति जिसकी क्षीण हुई है, जो ब्रह्मा और परब्रह्म से रहित हो, जो इन्द्र रहित हो और किसी को नमस्कार न करे न तर्पण प्रादि करे ॥ ७५ ॥ जो ममता और भ्रह्मकार रहित हो, किसी से कुछ भयप्राप्ति न रखता हो, न किसी को भाषीविदि देता हो और जो सदा एकान्त का ही सेवन करता हो—ऐसा पुरुष मुक्त हो होता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ ७६ ॥

नियम से चलने वाला, कर्म भक्ति और ज्ञान से सम्पन्न और स्वतन्त्र ऐसा पुरुष वैराग्य प्राप्त होने पर—फिर वह ब्रह्मचारी हो, गृहस्थ हो या वानप्रस्थ हो, संन्यास ग्रहण करे । ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य सम्पन्न करके गृही हो, फिर वानप्रस्थ होकर पश्चात् संन्यास धारण करे । भयवा भय प्रकार से, ब्रह्मचर्य ही से संन्यास ग्रहण करे, वा गृहस्थो से या वानप्रस्थ से करे । भयवा, संन्यास ग्रहण करे, वा गृहस्थो से या वानप्रस्थ से करे । भयवा, व्रती हो या व्रतहीन, स्नातक ( पढ़ा हुआ विद्वान् ) हो या व्रती हो या व्रतहीन, स्नातक ( पढ़ा हुआ विद्वान् ) हो या भस्मातक ( वे पढ़ा ), अग्नि का त्याग किया हो या अग्निहोत्र रखा ही न हो, जिसको जिस दिन वैराग्य उत्पन्न हो जाय, उसी दिन वह संन्यास धारण करे । प्रजापत्य इष्टि (हवन विशेष) ही केवल करे भयवा न करे; केवल भ्रान्त्ये इष्टि ही करे । प्राण ही अग्नि है, इसलिये त्रेधातवीय इष्टि भ्रान्ति तीन धातु सम्बन्धी हवन इसी में करे । तीन धातु ये हैं, सत्त्व, रज और तम । 'अग्निं योनिं त्विष्यो यतो जातो आरोचयथाः । तं जानन्नान्न आरोहयानो

वर्धया रयिष ।' ( हे अग्नि देव ! यह प्राण तुम्हारा कारण रूप है; प्राण से उत्पन्न हुए तुम प्रकाश को प्राप्त हो । प्राण के जानने वाले, हे अग्नि देव ! तुम वृद्धि को प्राप्त हो और हमारी सम्पत्ति बढ़ाओ ) इस मन्त्र से अग्नि को सुंघे । भयवा 'अग्नेर्योनिर्व्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ।' ( जो प्राण अग्नि का कारण है उस अपने कारण में हे अग्निदेव ! तुम प्रवेश करो ) इस मंत्र से आहवनीय अग्नि को लेकर पूर्व के अनुसार उसको सुंघे । यदि अग्नि न मिले तो जल में आहुतियां दे । जल ही सब देवता रूप है ( इसलिये ) 'सर्वान्मयो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा ।' ( सब देवताओं के लिये इस मन्त्र से हवन करता हूँ ) हवन करके उस जल को लेकर 'साज्यं हुविरनामयं मोक्षदयम्' ( यह वृत्त सहित हवि है जो रोगहारक और मोक्षदायक है ) इस मन्त्र से जल प्राशन करे ।

परब्राह्मण शिक्षा, यज्ञोपवीत, पिता, पुत्र, स्त्री, कर्म, अभ्यासन तथा भ्रान्त्य मन्त्रों का विसर्जन कर वह परिव्राजक हो जाता है । भ्रातम ज्ञानी परिव्राजक त्रेधातवीय मोक्ष मन्त्रों से विधिवत् ब्रह्म को उपासना करे ।

नारदजी ने ब्रह्माजी से पुनः प्रश्न किया, 'जिसको यज्ञोपवीत न हो वह ब्राह्मण कैसे हो सकता है ?'  
पितामह ने उत्तर दिया:—

शिक्षा सहित मुण्डन करके विद्वान् बाहर के सूत्र ( यज्ञोपवीत ) का त्याग करे और जो अक्षर परब्रह्म है वही सूत्र है इस



प्रकार समझे ॥ ७७ ॥ पिरोगा हुआ होने से उसको सूत्र कहते हैं । वह सूत्र वस्तुतः परमपद रूपी सूत्र को जिसने जान लिया है वही ब्राह्मण वेदों का पारंगामी है यानी संपूर्ण वेदों को भली प्रकार जानने वाला है ॥ ७८ ॥ जिसमें यह सर्व जगत सूत्र में जैसे मणि पिरोगे हुए होते हैं वैसे पिरोगा हुआ है, उस ब्रह्म रूपी सूत्र को तत्त्वदर्शी योगी धारण करे ॥ ७९ ॥ उत्तम प्रकार से योग में स्थिर विद्वान् बाहर के सूत्र को त्याग कर सावधानता पूर्वक इस ब्रह्म भावका सूत्र धारण करे । इस सूत्रको धारण करने वाला उच्छिष्ट (भूटा) और अशुचि नहीं होता ॥ ८० ॥ ब्रह्मज्ञान रूप यज्ञोपवीत धारण करने वाले, जिनका सूत्र भीतर रहता है वे ही सच्चे सूत्र को जानने वाले हैं और सच्चे यज्ञोपवीत पहिनने वाले हैं ॥ ८१ ॥ उनकी ज्ञान ही शिक्षा है, ज्ञान ही निष्ठा है, और ज्ञान ही उनका यज्ञोपवीत है; उनका पवित्र भी ज्ञान ही है और ज्ञान ही उनका परम (पद) है ॥ ८२ ॥ अग्नि की समान प्रज्वलित ऐसी ही उनका ज्ञानमय शिक्षा है, वही ज्ञानी सच्चा शिक्षा धारी है जिसको ज्ञानमय शिक्षा जो रखते हैं, वे वास्तविक में शिक्षा, और सामान्य मनुष्य शिक्षा जो रखते हैं, वे वास्तविक में शिक्षा, धारी नहीं है ॥ ८३ ॥ ब्राह्मणादि जिनको वैदिक कर्म करने का धारी नहीं है ॥ ८४ ॥ वाहरी यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये अविकार है, उनको यह वाहरी यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये क्योंकि वह एक कर्म ही का अङ्ग है ॥ ८५ ॥ जिसकी शिक्षा और उपावीत ज्ञानमय है, संपूर्ण ब्राह्मणत्वं उसी में है, ऐसा ब्रह्मज्ञानियों का निश्चय है ॥ ८६ ॥

इस प्रकार यह सब ज्ञान कर ब्राह्मण परित्राजक (संन्यासी) बन जाय । संन्यासी एक पहनने की घाटी (वस्त्र) सिंघास और कोई वस्तु पास न रखे, सब सिर मुंडवाले और सब प्रकार से शारीरिक कष्ट सहने के लिये तय्यार रहे । भयवा क्रिधि देखा जाय तो वह जंसा उत्पन्न हुआ है, उसी रूपको धारण कर यानी नन होकर अपने पुत्र, मित्र, स्त्री, भ्राता (पुह) बांधव आदि तथा स्वाध्याय और सब कर्मों को त्यागकर 'यह सब ब्रह्माण्ड ही उसकी लगेटी है' ऐसा समझकर दण्ड और लगेटीका त्याग करे और दंड को सहन करता हुआ न शीत माने न उष्ण, न सुख, न दुःख, न निद्रा, न मानापमान माने और शोक, मोह, जरा, मृत्यु श्रव और व्यास इन छत्रों ऊपरोंसे रहित होजाय । निन्दा, भई कार, मत्सर, गर्व दंभ, ईर्ष्या असूया, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को छोड़ कर अपने सरीर को मृत शरीर के समान मानकर अपने आत्मको छोड़कर भीतर और बाहर, और कुछ है ही नहीं ऐसी निष्ठा रखे । किसी की भी वंदना न करे, न नमस्कार करे, न हवन वा तर्पण करे । निन्दा स्तुति छोड़ दे और जंसा होजाय वंसा ही होने दे, जो मिले उसीमें संगु रहे । सुवर्ण आदि पास न रखे । उसके लिये न भ्रात्राहृत है न विसर्जन, न मंत्र है न अभंज, न ध्यान है न उपासना, न लक्ष्य है न अलक्ष्य, न पुष्प है न अपुष्प है, न कोई अन्य स्थान है । सभी स्थान उसीका निवास है और उसीकी बुद्धि



विश्वर है। वह सृष्टे मकान में, वृक्ष के नीचे, मंदिर में, फूस के ढर में, कुम्हार के घर, अग्नि होत्र के स्थान अथवा यज्ञशाला में, नदी के तीरों में, नदी के बाखू में, श्रुति के विवर में पर्वत के कन्दरा में. करने पर अथवा यज्ञागार में अथवा वन में रहे श्वेतकेतु, ऋषु निदाष, ऋषय, दुर्वासा, संवर्तक, दत्तात्रेय और रेवतक-इनके समान कोई जान न सके इस प्रकार वेद तथा आचार रखकर बालक के समान, पागल के समान अथवा पिशाच के समान रहे। पागल न होते हुए पागल का सा आचरण रहे और त्रिदंड स्त्रीका, पात्र, कमंडलु, कटिसूत्र और कीपीन-यह सब जल में 'सुः स्वाहा' कहकर त्याग दे। कटिसूत्र, कीपीन, वण्ड, वस्त्र और कमण्डलु-यह सब जल में प्रवाहित करे, नम होकर विचरण करे और आत्मा का अनुसंधान करता रहे। जंसा नम रहे वंसा निर्द्वंद्व और परियह रहित भी रहे। परिब्राजक तत्त्वस्थ ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग में अच्छी प्रकार संयत्न हो। मन को निर्मल रखते हुए प्राण धारण के निमित्त यथोक्त काल पर हाथ में अथवा किसी पात्र में शिखा मांग कर खाए। लाभ हानि में समान रहे और ममता कहीं भी न रहे। आत्मस्थान में सदा निमग्न रहकर सदा ब्रह्मनिष्ठ बना रहे और धुम तथा अशुभ कर्मों का उच्छेद करने की इच्छा से उनका त्याग कर, 'पूर्णानन्द, श्रद्धं व और बोध स्वरूप ऐसा ब्रह्म मैं हूँ' इस अर्थ वाले ब्रह्म प्रणव का अनुस्मरण करे। अगर जंसा एक फूल से दूसरे फूल पर जाता है, स्मरण करे। अगर जंसा एक पत्ते से दूसरे पत्ते पर जाता है, वैसे ही अथवा जैसे कीट एक पत्ते से दूसरे पत्ते पर जाता है, वैसे ही

तीनों शरीर का त्याग करे। इस प्रकार संन्यास ही से जो देह— त्याग करता है, वह, कृतकृत्य होता है। यह उपनिषत् है ॥ इति तृतीय उपदेश ॥

वेद त्रिहित कर्मों सहित तीनों लोक, विषय तथा इन्द्रिय इन सबका त्याग कर जो आत्मा में ही टिक जाता है, वह परमगति को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ सच्चा यति अपना नाम, गोत्र, देह, काल, अयनो विद्वत्ता, कुल, उम्र, पेशा, व्रत, शील इत्यादि किसी को न बतावे ॥ २ ॥ स्त्री के साथ वह संभाषण न करे अथवा देखी हुई स्त्री का स्मरण न करे, स्त्री सम्बन्धी बातें भी न कर, और तो क्या स्त्री का चित्र भी यति न देखे ॥ ३ ॥ इन चार बातों का यदि कोई यति मोह वश आचरण करे, तो उसका चित्त को अवश्य विकार होगा और उस विकार से वह नाश को प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

तृष्णा, क्रोध, असत्य, धूर्तता, लोभ, मोह, प्रिय, अप्रिय, शिल्प, व्याख्यान करना, काम, राग, परिग्रह, ॥ ५ ॥ भट्टकार, ममता, व्याधि चिकित्सा करना, धर्म का कोई बड़ा काम उठाना, प्रायश्चित्त करना, प्रवास मंत्र, श्रौषध, विष और आशीर्वाद ॥ ६ ॥ यह सब यति के लिये निषिद्ध हैं और यदि कोई यति इनका सेवन करे तो उसका पतन होगा। मित्र भी आ मित्रे तो उसको 'आजा, अथवा बैठ' ऐसा कहकर उसका स्वागत न करे ॥ ७ ॥ वैसे ही मोक्ष मार्गमें परायण मुनि किसीसे मान पूर्वक न बोले, किसी से कुछ ले नहीं न किसी को कुछ दे ॥ ८ ॥ अथवा देने



दिलवाने की यति स्वप्न में भी कभी प्रेरणा न करे । स्त्री, भाई, पुत्र इत्यादि बांधवों का हानि लाभ ॥ ९ ॥ मुनकर वा देख कर यति विचलित न हो और हर्ष शोक दोनों का वह त्याग करे । अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह से रहे ॥ १० ॥ उदण्डता न करना, दीनता रहित रहना, प्रसन्नता, स्थिरता, सोधा पन, अग्नेह, गुरु सेवा, श्रद्धा, क्षमा, दम, शम, ॥ ११ ॥ उपेक्षा, वैर्य, मावर्त्य, तितिक्षा, करुणा, लज्जा, ज्ञान, विज्ञान, योग भिताहार और धृति ॥ १२ ॥ इन सबका पालन करना, जिनका मन वशमें होता है ऐसे यतियों का वह प्रसिद्ध धर्म है । द्वन्द्व रहित सदा आत्मा में टिका हुआ, सबको समान देखने वाला ॥ १३ ॥ ऐसा तुरीय अवस्था को पहुँचा हुआ परमहंस यति साक्षात् नारायण ही है । यति ग्राम में एक ही रात्रि रहे, नगर में पाँच रात्रि रह सकता है ॥ १४ ॥ परन्तु यह नियम वर्षाऋतु के लिये नहीं है; वर्षा काल में चार महीने एक ही न्यायन रह सकता है । यदि कोई भिक्षु ग्राम में हो तो उस ग्राम में यति दो रात्रि भी न ठहरे ॥ १५ ॥

क्याँकि इसमें रागद्वेष बढ़ता है और उससे यति नरक गति को प्राप्त होता है । गाँव की सीमा में अथवा किसी निर्जन देश में बिना आश्रम बनाने यति संयम पूर्वक रहे ॥ १६ ॥ किसी क्षुद्र प्राणी के समान जमीन पर यानी पैदल ही घूमता रहे, मात्र वर्षाकाल में एक ही स्थान रह जाय । वह या तो एक ही स्थान

पर निवास करे अथवा निवास करे ही नहीं; एकाग्र दृष्टि रखे और लोलुपता न रखे ॥ १७ ॥

इस प्रकार संतजनों के मार्ग को दृष्टा न लगाता हुआ ध्यानयुक्त रह कर यति पृथ्वी पर अमरा करे । पवित्र देश में अपने धर्म का पालन करते हुए यति ॥ १८ ॥ परिश्रमण करता रहे और योगरत रह कर पृथ्वी पर घूमता रहे । यति को रात्रिमें दुपहर में अथवा संध्या समय पर्यटन नहीं करना चाहिए ॥ १९ ॥ शून्य स्थानों में, कठिन स्थानों में अथवा जहाँ जाने से प्राणियों को कष्ट पहुँचे ऐसे देश में भी वह पर्यटन न करे । यति गाँव में एक रात्रि रहे, कसबे में तीन रात ॥ २० ॥ छोटे कसबे में दो ही रात रहे, शहर में पाँच रात्रि रह सकता है परन्तु वर्षाकाल में ( चार महीने ) तीर्थ स्थान देखकर वहीं रहे ॥ २१ ॥ अन्धे के समान कबरे के समान, बहिरा, पागल या गुने के समान ( जिसके लक्षण पहले दे चुके हैं ) और अपने समान सब श्रुतों को देखता हुआ भिक्षु पृथ्वी पर परिश्रमण करे ॥ २२ ॥

बहुदक और वानप्रस्थ संन्यासियों को तीन बार स्नान करना चाहिये, हंस को एकवार और परमहंस के लिये स्नान श्रावश्यक ही नहीं है ॥ २३ ॥ मौन, योगासन, योग, तितिक्षा, एकान्त सेवन, निस्पृहता और समता ये सात धर्म एक दण्ड धारण करने वाले के हैं ॥ २४ ॥ परन्तु परमहंस आश्रम वाले के लिये स्नानादि का कुछ विधान नहीं है । वह हमेशा केवल सभी चित्त धृष्टियों के त्याग में ही लगा रहे ॥ २५ ॥



चमड़ा, मांस, रक्त, स्नायु, मेद, मज्जा और हड्डियां इनके संघात रूप शरीर में रहने वालों में और मल मूत्र पीव आदि में रहने वाले कीड़ों में अन्तर ही क्या है ? ॥ २६ ॥ कहां कफ आदि मलिन पदार्थों के ढेर रूप यह शरीर और कहां उस शरीर के क्षोभा सौंदर्य आदि गुण ! ॥ २७ ॥ मांस, रक्त, पीव, मल, मूत्र, स्नायु, मज्जा और हड्डी आदि के समूहभूत इस शरीर में यदि कोई सूक्ष्म पुरुष प्रीति रखे तो वह नरक में भी प्रीति रखेगा ॥ २८ ॥ क्रियाओं के गुहा देश में और वहते हुए फोड़े में कुछ भी अन्तर नहीं है ! यदि है तो केवल मनुष्य के मन का ही अन्तर है, और इसी से मनुष्य धोखा खा जाता है ॥ २९ ॥ द्विधा भिन्न और अपान मेल से दुर्गन्ध देने वाले चमड़े के टुकड़े में जो आनन्द मानते हैं, उनको नमस्कार है ! इससे बढ़ कर और साहस ही क्या हो सकता है ! ॥ ३० ॥

विद्वान् यति का न कोई कार्य है न कोई चिह्न है। ममता हीन, भयहीन, शान्त, द्वन्द्वरहित, किसी वर्ण से आहार ग्रहण करने वाला ॥ ३१ ॥ मौन धारण करने वाला यति लंगोटी भी धारण करे अथवा न करे और सदा ध्यान में तत्पर रहे। ऐसा ज्ञानी योगी ब्रह्म को प्राप्त होने योग्य है ॥ ३२ ॥ यति कोई बाह्य चिह्न धारण करे तो भी यति का वास्तविक लक्षण तो ज्ञान ही है, क्योंकि जीव के मोक्ष का हेतु ज्ञान ही है और बाहरी चिह्न मोक्ष के लिये अत्यन्त निरूपयोगी हैं ॥ ३३ ॥ जो किसी को अच्छा या बुरा, विद्वान् या अविद्वान्, सदाचारी या दुरा-

चारी नहीं समझता वही सच्चा ब्राह्मण है ॥ ३४ ॥ इसलिये धर्म-वेत्ता यति बहिर्लक्षण रहित ही अत्यन्त श्रेष्ठ ऐसे ब्रह्मचर्य का आचरण करे; परन्तु महान् गहन ऐसे धर्म का आचरण करते हुए भी बाहरी आचार भ्रमानी के समान हो रहे ॥ ३५ ॥ बर्ण और आश्रम से रहित होकर सब मनुष्यों से पृथक् ऐसा कोई विशेष चिह्न न रखे और अन्ध, सुर्ख और गुंगे के समान ( जिस के लक्षण पहिले कह चुके हैं ) पृथ्वी तल पर परिभ्रमण करे ॥ ३६ ॥ ऐसे शान्त मन वाले यति की देवगण भी चाहना करते हैं ।

‘लिंगभावात् कैवल्यम्’ ( लिंग यानी व्यक्तित्व का निश्चय न होना ही कैवल्य है ) यह वेद वचन है ॥ ३७ ॥

फिर से नारदजी ने ब्रह्माजी से कहा, ‘हमको संन्यास की विधि बताइये ।’ पितामह ने ‘अच्छा’ कह कर भङ्गीकार किया और वे बोले—

आतुर संन्यास में और क्रम संन्यास में भी संन्यास आश्रम ग्रहण करने वाला प्रथम कुछ चांद्रायण व्रत से प्रायश्चित्त करे और अष्ट श्राद्ध करे । देव, ऋषि, दिव्य, मनुष्य, भूत, पिता, माता इनका तथा अपना ये आठ श्राद्ध हैं । प्रथमदेव श्राद्ध में सत्य वसु नामक देवताओं तथा ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर इनका अर्चन करे, ऋषि श्राद्ध में देवर्षि, क्षत्रिय ऋषि और मनुष्य ऋषि इनका दिव्य श्राद्ध में वसु, रुद्र और आदित्य इनका; मनुष्य श्राद्ध में



सनक, सनत्कुमार और सनत्गुजात इनका; भूत श्राद्ध में पृथिव्यादि महाभूत चक्षु आदि इन्द्रियां और चार स्थूल भूत इनका; पितृ श्राद्ध में पिता, बाबा और परबाबा इनका; मातृ श्राद्ध में माता दादी और परदादी इनका और आरम श्राद्ध में अपनी पिता का और बाबा का श्राद्ध करे। पिता जीवित हो तो पिता को छोड़कर अपनी, बाबा का और परबाबा का श्राद्ध करे। सब श्राद्धों में प्रति श्राद्ध के लिये दो दो ब्राह्मणों की नियुक्ति द्वारा एक अर्घ्य पक्ष में, श्रयवा आठ अर्घ्य पक्ष में, एक दिन में श्रयवा आठ दिन में अपनी शाखा के मन्त्रों से आठों श्राद्ध समाप्त करे। श्रयवा पितृ याग के विधान से ब्राह्मणों का पूजन करके मुक्ति तक सब कर्म यथा विधान करके पिण्ड दान करे। ब्राह्मणों को ताम्बूल (पान का बीड़ा) और दक्षिणा देकर संतुष्ट करके उनको विदा करे। पश्चात् शेष रहा कर्म समाप्त करने के लिये सात बाल छोड़ कर ब्राह्मण सिर के बाल तथा मूँछें मुंडवावे और नाखून कटवावे। सात आठ बाल, छोड़कर संपूर्ण क्षीर करवावे और स्नान नंथा से निवृत्त होकर एक हजार गायत्री का जप करे तथा ब्रह्म यज्ञ करे। फिर अपनी अलग अग्नि स्थापन करके अपनी शाखा के अनुसार सामित्री एकत्रित कर उस शाखा के अनुसार ही जितनी आज्य भाग में कही हो उतनी घी की; आहुतियां देकर हवन विधि समाप्त करे। 'आत्मा' आदि मंत्रों से तीन बार सरथु प्राशन करे। पश्चात् आच-

मन करके अग्नि का संरक्षण करे। अग्नि के चतुर को कृष्णजिन (काला मृगचर्म विछा कर उस पर बैठ कर रात भर पुराण श्रवण करते हुए जागरण करे। रात्रि के चौथे प्रहर में स्नान करके उसी अग्नि में चरु (भात) बनावे। पुरुष सूक्त से उसी अग्नि में सोलह आहुतियां देकर पश्चात् विरजा होम करे। फिर आचमन करके दक्षिणा सहित वस्त्र, मुवर्ण पात्र और धनु का दान करके पश्चात् ब्रह्मा का विसर्जन करे। पश्चात् नीचे लिखे हुए मंत्र से अग्नि को आत्मा में आरोपित करके अग्नि का इस प्रकार ध्यान करे। अग्नि का आरोपण करने का मन्त्रः—  
 “समासिञ्चन्तु मरुतः समिन्द्रः संवृहस्पतिः । संमायमग्निः सिञ्चत्वायुषा च वनेन च वलेन च चापुष्मन्तः करोतुमेति ।  
 याते अग्ने यज्ञिया तनुस्तयेह्यारो हात्मात्मानम् । अन्धा वसूनि कृत्स्नस्मे नर्या पुरुणि । यज्ञो भूत्वा यज्ञमासीद स्वां योनिं जातवेदो भुव आजायमानः मक्षय एवि ।” (मरुत, इन्द्र, वृहस्पति तथा यह अग्नि मेरे ऊपर वन और बल की वर्षा करे और मुझे दीर्घ आयु प्रदान करे। हे अग्ने, जो तेरी यज्ञ रूपी तनु है उस तनु से यहां इस मेरे आत्मा में तू आरोहण कर (हमारे लिये) धन की वृद्धि कर और हे अन्न को बढ़ाने वाले, (हमारे खाने के लिये, बहुत अन्न उत्पन्न कर। यज्ञ वनकर तू यज्ञ कराले और हे अग्ने, तू अपने कारण के प्रति प्राप्त होजा। इस समय जो तू प्रगट हुआ है सो फिर विलीन होजा।



अग्नि का ध्यान करने के पश्चात् उसकी प्रदक्षिणा और नमस्कार करके अग्नि का विसर्जन कर दे । पश्चात् प्रातः संव्या करे, एक सहस्त्र गायत्री का जप करके सूर्योपस्थान । सूर्य की प्रार्थना) करे फिर नाभि तक पानीमें खड़ा रहकर आठ दिक्पालों को अर्घ्य प्रदान करे, गायत्री का विसर्जन करे और सावित्री को व्याहृ-  
तियों में प्रविष्ट कर दे ।

‘मै ( संसार रूपी ) वृक्ष का ( अन्तर्गामी रूप से ) धारण करने वाला हूँ, मेरी कीर्ति पर्वत पृष्ठ के समान स्थिर है । सूर्य में जैसा अत्यन्त पवित्र अमृत रहा हुआ है उसीके समान मैं अत्यन्त पवित्र हूँ । प्रकाश युक्त ऐसा ( ब्रह्म रूपी ) धन मेरे पास है । मैं उत्तम बुद्धि वाला, मृत्यु रहित और अक्षय हूँ ।’ यह त्रिशंकु ऋषि का वेद का व्याख्यान है ।

जो वेदी में प्रधान ( रूप से वर्णित ) है, विश्वरूप, है, अमृत स्वरूप वेदों से उत्पन्न हुआ है ऐसा ( अँकार रूप ) इन्द्र मुझे बुद्धि ( ज्ञान ) प्रदान करे; हे देव, मैं अमृत की धारण करने वाला होऊँ, मेरा शरीर बलवान् हो, मेरी जीभ मधुर भाषण करने वाली हो और मैं कान से बहुते अच्छी तरह से सुनूँ, तू ब्रह्म का कोश यानी खजाना है परन्तु ( लौकिक ) बुद्धि से तू पाया नहीं जाता तू मेरे जाने हुए ( ज्ञान ) की रक्षा कर

“स्त्री की वासना, धनकी वासना और स्वर्ग आदि लोकों की वासना का मैंने त्याग किया है ।” “ॐ भूः संन्यस्तं मया, ॐ भुवः वासना का मैंने त्याग किया है ।” “ॐ भूः संन्यस्तं मया, ॐ भुवः

संन्यस्तं मया, ॐ भुवः संन्यस्तं मया ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया” ( मैंने भू लोक का संन्यास किया इ० इ० ) इस मंत्र को मंद स्वर से, मध्यम स्वर से और फिर उच्च स्वर से मन से और वाणीसे कहकर, “अभयं सर्व भूतेभ्यः मत्तः सर्वं प्रवर्तते स्वाहा ।” (सब भूतोंको मैं अभय देता हूँ; सब कुछ मुझसे ही उत्पन्न होता है ) इस मंत्रसे जल प्राशन करे । पूर्व दिशाकी ओर पूर्ण अंजली देकर ‘ॐ स्वाहा’ इस मंत्रसे शिखा उखाड़ डाले । फिर ‘यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमप्ययं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बल मस्तुतेजः ॥ यज्ञोपवीतं वह्निर्न निवसेत्त्वमंतः प्रविश्य मध्ये ह्यज्ञसं परमं पवित्रं यशोबलं ज्ञान वैराग्यं मेधां प्रयच्छ ॥’ (यह यज्ञोपवीत अत्यंत पावन करने वाला है और यह पहिले प्रजापति के साथ ही उत्पन्न हुआ है । हे देव, मुझे सुदीर्घ आयुष्य प्रदान कर । यह शुभ्र यज्ञोपवीत मुझे बल और कीर्ति देने वाला हो ॥ यह यज्ञोपवीत भव वाहर न रहे, भीतर प्रवेश करके ( हे यज्ञोपवीत भव ) तুম मेरे अन्तर में परम पवित्र और विशाल ऐसा सुयश, बल, ज्ञान, वैराग्य और बुद्धि प्रदान करो । ) इस मंत्र से यज्ञोपवीत तोड़कर अंजुलि में जल लेकर “ॐ भूः समुदं गच्छ स्वाहा” ऐसा कहकर जल में छोड़ दे “ॐ भूः संन्यस्तं मया, ॐ भुवः संन्यस्तं मया ॐ भुवः संन्यस्तं मया” इस मन्त्र को तीन बार उच्चारण करके जल को अभिमन्त्रित कर प्राशन करे । फिर श्रावमन करके ‘ॐ भूः स्वाहा’ ऐसा कहकर जल में वस्त्र तथा कटिसूत्र ( करघनी ) भी त्याग दे और मैं भव



सब कर्मों से निवृत्त हुआ है' ऐसा समझकर नग्न रूप से आत्मा का अनुसंधान करते हुए उत्तर दिशा की ओर चला जाय। यदि संन्यास लेने वाला विद्वान हो तो गुरु से प्रणव महावाक्य का उपदेश लेकर 'मुझसे अन्य कुछ नहीं है' ऐसा समझकर स्वेच्छा पूर्वक विचरण करे और फल, पत्ते और जल का आहार कर पहाड़ जंगल तथा मंदिरों में घूमे। संन्यास लेने के पश्चात् दिगंबर रहे और हमेशा अपने आनन्द के अनुभव से जिसका अन्तर परिपूर्ण है ऐसा सर्वत्र विचरण करे। अन्य कर्मों से दूर रहकर फल, रस, छिलके, पत्ते, मूल और उदक इनका आहार करते हुए मोक्ष की इच्छा रखने वाला संन्यासी प्राणायाम में परायण रहे और गिरि कन्दराओं में निवास करते हुए और तारक मन्त्र प्रणव का स्मरण करते हुए देह विसर्जन करे।

विविदिषा संन्यासी (ज्ञान प्राप्ति के हेतु संन्यास धारण करे वह) उपरोक्त रीति से नग्न होकर सौ कदम चले। फिर आचार्य तथा ब्राह्मण उमसे कहे कि 'हे भाग्यवान् पुरुष ठहरो, दण्ड, कमण्डलु और वस्त्र धारण करो और प्रणव महावाक्य ग्रहण करने के निम्न आचार्य के पास जाओ।' फिर आचार्य उसे दण्ड, कटिसूत्र, (करघनी) लंगोटी, एक ओढ़ने का वस्त्र और कमण्डलु दे दे। "सखामागोपायोजः सखायोऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि वान्नन्धः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारय" (हे मखे, मेरी रक्षा कर तू इन्द्र का ऐश्वर्य (अनुन सामर्थ्य) है तू वज्रामुर को मारने वाला वज्र है तू मेरा रक्षण कर और मुझे पापों से दूर रख) इस

मन्त्र से दण्ड ग्रहण करे। "जगद्जीवन जीवनाधार भूतं मातेव मा मन्त्रयस्त्र सर्वदा सर्वसौम्य" (हे जगत को जीवन देने वाले और उसके जीवन के आधार भूत, हे सर्व कल्याण करने वाले मुझे माता के समान सर्वदा उपदेश देते रहना।) इस मन्त्र को कहकर और ॐ का उच्चारण करके कमण्डलु को ग्रहण करे, ॐ कहकर लंगोटी बांधने के लिये कटिसूत्र (करघनी) धारण करे, ॐ कहकर गुह्य भाग ढकने के लिये लंगोटी धारण करे और ॐ कहकर शीतोष्ण से रक्षा करने के लिये केवल एक वस्त्र धारण करे। कटिसूत्र कौपीन तथा वस्त्र धारण करने के पूर्व तीनों बार आचमन करे।

इस प्रकार संन्यास दीक्षा को प्राप्त कर "मैं कृतार्थ हुआ हूँ" ऐसा मानकर यदि अपने आश्रम विहित कर्म सर्वदा करता रहे यह उपनिषत् है ॥ इति चतुर्थ उपदेश ॥

नारद जी ने ब्रह्माजी से प्रश्न किंवा, 'भगवान् आपने पहिले संन्यास को सब कर्मों के निवृत्त रूप बताया था और फिर आप बताते हैं कि संन्यासी अपने आश्रम के अनुसार कर्माचरण करता रहे, (इससे आपका क्या अभिप्राय है?)

पितामह बोले, 'देहचारी जीवों की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय ऐसी चार अवस्थाएं होती हैं, उनकी अवस्था के अनुसार वे कर्म, ज्ञान या वैराग्य की प्रवृत्ति वाले होते हैं और वैसे ही उनके आचार होते हैं।



नारदजी बोले, 'ऐसा है तो संन्यास के कितने प्रकार हैं, और उन भिन्न २ प्रकार के संन्यासियों के आचार में क्या २ अन्तर होता है वह सब कृपा करके मुनाइये ।'

इसके उत्तर में ब्रह्मा जी ने नारदजी से संन्यास के भेद इस प्रकार कहे—

संन्यास वास्तव में तो एक है, परन्तु अज्ञान, दुर्बलता और विहीत कर्मों के त्याग के कारण वह तीन प्रकार का है और चार प्रकार का भी होता है; वैराग्य संन्यास, ज्ञान संन्यास, ज्ञान वैराग्य संन्यास और कर्म संन्यास । जिसका पूर्व जीवन अव-र्ममय हो परन्तु पश्चात् शुभ कर्मों के उदय से जिसको वैराग्य प्राप्त होजाय उनका संन्यास वैराग्य संन्यास कहा जाता है । शास्त्रों द्वारा स्वर्गनरक के भोगों का अनुभव सुनकर संसार से जो उपराम को प्राप्त होता है और क्रोध, ईर्ष्या, असूया, शत्रुकार, अभिमान आदि रूप सब संसार से निवृत्त होकर वारेपणा (स्त्री की वासना), वनेपणा, लोकेपणा (स्वर्गादि की वासना) रूप देह वासना, शास्त्र वासना और लोकवासना का त्याग कर, प्रकृति का वना दृष्टा जितना जो कुछ है, सब वमन (कै) किये हुए भोजन के समान त्याज्य है, ऐसा समझ कर साधन चतुष्टय मंत्र होकर जो संन्यास ग्रहण करता है, उसको ज्ञान संन्यासी कहते हैं । कम से सब का आग्रास और अनुभव करते हुए ज्ञान वैराग्य और स्वरूपानुसन्धान से जिसका केवल देह ही शेष रहा हो अर्थात्

जिसको कहीं भी आसक्ति न रही हो, जो संन्यास लेकर नग्न रहता है वह ज्ञान वैराग्य संन्यासी है । ब्रह्मचर्य को समाप्त करके गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम के समाप्ति के पश्चात् वैराग्य न होते हुए ही आश्रम क्रम से जो संन्यास धारण करता है वह कर्म संन्यासी है । वैराग्य संन्यासी ब्रह्मचर्य से संन्यास लेता है और संन्यास अवस्था में नग्न हो रहता है ।

विद्वत् संन्यासी, ज्ञान संन्यासी, विविदिषा संन्यासी और कर्म संन्यासी (ऐसे भी संन्यास के चार विभाग हैं) । कर्म संन्यास दो प्रकार का होता है, निमित्त संन्यास और अनिमित्त संन्यास । आतुर संन्यास को निमित्त संन्यास और क्रम संन्यास को अनिमित्त संन्यास कहते हैं । आतुर संन्यास में सब कर्मों का लोप होता है और प्राण छूटने के समय वह लिया जाता है । इसको निमित्त संन्यास कहते हैं । मन को दृढ़ करके जितना जो कुछ उत्पन्न हुआ है, वह सब अवश्य नष्ट होगा, इसलिये देह आदिक सर्व हेय (त्यागने योग्य) है, सूर्य लोक में रहने वाला हंस (आत्मा) अतिरिक्त में रहने वाले वसु, वेदी के पास बैठने वाला होता, तथा कठिन मार्ग चलने वाला पथिक, वैसे ही ब्रह्मलोक इन्द्र लोक में विष्णुलोक और अतिरिक्त में रहने वाले, तथा जल पृथ्वी, तेज, नदिद्यां पहाड़ आदि में उत्पन्न हुए जीव यह सब नश्वर है केवल सत्य स्वल्भ और महान् ब्रह्म ही नित्य है, ऐसा निश्चय करके पश्चात् क्रम पूर्वक जो संन्यास ग्रहण किया जाता है वह अनिमित्त संन्यास है ।



संन्यास और छः प्रकार का होता है:—कुटीचक, बह्वृदक, हंस, परमहंस, तुरीयातीत और अवधूत ।

कुटीचक संन्यासी शिक्षा, यज्ञोपवीत, दण्ड और कमंडलु रखता है । लंगोटी पहिनाता है और झोड़ने के लिये वैया ( गुदड़ी ) भी रखता है । वह माता पिता और गुरु इनकी सेवा करता है । खप्पर, कुदाली और छीका रखता है और मन्त्र जपता है एक ही स्थान पर भोजन करता है, सफेद ऊर्ध्व तिलक धारण करता है और तीन दण्ड रखता है ।

बह्वृदक संन्यासी शिक्षा, यज्ञोपवीत, दण्ड, कमण्डलु, कोपीन और कंथा रखते हैं, त्रिपुण्ड धारण करते हैं और सब बातों में कुटीचक के समान होते हैं । वे मधुकरी मांग कर केवल आठ आस ही भोजन करते हैं ।

हंस जटा रखते हैं । त्रिपुण्ड और ऊर्ध्व पुण्ड दोनों प्रकार के तिलक लगाते हैं । पूर्व संकल्प न करते हुए मधुकरी मांग कर खाते हैं और कमर में एक कोपीन का टुकड़ा पहिनाते हैं । परमहंस संन्यासी शिक्षासूत्र रहित होता है, वह प्रतिदिन पांच घरों में से भिक्षा मांग कर हाथ ही में खाता है; एक लंगोटी और ऊपर लपेटने के लिये एक साटी ( वस्त्र ) तथा एक बांस का दण्ड धारण करता है । वह या तो एक साटी रखता है नहीं तो झरीर में भस्म लगा लेता है, और कुछ भी पास नहीं रखता ।

तुरीयातीत संन्यासी गाय के समान मुख ही से फल आदि खाता है, यदि वह भ्रष्ट खाय तो तीन ही घर मांग कर खाय, कुछ भी पास नहीं रखता वह दिगम्बर रहता है । उसके झरीर का निर्वाह मृत् देहवत् होता है यानी वह निर्वाह के लिये चेष्टा नहीं करता ।

अवधूत के लिये कोई नियम नहीं है । वह दुराचारी और पतित इनको छोड़ कर किसी भी वर्ण से भ्रजगर् वृत्ति से रहता है यानी बिना प्रयत्न किये हुए जो कुछ प्राप्त हो वही खा लेता है और स्वल्पानुसंधान परायण होता है ।

आतुर संन्यासी यदि जीवित रहे तो उसको कम संन्यास का आचरण करना चाहिये । कुटीचक, बह्वृदक और हंस, इनकी संन्यास विधि ब्रह्मचर्य आदि संन्यास लेने वाले के समान ही होती है । ( ये तीन वान्ताविक संन्यास नहीं हैं, वे संन्यास की तैयारी की अवस्थाएं हैं; इसीसे इनमें शिक्षासूत्र का त्याग नहीं होता । ) परमहंस तुरीयातीत और अवधूत ये करधनी, लंगोटी, वस्त्र, कमंडलु, दण्ड कुछ भी नहीं रखते । उनको सब वर्णों से भिक्षा मांग कर खाना चाहिये और नन रहना चाहिये ।

संन्यास लेने के पश्चात् भी जहां तक वृषि न हो वहां तक शास्त्राभ्यास करना चाहिये दुष्ट होते ही कटिसूत्र, कोपीन, वस्त्र कमण्डलु आदि जल में वहा दे, और नन होकर विचरे, कन्या



भी न रखे । न कुछ पढ़े; न मुने; केवल प्रणव का उच्चारण किया करे । तर्क न पढ़े, न व्याकरण पढ़े । अधिक बोले नहीं; क्योंकि उसके लिये अधिक बोलना व्यर्थ वाणी को कष्ट देना ही है । वाणी से श्रवण हाथ आदि से इसारे करके श्रवण और किर्मा प्रकार के विशेषण से भी न बोले । शूद्र, स्त्री, पतित श्रम्य रजस्वला स्त्री से यति भाषण न करे । वंसे ही यति देवपूजा भी न करे, उत्सव न देखे और यात्रा भी न करे ।

यतियों के लिये ये भी नियम हैं:—कुटीचक एक स्थान ही से पूरी शिक्षा करले, बहूदक माधुकरी करके पर्याप्त भोजन करे । हंस आठ घर से आठ ग्रास मांग लावे, परमहंस पांच ही घर शिक्षा मांगे और पात्र न रखे, हाथ ही में शिक्षा करे । तुरीयातीत गाय के समान मुख ही से फलाहार करे और श्रवण श्रवण वृत्ति रखे यानी बिना प्रयत्न जो कुछ आ पहुँचे उसका श्रवण करे । किसी भी ग्राम में जहाँ सब वर्णों के लोग रहते हों यदि एक दिन से अधिक न रहे, न वह किसी को नमस्कार करे । तुरीयातीत और श्रवण से कोई बड़ा नहीं है; परन्तु जो स्वरूप ज्ञान से रहित है वह बड़ा होते हुए भी छोटा ही है । यति हाथों से नदी तैर कर न जाय न कभी पेड़ पर चढ़े, न यान (सवारी) में बैठे । यति क्रय विक्रय न करे वंस बदला भी न करे । वह दम्भ न करे, न कभी श्रवण भाषण करे । यति के लिये कर्तव्य कुछ भी नहीं है और यदि वह कुछ करेगा तो श्रवण

उसका पठन होगा, इसलिये संन्यासियों को केवल मनन आदि का ही अधिकार है ।

शानु और कुटीचक को भू लोक की प्राप्ति होती है; बहूदक को स्वर्गलोक की, हंस को तपोलोक की, परमहंस को सत्यलोक की और तुरीयातीत और श्रवण को श्रमर जंसा एक फूल से दूसरे फूल पर जाता है वा कीट एक पत्ते से अन्य पत्ते पर जाता है वैसे, (इस देह के टूटते ही) स्वरूपानुसंधान से श्रमा में कैवल्य की प्राप्ति होती है ।

“जि २ भाव का स्मरण करते हुए जीव देह का त्याग करता है, उस २ भाव ही को वह प्राप्त होता है ।” श्रुतिका कथन श्रवण नहीं हो सकता ।

इसलिये, यह जान कर यति स्वरूपानुसंधान को छोड़ कर और कुछ भी न करे, क्योंकि और कोई भाव होने से उस लोक की प्राप्ति होगी, और ज्ञान वैराग्य संपन्न हो, उसकी इसी देह में मुक्ति होती है । इसलिये और किसी के भी आचार में यति को श्रासक्ति न होना, यही उसका आचार है ।

जिसका जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में एक ही शरीर है वही श्रमा जाग्रत काल में विश्व, स्वप्न काल में तैजस् और सुषुप्ति काल में प्राज्ञ बनता है । श्रवस्था भेद से श्रवस्था के अधिपति का भेद होता है और कार्य भेद ही से कारण भेद होता है ।



उन अवस्थाओं में चतुर्दश करणों की वासु धृतियां होती हैं उनका उपादान कारण उनकी प्रांतर धृतियां हैं। धृतियां चार प्रकार की होती हैं—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। उन २ धृतियों के भेद में जीवका पृथक देशों व्यवहार होता है। नेत्र में जाग्रत, कण्ठ में स्वप्न, हृदय में सुषुप्ति और मस्तिष्क में तुरीय अवस्था में जीव रहता है। तुरीय को अक्षर मानकर, जाग्रत अवस्था में सोये हुए के समान जो कुछ देखे सुने, वह सब न देखे न जाने के समान करके जीव वर्तता है, वह स्वप्नावस्था में भी वैसा ही अनुभव करता है। उसीको जीवमुक्त कहते हैं। उसीको मुक्ति होती है; यही सब धृतियों का कथन है। भिक्षु को इहलोक परलोक की इच्छा नहीं होती और यदि अपेक्षा हो तो वह वैसा ही आचरण करेगा। ( परन्तु ) स्वरूपानुसंधान छोड़कर भ्रम्य शाखाओं का अध्ययन करना वैसा ही व्यर्थ है जैसा ऊंट के लिये रोस्सी का बोझा ढोना। इसलिये यति न योगशास्त्र की प्रधृतियां करे, न मांस्व शास्त्र का अभ्यास करे और न मंत्र तंत्र की साधना करे। यदि यति इतर शास्त्रों की प्रवृत्ति करे तो वह उसको शोभा नहीं देती। उसकी वह प्रवृत्ति मृत देह के भ्रलंकार के समान ही है। वैसे तो यतिको कर्म का भ्रम्य भी अधिकार है ही नहीं और यदि वह ज्ञान से भी हीन है तो ऐसा यति चमार के समान है। यदि प्रणव का मंत्र जप छोड़कर जो कुछ कर्म करता है वह श्रद्धा यदि प्रणव का समान नरवर फल को जरूर भोगता है। इस-के तेल के भाग के समान नरवर फल को जरूर भोगता है। इस-लिये यति ऐसे सब कर्म तथा उनमें आसक्त ऐसे मन रूपी दंड की

स्वाग दे और हाथ ही जिसका पात्र है, ऐसा दिगंबर बन कर भिक्षु विचरण करे। वह बाल, उन्मत्त वा पिशाच के समान रहे। मरने की वा जीने की इच्छा न करे; आज्ञा दिये हुए नीकर के समान मृग की यति प्रतीक्षा करता रहे।

तितिक्षा, ज्ञान, वैराग्य और शम आदि गुण जिस यति में न हों, केवल जो भिक्षा मांग कर खाना जानता हो, वह यति समस्त संन्यास की संस्था को हाथि पट्टा जाता है ॥ १ ॥ दण्ड धारण करने से, सिर मुड़वाने से, वेध धारण करने से या दम्भ करने से मुक्ति नहीं मिलती। इसलिये, जिसने ज्ञानका दण्ड धारण किया हो वही एक यति है ऐसा जानो। परन्तु ज्ञान हीन होते हुए किसी सर्वभक्षी ने काठ का दण्ड धारण कर लिया हो तो ऐसा पुरुष घोर रोरव नरक को प्राप्त होगा ॥ २ ॥ प्रतिष्ठा को महर्षि लोग सूकर की विष्ठा के समान बताते हैं; इसलिए प्रतिष्ठा का मोह छोड़कर क्षुद्र कीट के समान यति विचरण करे ॥ ३ ॥ विना मांगे जैसा मिल जाय वही उसका परेच्छा प्राप्त भ्रम्य वस्त्र हो अथवा वह विना वस्त्र ही रहे। स्नान भी अपनी इच्छा से यति न करे ॥ ४ ॥ जो स्वप्न में भी आत्मा में योग वाला रहता है और जाग्रतावस्था में तो विशेषता से युक्त रहता है, शास्त्र इस प्रकार रहने वालेको श्रेष्ठ और ब्रह्मवादियों में बरिष्ठ बताते हैं ॥ ५ ॥ कुछ न मिले तो उसके लिये विषाद नहीं, मिल जाय तो हर्ष नहीं; इस प्रकार इन्द्रियों के विषयों से भ्रसंग होकर यति केवल प्राण धारण करे ॥ ६ ॥ जिन लाभों की चाहना उठे उनका सब प्रकार



से यति तिरस्कार करे; क्योंकि लाभ की चाहना से यति मुक्त हुआ भी फिर वंधन को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ प्राण यात्रा निमित्त तीन वर्याँ के यहां उनका चूल्हा बुझ जाय और वे लोग भोजन करलें उसके पश्चात् योग्य काल में भिक्षु भिक्षा करनेके लिये उनके घर जाय ॥ ८ ॥ यदि योगी पात्र न रखता हो हाथ ही में भिक्षा करता हो, तो उसको एक साथ ही खाना आवश्यक नहीं है; वह वंठकर वा चलते हुए भी खा सकता है; इतना ही है कि वह बीच में आचमन न करे ॥ ९ ॥ शुद्ध अन्तःकरण वाले महा-पुरुष समुद्र के समान मर्यादा को धारण करते हैं, महापुरुष सूर्य के समान कभी भी नियम का उल्लंघन नहीं करते ॥ १० ॥ जब गाय के समान मुख ही से मुनि आहार ग्रहण करे, तब उसको चाहिये कि वह सबसे सम बुद्धि रखे, (तब हो) वह अमृत (ब्रह्म) होने के योग्य होजाता है ॥ ११ ॥ मुनि निंदितों के घर (भिक्षार्थ) न जाय, केवल अर्निष्ट पुरुषों ही के यहां ( भिक्षा के लिये ) जाय और यदि द्वार बन्द हो तो वहां भी न जाय; खुला द्वार हो वहीं जाय ॥ १२ ॥ अन्य गृह में अथवा पेड़ के नीचे रहने वाला, शरीर में धूल लगी है और जिसको प्रिय वा अप्रिय कुछ भी न हो ऐसा मुनि ॥ १३ ॥ जहां पर सूर्य अस्त हो जाय वहीं सोजाय वह न अग्नि रखे न घर में रहे; मत और इन्द्रियों को वश में किये हुए ( वह ) जो कुछ प्राप्त हो उसी पर अग्रता निर्वाह करले ॥ १४ ॥ घर छोड़कर वन में रहने वाला, इन्द्रियों को जीतने वाला और सदा ज्ञान यज्ञ ( स्वरूपानुसंधान ) में रत रहने

वाला जो काल की अपेक्षा करते हुए भ्रमण करता है वह ब्रह्म होने के योग्य है ॥ १५ ॥ सब भूतों को अभय दान देकर जो मुनि विचरणा करता है, उसको किसी प्राणी से कभी भय नहीं होता ॥ १६ ॥ वह मान नहीं चाहता और भ्रष्टकार भी नहीं करता, दम्भ रहित और निःसंशय बन कर रहता है; न किसी पर क्रोध करता है, न किसी का द्वेष और न कभी भ्रमण भाषण ही करता है ॥ १७ ॥ पुण्य स्थानों में गमन करने वाला और किसी प्राणी की हिसा न करने वाला, ऐसा मुनि समय होने पर भिक्षा करे तो उससे उसका परम कल्याण होता है ॥ १८ ॥ मुनि वानप्रस्थ या गृहस्थ आश्रम वालों से सम्बन्ध न रखे । मुनि के आचरण का किसी को पता भी न चलना चाहिये और न इसमें भी उसको हर्ष मानना चाहिये ॥ १९ ॥ शुद्ध कीट के समान ( भ्रंशाल रूप से ) यति दिन में पृथ्वी तल पर घूमा करे । जिसमें आशीर्वाद देना पड़े या जिसमें किसी की हिसा हो ॥ २० ॥ अथवा जिसमें बहुत लोगों का कल्याण हो ऐसे कर्म यति न करे न करवावे । यति भ्रमण साधुओं में अनु-राग भी न रखे, न किसी से वेतन ग्रहण करे । बहुत बोले भी नहीं, तर्क को छोड़े, किसी पक्ष को ग्रहण न करे ॥ २१ ॥ शिष्य न करे, न बहुत ग्रन्थ पढ़े, न व्याख्यान करे, न कोई बड़ा कार्य करने का उद्यम करे ॥ २२ ॥ यति अपना कोई विशेष चिन्ह धारण न करे, न किसी को अपना उद्देश बतावे । विद्वान् मुनि उन्मत्त के समान, बालक के समान, गुंने के समान अपने को



समझे और वैसे ही दूसरों को भी देखे ॥ २३ ॥ न कुछ करे, न कुछ बोले, न किसी का भला बुरा देखे, अपने ही में आनन्द अनुभव करते हुए, इसी वृत्ति से वह के समान मुनि विचरण करे ॥ २४ ॥ इन्द्रियों को वश में कर और निःसंग होकर इस पृथ्वी तल पर यति अकेला ही घूमे । आराम ही में क्रीड़ा करे, उन्नी में प्रेम करे और इस प्रकार आत्मलाभ करके सबमें उसीको देखे ॥ २५ ॥ बुद्धिमान होंते हुए भी वह बालक के ममान रहे, चतुर होंते हुए भी जड़ के समान वर्तित्व करें, विद्वान् होंते हुए भी पागल के समान बातें करे और वेदज्ञ होंते हुए भी वह भिक्षा मांगकर ही खाए ॥ २६ ॥ दुष्ट लोग दोष लगावें, अपमान भी करें, तांत लगावें या दर्पण करें अथवा मार मारें एकड़ लें या खाने पीने का कष्ट दें ॥ २७ ॥ अथवा शरीर पर मल मूत्र फेंकें; भ्रष्ट लोग इस प्रकार के अनेक कष्ट दें तो भी अपना कल्याण चाहने वाला यति ऐसे कष्ट में भी दृढ़ बुद्धि रखकर अपना उद्धार करे ॥ २८ ॥ योग की बुद्धि में सम्मान हानिरूप है, इस-लिये लोगों से जो योगी अपमान पाता है, उसका योग त्वरित मिट्ट होता है ॥ २९ ॥ योगी अपना आचरण इस प्रकार रखे कि वह सन्तानों से प्रदिपादित धर्म के विरुद्ध न हो और उसका आचरण ऐसा भी हो कि लोग उसका अपमान भी करें और दुर्गम गगन रहना पसन्द न करें ॥ ३० ॥ सर्व गंग परित्याग करके योगी जरायुज, श्रण्डज आदि क्षुद्र जीवों का भी मन, वाणी वा कर्म से द्रोह न करे ॥ ३१ ॥ जो काम, क्रोध, घमाह, लोभ

मोह आदि दोष सङ्ग्रह को संपूर्ण रूप से त्याग कर परिब्राजक निर्भय रूप से रहे ॥ ३२ ॥ भिक्षा का भोजन, मौन, तप, ध्यान, यथार्थ ज्ञान और वैराग्य इनका आचरण करना यही विशेषतया भिक्षुओं का धर्म है ॥ ३३ ॥ गेरु वस्त्र धारण करके योगी सदा ध्यानयोग में रत रह कर ग्राम के सीमा प्रदेश में, पेड़ के नीचे अथवा देव मन्दिर में जा रहे ॥ ३४ ॥ नित्य भिक्षा ही से निर्वाह करे । कभी एक ही के यहां भोजन न करे और इस प्रकार चित्त शुद्धि होने तक विद्वान् यति हमेशा विचरण किया करे ॥ ३५ ॥ शुद्ध मन वाला यति विचरता हुआ कहीं भी जाय और बाहर और भीतर सब स्थान पर वह जनार्दन ही देखता रहे ॥ ३६ ॥ वायु के समान युद्ध पाप रहित रह कर मुनि सर्वत्र विचरण करे । वह क्षमा-शील तथा सुख दुःख में सम रहे और जो हाथ में आवे ( अर्थात् पास आजाय ) वही खाते ॥ ३७ ॥ वर को छोड़कर ब्राह्मण, गाय, कुत्ता और हिरन आदि में समान रूप से परमात्मा परमेश्वर ऐसे विष्णु की ही मन से भावना किया करे ॥ ३७ ॥ और 'चित्स्वरूप, आनन्दमय ब्रह्म मैं ही हूँ' ऐसा स्मरण किया करे ।

इस प्रकार जानता हुआ, मनरूपी दण्ड को धारण करता हुआ, सब आशाओं से निवृत्त होकर दिगम्बर होकर और मन, वाणी, शरीर और कर्म से सब संसार का त्याग कर, प्रपंच से मुक्त मोड़कर वह स्वरूप का अनुसंधान करता है और कीट जैसे भ्रमर का ध्यान करते करते भ्रमर बन जाता है; वैसे ही वह



स्वल्प का अनुसंधान करते करते स्वल्प को प्राप्त हो जाता यानो मुक्त हो जाता है ॥ इति पंचम उपदेश ॥

नारद ब्रह्माजी से बोले, 'भगवन्, आपने कहा कि भ्रमर

कोट न्याय से भ्रम्यास द्वारा यति मुक्त होता है, तो वह भ्रम्यास कैसे होता है ?' पितृमह बोले, 'तत्त्व भाषण करने वाला (यति) ज्ञान और वैराग्य से एक विशिष्ट देह वाला हो जाय । ज्ञान उसका शरीर हो, वैराग्य जीवन हो शम दम उसके नेत्र हो; मन मुख हो और बुद्धि उसकी कला (तेज) हो, पचीस तत्त्व उस शरीर के अवयव हो, पंच महा श्रुत उसकी भवस्था हो; कर्म, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य ये उसके हाथ पैर हों, जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय ये उसकी भवस्थाएं तथा चौदह करण ये इस शरीर के कादव और स्तंभ (यानो मांस और हड्डियां) हों । इस प्रकार अपने देह को समझकर कीचड़ में फंसी हुई नाव को जिस प्रकार कुशल कर्णधार वश लाता है या हाथी को महावत वश में करता है, इसी प्रकार इस शरीर को भी अपने वश करके, आत्मा को छोड़ कर जो कुछ है सब कार्य रूप है, और नश्वर है, ऐसा जानकर विरक्त पुरुष सदा 'मैं ब्रह्म हूँ मेरे सिवाय और कुछ भी जानने योग्य नहीं है' इसी प्रकार (मान कर) व्यवहार करे । इस प्रकार जो पुरुष जीवन्मुक्त होकर रहता है वह कृतकृत्य हो जाता है । 'मैं ब्रह्म नहीं हूँ' ऐसा समझ कर वही कर्तृत्व न करे । जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में एकसा 'मैं कभी भी वर्तान न करे । जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में एकसा 'मैं ब्रह्म हूँ' यही निश्चय रहे । (इस प्रकार) तुरीयवस्था को प्राप्त

कर फिर पुरोयातीत भवस्था प्राप्त करे । जाग्रत दिन, रात्रि स्वप्न और सुषुप्ति मध्यरात्र है इस प्रकार एक भवस्था ही में चार भवस्थाएं हैं और चौदह करणों का आधार चक्षु प्रादि एक एक करण के प्रधीन है । चक्षु का देखना, कान का सुनना, जिह्वा से रस चाखना, नाक से सुगंधना वायु से बोलना, हाथ से ग्रहण करना, पैर से चलना, पापु से मल त्याग, उपस्थ से प्रानन्द ग्रहण और त्वचा से स्पर्श, इनके प्रधीन इनके विषय ग्रहण करने की बुद्धि है । इस बुद्धि से विषय जाने जाते हैं, चित्त से विचार बनना है और भ्रंकार से (मैं जानता हूँ इस प्रकार) भ्रंकार धारण करता है । इनको उत्पन्न करने देहाभिमान से जीव बनता है ।

घर के अभिमान से जैसा गृहस्थ घर में रहता है वैसा ही जीव इस शरीर में रहता है । वह जब (हृदय) कमल के पूर्व दल में रहता है तब वह पुण्य कर्म करता है, भग्न्य कोण के दल में निद्रा और आलस होता है, दक्षिण दल में वह होता है तब उसमें कूरता भा जाती है, नैर्ऋत्य दल में पाप बुद्धि, पश्चिम में क्रोडा का प्रेम, वायव्य में गमन करने की बुद्धि होती है, उत्तर में शान्ति और ईशान में ज्ञान होता है; कर्णिका (कमल के बीच का भाग जहाँ बीज होते हैं) में वैराग्य और केमार में आत्म चिन्तन होता है । इस चक्र को जानकर जीवित भवस्था में पहिली जाग्रत, दूसरी रत्न तीसरी सुषुप्ति, चौथी तुरीय और चारों से रहित ऐसी भवस्था को पुरोयातीत जाने ।



एक ही देव इन चारों अवस्थाओं के साक्षी भूत, विरव तैजस् प्राज्ञ और तटस्थ, इन भेदों के रूप से भासता है; वही निर्गुण और सबके साक्षी रूप ब्रह्म में है इस प्रकार यति निश्चय करे ।

अथवा यों समझे:—जाग्रत अवस्था में जाग्रत आदि चारों अवस्थाएं होती हैं, स्वप्न में स्वप्न आदि चार अवस्थाएं, सुषुप्ति में सुषुप्ति आदि चार अवस्थाएं और तुरीय में तुरीयादि चार अवस्थाएं होती हैं परन्तु निर्गुण ऐसे तुरीयातीत में कोई अवस्था नहीं है । स्थूल सूक्ष्म और कारण देह के अभिमानों विषय, तैजस् और प्राज्ञ (तथा समष्टि रूप ईश्वर) इनके सब अवस्थाओंका साक्षी तो एक ही है । तटस्थ (अलग रहा हुआ) ही द्रष्टा होता है, अतटस्थ द्रष्टा नहीं होता; क्योंकि जो अलग ही नहीं है वह देखे कैसे ? (इसलिये) द्रष्टा ही कर्तृत्व, भोक्तृत्व अहंकार आदि से युक्त जीव है, जीव को छोड़ कर जो द्रष्टा है वह कर्तृत्वाद से युक्त नहीं होता । यदि कहो कि जीव भी कहाँ कर्तृत्वादि से युक्त है ? तो वह ठीक नहीं है; क्योंकि जीव के अभिमान ही से शरीर का अभिमान धारण होता है और शरीराभिमान ही से जीवत्व सिद्ध होता है । जीवत्व घटाकाश और महाकाश के समान उपाधि से सिद्ध होता है । उपाधि के कारण ही 'हंसः सोऽहं' इस मंत्र से श्वास प्रश्वान लेकर उसके द्वारा जीव आत्मा का अनुसंधान करता है । इस प्रकार जानकर शरीराभिमान को छोड़ना चाहिए, शरीर में अभिमान जरा भी न रखना चाहिये । जिसको शरीर का अभिमान न हो उसीको ब्रह्म कहते हैं ।

सर्व संग परित्याग करे, क्रोध को जीते, अल्प आहार करते हुए इन्द्रियों को वश में रखे और सब इन्द्रिय रूपी द्वारों को रोक कर मन ध्यान में लगावे ॥ १ ॥ शून्य ध्यान में, गुहा में अथवा वन में योगी नित्य प्रति नियम से यथाविधि ध्यान करता प्रारंभ करे ॥ २ ॥ योगी कभी भी किसी का अतिथि न बने, न श्राद्ध या यज्ञ में जाय । देव स्थान में यात्रा, उत्सवों में या ऐसा किसी स्थान पर जहाँ बहुत मनुष्य एकत्र हों सिद्ध चाहने वाला योगी कभी भी न जाय ॥ ३ ॥ जिस करके लोग अपमान और तिरस्कार करें, ऐसा ही योगी वर्ताने करे । परन्तु वह वर्ताने मदाचरण से विरुद्ध न होना चाहिये ॥ ४ ॥ वाग्दण्ड, कर्म दण्ड और मनोदंड यह तीन दण्ड जो नियम से धारण करता है वही महान् यति त्रिदंडी कहलाने योग्य है ॥ ५ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणों के यहां से, उनका चल्हा बुझ जाने पर जो यति मधुकरो मांग लाता है वही यति सब यतियों में श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ यति धर्म में प्रेम न रखते हुए जो मनुष्य दण्ड धारण करता है, जो भिक्षा मांगता है परन्तु जिसमें वैराग्य नहीं है वह यति नीचता को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ जिस गृह में अयनी इच्छा के अनुसार भिक्षा मिलती हो, वहाँ जो यति फिर कभी नहीं जाता, सच्चा वही यति है, अन्य नहीं ॥ ८ ॥ जो शरीर, इन्द्रिय आदि में रहित, सबका साक्षी परमार्थ ज्ञान स्वरूप, आनन्दमय और स्वयंप्रभ ॥ ९ ॥ ऐसे परम तत्त्व को जो जानता है वही वरुणश्रम के परे अर्थात् संन्यासी होता है वरुणश्रम आदि इस देह में माया से परिकल्पित



है ॥ १० ॥ आत्म बोध रूप मुक्तमें वे कभी भी नहीं है, इस प्रकार जो वेदान्त के ज्ञान द्वारा जानता है, वह वर्णाश्रम के परे यानी संन्यासी होता है ॥ ११ ॥ आत्म दर्शन से जिसका वर्णाश्रम आचार छुट गया है वह सब वर्णों के परे रहे हुए आत्मतत्त्व में टिका हुआ है ॥ १२ ॥ जो पुरुष वर्णाश्रम के परे रहे हुए अपने आत्मा में टिका हुआ है, उन्ही को वेदों का रहस्य जानने वाले वर्णाश्रमातीत (संन्यासी) कहते हैं ॥ १३ ॥ इसलिये हे नारद, अन्य में रहे हुए सब वर्ण और आश्रम, अज्ञानियों द्वारा आंति से आत्मा में आरोपित हैं ॥ १४ ॥ हे नारद, ब्रह्म ज्ञानों के लिये, न विधि है न निषेध और न कोई वज्रयिवर्ज का विचार या और कोई वैसी बात है ॥ १५ ॥ सब प्राणीमात्रों के लिये—ब्रह्मा के पद के लिये भी वैराग्य लाभ करके और पुत्र मित्रादि सब में धृष्टा करके ॥ १६ ॥ श्रद्धालु पुरुष मोक्ष मार्ग में अग्रसर होने के लिये वेदान्त ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से हाथ में कुछ भेट लेकर ब्रह्मज्ञानी गुरु के पास चला जाय ॥ १७ ॥ दीर्घ काल तक शान्त चित्त से गुरु की सेवा करके उनकी संतोष दे और उनसे सदा समाहित चित्त से वेदान्त वाक्यों का अर्थ सुना करे ॥ १८ ॥ ममता और अहंकार का त्याग कर कुछ भी पान न रखते हुए और सदा जांति से युक्त होकर आत्मा को आत्मा में देखे ॥ १९ ॥ संसार में दोष दृष्टि रखने ही से पुरुष को वैराग्य होता है और विरक्त का ही संसार से संन्यास होता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ २० ॥ परमहंस मुमुक्षु मोक्ष के

साक्षात् और एक मात्र साधन रूप ब्रह्मानुभव का वेदान्त के श्रवण आदि से अभ्यास करे ॥ २१ ॥ ब्रह्म का अनुभव प्राप्त करने के लिये परमहंस संन्यासी को शम दम आदि सब साधन सामग्री से वृत्त होना चाहिये ॥ २२ ॥ यति वेदान्त के अभ्यास में रत रहने वाला, शम दमादि से युक्त, इन्द्रियों को वश में किया हुआ, ममता और भय से रहित होकर हमेशा निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह रहे ॥ २३ ॥ वह फटे पुराने वस्त्र की लंगोटी पहिना करे और सिर मुंडवा लिया करे, अथवा नग्न ही रहे । बुद्धिमान यति ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके ममता और अभिमान से दूर रहे ॥ २४ ॥ जो ज्ञानो और प्रशान्त पुरुष सब प्राणियों में मित्र के समान ही भाव रखता है वह संसार को तैर जाता है, अन्य नहीं ॥ २५ ॥ गुरु की सेवा के लिये एक वर्ष पर्यन्त (गुरु के पास) रहे और उस समय प्रमाद रहित होकर यम नियम का पालन करे ॥ २६ ॥ उसके पश्चात् सबसे श्रेष्ठ ज्ञान योग को प्राप्त करके धर्म के विरुद्ध न हो इस प्रकार से इस पृथिवी तल पर विचरण करे ॥ २७ ॥ संवत्सर के अन्तमें अत्यन्त श्रेष्ठ ऐसे ज्ञान का योग को प्राप्त करके तीनों आश्रमों का त्याग करे तब वह परमहंस होता है ॥ २८ ॥ असंग होकर और क्रोध को जीतकर मिताहार करते हुए इन्द्रियों को वश में करके गुरु की आज्ञासे पृथ्वी तल पर घूमा करे ॥ २९ ॥ कर्महीन गृहस्थ और कर्म करने वाला भिक्षुक इन दोनों की संन्यास लेने से वैराग्य नहीं होता ॥ ३० ॥ मद्य के पीने से नशा चढ़ता है, परन्तु युवती स्त्री के देखते ही नशा चढ़ता है । इसलिये,



स्त्री कि जिसको दृष्टि में ही विष है, दूर ही से स्थापन देना चाहिये ॥ ३१ ॥ यति स्त्री के साथ संभाषण न करे और न कोई बातिलाप करे । स्त्रीको देखना उसका नाच, गाना, हँसना उसको बकवाद आदि सब उसके लिये वर्ज्य है ॥ ३२ ॥ हे नारद, यति के लिये स्नान, जप, पूजा, होम तथा श्रान्त्य किसी साधन की श्रद्धा-यकता नहीं है तथा यति के लिये न श्रान्ति होत्र है ॥ ३३ ॥ न श्रर्चन है, न श्राद्ध तीर्थयात्रा या व्रत है । यति के लिये धर्मार्थम तथा लौकिक विधि या क्रिया कुछ भी उपयोगी नहीं है ॥ ३४ ॥ वह सब कर्म तथा लोकाचारों का संपूर्ण त्याग करे । कृमि कीट या पतंग जैसे छोटे २ जीवोंको तथा वनस्पतियों को भी ॥ ३५ ॥ योगी नष्ट न करे, बुद्धिमान योगी हमेशा परमार्थ की बुद्धि से ही जीवन व्यतीत करे, सदा शान्तमूर्ख रहे, स्वच्छ प्रशान्त हृदय वाला बना रहे और अपनी बुद्धि सदा आत्मभाव वाली हो रखा करे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार भीतर के सब संस्कारों को नष्ट कर, हे नारद, इस लोक में विचरा कर । श्रकेला चलने वाला यति राज सत्ता न चलाती है, ऐसे देश में न जाय ॥ ३७ ॥ यति न स्तुति करे, न नमस्कार करे न श्राद्ध । चल और श्रचल निवास रखने वाला यति सहज जीवन व्यतीत करे ॥ इति पशु उपदेश ॥

यतियों को कौन से नियम पालन करना चाहिये ऐसा पूछने पर ब्रह्माजी नारदजी की ओर देखकर बोले, विरक्त को चाहिए कि वह वर्षा काल में एक ही स्थान पर रहे और आठों मास श्रकेला विचरा करे, एक स्थान पर कभी न रहे । भिक्षु सारा

यतियों को कीन से नियम पालन करना चाहिए ऐसा पृच्छन  
पर ब्रह्माजी नारदजी की ओर देखकर बोले, विरक्त को चाहिए

पक्षी के समान भय के कारण ऐसा निमित्त ग्रहण करे जो जाय । यदि अपने हाथ से न पेंड़ पर चढ़े न देवताओं का यहां भिक्षा नहीं करना चाहे । यदि बाहर का देवतार्चन न करे ( मानस श्रवण कर लें ) अपना ( है ) अपने को छोड़कर और सबका त्याग करके मधुकरों द्वारा बना रहे, भेद बढ़ने न भोजन को मांस गंध लेपन को श्रंखल के समान, वस्त्र के लगाना खो सँग के सम्मान समान, इच्छा को गोमांस के चाण्डाल के वगीचे के नुस्खा को विषके समान, सभाग्रह को कुंभीपाक नरक के स्त्री मूर्तों के पिंड खाने के समान तथा अन्य प्रपंच को प्रवृत्ति को तथा एक बार जिसमें यदि छोड़ दे । भूले हुए पदार्थ होता है वंसा ही आत्मानन्द छोड़ना ही अपने देश को

एक स्थान पर न रहे, न कोई उसके विचरण में बाधा रूप हो तैर कर पार न करे. न कभी उसत्र देखे । यदि को एक ही के प्रशुद्धि लेपन, नमकीन पदार्थों से वर्तन के समान, तेल उबटन पानन्द देने वाला मित्र मूत्र के समान, अपना जाना हुआ प्रदेश को सर्व के समान, सुवर्ण स्मयान के समान, राजधानी स्थान पर भोजन करना प्रपन्न कर और किसी को मिलना को यदि त्याग दे । अपने देश परण कर चुका हो ऐसे देश को पुनः प्राप्ति होने से जैसा हर्ष अनुभव करे । देहाभिमान को अपना है ऐसा समझ कर अपने



शरीर को शयन के शयान स्थान समझे और जैसे जलखाने से छुटा हुआ पुरुष अपने पुत्र, बंधु आदि के शयान से दूर रहता है वैसे ही यति उनसे दूर रहे।

विना प्रयत्न जो आहार प्राप्त हो उनका भोजन करे और ब्रह्म प्रणव के ध्यान में लगा रहे, अन्य सव कर्म छोड़ दे। काम, क्रोध, मोह, भोह, मद, मत्सर आदि को जला कर त्रिगुणातीत, क्षुधा तियासा आदि छत्रों ऊर्मियों से रहित और छत्रों मनो विकारों से रहित होकर रहे। मत्स्य बोनने वाला, शुद्ध हृदय वाला और किसी की का द्वेह न करने वाला, ऐसा यति प्राप्त में एक रात, शहर में पांच रात, क्षेत्र में पांच रात तथा तीर्थ में भी पांच रात रह सकता है। वह भिन्न निवास न करे परन्तु बुद्धि स्थिर रहे और मिथ्या कमी न बोले। यति गिरि कन्दरा में अकेला हो वसे; क्योंकि दो यति एकत्र होने से भिन्न तीन यति एकत्र हो जाने से प्राप्त और चार एकत्र होने पर वह नगर होता है, इन्द्रिये यति अकेला ही विचरा करे। भिक्षु अतःकरण और इन्द्रियों को कभी भी श्रवण न दे। ज्ञान वैराग्य आदि संपत्ति की कमी भी कमी न अनुभव करे और उसी में मस्त रहे। आत्मा को छोड़ कर और कुछ भी नहीं है। ऐसा नमस्क कर इत्य मात्र को आत्मा में अपने स्वरूप ही देखे। इस प्रकार जीवन्मुक्ति लाभ करके प्रारब्ध से दीखता हुआ दृश्य पत्तारा नष्ट न हो वहां तक यति अपने चारों प्रकार के स्वरूप को जानकर देह पतन पर्यन्त आर्यानुसंगान से जीवन व्यतीत करे।

कुटीव्रत तीन बार स्नान करे बह्व्रत दो बार, हंस एक बार और परमहंस केवल मानस स्नान करे। तुरीयातीत को भस्म-स्नान और अवधूत को वायु से ही स्नान होता है।

गुटीव्रत ऊर्ध्व (तट्टा) तिलक लगावे, बह्व्रत त्रिगुण्ड लगावे, हंस खड़ा तिलक और त्रिगुण्ड दोनों लगावे, परमहंस भस्म रमावे, तुरीयातीत गुण्ड और तिलक लगावे अवधूत कुछ भी न लगावे।

तुरीयातीत और अवधूत दो दो महीने पर क्षीर करवाते हैं कुटीव्रत चार महीने पर और बह्व्रत, हंस और परमहंस क्षीर हो नहीं करवाते और करवाते तो अग्र्यन बदलने पर यानी छः महीने के बाद। तुरीयातीत अवधूत क्षीर करवाते ही नहीं।

कुटीव्रत एक हो घर का भोजन ले सकता है, बह्व्रत मधुकरी मॉने, हंस परमहंस पात्र न रखे हाथ ही में भिक्षा करले, तुरीयातीत मुख से करे और अवधूत बिना यत्न जो कुछ आ पहुँचे उसी को खाकर रहे।

गुटीव्रत के दो वस्त्र होते हैं, बह्व्रत का एक, हंस के पास वस्त्र का एक टुकड़ा, परमहंस का दिशा ही वस्त्र होता है यानी वे नग्न रहते हैं, अवधूत लंगोटी भी पहिनते हैं, तुरीयातीत और अवधूत लो नग्न हों रहते हैं। हंस और परमहंस मृगचर्म रखते हैं और कोई नहीं रखते।



कुटीचक और वहूदक देवार्चन करें, हंस और परमहंस मानस पूजा करें और तुरीयातीत और अवधूत 'सोड्ड' भावना करें।

कुटीचक और वहूदक को मन्त्र जपने का अधिकार होता है, हंस और परमहंस को ध्यान करने का अधिकार है, तुरीयातीत और अवधूत दोनों को इनका अधिकार नहीं है उनको तो केवल महावाक्यों के उपदेश का अधिकार है, यह अधिकार परमहंस का भी है।

कुटीचक, वहूदक और हंस को दूसरों को उपदेश देने का अधिकार नहीं है।

कुटीचक वहूदक को शब्दमय प्रणव का अधिकार है, हंस और परमहंस को आन्तर (मानस) प्रणव का और तुरीयातीत अवधूत को ब्रह्मप्रणव का अधिकार है।

कुटीचक वहूदक को श्रवण का, हंस और परमहंस को मनन का, तुरीयातीत और अवधूत को निदिध्यासनका अधिकार है।

आत्मानुसंधान तो सब किसी को करना चाहिये, इसलिये मुमुक्षु यति सर्वदा संसार से तारण करने वाले तारक मन्त्र का स्मरण रखते हुए जीवनमुक्त होकर रहे और अपने अधिकार विधि के अनुसार केवल्य प्राप्ति का उपाय खोजता रहे, यह उपनिषत् है ॥ इति सप्तम उपदेश ॥

भगवान् ब्रह्माजी से नारद ने कहा, 'भगवन् प्रसन्न होकर संसार तारक मन्त्र बताइये।' ब्रह्मा कहने लगे 'व्यष्टि और समष्टि रूपसे हैं ब्रह्मा है।' 'व्यष्टि क्या है और समष्टि क्या है?' 'संहारप्रणव, सृष्टि प्रणव ऐसे दो प्रकार का तथा अन्तः प्रणव, बहिः प्रणव और उभयारम्भक प्रणव ऐसे तीन प्रकारका ब्रह्मप्रणव होता है। व्यावहारिक प्रणव अन्तःप्रणव है; आर्ष प्रणव बाह्यप्रणव है, उभयारम्भक प्रणव विराट् प्रणव है. संहार प्रणव ब्रह्म प्रणव है वही अर्ध मात्रा प्रणव है। ॐ यह ब्रह्मा है। ॐ को एकाक्षर अन्तःप्रणव समझो, उसके आठ भेद हैं; अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा, नाद, बह्नि, कला और शक्ति। प्रथम चारों में अकार अश्रुत अवयव वाला है उकार महत्त्व अवयव वाला, मकार सौ अवयव वाला और अर्धमात्रा प्रणव अनन्त अवयव वाला होता है।

'विराट् प्रणव सगुण होता है, संहार प्रणव निर्गुण प्रणव है और उभयारम्भक प्रणव उत्पत्ति प्रणव है। विराट् प्रणव प्लुत है और सप्त सप्त संहार प्रणव है। विराट् प्रणव सोलह मात्रा का और छत्तीस तत्त्वों से परे षोडश मात्रारम्भक प्रणव किस प्रकार होता है? अकार प्रथम मात्रा है, उकार द्वितीय, मकार तृतीय अर्धमात्रा चतुर्थ, नाद पांचवीं, बिंदु छठी, कला सातवीं, कला-तीत आठवीं, शांति नवमी, शांतातीत दशवीं, उन्मनी ग्यारहवीं, मनोन्मनी बारहवीं, पुरी (या पुरोतती) तेरहवीं मध्यमा चौदहवीं, पश्यन्ति पन्द्रहवीं और परा सोलहवीं है। फिर उसकी चौसठ मात्राएं भी हैं उन प्रत्येक को पुरुष और प्रकृति भेद से



द्विगुणित करने से एक सौ श्रद्धार्थ भिन्न २ भाषाएं होती है ब्रह्म प्रणव एक होते हुए भी इस प्रकार मगुण निगुणत्व को प्राप्त होकर सबका आधार बनता है। यह परम उभोति है, यही सबका आधार है, सबका ईश्वर और सबमें व्यापक है। सब देवताओं में यही व्यापक है और नव प्रपंच का अप्रकट आधार यही है। १॥ सब अक्षर ( वर्णमाला ) वही है, काल वही है, देव वही है, शिव वही है और वेदों में उत्तम वेदाल्ता भी वही है। सब उपनिषत् वही है और सबको वही एक प्राप्त करने योग्य है ॥ २ ॥ श्रुत वर्तमान और भविष्यत् में तीनों काल उसी ब्रह्मत्त को प्रकाशित करते हैं, इसलिये उस अक्षर ही को मोक्षदाता मानों ॥ ३ ॥ उसी आत्मा को अहं शब्द ब्रह्म से वर्णन किया है। वही एक अजर और अमृत तत्त्व अहं है ऐसा अनुभव करो ॥ ४ ॥ उसमें अपने शरीर के साथ अपना आरोप करके तन्मय होकर यही अहं ऐसा जानकर निश्चय करो कि यही तीन शरीर वाला अहं ही परब्रह्म है ॥ ५ ॥ विश्व आदिके क्रमसे परब्रह्मका श्रुतसंघान करना चाहिये। स्थूलतत्त्व ( की उपाधि ) से स्थूल भोग भोगने वाला सूक्ष्मतत्त्व से सूक्ष्म भोग भोगने वाला ॥ ६ ॥ अभेदानुभव से आनन्द भोगने वाला यह आत्मा इस प्रकार चार प्रकारका है। चार पाद वाला यह आत्मा जाग्रत अवस्था में स्थूल के अभिमान वाला होकर यह आत्मा जाग्रत अवस्था में स्थूल के अभिमान वाला होकर स्थूल का बोध करने वाला और विश्व ( स्थूल जगत ) को भोग करने वाला ॥ ७ ॥ उन्नीस मुखवाला आठ भोगवाला सर्व व्यापक और ईश्वर है। स्थूल भोग भोगने वाले इस चतुरात्मा को

ही विश्व, वैश्वानर या पुरुष कहते हैं ॥ ८ ॥ यही विश्व जिव है, और यही आत्मा का प्रथम पाद है। स्वप्न स्थान में वही आत्मा सूक्ष्म का अभिमानो होता है। हे पतंतप, वह सूक्ष्म प्रज्ञ अपने ही में आठ भोगों की कल्पना करता है वहां वह एक ही होता है और कोई नहीं होता ॥ ९ ॥ सूक्ष्म भोग भोगने वाला तैजस् एना यह आत्मा श्रुतों का अधिपति है, इसको हिरण्यगर्भ कहते हैं स्थूल के भीतर होता है। यह आत्माका दूसरा पाद है ॥ १० ॥ जहां सोने पर किसी की इच्छा नहीं करता, न स्वप्न देखता है, ऐसी अवस्था में वह सुषुप्त है ॥ ११ ॥ सुषुप्त अवस्था में रहा हुआ यह सब स्थान से हट कर एक ही स्थान में आता है, इनी लिये इसको प्रज्ञान घन कहते हैं, यहां यह सुखी होता है, नित्यानन्दमय होता है, यह सब जीवों के अन्दर रहा हुआ होता है ॥ १२ ॥ वही आनन्द का भोग करने वाला चैतन्य के मुख वाला सर्व व्यापक अव्यय है। यही चार पाद वाले आत्मा का प्राज्ञ नामक तीसरा पाद है ॥ १३ ॥ यही सर्वेश्वर है यही सर्वज्ञ है सूक्ष्म का भी कारण है, यही अन्तर्यामी है और यही सबकी उत्पत्ति और लय का कारण है ॥ १४ ॥ ये तीनों अवस्था, सब प्राणियों के मोक्ष में विघ्नरूप है; क्योंकि जैजै मुमुक्षु वैसाही स्वप्न केवल माया का ही विकार है ॥ १५ ॥ चतुर्थ पाद में रहा हुआ चार पाद वाला आत्मा होते हुए भी यहां यह सत् चिद्रूप एक रस है। यही तुरीय अवस्था में ऊपर की तीनों अवस्था का आधार होने से ॥ १६ ॥ यही ज्ञाता ( जाग्रत का



बोध करने वाला) श्रुत ज्ञाता (स्वप्न का बोध करने वाला) आदि विकल्पों का हेतु होता है और यह तीनों विकल्प सुप्त और स्वप्न अवस्था में भी होते हैं ॥ १७ ॥ इन सब को माया मात्र समझ कर सच्चिद् रूप एक रस, ऐसा आत्मा इनसे भिन्न है ऐसा जानो। वह न स्थूल को जानता है ॥ १८ ॥ न सूक्ष्म को जानता है, न वह ठीक २ जानने वाला ही है और हे मुनि, न उसको न जानने वाला भी कह सकते हैं न वह भीतर जानता है न बाहर ॥ १९ ॥ उसको न जानने वाला नहीं कह सकते, वैसे वह प्रज्ञानधन भी नहीं (क्योंकि प्रज्ञानधन विविकित ज्ञान की अपेक्षा ही से कहा जाता है) वास्तव में तो उसका कोई लक्षण ही नहीं है, न उसका ग्रहण हो सकता है। वह अव्यवहार्य अचिंत्य और अकथनीय है और केवल आत्मानुभव स्वरूप है, प्रपंच के निरास रूप, शिव, शान्त और श्रद्धेत है। यही चतुर्थ पाद है, यही ब्रह्म प्रणव है, इसी को जानना चाहिये और अन्य को नहीं। यह तुरीय आत्मा सदा सूर्य के समान प्रकाशता रहता है और मुमुक्षुओं के आधार रूय यह स्वयं ज्योति और ब्रह्माकाश रूप तुरीय परब्रह्म सदा विराजमान रहता है। यह उपनिषत् है ॥ इति ब्राह्मण उपदेश ॥

नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा कि ब्रह्म का स्वरूप कैसा होता है। ब्रह्माजी ने ब्रह्म का स्वरूप कैसा होता है वह इस प्रकार बताया :—यह अन्य है और मैं अन्य हूँ ऐसा जो जानते हैं वेही पशु है, न कि वे जो पशु योनि में जन्मे हुए हैं। इस प्रकार जान कर विद्वान् पशु से मुक्त होजाता है। मोक्ष के लिये और कोई

मार्ग नहीं है। काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा (संयोग) भूत, प्रकृति और पुरुष (इनमें से कोन ब्रह्म है) इसका विचार करना चाहिये। इन सबका समुदाय ब्रह्म नहीं हो सकता क्योंकि (इनका आधार) आत्मा है, सुख दुःख के होने से आत्मा भी ब्रह्म नहीं है ॥ १ ॥ ध्यान योग करने वालों ने उस दैवीशक्ति (ब्रह्म) को अपने गुणों में छुपी ढूँई ऐसी देखी है जो काल से लेकर आत्मा तक जितने कारण रूप प्रतीत होते हैं सबका एक ही अधिष्ठान है ॥ २ ॥ जिसको एक नेमि (नाय) है, तीन आवर्त, सोलह सिरे (धारे), पचास आरे, बीस छोटे आरे श्रद्धालीस कीलें और अनेक रूप वाली एक रस्सी है जो तीन प्रकार से चलने वाला और दो निमित्तों से परिवर्तन होने वाला है (ऐसा यह ब्रह्म चक्र) ॥ ३ ॥ जो पांच खोत वाली और पांचों का उत्पत्ति स्थान है, जिसका मुख कराल है, पांच प्राण जिसके उर्मि रूप है, जो पांच प्रकार के भ्रन्तःकरण का आधार है, जिसमें पांच आवर्त है और पांच दुःख के प्रवाह जिससे बहते हैं ऐसे पांच विभाग वाले नदी (नदी रूप ब्रह्म) का हम चिन्तन करते हैं ॥ ४ ॥ सबका जीवन और सबके आधार रूप उस बृहत् ब्रह्म चक्र में हंस (आत्मा) भ्रमण करता है। जब अपने को वह उससे पृथक् द्रष्टा स्वरूप मानता है तब वह भ्रमृतत्व को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ यही उद्गीथ (अंकार) और यही परब्रह्म है। उसीमें तीनों (उत्पत्ति स्थिति और प्रलय) दीखते हैं वही अपनी प्रतिष्ठा है यानी उसका और कोई आधार नहीं है और वह अक्षर



है। ब्रह्म ज्ञानो उसको जानकर उसके परायण होते हुए उसो में लीन हो जाते हैं ॥ ६ ॥ क्षर और अक्षर और व्यक्त और अव्यक्त दोनों का ईश्वर पालन करता है। जो आत्मा, भोक्ता का भाव धारण करता है वह बंधन को प्राप्त होता है वह जीव है। जब वह परब्रह्म को जानता है तब वही सदा पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ७ ॥ एक ज्ञानवाद् और दूसरा भ्रम, एक ईश्वर और दूसरा जीव ऐसे दा भ्रम (आनादि भ्रमन्मा भ्रमवा भेद) हैं, एक भ्रमा (माया) भोक्ता के भोग के लिये हैं। आत्मा विरह रूप भ्रमन्त और भ्रकर्ता है, तीनों का जब कोई जानता है तब वह ब्रह्म हो जाता है ॥ ८ ॥ प्रधान क्षर है, अप्रमत्त रूप ईश्वर अक्षर है। इस क्षर और अक्षर दोनों का एक ही देव नियंत्रण करता है। उस देव का ध्यान करने में, उसके साथ तन्मय हो जाने में और उसको बार २ भावना करने में भ्रम में इस विरह रूपिणी माया से निवृत्ति हो जाती है ॥ ९ ॥ ब्रह्म को जानने से सर्व बन्धनों से मुक्ति होती है, क्लेश क्षीण हो जाते हैं और जन्म मृत्यु निवृत्त होजाते हैं। उसका ध्यान करने से देह छूटने के पश्चात् आत्मपद को इच्छा करने वाले भ्रमासक्त पुरुष को समस्त ऐश्वर्य वाले ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ॥ १० ॥ इस ब्रह्म को सदा अपने ही में देखना चाहिये। इससे आगे भ्रम कुछ जाने योग्य नहीं है। भोक्ता, भोग्य और प्रेरक इनका विचार करके ये सब त्रिविध ब्रह्म ही है ऐसा कहते हैं ॥ ११ ॥ आत्मज्ञान और तप से ही उस श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। जो इस

प्रकार जान कर स्वरूप ही का चिन्तन करता है उसी एक भाव की सर्वत्र देखता है फिर उसको शोक और मोह कहें ॥ १२ ॥ इसलिये विराट् ही वर्तमान भूत और भविष्यत् में एकना और भ्रमन्वर (नाश रहित) स्वरूप है वह आणु से भी आणु और महान् से भी महान् आत्मा प्राणी मात्र के हृदय रूपी गुहा में छुपा हुआ है। ईश्वर के अनुग्रह से उस महान् और अद्वैत यानी यज्ञादि कर्म रहित ऐसे ईश्वर को शोक रहित होकर (कोई) देख पाता है ॥ १३ ॥ उसको हाथ और पैर नहीं है परन्तु वह ग्रहण करता है और चलाता भी है कान और आंख नहीं है तो भी सुनता और देखता है, वह सदा वेद्य जगत को जानता है परन्तु उसको कोई नहीं जानता उसी महान् और श्रेष्ठ पुरुष को जानो ॥ १४ ॥ नाशवान् शरीरों में स्थित होते हुए भी जो शरीर से रहित और अक्षय है, ऐसे महान् और व्यापक आत्मा को जान कर वह फिर शोक को प्राप्त नहीं होता ॥ १५ ॥ वह सदाका धारण करने वाला है, उसकी शक्ति अचिन्त्य है और वेदान्त से हों वही जाना जा सकता है। उसी को पर से पर जानो। सदा के भवमान होने पर जो शेष रहता है उसी को ब्रह्म जानना चाहिये ॥ १६ ॥ वह सर्वज्ञ है, सब से पुराना है, उत्तम पुरुषों से भी उत्तम है, सदाका ईश्वर है और सब देव उसको उपासना करते हैं। उसका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, वह जनन्त भव्यय, शिव, विष्णु औप ब्रह्मा है ॥ १७ ॥ पंचात्मक और पंचों में वर्तमान ऐसा यह सब प्रपंच उसी में है, अन्त भव प्रपंच उसी ने पंचोक्त किये हैं, परन्तु पंचोक्त अब-



यवों से वह आवृत नहीं हुआ है जो पर से भी पर महात् अपने ही तेज वाला शाश्वत और शिव है ॥ १८ ॥ जिसने अभी दुराचरण त्यागा नहीं है, जो भ्रशान्त और अस्थिर चित्त वाला है अथवा जिसका चित्त भ्रशान्त है वह केवल प्रज्ञा से उसको जान नहीं सकता ॥ १९ ॥ वह न भीतर जानता है न बाहर न्यूल हैं न सूक्ष्म न ज्ञान है न भ्रज्ञान न उभय प्रकार जानने वाला है, वह इन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जाता और न वह शब्द से कथन किया जा सकता है। वह अपने में रहा हुआ अपना आप ही है ऐसा जो जानता है वही मुक्त होता है, निश्चय वह मुक्त होता है, ऐसा भगवान् ब्रह्माजी ने कहा। अपने स्वरूप को जानता है वही परिव्राजक है, ऐसा परिव्राजक भ्रकेला विचरता है और भयभीत हिरन के समान रहता है; विचरता कभी बन्द नहीं करता। अपना शरीर छोड़कर और सत्का त्याग करता है और मधुकर वृत्त से स्थित होकर सब में अनन्य बुद्धि रखकर अपने स्वरूप का अनुसंधान करता हुआ वह अपने ही में मुक्त होता है। वह परिव्राजक न कुछ करता है न कराता है। गुरु शिष्य और शास्त्रादि से वह विमुक्त है; सब संसार को छोड़कर जो निर्मोह होजाता है उसको निर्धन कैसे कहें? जो सुखी है धनवान है ज्ञान और भ्रज्ञान दोनों से परे है मुख दुःख से परे है, स्वयं ज्योति प्रकाश है, सबको जानने योग्य सर्वज्ञ सर्व सिद्धदाता सर्वेश्वर है, वही मैं हूँ, वही विष्णु का परमपद है। उसको प्राप्त करके योगी लोग

लौटते नहीं। जिस स्थान को सूर्य चन्द्र प्रकाश नहीं दे सकते जहाँ से वह लौटता नहीं, कभी भी लौटता नहीं, वही कैवल्य है, यह उपनिषत् है ॥ इति नवम् उपदेश ॥

॥ इति नारद परिव्राजकोपनिषत् समाप्त ॥







## उपनिषत्

द्वितीय भाग ।

॥ शान्ति पाठ ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णत्पूर्णमुदच्यते ।  
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

यह पूर्ण है, वह पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण बनता है, पूर्ण में से पूर्ण ले लेने से पूर्ण ही शेष रहता है । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ सह नावतु । सहनौ मुनक्तु । सह वीर्यं करवावहे । तेजस्विनावधोतमस्तु मा विद्विषावहे ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

शान्ति पाठ

[ ५३१ ]

वह हम दोनों का रक्षण करे, वह हम दोनों का पालन करे, हम दोनों एक साथ सामर्थ्य को प्राप्त हो, हमारा प्राप्यन तेजस्वी हो, हम परस्पर द्वेष न करें । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानिवाक् प्राणचक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्व ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु । तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

मेरे अंग बुद्धि को प्राप्त हों, वाणी, द्राष्ट, चक्षु, श्रोत्र, बल और सब इन्द्रियां बुद्धि को प्राप्त हो । सब उपनिषत् ब्रह्म है । मुझसे ब्रह्म का त्याग न हो और ब्रह्म मेरा त्याग न करे, कभी मेरा त्याग न करे । उसमें रत हुए मुझको उपनिषत् में प्रतिपादित धर्म को प्राप्ति हो, ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितामाचिरावोर्म एधि । वेदस्य म अणोस्थिः श्रुतं मे माप्रहासीरनेनाधीतेनाहो-



रात्रान्संस्थाम्यतंबदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि ।  
तन्मामवतु । तद्वक्त्रारमवतु । अवतु माम् । अवतु  
वक्त्रारमवतु वक्त्रारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

मेरी बाएँ की मन में स्थित हो, मेरा मन बाएँ में स्थित हो ।  
हे स्वप्रकाश ब्रह्म, तुम मुझे प्राण दे, मुझे ज्ञान प्राप्त हो । मेरा  
श्रवण किया हुआ मुझसे जुलाओ नहीं, मैं रात दिन पढ़े हुए का  
अनुसंधान करता हूँ । मैं चास्त्रानुसार भाषण करूँगा, मैं नरय  
भाषण करूँगा । वह मेरी रक्षा करें, वक्त्राकी रक्षा करें, मेरी  
रक्षा करे तथा वक्त्राकी रक्षा करे ।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्ये-  
माक्षभिर्व्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गैः स्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्य-  
शेम देवहितं यदायुः ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

हे देव, हम कान से कल्याण की बातें सुनें, आँखों से कल्याण  
देखें, दृढ़ अंगों से तथा शरीर से अप्रपत्नी ईश्वर प्रदत्त आहु हम  
तुम्हारी स्तुति करते हुए व्यतीत करें ।

नमन

ॐ नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च  
तत्पुत्रपराशरं च । व्यासं शुक्रं गोडपदं महान्तं  
गोविन्दयोगोन्द्रमथास्य शिष्यम् ॥ १॥

श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्ता-  
मलकं च शिष्यम् ॥ तं त्रोकटं वार्तिककार-  
मन्या नरसद्गुरुन्संततमानतोऽस्मि ॥ २॥

नाणायण, ब्रह्मा, वसिष्ठ, शक्ति तथा उनका पुत्र पराशर  
व्यास, शुक्र, गोडपाद, गोविन्द योगीन्द्र तथा उन के शिष्य  
श्री शंकराचार्य तथा उनके शिष्य पद्मपाद, हन्तमलक, त्रोटका-  
चार्य और वार्तिककार सुरेश्वराचार्य तथा अन्य सद्गुरुओं को  
मेरा सदा नमस्कार है ।

श्रुतिस्मृतिपुराणानामलयं करुणालयम् ॥  
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम् ॥ २॥

श्रुति, स्मृति और पुराण के सर्मज्ञ, जगत के कल्याणकर्ता ;  
करुणासागर भगवत्पाद श्री शंकराचार्य को मेरा नमस्कार है ॥

शंकरं शंकराचार्यं केशवं वादरायणम् ।  
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥

शंकर स्वरूप शंकराचार्य हैं तथा विष्णु स्वरूप वादरायण  
हैं । इस प्रकार इन सूत्रकार और भाष्यकार महात्माओं को मेरा  
बार बार नमस्कार है ।





## उपनिषत् ।

द्वितीय भाग ।

### वराहोपनिषत् ।

एक बार महामुनि ऋषु ने देवताओं के वराह वर्ष पर्यन्त तपश्चर्या की । तपस्या के श्रान्त में भगवान् वराहरूप से प्रकट हुए । वराह भगवान् उससे बोले 'उठ, उठ, वर मांग !', ऋषु उठ खड़ा हुआ और भगवान् को नमस्कार कर के बोला 'भगवान्, कामी लोग जिसकी कामना करते हैं, ऐसे तुच्छ भोग पदार्थों की मैं आप से याचना नहीं करता । समस्त वेद, शास्त्र, इतिहास और पुराण, श्रान्त सब कठिन विद्यायें तथा ब्रह्मा आदि देव गण भी कहते हैं कि आपके स्वरूप के ज्ञान से मुक्ति होती है । इसलिये आप अपने स्वरूप का प्रतिपादन करने वाली ब्रह्म

वराहोपनिषत्

[ ५३५ ]

विद्या का मुझे उपदेश दीजिये ।, 'अच्छा' कह कह वराह भगवान् बोलने लगे—

कोई तत्त्ववादी चौबीस तत्त्वों का प्रतिपादन करते हैं, तो कोई छत्तीस तत्त्वों का, तो अन्य छियात्रवे तत्त्वों का प्रतिपादन करते हैं, ॥ १ ॥ उनको क्रम से सुनाता हूँ, सावधानता पूर्वक श्रवण कर । श्रोत्र, त्वचा, चक्षु आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं ॥ २ ॥ वाणी, हाथ, नाक आदि पाँच कर्मेन्द्रिय हैं । पाँच प्राण हैं तथा शब्दादि पाँच विषय हैं ॥ ३ ॥ मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यह श्रान्तःकरण चतुष्टय है । ये चौबीस तत्त्व हैं, ऐसा ब्रह्मवादी लोक कहते हैं ॥ ४ ॥ इस तत्त्वों के साथ पृथिवी, आप, तेज, वायु और आकाश ये पाँच पंची कृत भूत ॥ ५ ॥ स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीन देह, जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन अवस्थाएँ (तथा आत्मा—क्योंकि आत्मा न लेने से पेंतीस ही होते हैं) इन सब को मिलाकर बुद्धिमान मुनि छत्तीस तत्त्व मानते हैं । पूर्वोक्त तत्त्वों में आगे दिये हुए तत्त्व मिलाये जायँ ॥ ६-७ ॥ उत्पन्न होना, वृद्धन, परिणाम को प्राप्त होना, क्षीण होना और नाश को प्राप्त होना, ये छः पदार्थों के विकार हैं ॥ ८ ॥ सूक्ष्म, व्यास, शोक, मोह, जरा और मरण (मरण भय) ये छः ऊर्मिर्या हैं । श्रव छः कोशों को कहता है—॥ ९ ॥ त्वचा, रक्त, मांस मेद, मज्जा और अस्थि ये छः कोश हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर ॥ १० ॥ ये छः शत्रु हैं । विश्व, तेजस और



प्राज्ञ ऐसे तीन प्रकार के बीच है और सार्व, राज और तम ये तीन गुण हैं ॥१६॥ भारद्वाज, आणामी और शक्ति ऐसे तीन प्रकार के कर्म बहे हुए हैं। मोक्षना, महान् करता, कल्याण, मय विराजित करना और आनन्द ये कर्मविधियों के पञ्च विधय हैं ॥१७॥ संकल्प, अध्ययनाय (विद्यया) अभिमान और स्मृति (ये अस्तिःकरण के धर्म हैं) मुक्तिता, कल्याण, मैत्री और उपेक्षा ये चार तथा ॥१८॥ विद्या, चायु, सूर्य, वसुधा, अद्वितीयकुमार धर्मिन, इन्द्र, उषेन्द्र, गुरु, चन्द्र, द्रष्टा, खड्ग, शेषना और ईश्वर ॥१९॥ इन सब तत्त्वों को मिलाने ने छिन्नात्मने तत्त्वों की संख्या हो जाती है। पूर्वोक्त तत्त्व समूह से जो भिन्न और निर्दोष है ॥२०॥ ऐसे मुक्त चराहृत्कर्म (सार्व) को जो भक्ति पूर्वक भजते हैं, उनका अज्ञान दूर हो जाने से वह जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥२१॥ जो इन छिन्नात्मने तत्त्वों को जानते हैं, वे किसी भी आश्रम में कयों न हो, वे जटाधारी ब्रह्मचारी हों, सिर घुटधानं वाले संन्यासी हों अथवा क्षिण्य धारण करने वाले गृहस्थ हों, वे मुक्त हो जाते हैं, इसमें अल्प भी संशय नहीं है ॥२०॥ इति प्रथम अध्याय ॥

ऋषु नामक महायोगी ने चराह रूपधारी विष्णु से कहा, 'हे भगवन्' मुझे उच्च प्रकार की ब्रह्म विद्या का उपदेश दीजिये ॥१॥ इस प्रकार प्रश्न करने पर भक्त के दुःख दूर करने वाले भगवान् बोले—'प्रपने दणुश्चिम धर्म के अनुसार चलने

से, तब से तथा गुण की प्रशंसा करने से ॥२॥ गुण में वैराग्य आदि माधन अगुणकी निवृत्ति होती है। निरयानिरय का विवेक, इस लोक के परलोक के योगों में राग का अभाव ॥३॥ समाधि पद सम्पत्ति और मुमुक्षुता इनका अभ्यास करे। इस प्रकार के अभ्यास से जितेन्द्रिय होकर सर्वत्र समस्त बुद्धि का ॥४॥ त्याग करके, मैं जो साक्षी चेतन्य है, उस मुक्त में अहं बुद्धि धारण करे।

दुर्लभ मनुष्य देह प्राप्त हो, फिर उसमें भी गुण का दारीर हो ॥५॥ और उसमें भी ब्राह्मण हो और फिर भी वैदान्त के अथवा आदि से दणुश्चिम से पर, ऐसे सच्चिदानन्द रूप महा विष्णु के स्वस्व को ॥६॥ जो नहीं जानता, वह फिर कब मुक्त होगा? मैं ही एक सुख रूप हूं और कुछ है ही नहीं और यदि है, तो वह सुख रूप नहीं है ॥७॥ जो पदार्थ आत्मार्थ नहीं है, वह प्रिय नहीं होता और आत्मार्थ होता है, वह स्वाभाविक हो प्रिय होता है। आत्मा तब से अधिक प्रिय होंगे ही से 'मैं न होऊँ' ऐसा कभी भी (भाव) नहीं होता ॥८॥ 'सर्वदा हो बना रहूँ' ऐसा भाव होता है। इस प्रकार का जो द्रष्टा है वह, हे मुनीश्वर, मैं विष्णु हूँ। 'मैं प्रकाश नहीं हूँ' ऐसा कहना ही जिसके प्रकाश का एक मात्र प्रतिबन्ध है ॥९॥ ऐसे स्वप्रकाश आत्मा को अज्ञान किस प्रकार स्पर्श कर सकता है? स्वयं प्रकाश और निराधार ऐसे आत्मा को जो जानते हैं, हे



मुनीश्वर, ॥१०॥ वे ही विज्ञान संपन्न हैं, ऐसा भेरा दृढ़ निश्चय है। अपने पूर्ण आत्मा के प्रतिरिक्त जगत्, जीव तथा ईश्वर आदि ॥११॥ कोई है ही नहीं और न माया भी है। मैं सब से विलक्षण हूँ। कर्मवर्मादि लक्षणवाला अन्वतमरूप अज्ञान ॥१२॥ शुभ स्वयंप्रकाश आत्मा को छू नहीं सकता। बर्याँ और आश्रम से रहित सबके साक्षिरूप आत्मा को ॥१३॥ जो ब्रह्म रूप देखता है, वह स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है। यह जितना भावमान जगत् है, वह ज्ञानरूप परम पद ही है ॥१४॥ ऐसा जब वेदान्तज्ञान से देखने लगता है, उसी क्षण वह मुक्त हो जाता है। मैं देह हूँ, इस ज्ञान का बाध करने के लिये, मैं देह हूँ, यह जितना दृढ़ होता है ॥१५॥ उतना ही दृढ़ जब, मैं आत्मा हूँ, ऐसा ज्ञान हो जाय, तब वह न चाहे तो भी उसका मोक्ष हो जाता है। जो सत्य, ज्ञान और आनन्द से पूर्ण है, तम रूप अज्ञान से पर है, ॥१६॥ ऐसे आनन्दरूप ब्रह्म ही को जो सदा देखता रहता है, वह कर्मों के बन्धन को किस प्रकार प्राप्त हो सकता है? तीनों लोकों का जो साक्षी है, जिसके सत्य, ज्ञान और आनन्द आदि लक्षण हैं, ॥१७॥ जो 'तू' और 'मैं' इन शब्दों का लक्ष्य पदार्थ है, सब दोषों से दूर है, सर्व व्यापक है, ऐसे सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा को ज्ञान दृष्टि वाला देखता है ॥१८॥ जैसे अन्धा प्रकाशमान सूर्य को देख नहीं सकता, वैसे अज्ञान की दृष्टि वाला सत्य और ज्ञान के लक्षण

वाले ब्रह्म को, वह स्वयं ज्ञान स्वरूप होते हुए भी, नहीं देख सकता ॥१९॥ इस प्रकार के ब्रह्मज्ञान के होने ही से मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त होता है। ऐसे द्वन्द्व रहित, निर्गुण और आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म को ॥२०॥ अपना स्वरूप जान कर फिर वह किसी से नहीं डरता। सर्वव्यापक, नित्य, पर्यपूर्ण त्रिमात्र सुख स्वरूप, आद्वय ॥२१॥ ऐसा एक ब्रह्म ही है और कुछ भी नहीं है, यही ब्रह्म ज्ञानियों की निष्ठा होती है। यह जगत् जो अज्ञानियों को अनन्त दुःख देनेवाला है, वही ज्ञानियों को आनन्दमय हो जाता है ॥२२॥ अन्वों के लिये यह जगत् अन्वकार से भरा हुआ है; परन्तु जिनकी आँखें अन्वही हैं, उनके लिये वह प्रकाश से युक्त है। अनन्त, सच्चिदानन्द ऐसे शुभ वाराह रूप में ॥२३॥ स्थिति प्राप्त करने से वह अद्वैत भाव को प्राप्त हो जाता है, फिर उसके लिये बन्ध वया पदार्थ है और मोक्ष भी किस का होगा? सब देह धारियों का स्वरूप तो हमेशा शुद्ध चैतन्य ही है ॥२४॥ न कि घट के समान स्थूल रूप से दीखने वाला देहादिसंघात उसका स्वरूप है। जो चराचर जगत् अपने से भिन्न प्रतीत होता है ॥२५॥ उसको अपना ही स्वरूप जान कर, वही मैं हूँ, ऐसा निश्चय कर स्वरूप अपना ही भोग करता है, भोग करने के लिये अपने से भिन्न कोई पदार्थ नहीं है ॥२६॥ यदि किसी का अस्तित्व है, तो वह अस्तित्वलक्षण एक ब्रह्म ही का है। ब्रह्मज्ञान संपन्न



पुरुष यह समस्त प्रतीत होने वाला जगत् ॥ २७ ॥ देखते हुए भी नहीं देखता और भरे स्वरूप को जानता है, वह कर्मों से बन्ध को प्राप्त नहीं होता ॥ २८ ॥ जो बारीर, इन्द्रिय आदि से रहित सब का साक्षी परमार्थरूप, एक, विज्ञानमय सुखस्वरूप, स्वयंप्रकाश ॥ २९ ॥ ऐसे सर्वस्वरूप ब्रह्म को अनुभवद्वारा अपना स्वरूप ही जानता है, वही धीर है, वही जानने योग्य (ब्रह्म) है, वही मैं है और हे ऋषि, वही तू हो जा ॥ ३० ॥ प्रपञ्च का अनुभव हमेशा नहीं होता, परन्तु अपने स्वरूप का अनुभव सदा हुआ ही करता है, ऐसा जानकर वह पूर्ण ज्ञानी हो जाता है, उसके लिये न बंध मोक्ष है और न वह बद्ध ही है ॥ ३१ ॥ स्वस्वरूपानुसंधान से सब भूतों में विहार करने वाले सब के साक्षीरूप मेरा जो मुहूर्त भर चिन्तन करे, वह सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है ॥ ३२ ॥

सब भूतों के आंतर में स्थित, नित्य मुक्त, चैतन्य स्वरूप, प्रत्यक् चैतन्यरूप मुझ ही को नमस्कार है ॥ ३३ ॥ हे भगवन्, तू मैं हूँ, मैं ही, हे देवता, तू है। अनन्तरूप तुझको तथा मुझको एवं चैतन्य रूप मुझको और तुझको ॥ ३४ ॥ नमस्कार है। मुझ परमेश्वर को नमस्कार है, शिवरूप तुझको नमस्कार है। (अब) मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, क्या ग्रहण करूँ और क्या छोड़ूँ ॥ ३५ ॥ क्योंकि, यह सब विश्व मुझ से ऐसा व्याप्त है, जैसा महाकल्प के अन्त में सब विश्व जलमय होता है।

जो पुरुष अतःसंग को, वहिःसंग तथा आत्मसंग को छोड़ता है, वह सर्वसंग से निवृत्त हुआ मुझ ही को प्राप्त होता है, इस में कुछ भी संशय नहीं है ॥ ३६ ॥ जैसे सर्प से दूर रहते हैं, वैसे वह जनसमाज से दूर रहता है। विरागवान पुरुष काम का त्याग करने से सुन्दर स्त्री को मृत शरीर के समान छोड़ देता है। जो विषयों को विष समझ कर दूर ही से त्याग देता है, ऐसा परम-हंस पुरुष जगत् में रहने वाला, मैं वासुदेव ही हूँ ॥ ३७ ॥ यह सत्य है, यह सत्य है, यह सत्य है, कि जो यहां कथन करता है कि मैं सत्य परब्रह्म हूँ, मुझको अन्य कुछ भी नहीं है ॥ ३८ ॥

जीवात्मा और परमात्मा का जो समीप वास है (उप-समीप) वही उपवास है ऐसा जानना चाहिये न कि काया को सुखाना उपवास है ॥ ३९ ॥ अज्ञानियों के शरीर को सुखाने से भी क्या लाभ? क्या कहीं बांवी को ही पीटने से सर्प मरता है? ॥ ४० ॥ ब्रह्म है, ऐसा यदि ज्ञान हो तो वह परोक्ष है और मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार ज्ञान हो तो उसको साक्षात्कार कहते हैं ॥ ४१ ॥ जिस काल से योगी अपने केवलस्वरूप आत्मा को जानता है, उसी काल से वह जीवमुक्त हो जाता है ॥ ४२ ॥ मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा ज्ञान ही मोक्षका हेतु है, ऐसा महात्माओं का निश्चय है। बन्ध मोक्ष के कारण दो ही शब्द हैं: मम (मेरा) और निर्मम (मेरा नहीं) ॥ ४३ ॥ ममत्त्व से प्राणी बंध को प्राप्त होता है। एवं ममत्ता के त्याग से वह मुक्त हो जाता है।



बाह्य चिन्ता नहीं करनी चाहिये, वैसे ही प्रांतर चिन्ता का भी त्याग करना चाहिए। इस प्रकार सब चिन्ता का त्याग करके, है ऋभो, तू स्वस्थ हो जा ॥ ४४ ॥ केवल संकल्प के उठने ही से जगत् की प्रतीत होती है और संकल्प के होने ही से जगत् का जेल बना रहता है। इसलिये, इस केवल संकल्पमय जगत् को त्याग कर विकल्परहित पद का प्राप्ति कर। उस अहंपद के लक्ष्य की हृदय में भावना कर ॥ ४५ ॥ मेरा ही चिन्तन कर, मेरा ही कथन कर, आपस में मेरे संबंधी ही चर्चा कर और इस प्रकार केवल मेरे ही पराग्रह हो कर, हे महाभक्त, काल व्यतीत कर ॥ ४६ ॥ इस जगत् में जो कुछ है, चंतन्य है, इसलिये, यह केवल चंतन्य ही है, चिन्तन्य ही है। इसलिये, तू चित् है, मैं चित् है और यह सब जगत् चित् है, ऐसा जान ॥ ४७ ॥ और राग का सर्वथा अभाव करके सर्वदा निर्लेप रह। अज्ञान जनित कर्ता आदि कारकों से उत्पन्न कर्म से ॥ ४८ ॥ श्रुति प्रमाणों से उत्पन्न हुए आत्मज्ञानरूप दीप्तक का बाध किस प्रकार होगा? अनात्म भाव का त्याग करके जगत् के होते हुए निर्विकार होकर ॥ ४९ ॥ अद्वैतनिष्ठा से अन्तःस्व ज्ञानस्वरूप में तनमय हो जा। घटाकाश और मठाकाश, दोनों महाकाश में प्रतिष्ठित हैं ॥ ५० ॥ वैसे ही, शुभ्र चिदाकाश रूप में जीव और ईश्वर प्रतिष्ठित हैं। जो आत्मज्ञान के पूर्व देखी है और पश्चात् हट जाती है

॥ ५१ ॥ ब्रह्मवादी विवेक कर के उसी को माया कहते हैं। माया तथा उसके कार्य का लय हो जाने पर न ईश्वर का भाव है, न जीव का भाव है ॥ ५२ ॥ फिर मैं ही शुद्ध चेतन रूप उपाधिरहित आकाश के समान जीव और ईश्वर तथा जेतन और जड़ आदि रूप से रहता हूँ ॥ ५३ ॥ ईश्वर से ले कर देह में प्रवेश करने तक की सब सृष्टि ईश्वर कल्पित है तथा जाग्रत से लेकर मोक्ष पर्यंत की सब सृष्टि जीव कल्पित है ॥ ५४ ॥ त्रिगुणचिक्ते अग्नि की उपासना से लेकर योग पर्यंत, सब ईश्वरभ्रान्ति के भ्रांशित है और लोकायतों से लेकर सांख्यों तक सब जीवभ्रान्ति का प्राप्ति करते हैं ॥ ५५ ॥ इसलिये शुभ्र को जीव और ईश्वर के संबंधी वादविवाद में मन नहीं लगाना चाहिए, परन्तु, निश्चल चित्त से ब्रह्मतत्त्व का विचार करना चाहिये ॥ ५६ ॥ अद्वितीय ब्रह्मतत्त्व को जो यथार्थता से नहीं जानते, वे सब भ्रान्ति में ही हैं, उनका मोक्ष कहाँ और उनको यहाँ भी सुख कहाँ? ॥ ५७ ॥ उनमें यदि एक एक से उत्तम और अचम हो तो उससे क्या? स्वप्न में चाहे राज्य लाभ हुआ हो, चाहे शिक्षा योगनी पड़ी हो, जागा हुआ उससे संबंध छोड़ा हो रखता है ॥ ५८ ॥ अज्ञान में बुद्धि का लय हो जाने से उसको विद्वान् निद्रा कहते हैं। अज्ञान और उसके कार्य का लय हो जाने पर शुभ्र में अन्न निद्रा कैसे हो सकती है? ॥ ५९ ॥ बुद्धि के पुरुष विकास को जगत्



कहते हैं। मैं ब्रिकारादि से रहित होने से मुझमें जाग्रतावस्था वन नहीं सकती ॥ ६० ॥ बुद्धि का ( कुहू नामक ) सूक्ष्म नाड़ी में संचार होने से स्वप्न नहीं होता है; मैं प्रसरण धर्म से रहित होने से मुझमें स्वप्न नहीं होता ॥ ६१ ॥ सुषुप्ति काल में सबका लय होकर सब ( दृश्य ) अज्ञान से आवृत होने पर दृश्य के अभाव से जीव स्वल्प के महदानन्द को भोगता है ॥ ६२ ॥ जो सब जगत् को समानरूप से चैतन्यमय देखता है, वही साक्षात् जानी है; वही शिव, विष्णु और ब्रह्मा है ॥ ६३ ॥ यह दुःखनागररूप संसार एक दीर्घ स्वप्न है, अथवा दीर्घ चित्तभ्रम है, अथवा वह एक दीर्घ मनोराज्य है। इस निद्रा से जाग कर फिर सोने तक सब ब्रह्म ही है, ऐसा जान ॥ ६४ ॥ आरोपित जगत् का बाध करके चित्त की मद्रू पता से भावना करनी चाहिये। कामादि दुःप्रबल शत्रुओं को मारने से मन रूप हार्थ केवल अद्वितीय ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ ६५ ॥ शरीर का भ्रव ही नाश हो जाय अथवा जब तक चंद्रतारक हैं, तब तक वह वना रहे, इससे मेरे चैतन्यरूप शरीर में क्या विशेष होगा ? घट के नाश होने से अथवा वना रहने से घटाकाश में थोड़ा भी विशेष नहीं होता ॥ ६६ ॥ सर्व की कैबुली सर्व को जीव रहित तत्त्वा है। वह भले चींटियों के विल में पड़ी रहे, सर्व को उसका कुछ भी विचार नहीं है ॥ ६७ ॥ इसी प्रकार आरमभानरूप अग्नि से हेतुसहित मिथ्या अज्ञान का

नाश होने से ज्ञानी स्थूल अन्न सूक्ष्म शरीर की चिता नहीं करता। सब के निषेध का आधाररूप वह, अशरीर ब्रह्म हो जाता है ॥ ६८ ॥ शास्त्र से जगत् के पदार्थों में सत्यत्व बुद्धि का नाश होता है, परन्तु अविद्या के नाश करने वाला अपरोक्ष ज्ञान होता है और प्रारब्ध के नाश होने पर जगत् का भासना छुट जाता है। इस प्रकार आत्मा की त्रिविध माया का नाश होता है ॥ ६९ ॥ मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा भावना करने से जीव भाव जाता नहीं, केवल अद्वैत तत्त्व का बोध होने से वासना का क्षय होजाता है ॥ ७० ॥ प्रारब्ध का भ्रन्त होने से देह नष्ट हो जाता है और इस प्रकार समन्त माया का क्षय होजाता है। यदि जगत् है, ऐसा कहे तो, वह सद्रूप ब्रह्म ही रह जाता है ॥ ७१ ॥

जगत् भासता है ऐसा कहे तो भान केवल ब्रह्म ही का है, क्योंकि महर्षिभूमि में जो जल भासता है, वह महर्षिभूमि को छोड़ कर और कुछ भी नहीं है। इस प्रकार आत्म विचार करने से ये तीनों लोक केवल चित् हो हैं ॥ ७२ ॥ जहां अज्ञान हो नहीं है, जगत् का प्रसंग ही कहाँ, जीव, ईश्वर और गुरु की तो बात ही दूर रही ! केवल अव्यभिचारी बुद्ध चितस्वरूप अपने भाव में मैं परिपूर्ण और केवल ब्रह्म ही हूँ ॥ ७३ ॥ पूर्ण स्वरूप बोधचंद्रमा के तेज का मोहरूपी राहू से ग्रहण होने पर उसके मोक्षकाल तक स्नान, दान, यजन आदि क्रिया



वर्ष्य ही हुआ करती है ( यानी ग्रहण छुटने में इनका कुछ भी प्रयोजन नहीं है ) ।

जैसे जल में नमक एक रूप हो जाता है, वैसे योग से समत्व की प्राप्ति होती है; ऐसी ही आत्मा और मन की एकता हो जाय उसको समाधि कहते हैं ॥ ७५ ॥ सद्गुरु की करुणा न हो तो विषयत्याग दुर्लभ है और सहजावस्था दुर्लभ है ॥ ७६ ॥ जिनको ज्ञान और निष्ठा उत्पन्न हुए हैं और जिन्होंने सब कर्म छोड़ दिये हैं, ऐसे योगियों में सहजावस्था का स्वाभाविकता से प्रादुर्भाव होता है ॥ ७७ ॥ पारा और मन स्वभाव ही से चपल हैं। यदि पारा बांध लिया जाय या मन वश में कर लिया जाय, तो इस लोक में क्या सिद्ध नहीं होगा ? ॥ ७८ ॥ पारे को सुर्धित करने से वह व्याधियों को दूर करता है, उसको मारने से वह मनुष्य को जिन् देता है और बांधने पर आकाश गमन की सिद्धि देता है। पारे के सेवन से बुद्ध चित्त हुआ ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ इन्द्रियों का राजा मन है, मन का स्वामी प्राण है और प्राण का स्वामी लय है, इसलिये उसका आश्रय कर ॥ ८० ॥ योगियों में चेष्टा रहित और विकार रहित लय बना रहता है। जिसके सब संकल्प नष्ट हुए हैं, सब चेष्टा समाप्त हुई है, ऐसा लय स्वयं जानने योग्य है, बाणी और इन्द्रियों से उसका ग्रहण नहीं हो सकता ॥ ८१ ॥ विषयों के सेवन में भली

प्रकार तत्पर रहने पर भी योगी ब्रह्म दर्शन बुद्धि को नहीं छोड़ता; जैसे, संगीत, ताल, लय और वाद्य के साथ नृत्य करती हुई नटी सिर पर रखे हुए घड़े की रक्षा की बुद्धि नहीं छोड़ती ॥ ८२ ॥ जिनको योग के साम्राज्य की इच्छा है, उनको सब की चिन्ता छोड़ कर सावधान मन से केवल नाद ही का अनुसंधान करना चाहिये ॥ ८३ ॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

जो वस्तु एक है, उसके स्वरूप में नानात्व कभी भी हो नहीं सकता, इस लिये मैं अखंड हो हूं, मेरे सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है ॥ ८४ ॥ जो कुछ देखा जाता है, सुना जाता है, वह सब ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिये, नित्य शुद्ध, मुक्त, अखंड, आनन्दमय, सत्य, ज्ञानमय और अनंत ऐसा जो परब्रह्म है, वह मैं ही हूँ ॥ ८५ ॥ मैं आनन्द रूप हूँ, अखंड बोध हूँ, पर से भी पर हूँ एवं घन चैतन्यप्रकाश हूँ। जैसे मेघ आकाश को स्पर्श नहीं करते, वैसे संसार दुःख मुझको स्पर्श नहीं करते ॥ ८६ ॥ संपूर्ण दुःखों का नाश होने पर सब सुख ही रह जाता है, वैसे ही मिथ्या पदार्थों के नाश होने से सब सद्रूप ही रह जाता है। वह ( नाता रूप से ) भासने वाला चिद्रूप ही है, इसलिये वह मेरा अखंड रूप है ॥ ८७ ॥ श्रेष्ठ योगियों के लिये न जन्म मरण है, न गमनागमन है, न मल और उसकी बुद्धि है, और न वेदना है; उनके लिये यह सब अत्यन्त स्पष्ट रूप से



चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार भेरी संनीषि में सब जगत् चेष्टा करता है ॥१४॥ आन्ति से जिस प्रकार सीपी में चांदी की कल्पना होती है, वैसे ही महदादि जगत् मुझ में केवल आन्ति से ही भासता है ॥१५॥ चाण्डाल के देह में, पशु आदि में तथा स्थावर आदि में अथवा ब्राह्मण के देह में अथवा अन्य उच्च नीच भाव में 'मैं' उच्चनीच नहीं होता ॥१६॥ दिशा अन्न नष्ट होने पर भों दिशा जैसे पूर्ववत् ही दीखता है, इसी प्रकार विज्ञान (अनुभव ज्ञान) से नष्ट हुआ जगत् मुझे भासता है, परन्तु वह है नहीं ॥१७॥ न देह है, न इन्द्रिय और प्राण हैं, न मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार है, और न माया तथा आकाश आदि जगत् है ॥१८॥ न कर्ता है, न भोक्ता है और न भोग देने वाला कोई है, केवल सच्चिदानन्द जनार्दनरूप मैं ब्रह्म ही हूँ ॥१९॥ जल के हिलने से जैसे सूर्य हिलता सा प्रतीत होता है, वैसे ही, अहंकार के संबंध से आत्मा को संसारित्व है ॥२०॥ संसार का मूल चित्त ही है, इसलिये प्रयत्न पूर्वक उसका शोधन करना चाहिये। चित्त के महत्त्व में (याने उसको बड़ा मान कर उसीके कहने के अनुसार चलने में) तेरा कैसा विश्वास है? ॥२१॥ राजाओं के वे वन अन्न कहाँ हैं? और वे ब्राह्मण अन्न कहाँ हैं तथा पूर्वकाल का जगत् अन्न कहाँ है? इसी प्रकार यह स्मृष्टि परम्परा जाती रहती है। कोट्यानुकोटि ब्रह्मा चले गये और जैसे भूख के पराग नष्ट हो जाते हैं, वैसे अनेक राजा नष्ट हो गये ॥२२॥

## वसुदेवनिषत्

चित् ही चित् विराजमान है ॥१॥ सत्य, चिद्वन, अखंड, अद्वैत सब इश्य पदार्थों से रहित, निर्दोष ऐसा जो शुद्ध अद्वैत शिव पद है, वही सदा मैं हूँ, ऐसा जानकर मौन रह ॥६॥ जन्म मरण और सुख दुःख से रहित, जाति, नीति और कुल गोत्र से दूर रहने वाला चित् के विवर्तरूप इस जगत् का कारण सदा मैं ही हूँ, ऐसा जानकर मौन रह ॥७॥ पूर्ण, अद्वय अखंड चेतन, जगत् के भेदज्ञान से रहित, अद्वितीय पर सचित् के अंशरूप सदा मैं ही हूँ, ऐसा जानकर मौन धारण कर ॥८॥ किन्हीं से भी बाध न होने के कारण तीनों काल में एकसा रहने वाला सद्रूप अस्तित्व सदा मेरा ही है ॥९॥ मुशुप्ति में जो सब सुखों से श्रेष्ठ, ऐसा निरुपाधिक और नित्य सुख होता है, वही सुखरूपत्व मेरा नित्य आनन्दमयत्व है ॥१०॥ जिस प्रकार राजा का घोर अन्धकार सूर्य के किरणों से त्वरित नष्ट हो जाना है, वैसे ही संसार के कारणरूप घोर अज्ञान का अन्धकार भी श्री हरि की कृपा रूप सूर्य किरणों से नष्ट होजाता है, अन्य किसी से नहीं ॥११॥ मेरे चरणों के स्मरण प्राणियों का अज्ञान दूर हो जाता है। मेरे चरणों के स्मरण को छोड़ कर जन्म मरण के नाश का अन्य कोई उपाय नहीं है ॥१२॥ पुरुष जिस आदर से धन की इच्छा से धनी लोगों की स्तुति करता है, वैसे ही यदि विश्व को उत्पन्न करने वाले ईश्वर की स्तुति करे, तो वह वंघन से कथों नहीं छूटेगा, ॥१३॥ जिस प्रकार सूर्य के संनीषि में सब लोक स्वयं ही

स एव कर दुर्ल जिन् मन मन मन होगा दूर है श्री सेवन इन्द्रिय का न योगिय है। जि सा ल हण :



रजोगुण वश यह देहाभिमान ज्ञानियों में भी होता है (ऐसा यदि कहो तो) जब ज्ञानियों में भी रजोगुण उत्पन्न होता है, तब तो तत्त्वज्ञान निष्फल हो रहा ! ॥ २३ ॥ ( परन्तु ऐसा नहीं है ) राग आदि उत्पन्न होते ही ज्ञान अभिनि से जब वे दूष्य होजाते हैं, तब फिर वे हो कहाँ न सकते हैं ? ॥ २४ ॥ जैसे कोई अत्यन्त निपुण पुरुष दूसरों के दोष ठीक २ देखता है, वैसी ही, निपुणता से यदि कोई अपने दोष देखे, तो वंश उन्का संसार से मोक्ष क्यों न होगा ? ॥ २५ ॥

आत्मा को न जानने वाला मुक्त नहीं होता, तो भी वह नाना प्रकार की सिद्धियां चाहता है और द्रव्य, मन्त्र, क्रिया, काल आदि युक्तियों द्वारा, है मुनीश्वर ! वह उनको पाता है ॥ २६ ॥ आत्मज्ञानी का यह विषय नहीं है । आत्मज्ञानी केवल आत्मा ही को देखा करता है, वह आत्मा न आत्मा ही में तुम रहता है, इसलिये अविद्या के ( अविद्या रूप सिद्धियों के ) पीछे नहीं लगता ॥ २७ ॥ जो कोई जगत् के नाव वाले हैं, उनको अविद्याज्ञान जान । जिन्होंने अविद्या का रत्न किया है, वे उनमें किस प्रकार फँस सकते हैं ॥ २८ ॥ द्रव्य, यन्त्र, क्रिया, काल आदि युक्तियां श्रेष्ठ प्रकार की सिद्धियां देने वाली हैं, परन्तु परम आत्म पद प्राप्त करने के लिये इनका कुछ भी उपयोग नहीं है ॥ २९ ॥ सब इच्छाओं का उठाना बन्द होने पर ही आत्म लाभ का उदय होता है, ऐसा कहते हैं; फिर जिसका

चित्त ही नहीं है, ऐसा पुरुष सिद्धियों की इच्छा किस प्रकार कर सकता है ? ॥ ३० ॥ इति तृतीय अध्याय ॥

पश्चात् निदाघ ऋषि ने भगवान् ऋषु से कहा 'मुझ से जीवन्मुक्ति के लक्षण कहिये ।' 'अच्छा' कह कर वह बोले—

सात भूमिकाओं में अन्त को चार भूमिका वाले जीवन्मुक्त होते हैं । श्रुतेच्छा प्रथमा भूमिका है, विचारणा द्वितीया, तनुमानशी तृतीया, सत्त्वानति चतुर्थी, असंसक्ति पांचवीं, पदार्थ भावना छठी और तुरीयगा सातवीं भूमिका है । सब भूमिका प्रत्युत्पन्नक अर्थात् प्रकार, उकार, मकार और अर्धमात्रात्मक होती हैं । स्थूल, सूक्ष्म, कारण और साक्षी इनके भेद से प्रकार आदि मात्राएँ चार प्रकार की होती हैं । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया उनकी अन्वयाएँ हैं । अकार के स्थूल अंश में जाग्रत अवस्था वाला विवद है, सूक्ष्म अंश में जाग्रत तेजस् है, उकार स्थूल अंश में स्वप्नावस्था वाला विषय है, सूक्ष्म अंश में स्वप्न तेजस् है, कारण में स्वप्न प्राज्ञ और साक्षी अंश में स्वप्न तुरीय है । मकार स्थूल अंश में सुषुप्ति अवस्था वाला विषय है, सूक्ष्म अंश में सुषुप्त तेजस् कारण में सुषुप्त प्राज्ञ और साक्षी अंश में सुषुप्त तुरीय है । अर्धमात्रा स्थूल अंश में तुरीय अवस्था वाला विषय है, सूक्ष्म अंश में तुरीय तेजस् कारण



में तुरीय प्राज्ञ और साक्षी ब्रह्म में तुरीय तुरीय है । अकार की तुरीयांशरूप प्रथम तीन भूमिकाएं हैं, उकार तुरीयांशरूप चतुर्थ भूमिका है, मकार तुरीयांशरूप पांचवीं भूमिका है, अर्ध-मात्र तुरीयांशरूप छठी और उससे परे सातवीं अवस्था है । प्रथम तीन भूमिकाओं में विहार करने वाला मुमुक्षु है, चतुर्थ भूमिका में प्राप्त होने पर वह ब्रह्मविद् ( ब्रह्मज्ञानी ) हो जाता है पांचवीं भूमिका में वह ब्रह्मविद्भर ( श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी ) होता है, छठी भूमिका को प्राप्त ब्रह्मविद्वरीयान ( श्रेष्ठतर ब्रह्मज्ञानी ) हो जाता है और सातवीं भूमिका में ब्रह्मविद्वरिष्ठ ( श्रेष्ठतम ब्रह्मज्ञानी ) हो जाता है । यहां पर ये श्लोक ( जिनका केवल अर्थ नीचे दिया जाता है ) प्रमाणभूत हैं ।

प्रथम ज्ञानभूमि शुभेच्छा कही जाती है, द्वितीय विचारणा और तृतीय तनुमाननी है ॥५॥ सत्त्वपत्ति चतुर्थ भूमि और अरंभक पांचवीं अवस्था है पदार्थभावना छठी तथा तुरीयांश को सातवीं भूमिका कहते हैं ॥२॥ मैं कैसा मूढ़ बना रहा हूँ, मुझे चाहिये कि शास्त्र और लज्जनों की सहायता से मैं अपना निरीक्षण यानी परीक्षा वा सुधार करूँ ? इस प्रकार वैराग्य पूर्वक इच्छा उत्पन्न हो तो उसको विद्वान् शुभेच्छा कहते हैं ॥३॥ शास्त्र के देखने से और सज्जनों की संगति से वैराग्य और अभ्यास के साथ जो प्रवृत्ति होती है, उसको विचारणा कहते हैं ॥४॥ शुभेक्षा और विचारणा की भूमिका में इन्द्रियों के

विषय में राग रहता है । वह जब क्षीण हो जाता है, तब उस को तनुमाननी कहते हैं ॥५॥ तीनों भूमिकाओं के अभ्यास से चित्त में विषयों के लिये वैराग्य उत्पन्न हो जाने से शुद्ध सत्त्व गुण में स्थिति होजाय उसको सत्त्वपत्ति कहते हैं ॥६॥ चारों भूमिकाओं के अभ्यास से जब विषयों का संसर्ग छूट जाता है, तब शुद्ध सत्त्वगुण के उत्कर्ष रूप इस अवस्था को असंज्ञिक कहते हैं ॥७॥ पांच भूमिकाओं के अभ्यास से अपने आत्मा ही में ह्येक्षा सममाण रहने से बाह्य और आंतर पदार्थों का अभिभाव हो जाने से ॥८॥ जब अधिक कान तक दूसरे की प्रेरणा होने ही से पदार्थों का बोध हो, तब उच्चो पदार्थभावनी नामक छठी अवस्था कहते हैं ॥९॥ छः भूमिकाओं का चिरकाल तक अभ्यास करने से जब भेदभाव का लय हो कर केवल आत्मा ही में स्थिति हो जाय, उसको तुर्यन्ता अवस्था कहते हैं ॥१०॥

शुभेच्छादि तीन अवस्था भेद और अभेद दोनों भावों से युक्त होती हैं । इन अवस्थाओं में जाग्रत अवस्था में जगत् जैसा है, जैसा ही दोषलता है ॥११॥ ठीक २ तुरीय भूमि को प्राप्त होने पर श्रद्धा भाव स्थिर होकर द्रव भाव क्षीण हो जाता है, तब जगत् को ज्ञानी स्वप्न के समान देखते हैं ॥१२॥ छिन्न भिन्न हुआ शरत्काल के बादल का टुकड़ा जैसे लय को प्राप्त होता है ( और आकाश ही रह जाता है ), वैसे ही अव-



शिष्ट सत्ता ही तेरा स्वरूप है, हे निदाघ. उसी को तू दृढ़ कर ॥१३॥ सुषुप्ति पद नामक पांचवीं भूमि को प्राप्त हो कर उसके चित्त के समस्त विशेष भाव भान्त होकर वह केवल अद्वैत अवस्था में टिकता है ॥१४॥ वह वहिर्दृग्निवाला होते हुए भी हमेशा अन्तर्मुख रहता है, इसी लिये जैन धका हुआ पुरुष निद्रालु होता है, वैसा वह दीखता है ॥१५॥ वासना रहित हो कर इन भूमिका का ठीक २ अभ्यास करने से क्रम से गाढ़ सुषुप्ति नामक पुरातन सातवीं अवस्था प्राप्त होती है ॥१६॥ जिस अवस्था में न सद्रूप है, न असद्रूप है, न अहंकार है और अहंकार नहीं हो, ऐसा भी नहीं है, वह क्षीण मन वाला केवल अद्वैत भाव में अत्यन्त निर्भयता से रहता है ॥१७॥ जैसे आकाश में खाली घड़ा रखा हो, वैसे वह बाहर से और भीतर से शून्य होता है । ( अथवा ) जैसे समुद्र में भरा हुआ घड़ा हो, वैसे वह बाहर और भीतर परिपूर्ण होता है ॥१८॥ तू न विषयों के भाव से युक्त हो, न भोक्ता के भाव से युक्त हो; सब भावों को छोड़ कर जो कुछ शेष रहे, उसीमें नम्र हो जा ॥१९॥ द्रष्टा, दर्शन और दृश्य इनको वासना के सहित त्याग कर दर्शन के पहिले जो प्रकाशता है, ऐसे केवल आत्मा को भज ॥२०॥

आकाश जैसे विद्यमान होते हुए लीन हो जाता है यानो प्रतीत नहीं होता, वैसे ही जिस को व्यवहार करते हुए भी यह जगत् तय को प्राप्त हुआ है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥२१॥

मुख में वा दुःख में जिसके मन की कला न उदय होती है, न अस्त होती है, इस प्रकार, जैसा हो उसी में जो समान रहता है, उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥२२॥ जो सोते हुए भी जागता है और जिसको जाग्रत भी नहीं कह सकते, जिसको वासना रहित बोध हुआ है, उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥२३॥ प्रसंगानुरूप राग, द्वेष, भय आदि करते हुए भी जो अर्थात्तर में आकाश के समान निर्लेप रहता है, उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥२४॥ जिसको कर्तृत्व का अभिमान नहीं है और जिसकी बुद्धि कर्म करने में लेपायमान नहीं होती, वह कार्य करे अथवा न करे, उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥२५॥ जिससे लोग उद्वेग को प्राप्त नहीं होते, न वह लोगों से उद्वेग को प्राप्त होता है; जो हर्ष, आमर्श ( असहिष्णुता ) और भय से मुक्त हैं; उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥२६॥ जो सब विषयों में व्यवहार करता हुआ भी प्रसन्न रहता है; जैसे उदार पुरुष पर उपकार में शर रहता है, उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥२७॥ हे मुने, जो चित्त में रही हुई सब कामनाओं का नाश कर मुझ सर्वात्मक में ही संतुष्ट रहता है, उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥२८॥ जहाँ कोई दृश्य पदार्थ नहीं है, ऐसे परम पावन चिन्मात्र पद में जो प्रशान्त चित्त से विश्राम करता है, उसको जीवन्मुक्त कहते हैं ॥२९॥ यह जगत् तथा ' ऐसा मैं हूँ ' इस प्रकार का मिथ्या दृश्यज्ञान जिसके चित्त में उदित नहीं होता, उसको जीवन्मुक्त कहते



है ॥ ३० ॥ स्थिर, व्यापक, पूर्ण और निर्विषय ऐसे सद्रूप ब्रह्म में आचार्य और शास्त्र प्रदिष्ट मार्ग से त्वरित प्रवेश करके उसमें स्थिर हो जा ॥ ३१ ॥ गुरु शिव है, वेद शिव है, शिव ही देव और प्रभु है। मैं शिव हूँ और यह सब शिव हैं; शिव से अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ॥ ३२ ॥ धीर ब्राह्मण उसीको जानकर तन्मय बुद्धि कर रखे; बहुत शास्त्रों का अध्ययन न करे, क्योंकि अधिक अध्ययन करना बाणों को वृथा ही कष्ट देना है ॥ ३३ ॥ शुक्र मुक्त हुए हैं और वामदेव मुक्त हुए हैं; इन दोनों को छोड़ कर और कोई मुक्त नहीं हुआ। (इसलिये) जो शुक्र के मार्ग से चलते हैं, वे इसी लोक में मुक्त हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ जो लोक नित्य वामदेव के अनुसार चलते हैं वे वार वार जन्म मरण भोगते हुए योग सांख्य और सात्त्विक कर्मों द्वारा इस लोक में क्रम मुक्ति का लाभ करते हैं ॥ ३५ ॥ ईश्वर ने दो मार्ग उद्घात किये हैं; शुक्रमार्ग और वामदेव मार्ग। शुक्रमार्ग विहंग मार्ग है और वामदेवमार्ग पिपीलिका मार्ग है ॥ ३६ ॥ अतत्त्व की निवृत्ति द्वारा अथवा तत्त्व के अभ्यास से, महावाक्य का विचार करके सांख्य योग की समाधि द्वारा ॥ ३७ ॥ अपने आत्मा का रूप जान कर संप्रज्ञात समाधि से बुद्ध बुद्धि वाले शुक्र मार्ग से परम पद को प्राप्त करते हैं ॥ ३८ ॥ यमादि तथा आसनों से जनित कष्ट से युक्त वार वार हठयोग का अभ्यास करने वाला अनेक विघ्नों से प्राप्त अणिमादि सिद्धियों के कारण ॥ ३९ ॥

मोक्ष रूप फल को प्राप्त न करके फिर श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होता है और पूर्व वासना के कारण वह फिर योगाभ्यास करता है ॥ ४० ॥ इस प्रकार अनेक अनेक जन्मों के अभ्यास से वामदेव मार्ग से वह भी मोक्ष प्राप्त करता है, जो स्वयं विष्णु का परम पद है ॥ ४१ ॥ ये दोनों मार्ग अच्छे हैं और दोनों मोक्ष देने वाले हैं। एक सद्योमुक्ति को देने वाला और दूसरा क्रम मुक्ति को देने वाला है ॥ ४२ ॥ जिसकी बुद्धि तत्त्व में अनुभव होने तक पहुँच रखती है, उसके दर्शन से सब मनुष्य सब पापों से रहित हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ देवता हो या मनुष्य सब ब्रह्मज्ञानी के दर्शन ही से कोटि जन्मों में किये हुए पापों से विमुक्त हो जाते हैं ॥ ४४ ॥ इति चतुर्थ अध्याय ॥

पश्चात् निदाघ ऋषि ने भगवान् ऋषु से कहा 'मुझे योगाभ्यास की विधि कहिये'। 'अच्छा' कह कर बोले—

इस पंच भूतारमक देह में पांच मंडल हैं। जितनी कठिनता है, पृथ्वी है, जितना द्रवरूप है जल है, ॥ १ ॥ जितनी उष्णता है, तेज है, जितना चलन है, वह वायु से है और सबका आधार आकाश है, ऐसा योग की इच्छा करने वाला जाने ॥ २ ॥ वायु मंडल के आघात से एक रात्रि और दिन में इक्कीस हजार और छः सौ बार आस वहते हैं ॥ ३ ॥ पृथ्वी मंडल का क्षय होने पर शरीर में भुर्रियां पड़ती हैं। वैसे ही जल तत्व का क्षय हो जाने पर क्रम से बाल सफेद हो जाते हैं ॥ ४ ॥ तेज का क्षय हो



जाने से भूख और शरीर की कान्ति नष्ट हो जाती है। वायु के क्षय से शरीर हमेशा कांपता रहता है और केवल आकाश से (क्योंकि इस तत्त्व का क्षय नहीं होता) कोई जीता नहीं रहता ॥ १॥ इस प्रकार भूतों के नित्य क्षय होने से (मृत्यु होता है, और) भूतों को धारण करना ही जीवन है। क्योंकि महाजगत् रूप प्राण संतत ऊपर उड़ता है ॥ ६॥ इस लिये (जहां प्राण ऊपर उड़ता है) वहीं पर जो वन्य लगाते हैं, उस को उड्डियाण वन्य कहते हैं। यह उड्डियाण वन्य मृत्युरूप हाथी के लिये सिंह के समान है ॥ ७॥ इस वन्य को करने वाले का मोक्ष हो जाता है। जिसका शरीर कृश हो, उसके लिये यह वन्य दुष्कर है। अग्नि का चालन होने से कोखमें बहुत वेदना होती है ॥ ८॥ अतः जो भूखा हो अथवा जिसको मलमूत्र का वेग प्राप्त हो ऐसा मनुष्य इसको न करे। वह नियमित और हितकर आहार, थोड़ा थोड़ा परन्तु अनेक बार किया करे ॥ ९॥ मृदु, मध्यम और तीव्र अधिकारियों के लिये क्रमशः मंत्र, लय और हठ योग हैं। लय, मंत्र और हठ तीन योग के प्रकार हैं। योग के आठ अंग होते हैं ॥ १०॥ यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार ॥ ११॥ धारणा, ध्यान और आठवीं समाधि। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव (सीधायन), ॥ १२॥ क्षमा, धैर्य, मिताहार और शौच ये दस यम हैं। हे महाभुते, तप, संतोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर-पूजन ॥ १३॥ सिद्धांत श्रवण, लज्जा, मति (निष्ठा), जप

और व्रत, ये दस प्रकार के नियम कहे जाते हैं ॥ १४॥ हे मुनिश्रेष्ठ, चक्र आदि ग्यारह आसन हैं। चक्र, पद्म, कूर्म, सुनिश्रेष्ठ, चक्र आदि ग्यारह आसन हैं। चक्र, पद्म, कूर्म, मयूर, कुक्कुट ॥ १५॥ वीर, स्वास्तिक, भद्र, सिंह, मुक्त और गोमुख, श्रेष्ठ योगियों से प्रशंसित ऐसे ये ग्यारह आसन हैं ॥ १६॥ वार्द्धि जांघ दाहिने गुल्फ (टकना) के ऊपर और दाहिनी जांघ बाएं गुल्फ के ऊपर रख कर शरीर को सीधा रख कर बैठने को चक्रासन कहते हैं ॥ १७॥ अपनी नाड़ियों से रेचक और पूरक करके फिर पूरक और रेचक करना इसको प्राणायाम कहते हैं। इसलिये यहां पर नाड़ियों का वर्णन करते हैं ॥ १८॥

सब प्राणियों का शरीर द्विपानवे अंगुल लम्बा होता है। उसमें पायु (गुदा) के ऊपर दो अंगुल ॥ १९॥ तथा मेढ (लिंग) के नीचे दो अंगुल शरीर का मध्य होता है मेढ से नौ अंगुल ऊपर नाड़ियों का कन्द होता है, ऐसा कहते हैं ॥ २०॥ वह चार अंगुल ऊंचा और चार अंगुल चौड़ा, अन्डाकार और मेढ मज्जा और शोणित से वेष्टित होता है ॥ २१॥ वहां द्वादश दलवाला नाड़ी चक्र प्रतिष्ठित है। इसीसे शरीर का धारण होता है। यहां पर कुण्डली (शक्ति) होती ॥ २२॥ वह सुषुम्णा के प्रवेशद्वार रूप ब्रह्मरन्ध्र को अपने मुख से ढांप कर रहती है। सुषुम्णा के पास अलम्बुसा और कुहू ये नाड़ियां होती हैं ॥ २३॥ अन्तर के दो दलों में बाह्यो



श्रीर यशस्विनी होती है। सुषुम्णा के दाहिने भारे के दक्षिण दल में क्रम से पिगला रहती है ॥२४॥ उसके भीतर के दो दलों में पूषा और पयस्विनी होती है। सुषुम्णा के पश्चिम की ओर के दल में सरस्वति नाड़ी स्थित है ॥ २५ ॥ उसके पश्चात् शशिनी और गांधारी होती है। सुषुम्णा के उत्तर के दल में इडा नामक नाड़ी होती है ॥२६॥ इसके पश्चात् हस्तिजिह्वा और विश्वोदरी ये नाड़ियाँ होती हैं। ये नाड़ियाँ चक्र के दलों में प्रदक्षिणा के क्रम ही से कहि गई हैं ॥ २७ ॥ ये वारह नाड़ियाँ वारह प्रकार के वायु को वहन करती हैं। ये नाड़ियाँ नाना वर्ण वाली और एक कपड़े के समान ( यानी एक सतह में गुथी हुई सी। होती हैं ॥२८॥ इस नाड़ी जाल के मध्य में जो स्थान है, उसको नाभिचक्र कहते हैं। नाद के आधार रूप तथा नाद स्वरूप, तेजोमय और सूक्ष्म रंध्य वाली ( सुषुम्णा ) इन चार रूपों से कथित है। ये चार रत्नों से युक्त हैं ( रत्न से यहाँ अभिप्राय विशेष गुण से है )। कुण्डली से ब्रह्मरंध्य का मध्य सदा आच्छादित रहता है ॥ २९—३० ॥ इन दस नाड़ियों में दस वायु चलते हैं। इस प्रकार नाड़ियों की गति जानकर बुद्धिमान पुरुष ॥ ३१ ॥ सिर, गर्दन और शरीर समान और मुख वंद रखने हुए अत्यन्त निरञ्ज होकर बैठ जाय। नासाग्र में, हृदय के मध्य बिन्दु मध्य में ब्रह्म का, ॥ ३२ ॥ इस प्रकार भली प्रकार सामहित होकर ध्यान करे, उससे अमृत साव होता है। अथान का संकोचन

करके वायु को ऊपर की ओर खींचे ॥ ३३ ॥ फिर उसको प्राण के साथ उठाकर श्रीबीज से उसको निवृत्त करे। आत्मा का ही यहाँ पर श्री रूप से ध्यान करे। इस से अमृत भरने लगता है ॥ ३४ ॥ सब से मुख्य कालवचन यही है। इससे मन में चिन्तन किया हुआ कार्य मन ही से ( मन की सामर्थ्य से ) सिद्ध होता है ॥ ३५ ॥ जल में अग्नि का ज्वलन होने से शाखा और पल्लव उत्पन्न होते हैं। यह जगत् ( के व्यवहार ) के विरुद्ध कथन नहीं है, यहाँ पर किया ही विपरीत होती है। ॥ ३६ ॥ मार्ग में बिंदु को ठीक २ दांघकर जल में अग्नि प्रज्वलित करने हुए उस से जल का शोषण करे। इस से शरीर दृढ़ होता है ॥ ३७ ॥ ध्यान पूर्वक गुदा और योनि ( गुदा और लिंग के बीच का भाग ) दोनों का एक ही समय आकुंचन कर के अपान को ऊपर चढ़ावे और समान रखने हुए, उसको नाभि चक्र में नियोजित करे ॥ ३८ ॥ फिर आत्मा का श्रीरूप से ध्यान करे, इससे अमृत साव होता है। मध्यम द्वार ( ब्रह्मरंध्य ) अथान को दृढ़तापूर्वक एकता करके दोनों के ऊपर चढ़ने की वाला है ॥ ४० ॥ जैसे नीचे की ओर लगा हुआ वंश प्रवाह का रोकने वाला होता है, शरीर में रहनेवाली क्षया ( सुषुम्णा ) का योगी वैसा हो हाल जाने ( अर्थात् मूलवचन लगाने से इसका प्रवाह भी नीचे की ओर बढ़ना बन्द होता है ) ॥ ४१ ॥ सभी



नाडियों को रोक्ने वाला यह एक ही वन्ध है ऐसा कहते हैं। इसलिये, इस वन्ध के सामने से देवता यानी शक्ति जागृत होती है ॥४२॥ इस प्रकार का यह चतुष्पथ (चार मार्ग वाला) वन्ध तीन मार्गों को रोक्ने वाला और उस एक मार्ग का विकास करने वाला है, जिस मार्ग से सिद्ध पुरुष सुत्तमता पूर्वक (अपने स्वरूप को) प्राप्त होते हैं ॥४३॥ प्राण के सहित उदान को वेग पूर्वक ऊपर चलाने से यह वन्ध होता है। यह सब नाडियों का निरोध करते हुए ऊपर चलता है ॥४४॥ इसी को संपुट योग कहते हैं, यही मूलबंध है और अभ्यास करते करते तीनों वन्ध इसी से सिद्ध हो जाते हैं ॥४५॥ दिन रात प्रत्येक पहर में श्वि-चिह्न रूप से नित्य अभ्यास करने से वायु वश में हो जाता है ॥४६॥ वायु वश में होजाने से शरीर में दिन दिन श्विनि बढ़ता रहता है। श्विनि के बढ़ने से अन्नादिका मुख पूर्वक पाचन होता है ॥४७॥ अन्न का ठीक पाचन होने से रस वृद्धि होती है और नित्य रसवृद्धि से धातु वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥४८॥ शरीर में धातुओं की वृद्धि होने से (अन्तःकरण शुद्ध होने से) बोध की वृद्धि होती है और सैकड़ों कोटि जन्मों में किये हुए पाप भस्म होजाते हैं ॥४९॥

गुदा और लिंग के बीच में त्रिकोणाकृति मूलाधार चक्र है। उस स्थान में विंदु रूप शिव प्रकाशते है ॥५१॥ यहीं पर

कुण्डलिनी नामक परा शक्ति प्रतिष्ठित है, जिससे प्राण उत्पन्न होता है और श्विनि बढ़ता है ॥५१॥ जिससे बिन्दु उत्पन्न होता है और नाद वृद्धि को प्राप्त होता है, जिससे हंस उत्पन्न होता और जिससे मन उत्पन्न होता है ॥५२॥ मूलाधारदि छः चक्र शक्ति का स्थान कहे जाते हैं और कंठ के ऊपर सिर के अन्त तक शिव का स्थान कहा जाता है ॥५३॥ नाडियों का आश्रय शरीर है, प्राणों का आश्रय नाडियाँ हैं, जीव का आश्रय प्राण है और हंस का निवास स्थान जीव है ॥५४॥ शक्ति का श्वि-एतन हंस है। इस प्रकार यह चराचर (अपेक्षा से जड़ और चेतन प्रतीत होने वाला) जगत् है। पुरुष विकल्प से रहित और प्रसन्न होकर प्राणायाम का अभ्यास करे ॥५५॥ वन्ध त्रय से युक्त होकर लक्ष्य का साक्षात्कार करने में हेतु भूत जानने योग्य पदार्थ (ब्रह्म) का, सत्य की खोज में लगे रहने वाले मन से, नित्य श्रुतसन्धान करे ॥५६॥

लक्ष्य रूप परब्रह्म में ध्यान रखकर स्वयं उसी में टिकते हुए रेचक और पूरक दोनों का कुम्भक में निरोध करे ॥५७॥ बाह्य रहने वाले विषयों को रेचक कहा गया है, शारीर्य द्वारा किं हुए तत्त्व निश्चय को पूरक और उसी को अपने में दृढ़ करना इस को कुम्भक कहा है ॥५८॥ इस प्रकार जिसके चित्त को अभ्यास हुआ है वह मुक्त ही है, इसमें संदेह नहीं। कुम्भक का (जिस के स्वरूप को पहले कह चुके हैं) आरोप करके उसको कुम्भक



ही से प्रेरित करे ॥५६॥ कुम्भाक से कुम्भाक का कुम्भाक करे, तब वही भान्तरण परम विषय है ।

भय साधन करना चाहिये, अली प्रकार स्थित हो कर कंठ मुद्रा के साथ ॥६०॥ प्राणोंकी गति को रोक कर गुरुक कुम्भाक की धारणा करके दोनों हाथ तथा दोनों पैर भीम में समान रूप से जमा कर ॥६१॥ वेध के क्रम से वायु से जिसमें भार पीठ या शक्त होती है ऐसे मेकदण्ड का वायु द्वार के स्थान में बार बार साधन करे ॥६२॥ दोनों गुटों का (जरीर का ऊपर का श्रीर नीचे का भाग) धार्कण होने से वायु का स्थिरता स्फुरण होता है । इससे सूर्य, चन्द्र और अग्नि का सम्बन्ध होने से यह अमृत को प्राप्त कराने वाला है, ऐसा जानना चाहिये ॥६३॥ मेघ दण्ड के बालन से मेघ दण्ड में रहे हुए देवता जाग्रत होते हैं । इस का वेध प्रथम ब्रह्म अग्नि से दीप्त होता है ॥६४॥ ब्रह्म अग्नि का ओद करके बाद वह विष्णु अग्नि का ओद करता है और विष्णु अग्नि के ओद के पश्चात् कद्र अग्नि का वह ओद करता है ॥६५॥ कद्र अग्नि का ओद करके अनेक जगों में उपाजित पुत्र संस्कारों से तथा गुरुदेव के कृपाप्रसाद से समस्त अज्ञान रूपी मल का नाश करता है ॥६६॥ इन्द्रा श्रीर पितृता के दीन में रहे हुए, सुपुम्ना नाडी के गण्डल में योग का श्रम्यस्त करने से योगी को यह वेध उत्पन्न होता है ॥६७॥ विशिष्ट प्रकार की मुद्रा श्रीर बन्ध द्वारा वायु को ऊर्ध्व बलाना चाहिये ।

प्रणोवाहार यदि घृस्व हो तो वह पापों का नाश करता है, दीर्घ मोक्षदायक होता है ॥६८॥ श्रीर प्लुत से पूर्णता प्राप्त होती है । तीनों प्रकार के प्रणव का लेख की धारा के समान प्रसृत श्रीर घटा के दीर्घ, नाद के समान उच्चारण करने से (वायु ऊर्ध्व चलता है) ॥६९॥ प्रणव का अग्न प्रवाह्य (ग्रह स्वर्ण), उसको जो जानता है, वह वेद को जानता है । बिंदु तक प्रणव उच्चारण से प्राण चक जाय तो वह ह्रस्व है, ब्रह्मरन्ध्र तक दीर्घ श्रीर द्वादशाल तक चढ़े तो वह प्लुत प्रणव प्रानन्द श्रीर मानव सिद्धि को देने वाला है ॥७०॥ यह प्रणव सर्व विघ्नों को दूर करनेवाला श्रीर सब पापों का नाश करने वाला है । प्रारम्भ घट, परिचय ॥७१॥ श्रीर निष्पत्ति ये चार उसकी शुभंकाएं हैं । काया वाचा श्रीर मन से होने वाले वाह्य कर्म का त्याग करके ॥७२॥ जब भान्तर कर्म करने लगता है, तब प्रारम्भ अवस्था कही जाती है । वायु परिचय मार्ग से वेध करता हुआ भली प्रकार स्थिर ॥७३॥ होकर रहे, उसको विद्वान् घटावस्था कहते हैं । न वह सजीव होता है, न निर्जीव, इस प्रकार श्रीर में निश्चल रहता है, जिसमें श्वाकाश में स्थिर रहता है । उसको प्रचय (परिचय) अवस्था कहते हैं ॥७४॥ जिसमें श्वाकाश से सृष्टि श्रीर लय होते हैं, जो जीवन्मुक्ति अवस्था को प्राप्त हुआ है श्रीर जब सहज योग करता है, तो यह निष्पत्ति शुभंका है ॥७५॥



इस उपनिषद् को जो पढ़ता है, सो अग्नि से शुद्ध होता है उसने सुरापान किया हो, तो उस दोष से वह मुक्त होता है, सुवर्ण की चोरी के दोष से मुक्त होता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है। आगे के मंत्र में भी यही बात है—उस विष्णु के परम पद को जानने लोग जैसे आकाश आँख के आगे बिछा हुआ हो इस प्रकार स्पष्ट देखते हैं। जिनका अज्ञान निवृत्त हुआ है, ऐसे विद्वान् ब्राह्मण उस विष्णु के परमपद को नित्य स्तुति करते हैं।

॥ इति वराहोपनिषद् समाप्त ॥